स्वस्त्यस्तु

मानमेयरहस्यश्लोकवार्तिकम्

सकलशास्त्रसा[illegible]म्

श्रीमन्महीमण्डलमण्डना[illegible] [illegible]धीश्वर
[illegible]र्य श्रीमत्कृष्णराजसार्व[illegible]

श्रीमन्महाराज संस्कृतमहापाठशाला [illegible]द्वैतवेदान्त
प्रधानोपाध्यायेन

महामहोपाध्यायेन पण्डित[illegible] ।
लक्ष्मीपुरं श्रीनिवासाचार्येण
प्रणीतम्

मैसूरु
राजकीय शाखा मुद्राक्षरालयतः प्रकाशितम्
संवत् १९[illegible]

विज[illegible]

स्वस्त्यस्तु

मानमेयरहस्यश्लोकवार्तिकम्

सकलशास्त्रसारसंग्रहरूपम्

श्रीमन्महीमण्डलमण्डनायमान कर्णाट देशाधीश्वर
तुर्य श्रीमत्कृष्णराजसार्वभौमाश्रितेन
श्रीमन्महाराज संस्कृतमहापाठशाला विशिष्टाद्वैतवेदान्त
प्रधानोपाध्यायेन
महामहोपाध्यायेन पण्डितरत्नेन
लक्ष्मीपुरं श्रीनिवासाचार्येण
प्र णी त म्

मैसूरु
राजकीय शाखा मुद्रायन्त्रालयतः प्रकाशितम्
संवत् १९२५

विजयतां सच्छास्त्रपद्धतिः

श्रीरस्तु

अवतरणिका.

आर्या महाशयाः इदानीमिदमत्रावधारयितुमर्हन्ति तत्रभवन्तः भवन्तः, य एष मानमेयरहस्यश्लोकवार्तिकनाम्ना संगृहीतः प्रकाशितश्च प्रबन्धः सोऽसौ नानतिचिरेण प्रयत्नेन निष्पन्नः, असाधारणेन सर्वानपि कालान् सार्थकयता संग्रहिष्णुतास्वभावेन क्रमेणोपचिता नानाशास्त्रप्रमेयाः ऐकराश्यसंपादनेन प्रबन्धस्यास्य प्रमेयरूपतामनीयन्त, प्राणीयन्त च सुग्रहत्वाय स्थिरत्वाय च वार्तिकश्लोकरूपेणेति ॥

यत्पुनः सर्वस्वं विज्ञानसंपदां भारतधरित्र्याः बहोः कालात् बहुभिः कृतबुद्धिभिः समार्जितं संवर्धितं च सर्वोपजीव्यं कुलधनं, प्राचीनैः पराचीनैश्च क्वचित्क्वचित् महाप्रबन्धगुहासु निक्षिप्तं विप्रकीर्णं वा, तदेतत् एकदा एकधा एकत्र सर्वेषां समुपभोगार्हत्वाय समुद्धृत्य पर्यष्कारि प्रबन्धरूपेणेति च ॥

विदितमेवैतत्सर्वेषां सहृदयानां प्रायेणात्मीयस्य वस्तुनः गुणेषु सुदर्शनं दोषेष्वदर्शनमिति, अथापि—"ग्रन्थे यदि गुणाः सन्ति विकसन्त्येव ते स्वयम्" इत्यनुसन्धाय सविनयमावेदयति कथंचित् उपकरोतु जगतां महतामनुग्रहेणेदमिति ॥

अपिचास्य प्रबन्धस्य सम्मुद्रणविषये श्रीमन्महाराज श्रीमत्कृष्णराजसार्वभौम महासन्निधानसमासादितप्रसादविशेषेण श्रीमन्महाराजसर्कारिकृतसत्कारेण च निर्भरः निर्भयश्च प्रवृत्तोऽस्मि ॥

ततश्च मुद्रणसमये शोधनविषये समुपकुर्वतां सदयहृदयानां ज्यौतिषरत्नबिरुदानां श्री नरहरिज्यौतिषिकमहाशयानां, मुद्रणकार्यं च सुललितं स्वनुकूलं च निर्वर्तयतां शुभमयहृदयानां मुद्रायन्त्राधिकृतानां च साहायकेन कृतार्थः कृतज्ञश्च संवृत्तोऽस्मीति विज्ञापयति

सतां विधेयः,

महामहोपाध्यायः पण्डितरत्नं

लक्ष्मीपुरं श्रीनिवासाचार्यः.

अयि महाशयाः

इदमप्यवधारयितु मर्हन्ति भवन्तः, महिशूर विश्वविद्या-निलये पण्डितपदमपि अधितस्थिवानहं तादृश विश्वविद्या-निलयाधिकृतानां प्रोत्साहनेन प्रबन्धमिमं प्रकाशयामि ।

ततो विश्वविद्यानिलय कीर्तिमपि अनुवर्तयतु प्रबन्धोऽय मित्याशास्ते ॥

लक्ष्मीपुरं श्रीनिवासाचार्यः.

विषयानुक्रमणिका.

(79) अनुमेयवादः.

(80) न्यायवादः

(81) हेत्वाभासाः.

(82) कथा.

(83) उपमानवादः.

(84) अर्थापत्तिवादः.

आकरग्रन्थः.

अधिकरणसारावळिः
अनुव्याख्यानम्
अर्थसंग्रहः
अवैदिकदर्शनम्
आगमप्रामाण्यम्
आत्मसिद्धिः
आप. ध—आपस्तम्बधर्मः
आप. प—आपस्तम्बपरिभाषा
आप्तमीमांसा
उपस्कारवृत्तिः वैशेषिकसूत्रस्य
ऋक्संहिता
काव्य. सं—काव्यप्रकाशसङ्केतः
काव्यादर्शः
काव्यालङ्कारसूत्रम्
किरणावळिः
खण्डन-खण्डखाद्यम्
गौ. का—गौडपादकारिका
गौ. ध—गौतमधर्मः
जै. सू—जैमिनिसूत्रम्
जै. मा—जैमिनीयन्यायमाला
त. कौ—तत्त्वकौमुदी
तत्त्वचिन्तामणिः
त. टी-तत्त्वटीका—श्रीभाष्यव्याख्या
तत्त्वत्रयस्य व्याख्या लोकाचार्यकृतस्य
त. क—तत्त्वमुक्ताकलापः
तत्त्ववैशारदी
तत्त्वसंख्यानम्
तत्त्वार्थराजवार्तिकम्
तन्त्र. तन्त्रवार्तिकम्
तात्पर्यचन्द्रिका गीताभाष्यव्या
तात्पर्यदीपिका—वे. सं. व्या
तैत्तिरीयसंहिता
दृग्दृश्यविवेकः
ध्वन्यालोकः
न्या. क—न्यायकणिका
न्यायकन्दळी
न्या. कु—न्यायकुसुमाञ्जलिः
न्या. प—न्यायपरिशुद्धिः
न्या. बि—न्यायबिन्दुः
न्या. भा—न्यायभाष्यम्
न्या. म—न्यायमञ्जरी
न्या. मा—न्यायरत्नमाला
न्या. र—न्यायरत्नाकरः
न्या. ता—न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका
न्या. सि—न्यायसिद्धाञ्जनम्
न्यायसुधा—राणकम्
न्या. सू—न्यायसूत्रम्
न्या. सू. वृ—न्यायसूत्रवृत्तिः
पञ्चपादिकाविवरणम्
प. म—परमतभङ्गःवेदान्ताचार्यकृतः
पाणिनिसूत्रम्
पातञ्जलयोगसूत्रम्
पाञ्चतन्त्रम्
पा. भा—पातञ्जलयोगभाष्यम्
प्र. क—प्रकरणपञ्चिका

प्र. चं—प्रबोधचन्द्रोदयः
प्र. त–प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कारः
प्रमाणपद्धतिः
प्रमेयकमलमार्ताण्डः
प्रश्नोपनिषत्
बालप्रकाशः
बृ. उ—बृहदारण्यकोपनिषत्
ब्र. सू—ब्रह्मसूत्रम्
भ. गी—भगवद्गीता
भा. दी—भाट्टदीपिका
भाट्टरहस्यम्
भामती
भारतम्
भा. भा—भास्करभाष्यम्
मनुस्मृतिः
म. भा—महाभाष्यम्
महाविद्या
मा. वृ—माध्यमिकवृत्तिः
मानमेयरहस्यश्लोकवार्तिकम्
मानमेयोदयः
मीमांसाकौस्तुभः
याज्ञवल्क्यस्मृतिः
रघुवंशः
रहस्य—त्रयसारः
राज—मार्ताण्डः
रामायणम्
वररुचिवार्तिकम्
वा. प—वाक्यपदीयम्
वादावळिः अनन्तार्यकृता
वि. वि—विधिविवेकः
विष्णुपुराणम्
वेदान्तपरिभाषा
वे. सं—वेदार्थसंग्रहः
वैयाकरण—भूषणसारः
वै. सू—वैशेषिकसूत्रम्
वै. भा—वैशेषिकभाष्यम्
व्युत्पत्तिवादः
शक्तिवादः
शब्द—शक्तिप्रकाशिका
शतदू—शतदूषणी
शा. भा—शाबरभाष्यम्
शास्त्र—दीपिका
श्रीभा—श्रीभाष्यम्
श्रुत—प्रकाशिका
श्लोक—वार्तिकम्
श्वेताश्वतरोपनिषत्
सम्बन्ध—वार्तिकम्
संवित्सिद्धिः
सच्चरित्ररक्षा—वेदान्ताचार्यकृता
स. सं—सर्वदर्शनसंग्रहः
स. सि—सर्वार्थसिद्धिः
सांख्य—कारिका
सि. मु—सिद्धान्तमुक्तावलिः
सिद्धान्तलेशसंग्रहः
सेश्वर—मीमांसा
स्पन्दप्रदीपिका
स्मृतिचन्द्रिका
हेमाद्रिपरिशिष्टम्

आकरग्रन्थसंकेतः

पुट.	पङ्क्ति.	सङ्केताः
3	5	जै. न्या. 1-1-2
3	7	न्या. मा. 427
4	7	न्या. बि. 2
4	8	न्या. ता. 2
4	13	प्र. त. 6
5	19	वररुचि 1-1-1
6	3	जै. सू. 1-1-5
6	6	वा. प. 1-23
6	9	श्लोक 4
7	3	,, 831
8	5	त. टी. मङ्गलवादः
9	1	गौ. का 4-100
9	12	मनु 4-146
9	13	न्या. सू 1-1-26
10	3	,, 4-1-41
10	16	प्र. चं 6-12
11	12	न्या. सू 1-1-1
11	19	वा. प 1-1
12	20	वै. सू 8-2-3
13	7	वा. प 2-441
13	9	अ. द. शून्यवादः
13	15	वा. प 1-34
14	1	श्लोक 633
14	13	मा. वृ 4
14	17	गौ. का 3, 17
15	3	प. म 6 भ.
17	17	सा. का 17

पुट.	पङ्क्तौ.	सङ्केताः
18	3	बृ. उ 6-5
18	7	वा प 1-8
19	10	स. सं 9 द.
19	12	भा. भा 121
19	18	प्र. त 145
20	1	स. सं 2 द.
20	15	अ. द. विज्ञानवादः
21	1	स. सं 2 द.
21	5	न्या. र 218
21	19	भा. भा 121
22	11	भामती 2-2-17
25	15	श्रुत 2-2-18
27	13	न्या. र 321
27	15	,, 274
27	17	स. सि 4-18
28	1	स. सं 2 द,
28	11	मा. ट 184
29	9	,, 190
30	9	स. सं 2
31	18	भा. भा 123
31	20	पा. भा 4-20
32	9	स. सि 1-10
32	12	न्या. र 576
32	13	सं. सि 1-8
32	19	भा. भा 116
33	3	स. सि 1-31
34	9	न्या. सि 1 परि.

पुट.	पङ्क्ति.	सङ्केताः.
34	12	श्लोक 735
35	11	न्या. म 94
36	8	न्या. भा 1-1-1
36	13	सि. मु 2 श्लो.
37	17	न्या. म 560
38	3	न्या. कु 5 स्त.
38	5	न्या. क 167
39	13	स. सं 9 द.
39	15	वै. भा. मङ्गलम्
40	10	न्या. म 433
41	14	न्या. कु 1 स्त.
42	8	न्या. प 16
44	10	भा. भा 116
45	3	,, 87
45	10	पा. भा 4-34
46	3	त. कौ 9 का.
46	5	श्लोक 302
46	14	त. कौ 33 का.
48	12	,, 27 का.
49	11	पा. भा 2-13
50	17	,, 1-24
52	11	राजमा. 4-29
53	1	पा. भा 1-48
54	18	स. सि 4-30
57	5	राजमा. 4-23
59	9	पा. भा 4-13
61	9	पा. भा 4-31
63	13	मानमेयोदय
64	13	श्लोक 177
65	13	श्लोक 297
65	8	बृ. उ. शं 5-8-12
66	5	भा. भा 134
66	15	,, 16
67	13	,, 96
67	15	,, 99
68	3	अर्थसंग्रहः
69	7	न्या. क 287
70	5	पञ्चपादिकाविवरणम्
71	9	स. सि 1-6
73	2	वे. सं 135
73	9	तत्त्वसंख्यानम्
74	14	अनुव्याख्यानम्
75	7	स. सं 5 द.
76	3	स. सं 3 द.
77	12	प्र. त 5-3
78	13	प्र. त 4-15
78	17	आप्तमीमांसा
79	7	प्रमेयकमल
79	17	त. क 5-133
81	1	न्या. कु 1 स्त.
81	6	प्र. त 4-10
81	17	वे. सं 11
82	10	श्लोक 190
85	3	शब्द 19-97
85	11	शक्तिवादः
86	7	श्लोक 202
87	3	प्रक 5 प्र.
87	17	श्लोक 438
89	7	न्या. कु 3 स्त.
89	11	श्लोक 563

पुट.	पङ्क्ति.	सङ्केताः
90	14	न्या. र 740
90	18	स. सि 1-60
91	17	वा. प 1-111
92	1	वि. वि 75
92	5	न्या. म 136
96	15	स. सि 1-66
97	17	वे. सं 68
98	13	प. म 3 भ.
99	19	पा. भा 3-51
100	15	भा. भा 196
101	13	वै. सू 2-1-27
102	3	वा. प 1-117
102	7	स. सि 1-42
105	1	स. सि 1-8
105	13	न्या. म 503
105	19	स. सि 1-18
107	1	मनु 8·132
107	1	याज्ञ 1-361
107	5	स. सि 1-19
108	19	श्लोक 650
109	7	स. सि 2-27
109	15	न्या. सू 1-1-11
109	17	श्री भा 2-1-9
110	9	प. म 17 भ
110	17	तन्त्र 3-1-7
112	13	सा. का 39
113	13	वेदान्तपरिभाषा
114	1	स. सि 1-11
114	7	न्या. कु 1 स्त.
115	7	प. म 3 भ.
115	9	न्या. र 181
115	11	,, 183
115	13	न्या. ता 97
116	10	न्या. र 146
116	20	श्लोक. 188
117	9	न्या. म 73
117	19	किर 75
118	18	श्लोक 763
120	1	,, 508
120	12	भा. भा 72
121	1	प्र. त 48
122	12	प. म 6 भ.
124	3	न्या. र 150
126	3	,, 664
129	13	न्या. सू 3-1-1
130	5	,, 1-1-30
130	13	न्या. म 429
132	7	शा. भा. आत्मवादः
145	15	तन्त्र 376
147	17	,, 381
148	5	,, 372
149	3	,, 375
149	10	प्र. क 8 प्र.
152	1	ब्र. सू. शं 3-3-51
154	11	स. सि 2-1
156	3	प्र. त 145
158	11	स. सि. 1-8
159	15	न्याम. 94
159	1	न्या. ता 89
160	1	न्या. र 590

पुट.	पङ्क्ति.	सङ्केताः
160	9	त. टी 32
161	6	त. कौ 9 का
161	11	स. सि 1-8
162	11	न्या. ता 107
164	17	न्या. सि 1 परि
165	13	श्लोक. 178
166	11	,, 297
166	17	,, 588
167	7	,, 632
168	2	तत्त्ववै. 3-13
169	5	श्लोक. 169
169	9	तत्त्वार्थराज
170	1	पा. भा 3-43
170	5	,, 3-43
170	13	श्लोक. 202
172	11	मुण्डकभा. रं 1 मु
172	16	मानमेयोदयः
173	19	स. सि 5-33
174	1	श्लोक. 835
174	6	काव्यादर्शः
175	1	स. सि 5-27
176	3	न्यायकन्दळी
176	8	उपस्कारवृत्तिः
176	9	स. सि 5-41
177	7	,, 5-45
178	11	,, 5-51
179	3	श्रीभा. महासिद्धान्तः
179	7	स. सि 5-52
180	15	,, 5-56
181	3	,, 5-58
184	12	न्या. कु 1 स्त.
185	1	स. सि 2-1
185	15	वे. सं 73
186	8	साहित्यरत्नाकरः
187	1	मानमेय 495
187	9	श्री भा. श्रुतिघट्ट.
187	18	वे. सं 248
188	4	न्या. म 74
188	7	न्या र 319
189	3	श्लोक 318
190	7	प्र. त 35
190	15	श्रीभा महासिद्धान्तः
191	15	स. सि 1-8
191	16	वा. प 1-112
192	3	न्या. सू. वृ 2-2-13
192	11	वा. प 1-117
192	15	,, 1-1
192	17	प. म 14 भ.
192	20	प. म 14 भ.
193	11	न्या. म 216
194	7	शा. भा 1-1-5
195	9	श्लोक 802
195	11	,, 806
196	1	,, 811
196	11	,, 526
196	19	न्या. म 220
197	5	श्लोक 763
198	6	,, 511
199	8	वा. प 1-94
199	17	श्लोक 786

पुट.	पङ्क्ति.	सङ्केताः
200	7	सि. मु 161 का.
200	12	न्या. कु 1 स्त.
200	17	श्लोक 107
201	19	,, 49
202	11	न्या. म 471
203	5	न्या. कु 1 स्त.
203	17	स. सि 2-48
204	3	श्लोक 120
204	15	,, 118
204	17	मनु. 5-55
205	1	बृ. उ 3-4-14
205	13	आप. ध 1-20-7
207	3	तत्त्व 380
207	9	रामा 4-18
207	14	न्या. र 4
207	16	गौ. ध 21-4
208	3	याज्ञ 3-219
208	15	न्या. मा 103
208	19	आप. ध 1-20-3
209	5	श्लोक 653
209	19	व्युत्पत्तिवादे लिङर्थः
210	15	श्लोक 117
211	6	श्री भा 3-1-25
212	3	त. टी 145
212	17	भार. नारायणीयम
215	11	विष्णु 4-6-94
216	15	भार 3-30-28
216	18	स. सं 6 द.
217	10	तात्पर्य 3-8
218	4	श्रु. त प्र 2-3-41
219	2	श्री भा 2-2-3
219	7	भ. गी 9-10
220	3	श्री भा 2-2-3
220	17	श्लोक 683
221	3	,, 684
221	10	गौ. ध 11-31
221	15	न्या. सू 2-1-57
222	13	श्लोक 657
223	9	,, 655
223	19	तन्त्र 81
224	1	वेदान्तपरिभाषा
224	9	याज्ञ. 1-384
225	1	भ. गी 18-14
226	9	पाणिनि. 1-4-45
226	9	श्लोक 865
226	13	ब्र. सू 2-3-40
227	6	,, 2-3-41
229	18	तात्पर्य 18-14
230	20	,, 3-30
230	6	स. सि 5-107
230	20	न्या. र 371
231	3	पा. भा 4-21
231	13	वै. सू 1-1-11
231	15	वै. सू. वृ 5-1-1
232	4	जै. सू 3-1-10
232	9	श्लोक 927
232	17	व्या, सि 5 परि.
233	9	न्या. म. 220
233	15	,, 225
233	19	श्लोक 689

पुट.	पङ्क्ति.	सङ्केताः.
235	17	न्या. म 278
236	3	प्रक. 3 प्र.
237	1	त. टी 74
237	5	न्या. म 298
237	13	न्या. र 578
238	19	प्र. क 3 प्र.
239	5	श्लोक 557
240	13	„ 622
241	1	वैया. भूषणं
241	11	सिद्धान्तकौ. स्त्री.
241	15	त. टी 75
242	13	„ 78
242	16	प्र. त 74
243	8	सेश्वर 1-2-2
243	9	मनु 9-20
243	11	जै. सू 1-2-2
244	3	पाणिनि 2-2-6
244	8	मनु 10-5
244	9	भारत 14-39
244	12	श्रुतप्र 1-3-7
244	15	शतपथ 3-1-1-40
244	17	पाद्म-चर्या 1-8
245	1	तत्त्वत्रयव्या 173
245	5	तन्त्र 1-2-3
245	15	श्लोक 620
246	7	मी. कौस्तुभः 1-2-2
246	13	सेश्वरमी 1-2-2
247	2	प. म 6 भ.
247	3	याज्ञ 1-96
247	11	भ. गी 18-42
247	17	रहस्यत्रय—प्रभाव व्यवस्था.
248	4	सच्चरित्ररक्षा 31
248	5	मनु 10-5
248	7	प्रमेयकमल.
252	1	न्या. र 819
252	3	न्या. म 312
252	9	श्लोक 622
252	14	शतदू 10 भ.
252	15	त. कौ 9 का.
254	4	न्या. भा 2-1-34
254	19	न्या. म. 359
256	5	श्लोक 272
257	3	स. सि. 4-28
257	14	श्रीभा. अहमर्थात्मस-[मर्थनं
257	16	न्या. र 319
258	17	न्या. सि. बुद्धिपरि.
259	4	श्लोक 288
259	19	„ 866
260	2	स. सि 1-26
260	9	श्रीभा 2-3-45
260	11	स, सि 4-84
260	19	वे. सं 110
264	4	न्या. म 63
265	9	न्या. सि 6 परि.
265	17	भा. भ 99
266	4	श्रीभा. भेददूषणम्
266	6	वेदान्तपरिभाषा.
266	14	न्या. कु 1 स्त.
266	19	न्या. म 49

पुट.	पङ्क्ति.	सङ्केताः.
271	11	श्लोक 475
273	5	स. सि 4-18
274	3	श्लोक 249
275	15	शा. भा 2-1-7
276	15	न्या.प.अनुमानाध्याय:
277	7	न्यायबिन्दुटीका
278	3	श्लोक 157
278	8	प्र. त 1-3
278	11	,, 90
279	1	न्या. कु 4 स्त.
279	7	न्या. र 157
280	5	श्लोक 318
280	17	,, 833
281	1	प्रक. 5 प्र.
281	17	न्या. सू 1-1-15
282	9	आत्मसिद्धिः 21
283	5	न्यायपरिशुद्धिः 21
284	17	न्या. म 432
284	19	प्रमाणपद्धतिः
285	4	न्यायपरिशुद्धिः
287	1	श्लोक 54
290	2	त. कौ 64 का
290	11	प्र. क 4 प्र.
291	5	न्या कु 2 स्त.
294	14	भा. भा 123
294	20	न्या. म 17
295	3	अधिकरण 2-2-30
295	15	श्लोक 327
295	7	स. सि 4-30
297	3	श्लोक 279
297	17	न्या. म 15
298	5	स. सि 4-25
298	9	न्या. म 87
299	4	प्र. क 4 प्र
300	12	श्लोक 242
301	6	प्रमाणपद्धतिः
301	12	श्रीभा. ख्यातिवादः
302	14	स. सि 4-11
302	17	खण्डनखण्डखाद्यम्
303	1	वेदान्तपरिभाषा
303	15	स. सि 4-16
304	15	श्लोक 255
305	7	काव्यप्रकाश सं 69
306	7	स. सि 3-50
306	9	,, 4-18
306	20	श्री भा. ख्यातिवादः
307	7	श्लोक 218
310	2	वा. प 2-441
310	5	न्या. म 448
311	11	वा. प. 2-347
312	3	शा. भा 1-1-5
312	15	पात. 4-19
313	9	स. सि 4-2
317	9	त. कौ 5 का
317	17	न्या. म 23
317	19	न्या. म 33
318	3	पात. 4-1
319	11	श्लोक. 88
319	12	तन्त्र. 178
319	15	श्लोक. 75

पुट.	पङ्क्ति.	सङ्केताः
321	1	आप. ध. व्या 1-1-2
321	17	श्लोक. 91
322	3	न्या. सि 1 परि
322	13	न्या. म 105
324	1	स. सि 3-2
324	3	,, 3-76
324	6	न्या. म 108
324	10	स. सि 4-116
325	19	स. सं 3 द
326	3	भ. गी 4-38
326	7	भा. भा 123
326	19	वै. भाष्यम्.
327	3	न्या. म 536
329	5	न्या. र 264
333	3	त. कौ 11 का
333	6	न्या. ता 146
333	13	श्लोक. 292
334	1	,, 285
336	19	स. सि 420
338	19	न्या. म 448
340	7	,, 453
341	11	श्लोक. 841
343	1	न्या. सू 3-1-19
343	9	स. सि 1-26
343	17	न्या. कु 1 स्त
243	19	न्या. सि 1 परि
344	9	तन्त्र. 81
344	13	न्या. सु 4-2-29
345	7	न्या. म 92
345	15	प्रक. 5 प्र

पुट.	पङ्क्ति	सङ्केताः
345	19	न्या. सू 2-1-28
346	3	न्या. म 432
346	5	न्या र 176
347	7	,, 590
347	9	,, 592
347	13	श्लोक. 169
347	17	वा. प 1-124
348	7	न्या. सू 1-1-4
349	1	सि. मु 135 का
349	3	वि. वि 114
349	11	त. कौ 27 का
350	1	न्या. र 578
350	7	श्लोक 173
352	1	वे. सं 49
352	19	न्यायबिन्दुटीका
354	7	मानमेयोदयः
354	11	प्र. क 5 प्र
356	5	न्या. म 64
356	15	न्या. र 759
358	7	श्लोक. 775
359	16	श्लोक. 413
360	1	स. सि 4-41
362	5	प्र. त 3-9
362	7	स. सि 4-58
363	9	न्या. म 124
364	7	न्या र 488
364	9	न्या. त 105
366	2	स. सं 2 द.
366	5	न्या. कु. 1 स्त
366	15	न्या. र 396

पुट.	पङ्क्ति.	सङ्केताः
367	7	न्या. र 402
368	7	न्या. म 33
368	9	न्या. र 250
369	2	न्यायक 167
369	11	स. सि 4-42
370	5	न्या. म 109
371	3	सि. मु 136 ता.
371	19	श्लोक 359
372	11	स. सि 4-43
374	8	,, 4-44
374	15	न्यायपरिशुद्धिः
375	13	प्र. त 3-11
375	14	,, 2-1
376	2	न्यायपरि
376	10	न्या. र 402
376	20	प्र. त 13
377	7	न्यायपरि 150
377	17	न्यायबिन्दुः
377	19	न्या. र 377
378	8	किर 143
378	11	न्या. ता 109
378	13	वैशेषिकभाष्यम्
378	15	न्या. सू 1-1-5
379	5	वै. सू 3-2-7
380	1	श्लोक 392
381	9	न्या. म 133
381	15	न्यायपरि 80
382	7	शा. भा 1-1-2
382	10	न्या. सू 2-1-8
383	7	न्या. र 388
383	16	तत्त्वचिन्तामणिः
384	7	न्या. म 122
384	10	न्या. मा 57
384	11	श्लोक 348
385	5	न्या. मा 122
385	17	श्लोक 381
386	3	न्या. मा 56
386	13	प्र. त 3-38
386	18	न्या. म 111
387	3	न्या. र 387
387	14	श्लोक 585
389	7	न्यायपरि 79
389	18	स. सि 4-53
390	17	तत्त्वमुक्ता 4-51
391	2	स सि 4-49
391	15	न्या. वा 120
392	20	न्या. म 118
393	3	,, 123
394	3	वैशेषिकभाष्यम्
394	6	न्या. भा 1-1-32
395	8	न्या. म 584
395	11	मानमेयोदयः
396	1	प्र. त 3-9
396	5	,, 3-13
396	15	,, 3-42
397	9	न्या. र 250
397	17	,, 258
398	5	श्लोक 260
398	11	ब्र. सू. शं 2-1-15
399	12	मानमेय 305

पुट.	पङ्क्ति.	सङ्केता:
399	13	वैशेषिकभाष्यम्
400	1	सि. मु 71 का.
400	13	प्र. त 6-47
401	3	स. सं 2 द
401	5	न्यायप 167
401	8	न्या. कु 3 स्त.
402	18	शास्त्रदी 1·1-5
403	5	श्लोक. 375
403	20	न्यायप. 175
404	5	न्या. म 590
405	10	शतदू. 9
405	11	स ।स 4-63
407	9	न्या. ता 499
408	11	श्लोक 433
409	7	न्या. भा 1-1-6
409	17	न्या र 435
409	19	न्या. कु 3 स्त
410	4	श्लोक· 433
411	9	न्या. म 245
411	12	श्लोक. 680
411	17	वै. सू 7-2-20
412	3	श्लोक· 450
413	1	प्रक 5 प्र·
413	19	न्या· कु. 3 स्त
414	5	श्लोक 463
415	3	पा· सू 1-4-36
415	7	श्लोक 49
415	11	,, 475
417	5	न्या. कु 3 स्त
418	1	न्या. र 486
419	7	श्लोक 488
419	13	न्याः र 482
419	17	श्लोक 197
420	1	न्या. र 483
422	3	प्र. क 9 प्र.
422	5	न्या. र 588
422	17	,, 941
423	5	,, 410
423	7	,, 562
424	5	श्लोक. 410
424	7	,, 432
424	11	न्या. र 503
425	10	मानमेय 411
427	17	सं. वा 500 श्लो
427	20	न्या. र 402
428	1	श्लोक. 418
428	8	न्या: कु 3 स्त
428	19	श्लोक. 913
429	5	ध्वन्या 200
430	12	मानमेयोदयः
430	17	मानमेय 110
431	7	न्या· कु 2 स्त
431	9	न्या. र 909
432	3	,, 367
432	9	काव्यप्रकाशसं 27
433	2	मानमेय 519
433	11	न्या. सि 6 परि
434	9	स. सि 4-81
435	3	श्लोक. 924
435	6	शब्दशक्तिप्रका

पुट.	पङ्क्ति	सङ्केताः
436	1	वा. प 1-134
436	7	तन्त्र 199
437	8	स्तोत्ररक्षा 4 श्लो.
437	9	तन्त्र 233
438	1	,, 157
438	5	,, 429
438	11	,, 535
441	17	ऋक्संहिता 10-71-3
441	18	मनु 2-1
442	2	तन्त्र 132
442	12	स. सि 4-113
443	15	तन्त्र 115
444	19	श्लोक 59
445	19	तन्त्र 170
446	10	स. सं 2 द
446	18	न्या. कु 1 स्त
449	20	आप-परिभाषा
450	15	स. सि 594
451	7	स्मृतिचन्द्रिका
452	11	आगमप्रामण्यम्
452	20	न्यायपरिशुद्धिः
453	15	श्रुत. अथशब्दार्थः
454	14	न्यायसुधा 183
455	4	न्या. भा 4-1-62
455	8	ब्र. सू 2-1-1
455	14	न्या. भा 1-1-1
455	18	मनु 7-43
456	3	न्यायपरिशुद्धिः
456	11	प. म 15 भ.
457	7	श्लोक 209
458	1	न्या. ता 42
458	8	तन्त्र 80
458	15	जै. मा 12
460	7	प्रक. अतिदेशपारायणं
463	6	तन्त्र 731
463	11	न्यायसु 3-3-14
463	13	बालप्रकाशः
463	19	न्या. म 589
465	10	बालप्रकाशः
469	12	सुधीविलोचनम् 11ख.
470	9	वि. वि 450
485	6	तन्त्र 337
487	5	वै. सू. वृ 5-1-1
487	19	न्या. सू 3-1-25
488	19	न्यायसु 26
489	4	वि. वि 243
489	7	न्या. सू 1-1-24
489	15	न्या. कु 5 स्त
490	3	वा. प 2-1
490	17	,, 2-30
491	3	रघुवं 1-1
491	19	वा. प 2-145
492	1	,, 2-30
494	7	,, 2-57
494	11	न्या. म 330
495	15	तन्त्र 345
496	7	पा. भा 4-20
497	11	तन्त्र 351
498	5	,, 345
498	8	न्यायसु 579

पुट.	पङ्क्ति	सङ्केताः
499	5	भाट्टरहस्यम्
499	15	वि. वि 48
499	17	न्या. म 345
501	3	तन्त्र 240
502	7	जै. सू 6-2-9
503	1	भगी 4-1
503	7	प्रक. वाक्यार्थमातृका
507	11	वादावळिः
508	5	तात्पर्यदी 215
508	11	श्लोक 930
511	5	याज्ञ 3-219
511	13	न्या. सु 603
512	2	न्या. सू 3-1-25
512	16	न्या. म 356
513	17	तन्त्र 240
514	14	न्या. सू 1-1-24
515	14	न्या. कु 5 स्त.
515	17	वे. सं 214
516	10	अधिकर 20 श्लो.
519	9	न्या. म 395
519	18	स. सि 4-91
520	8	श्लो. क 432
521	1	न्या. र 909
521	17	न्या. म 401
523	4	मनु 2-224
523	10	भारत 18-6
524	9	विष्णु 1-18
524	14	तन्त्र 16
525	10	वे. सं 199
525	18	भ. गी 17-11
526	12	रामा 7-74
526	16	हेमा 661
526	19	गौ. ध 3-36
527	1	ब्र. सू 3-4-18
527	10	मनु 4-176
527	12	प. म 6 भ.
528	3	भ. गी 16-21
528	5	बृ. उ 7-2
528	13	न्या. ता 97
528	17	संबन्ध. 1008 श्लो
529	2	रामा 2-105
531	3	गौ. का 2-29
531	10	तै. उ 4-10
531	12	मनु. 2-94
531	18	श्वेता. 4 अ.
531	19	तै. सं 6-3-10
531	20	गौ. ध 3-36
532	7	वे. सं 248
532	15	स. सि 2-75
533	2	न्या. सि 2 परि.
533	13	न्यायपरिशुद्धिः
534	9	तै. उ. शं 1-1
534	11	किर. 8
534	14	तन्त्र. 241
534	14	प्रक. 8 प्र.
537	15	न्या. भा 4-1-63
540	7	प्रश्नो. शं 6-3
540	11	स. सं 6 द.
541	4	श्लोक. 695
541	6	तन्त्र. 375

पुट.	पङ्क्ति.	सङ्केताः
541	13	संवित्सिद्धिः
542	17	स. सि 2-17
542	20	न्या कु 1 स्त.
543	5	श्लोक. 696
544	7	,, 105
544	13	श्रीभा. 2-2-3
545	1	श्लोक. 667
545	9	पा. भा 2-22
545	13	न्यायक. 270
545	17	वै. भा गुणभागः
546	5	न्यायसु. 330
546	13	श्लोक. 671
546	17	पा. भा 2-13
547	5	न्या. म 520
547	10	भ .गी 18-66
547	12	ब्र. सू 4-1-7
548	4	संबन्ध. 117
548	15	न्या. सु 330
548	19	तै. उ शं 1-1
549	5	मु. उ 1-2
549	6	भ. गी. 2-42
549	10	किर 12
549	17	संबन्ध 238 श्लो.
549	19	ब्र. सू 3-4-2
550	3	संबन्ध. 1133 श्लो.
550	5	,, 345 श्लो.
550	9	बृ. उ 6-4
550	11	सिद्धान्तलेशसंग्रहः
551	11	भा. भा 207 .
552	1	श्रीभा. 1-1-4
552	7	भा. भा 175
552	15	वि. वि 440
553	11	जै. सू 6-2-9
554	1	याज्ञ. 1-123
554	2	मनु. 11-16
554	7	न्या. मा 193
554	13	श्लोक 671
555	10	न्या. कु 1 स्त
555	17	स. सं 3 द.
557	11	याज्ञ. 3-113
559	13	स. सि 1-4
560	16	सिद्धान्तलेशः
562	11	स. सि 4-18
563	11	शतदू. 7 भ.
565	9	तात्पर्यदी. 253
565	5	वे. सं 248
565	9	काव्यालंका 2-2-24
567	1	आगमप्रामाण्यम्
568	15	श्रीभा. 2-2-42
569	12	श्रीभाष्यारम्भे
569	16	अधिकरण 15 श्लो.
571	1	ब्र. सू. 4-4-22
571	3	,, 2-3-46
571	5	,, 1-3-22
571	8	भ. गी. शं. 13-4
571	13	ब्र. सू. 1-1-1
572	3	भामत्यारम्भे
572	8	तत्त्वटीका
573	12	नैष्कर्म्य 90 श्लो.
574	11	स. सि 3-79

पुट.	पङ्क्ति.	सङ्केताः
575	11	वे. सं 170
575	19	छान्दो 8-1-1
576	19	तै. उ 4-50, 51
576	18	श्वेता 6-18
577	1	छान्दो 2-2-23
577	4	रहस्यत्रयसारः
579	3	न्या. सि 2 प
579	8	भ. गी 18-66
581	7	न्यासदशकम्
581	9	न्या. म 507
582	15	किर 12
584	7	दिनकरीयारम्भे
584	13	तन्त्र 240
586	7	श्लोक 669
586	11	„ 667
586	13	„ 670
587	9	तन्त्र 16
587	11	श्लोक 673
589	20	शास्त्र-मोक्षवादः
590	1	जै. सू 6-1-2
590	6	ब्र. सू 1-3-33
590	7	बृ. उ 5-5
590	13	स. सि 2-37
590	13	सिद्धान्तलेश 3 प.
591	3	मुण्ड. शं 1-1-1
591	4	वेदान्तपरिभा. व्या
591	18	सिद्धान्तलेश 3 प.
592	18	ब्र. सू. शं 3-4-50
593	5	छान्दो 8-15
593	7	बृ. उ 5-5
593	13	स. सि 2-42
594	1	भ. गी 9 माध्यायः
594	7	„ 18-56
594	19	पाञ्चरात्ररक्षा
595	3	प्र. त 166
595	8	गौतमधर्ममस्करी
596	3	भ. गी भा व्या 18-44
697	1	शा. भा 1-1-20
597	1	ब्र. सू 4-4-5
598	9	पाणिनि 4-4-34
598	19	मनु 12-9
599	2	श्रीभाष्य
600	16	न्या. कु 1 स्त
602	3	तत्त्वचिन्ता मङ्गलवादः
603	8	श्रीभा महापूर्वपक्षः
603	14	श्लोक 362
604	7	शतदू 11 भ
605	17	तै. ब्रा 3-12-9
606	1	कठोप 2-8
606	3	„ 6-12
606	7	„ 2-9
606	9	केनोप 4
606	11	जै. सू 1-1-2
606	12	ब्र. सू 1-1-3
606	13	„ 2-1-10
606	15	वा. प 1-34
606	19	„ 1-137
607	1	„ 2-316
607	3	„ 1-139
607	9	मनु. 12-106

पुट.	पङ्क्ति.	सङ्केताः
607	11	मनु. 4-256
607	13	स्मृतिचन्द्रिका
608	1	न्या. सु 350
609	18	तन्त्र. 104
610	7	वा. प 2-119
610	9	,, 1-123
610	11	,, 2-149
611	5	न्या. म 589
612	11	बृ. उ 4-4
612	13	स्मृतिचन्द्रिका
613	5	वा. प 2-140
613	11	श्लोक. 520
613	17	वा. प 2-143
614	3	श्लोक. 75
614	5	,, 88
614	7	तन्त्र. 178
614	11	आ. ध-व्या 1-1-2
615	16	प्र. चं 2-4
615	18	विष्णु. 3-18
619	1	स. सि 3-68
619	5	श्लोक. 202
619	9	,, 331
622	5	मा. वृ 4
622	9	त. टी 86
628	17	रामा. 2-105
628	18	भारत. शा 328

॥ श्रीरस्तु ॥

मानमेय रहस्य श्लोकवार्तिक प्रारम्भः

प्रमेयकाण्डः.

(1) पीठिका

1 शुद्धस्वाभाविकप्रज्ञाशक्तिकारुण्यभूषणम् ।
नमिकर्मीकरोम्याद्यं विद्यादेवं श्रियः पतिम् ॥
अभिवन्द्य महोदारामस्मद्गुरुपरंपराम् ।
किंचित् करोमि जगतां प्रज्ञाविभवतोऽधुना ॥
2 यः श्रीलक्ष्मीपुरंश्रीनिवासार्यो विदुषां मणिः ।
यं जन्मना ब्रह्मणा च वेंकटस्वाम्यजीजनत् ॥
श्रीमान् रामानुजाचार्यो येन पौत्र्यजयत् क्षितौ ।
श्रीमत्तिरुमलै नल्लान् वात्स्यवंशाब्धिचन्द्रमाः ॥
श्रीमत्कस्तूरिरङ्गेन्द्रविद्वद्रत्नकृपाभरः ।
सर्वतन्त्रस्वतन्त्रत्वं यस्मै प्रायच्छदव्ययम् ॥
पितृव्यस्स विरक्तश्रीरघूद्वहगुरूद्वहः ।
आत्मरक्षाभरं यस्मादादत्त करुणाकरः ॥
यस्य वृत्तिं प्रतिष्ठां चानन्यतुल्यामकल्पयत् ।
महीशूरमहीधुर्यतुर्यश्रीकृष्णभूपतिः ॥

यस्मिन् लोकाः प्रसीदन्ति ताताम्बातपसां निधौ।
स व्याातानीत् मानमेयरहस्यश्लोकवार्तिकम् ॥
3 शास्त्रेषु विस्तृतांशस्य गतार्थत्वान्न विस्तरः ।
सुखबोधाय सारांशः संक्षेपेण प्रदर्श्यते ॥
कुतो वा नूतनं वस्तु वयमुत्प्रेक्षितुं क्षमाः ।
वचोविन्यासवैचित्र्यमात्रमत्र विमृश्यताम् ॥
प्रायः प्रागनुभूतेषु सर्वेष्वपि च वस्तुषु ।
अपूर्वरचने तत्र तुष्यन्ति हि सुमानुषाः ॥
प्रज्ञाविवेकं लभते विभिन्नागमदर्शनैः ।
कियद्वा शक्यमुन्नेतुं स्वयत्नमनुधावता ॥
तत्तदुत्प्रेक्षमाणानां पुराणैरागमैर्विना ।
अनुपासितवृद्धानां विद्या नातिप्रसीदति ॥
संकेताद्वा वासनया तथा मीमांसयाऽपि वा ।
कस्मैचिद्रोचते किंचित् मध्यस्थमनसामपि ॥
सर्वसिद्धान्तसारार्थचिन्ताचातुर्यशालिनाम् ।
न कश्चिदपराधो नः निगूढार्थनिवेदनात् ॥
प्रकाश्यते च प्रायेण स्वाभिप्रायो निबन्धृभिः ।
अत्र त्वस्मदभिप्रायः सर्वाभिप्रायसंग्रहः ॥
प्रज्ञाप्रासादमारुह्य ह्यशोच्यः शोचतो जनान् ।
भूमिस्थानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति ॥

4 मेयं मानाधीनमपि तदेवादौ निरूप्यते ।
प्रोपसर्गप्रयोगस्तु प्रमाभ्रमविवेकतः ॥
विज्ञानाद्वैतसिद्धान्ते प्रविवेको न कश्चन ।
तथाऽसत्ख्यातिसिद्धान्ते व्यवहारो ह्युपप्लवः ॥
मानाधीना मेयसिद्धिः मानसिद्धिश्च[1] लक्षणात् ।
तल्लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिरितीर्यते ॥
ज्ञातं सम्यगसम्यग्वा यन्मोक्षाय भवाय वा ।
तत्प्रमेयमिहाभीष्टं न प्रमाणार्थमात्रकम् ॥
इति न्यायविदः प्राहुः प्रमाणपरिनिष्ठिताः ।
काणादास्तु पदार्थज्ञाः प्रमेयपरिनिष्ठिताः ॥
प्रमेयं च प्रमाणं च प्रयोजनमिति त्रिभिः ।
विभागैः प्रविभक्तोऽयं प्रबन्ध इति हि क्रमः ॥

(2) शास्त्रारम्भः.

1 विषयश्च फलं चैव संबन्धश्चाधिकार्यपि ।
प्रेक्षावतां प्रवृत्त्यङ्गमनुबन्धिचतुष्टयम् ॥
अभिधेयादयश्शास्त्रे कथ्यन्ते प्रथमं बुधैः ।
न निश्चीयन्त एवैते कृत्स्नशास्त्रश्रुतेः पुरा ॥
प्रेक्षावतां प्रवृत्त्यङ्गं स्यात्तथाप्यर्थसंशयः ।
अनर्थसंशयो दृष्टः निवृत्त्यङ्गं परीक्षकैः ॥

---

1 प्रवृत्तिरित्यर्थः.

2 तेष्वनर्थेष्वशक्यानुष्ठानं प्रथममुच्यते ।
यथा च तक्षकमणिः ज्वरपीडां हरेदिति ॥
विफलं तु द्वितीयं स्यात् काकदन्तपरीक्षणम् ।
तृतीयं चानभिमतं जननीपाणिपीडनम् ॥
असंबद्धं तुरीयं स्यात् जरद्गववचो[1] यथा ।
संभावितेनाप्येकेन प्रवृत्तिः प्रतिबध्यते ॥
इति धार्मोत्तरं वर्त्म न्यायबिन्दुमुखे स्थितम् ।
न्यायवार्तिकतात्पर्यटीकारम्भेऽपि सूचितम् ॥
व्यतिरेकदृशः केचित् केचिदन्वयदृष्टयः ।
प्राचीनाः प्रायशः पूर्वे पराचीनाः परे मताः ॥
ततोऽभिधेयसंबन्धकथनं स्यादिहादितः ।
तच्चाभिधेयसंबन्धसमर्थनमपीष्यते ॥
3 प्रमाणनयतत्त्वाख्यालोकालंकारमूलके ।
रत्नाकरावतारेऽस्य निदानं विदितं यथा ॥
शास्त्रादावभिधेयार्थो दुर्निरूपोऽभिधित्सितः ।
सोऽसंबद्धोऽथ संबद्धः नाद्यः प्रागेकवाक्यतः ॥
सर्वशास्त्रार्थसंदर्भगर्भाविर्भावसंभवात् ।
कृतं शास्त्रेण शेषेण बहलक्लेशकारिणा ॥

---

[1] जरद्गवः कम्बलपादुकाभ्यां द्वारि स्थितो गायति मद्रकाणि ।
तं ब्राह्मणी पृच्छति पुत्रकामा राजन् रुमायां लवणस्य कोऽर्घः ॥

नान्यश्शब्दाभिसंबन्धे विकल्पानुपपत्तितः ।
संयोगाद्यास्तु संबन्धाः नैव संभावनापदम् ॥
तादात्म्यं वा तदुत्पत्तिः वाच्यवाचकताऽथवा ।
स्यादाद्यपक्षे प्रायेण जगतो मिश्ररूपता ॥
क्षुरमोदकशब्दाभ्यां स्यातां पाटनपूरणे ।
द्वितीयपक्षोऽपि मिथोऽनुपलम्भपराहतः ॥
तृतीयोऽपि स्वरूपं वा भिन्नो वेति विकल्प्यते ।
आद्ये नाधिकमुक्तं स्यात् अन्त्ये नित्योऽथवेतरः ॥
नित्यश्चेन्नित्यतापत्तिः एतत्संबन्धिनोरपि ।
अनित्यश्चेत्स्वरूपं चेत् नाधिकं स्यादितीरितम् ॥
भिन्नश्चेदनवस्था स्यात् तादात्म्यादिविकल्पतः ।
सर्वेषामपि नित्यत्वं क्षणभङ्गपराहतम् ॥
दुर्ग्रहश्चापि संकेतः स्वरसक्षणभङ्गिनि ।
विकल्पयोनयश्शब्दा विकल्पाश्शब्दयोनयः ॥
कार्यकारणता तेषां नार्थं शब्दाः स्पृशन्त्यमी ।
इति प्राचामुक्तिरेषा सकलार्थप्रदर्शिनी ॥
अतोऽभिधेयसंबन्धभङ्गुरः शास्त्रडम्बरः ।
सोऽयं सौगतसिद्धान्तः शास्त्रारम्भप्रभञ्जकः ॥
4 क्षेप्तुं वादानेवमादीन् दृश्यते किल वार्तिके ।
सिद्धे शब्दार्थसंबन्ध इति वाररुचं वचः ॥

शब्दे चार्थे च संबन्धे नित्य एवेति तद्वचः ।
व्याख्यातं भाष्यकारेण पतञ्जलिमहर्षिणा ॥
औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन संबन्ध इत्यपि ।
जैमिनिस्सूत्रयामास शब्दार्थान्वयनित्यताम् ॥
नित्याश्शब्दार्थसंबन्धाः समाम्नाता महर्षिभिः ।
सूत्राणां सानुतन्त्राणां भाष्याणां च प्रणेतृभिः ॥
इति वाक्यपदीयेऽपि प्राह भर्तृहरिः स्वयम् ।
यश्शब्दाद्वैतसिद्धान्तप्रतिष्ठापनदेशिकः ॥
5 सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वाऽपि कस्य चित् ।
यावत्प्रयोजनं नोक्तं तावत्तत्केन गृह्यते ॥
सिद्धार्थं सिद्धसंबन्धं श्रोतुं श्रोता प्रवर्तते ।
ग्रन्थादौ तेन वक्तव्यस्संबन्धः सप्रयोजनः ॥
संबन्धोऽस्ति च नित्यश्चेत्युक्तमौत्पत्तिकादिना ।
अप्रामाण्यनिरासार्थं, तद्द्वयं नेष्यते परैः ॥
वाच्यवाचकसंबन्धनिषेधे लोकबाधनम् ।
विरोधश्च स्ववाक्येन न हि संबन्धवर्जितैः ॥
प्रतिज्ञार्थं पदैः शक्यः प्रतिपादयितुं परः ।
तस्माद्गमकतारूपः वृद्धेभ्यस्त्विह शिक्ष्यते ॥
इति कौमारिले श्लोकवार्तिके चोपबृंहणम् ।
अत एव हि शब्दादेर्नित्यताऽस्थापि सूरिभिः ॥

6 जात्याख्यस्यातिरिक्तस्य नित्यस्यापि च वस्तुनः।
स्वीकारोऽपि च शिक्षायै स्यात्प्रपञ्चापलापिनाम् ॥
कर्मैकं बुद्धिरप्येका जगत्येकस्सितो गुणः।
वर्णोऽप्येको गकारादिरिति वादा अपीदृशाः ॥
तस्मादादौ शास्त्रकृतामर्थसंबन्धसूचनम्।
साधने पर्यवसितं शास्त्रारम्भोऽयमुच्यते ॥
इदानींतनशास्त्रेषु तद्विशेषविचिन्तना।
प्रवर्तते युक्तिमूला सति कुड्येऽनुलेपवत् ॥

(3) मङ्गलविचारः.

1 प्रारिप्सितसमाप्त्यर्थं शिष्टाः कुर्वन्ति मङ्गलम्।
आचारानुमितश्रुत्या तद्धेतुत्वं हि मीयते ॥
प्रमिते साधनत्वेऽस्मिन् श्रुत्यैव निरपेक्षया।
व्यभिचारः परिहार्यः क्वचिच्चित्रादिनीतितः ॥
फलानन्तर्यनियमो यदि हेतुत्वमिष्यते।
व्यभिचारस्य शङ्कैव न हि स्यादवकाशिनी ॥
तत्स्यादारब्धकर्माङ्गं प्रागनुष्ठानदर्शनात्।
विघ्नध्वंसस्तदत्यन्ताभावो वा द्वारमिष्यते ॥
समाप्यतामिदं कर्म निर्विघ्नमिति कामना।
यदा श्रुतित एव स्यात् तदा द्वारत्वनिर्णयः ॥

संशयो निश्चयो वाऽत्र विघ्नज्ञानं प्रवर्तकम् ।
समाप्तिकामो विघ्नज्ञः सोऽधिकार्यत्र बोध्यते ॥

2 प्रधानं मङ्गलं केचित् अदृष्टद्वारतः पुनः ।
फलं समाप्तिः तत्कामो ह्यधिकारीति जानते ॥

3 प्रारिप्सितं निमित्तं स्यादविघ्नेन समापनम् ।
प्रचयश्च फलं चेति केचिन्नैमित्तिकं विदुः ॥
मङ्गलाचरणे तस्मात्काम्यशङ्का व्यपोह्यते ।
समाप्तिकामना तु स्यादधिकारिविशेषणम् ॥

4 परे त्वदृष्टद्वारेण मङ्गलस्य फलं विदुः ।
विघ्नसंसर्गविरहं समाप्तिस्तु ततः फलम् ॥

5 चतुर्षु पक्षेष्वेतेषु कंचित्स्वीकृत्य सूरयः ।
विवदन्ते गुरुलघुविमर्शनविचक्षणाः ॥
प्रथमं परिगृह्णन्ति पक्षं प्राञ्चस्तु तार्किकाः ।
नव्यनैयायिकानां तु तुरीयः पक्ष ईप्सितः ॥

6 आद्यपक्षे व्यभीचारं नास्तिकादिनिबन्धने ।
अन्यथासिद्धिमपि वा विघ्नध्वंसेन ते विदुः ॥

7 न मङ्गलं महाभाष्ये दृश्यते नापि पाक्षिले ।
न शाबरे शाङ्करे वा तथेदानींतने क्वचित् ॥
मङ्गलं न निबध्नन्ति ग्रन्थे केचिद्विपश्चितः ।
कुर्वन्तो वा न कुर्वन्तो न हि तद्वेदितुं क्षमम् ॥

माण्डूक्यगौडपादीयभाष्ये श्रीमति शाङ्करे ।
यथाबलं नमस्कारो व्यवहार इतीरितः ॥
8 निबध्नतामयं भाविशिष्याणां शिक्षणं तथा ।
महिष्ठमङ्गलावाप्तिः स्वकृतस्यानुकीर्तनात् ॥
9 दण्ड्यादिभिर्महाकाव्यारम्भस्याङ्गमितीरितम् ।
सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम् ॥
आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वाऽपि तन्मुखम् ।
तदाहुः मङ्गलं काव्यस्यैवाङ्गमिति केचन ॥
10 तन्मानसं वाचिकं च कायिकं चेत्यपि त्रिधा ।
समष्टिव्यष्टिरूपेण सर्वत्रास्तीति केचन ॥
एवं मङ्गलतत्त्वार्थविचारो मङ्गलात्मकः ।
मङ्गलाचारयुक्तानां विनिपातं निवारयेत् ॥

(4) सिद्धान्तविचारः.

1 प्रामाणिक इति ज्ञातो ह्यर्थः सिद्धान्त इष्यते ।
आवापोद्वापभेदानामिदानीमपि दर्शनात् ॥
2 अभिमानैकमूलत्वात् अन्योन्यं च विरोधतः ।
न कश्चिद्यदि सिद्धान्तः नैवं तत्सिद्ध्यसिद्धितः ॥
सिद्धान्ताभाव एवायं प्रामाणिक इतीष्यते ।
नेष्यते वा द्विधाऽप्येवं सिद्धः सिद्धान्तसंग्रहः ॥

3 सर्वं शून्यमिति प्राहुः केचिद्विज्ञानमित्यपि ।
अपोहवादिनस्सर्वं व्यावृत्तिरिति मेनिरे ॥
4 सर्वं सदित्येकमिति संख्यैकान्तेषु चादिमः ।
शून्याद्वैतं सदद्वैतं विज्ञानाद्वैतमेव च ॥
शब्दाद्वैतं तथा कालाद्वैतमित्यादि विस्तरः ।
सर्वं नित्यमनित्यं च द्विसंख्यैकान्तवादिनाम् ॥
ज्ञाता ज्ञानं ज्ञेयमिति त्रिसंख्यैकान्तवादिनाम् ।
मानं मेयं मितिर्मातेत्याहुरेवं ततः परे ॥
रूपं संज्ञा च संस्कारः वेदनाऽनुभवास्त्विति ।
पञ्च स्कन्धा इति प्राहुः सौत्रान्तिकमुखाः परे ॥
जीवो धर्मोऽप्यधर्मश्च पुद्गलः काल एवच ।
आकाश इति षड्द्रव्यं षडभिज्ञाः प्रचक्षते ॥
एवं सप्तादिसंख्यानामेकान्ता अपि सम्मताः ।
ततश्च षाष्टितन्त्रं यत्संदृष्टं कपिलादिभिः ॥
संख्यैकान्तानुरोधेन तत्सांख्यं प्रथितं भुवि ।
सांख्या हि तत्त्वगणनापरायणतया स्थिताः ॥
प्रबोधचन्द्रोदयोक्तिरप्येवं तत्र साक्षिणी ।
ज्ञानप्रधानं यच्छास्त्रं तत्सांख्यमिति केचन ॥
तपःप्रधानं शास्त्रं तु पातञ्जलमिति स्थितम् ।
यमादयस्तपोरूपास्तत्रैव हि विशोधिताः ॥

इत्थं संख्यैकान्तवादो हेतुसाध्याविशेषतः ।
प्रत्यक्षादिप्रमाणानां विरोधाच्च न युज्यते ॥
इत्यक्षपादमुनिना दूषितो न्यायदर्शने ।
संख्याविवादः प्रथमः तदधीनं हि लक्षणम् ॥
5 इत्यालोच्यापरे प्राज्ञाः नयसंस्कृतमानसाः ।
तस्मिन् संख्यां परित्यज्य तत्त्वे संख्यां न्यवेशयन् ॥
ततस्तत्त्वसमासस्तु पञ्चविंशतिधा कृतः ।
कार्यकारणयोरैक्यं तथा वै धर्मधर्मिणोः ॥
अभेद इति सिद्धान्तात् द्विसंख्यैकान्त एव सः ।
षट्त्रिंशत्संख्यतत्त्वानि विदुश्शैवागमानुगाः ॥
वैशेषिकादयस्सप्त षोडशेति च मन्वते ।
पदार्थतत्त्वविज्ञानान्निःश्रेयसमसूत्र्यत ॥
यतो विवेकक्काष्ठैव फलं मानवजन्मनः ।
तयोपादित्सितजिहासितयोर्हि विनिश्चयः ॥
ततश्शास्त्रोपयुक्तानां पदार्थानां परीक्षणम् ।
समस्य च विभज्यापि पदार्थानां परीक्षणम् ॥
इति द्विधा प्रवृत्तं स्याच्छास्त्रमित्यवधार्यते ।
6 पदमेव पदार्थं तं मन्यन्ते ये च शाब्दिकाः ॥
अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम् ।
विवर्ततेऽर्थभावेन वेति ये वा विदुः परे ॥

वाक्यं वाऽप्यथ वाक्यार्थं प्रतिभां येऽपि मन्वते ।
तादृग्वादनिरोधाय पदार्थ इति शिक्ष्यते ॥
अतः पदार्थशास्त्रं वा तर्कशास्त्रमपीति वा ।
प्रख्यायते च तच्छास्त्रं संस्कारस्थैर्यसिद्धये ॥
7 तत्र बाह्यार्थमात्रस्य तत्त्वं लौकायता विदुः ।
तथैवान्तरमात्रस्य योगाचारा विजानते ॥
बाह्यमाभ्यन्तरं चेति कापिलाद्याः विदुः परे ।
पातञ्जलास्त्वीश्वराख्यं पुंविशेषं विजानते ॥
तच्च तत्त्वान्तरमिति प्रायेणेश्वरवादिनः ।
द्रव्यं पदार्थः केषांचित् सर्वं द्रव्यात्मकं यतः ॥
महासामान्यमन्यैस्तु द्रव्यं सदिति चोच्यते ।
गुणः पदार्थः केषां चित् गुणबृन्दं यतोऽखिलम् ॥
द्रव्यं गुण इति द्वेधा पदार्थ इति केचन ।
द्रव्याद्रव्यविभागोऽपि मतेऽस्मिन् पर्यवस्यति ॥
संयोगान्तर्गतः कर्मपदार्थ इति भूषणः ।
केचित्कर्मानुजानन्तो बहुधाऽत्र विशेरते ॥
जातिः पदार्थः केषां चित् सर्वं जात्यात्मकं विदुः ।
अपोहवादिनस्सौत्रान्तिकाः व्यावृत्तिवादिनः ॥
द्रव्यं गुणः कर्म चेति केषां चित्त्रिविधो मतः ।
त्रयाणामर्थ इत्याख्यां कणादश्चाप्यसूत्रयत् ॥

संस्थानमेव सामान्यं तेषामभिमतं भवेत् ।
परे द्रव्याद्रव्ययोश्च भेदाभेदं विदुर्बुधाः ॥
प्रायोऽनेकान्तवादोऽयं वैशेषिकविदूषितः ।
विशेषसमवायौ तु बहुभिर्हि बहिष्कृतौ ॥
अभावाभ्युपगन्तारः दृश्यन्ते बहवो बुधाः ।
विशिष्य तत्तद्वादेषु तत्त्वं स्पष्टं भविष्यति ॥
8 अथ नैरात्म्यसिद्धान्तः किंचिदत्र प्रदर्श्यते ।
पदार्थानां स्वतो रूपं न किंचिद्व्यवतिष्ठते ॥
इदं वस्तुबलायातं यद्वदन्ति विपश्चितः ।
यथायथाऽर्थाश्चिन्त्यन्ते विशीर्यन्ते तथातथा ॥
बुद्ध्या विविच्यमानायां स्वभावो नावधार्यते ।
अतो निरभिलप्यास्ते निःस्वभावाश्च दर्शिताः ॥
विवक्षामात्रतन्त्राः स्युश्शब्दाः तेऽर्थानिबन्धनाः ।
वस्तुव्यवस्थापनाय व्यवहारा न हीशते ॥
यत्नेनानुमितोऽप्यर्थः कुशलैरनुमातृभिः ।
अभियुक्ततरैरन्यैरन्यथैवोपपाद्यते ॥
इत्याहुरपरे प्राज्ञाः ते वै शाब्दिकसौगताः ।
विचित्राः पुमभिप्रायाः वर्तन्ते देशकालयोः ॥
9 विशेषवादिनः केचित्केचित्सामान्यवादिनः ।
तदैक्यवादिनः केचित्केचित्तद्भेदवादिनः ॥

साधने बाधने चापि न च तत्र बलाबलम् ।
कदाचिन्निश्चितं कैश्चित्तस्मान्मध्यस्थता वरम् ॥
इत्यन्यानन्यते तत्र स्तो न स्तश्चेति कीर्त्यते ।
इति तादात्म्यमिच्छन्ति कुमारिलमुखाः परे ॥
10 अनात्मवादिनः केचित्केचिदात्मैकवादिनः ।
अद्वैतवादिनः केचित्केचित्तु द्वैतवादिनः ॥
जीवैकवादिनः केचित्केचिद्ब्रह्मैकवादिनः ।
तादात्म्यवादिनः केचित्केचित्तद्भेदवादिनः ॥
स्याद्भावाभावयोरेवं कार्यकारणयोरपि ।
स्यान्नित्यानित्ययोश्चैवं तथा वै मानमेययोः ॥
स्याद्द्रव्याद्रव्ययोरेवं तथा वै धर्मधर्मिणोः ।
एषैव रीतिस्सर्वेषु चिता मानुषशेमुषी ॥
11 सदसत्सदसच्चेति यस्य पक्षो न विद्यते ।
उपालम्भश्चिरेणापि तस्य वक्तुं न शक्यते ॥
परस्परं मत्सरिणः प्रवादास्सकला अपि ।
इच्छन् सर्वत्राविशेषं आर्हतोऽपक्षपात्यसौ ॥
स्वसिद्धान्तव्यवस्थासु द्वैतिनो निश्चिता दृढम् ।
परस्परं विरुद्ध्यन्ते तैरयं न विरुध्यते ॥
एवं हि स्वस्वसिद्धान्तसमुत्कर्षं विदुः क्रमात् ।
सौगता आर्हताश्चापि तथौपनिषदा अपि ॥

एवं स्वीयोत्कर्षवादं सर्वे दार्शनिका विदुः ।
सर्वत्रैतादृशी रीतिरित्येषा दिक्प्रदर्शिता ॥

(5) चार्वाकदर्शनम्

1 तत्र लौकायतं लोकसिद्धं व्याख्यानपेक्षितम् ।
तथापि संगतिज्ञप्त्यै प्राचामुक्तिरनूद्यते ॥
लौकायतं शास्त्रमेव प्रमाणं सर्वथा मतम् ।
पुमर्थौ यत्रार्थकामौ प्रत्यक्षैकप्रमाणता ॥
प्रत्यक्षाल्लोकशब्दार्थादधिकं च तदायतम् ।
इति बार्हस्पत्यसूत्रभाष्यकृद्भिरुदीरितम् ॥
इति सर्वार्थसिद्धौ श्रीवेदान्तार्यैरनूदितम् ।
एतेन सूत्रभाष्यादिसंप्रदायोऽपि गम्यते ॥
2 तत्र चत्वारि भूतानि भूमिवार्यनलानिलाः ।
चतुर्भ्यः खलु भूतेभ्यः चैतन्यमुपजायते ॥
किण्वादिभ्यस्समेतेभ्यः द्रव्येभ्यो मदशक्तिवत् ।
अहं स्थूलः कृशो गौरः इति साक्षात्प्रतीतितः ॥
देहे स्थौल्यादियोगाच्च स एवात्मा न चापरः ।
बुद्धेश्च देहधर्मत्वे देहस्य क्षणिकत्वतः ॥
तस्या आशुविनाशोऽपि सम्यगेवोपपद्यते ।
बुद्धेर्नित्यात्मधर्मत्वे स्याद्बुद्धिरपि शाश्वती ॥

बुद्ध्यन्तरेण नाशादिकल्पनं दुरुपद्रवम् ।
तथा बुद्धेर्गुणत्वं वा द्रव्यत्वं कैश्चिदिष्यते ॥
तद्भूतस्पन्दधीवादमसत्कर्तुमिति स्थितम् ।
आत्मनो द्रव्यता कैश्चिदिष्यते नित्यताऽऽप्तये ॥
पर्यायतस्त्वितरथा क्षणिको देहवद्भवेत् ।
नित्यसत्त्वा भवन्त्येके नित्यासत्त्वाश्च केचन ॥
विचित्राः केचिदित्यत्र तत्स्वभावो नियामकः ।
अग्निरुष्णो जलं शीतं समस्पर्शस्तथाऽनिलः ॥
केनेदं चित्रितं तस्मात् स्वभावात्तद्व्यवस्थितिः ।
तत्तथैव स्वीक्रियते यद्यथैव प्रतीयते ॥
प्रामाणिकं स्वरूपं यत् स्वभावस्स्यात्स एव हि ।
मृत्युरेवापवर्गस्स्यादिति वाचस्पतेर्मतम् ॥
न स्वर्गो नापवर्गो वा विद्यते पारलौकिकः ।
3 यदि गच्छेत्परं लोकं देहादेष विनिर्गतः ॥
कस्माद्भूयो न चायाति बन्धुस्नेहसमाकुलः ।
यावज्जीवं सुखं जीवेत् नास्ति मृत्योरगोचरः ॥
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ।
यावज्जीवं चाग्निहोत्रं जुहुयादिति वै श्रुतिः ॥
ब्राह्मणस्य च देहोऽयं नोपभोगाय जायते ।
इह क्लेशाय महते प्रेत्यानन्तसुखाय च ॥

इत्यादि वचनं सर्वं स्मृतमास्थानिवृत्तये ।
शरीरमाद्यं धर्मस्य साधनं चापि कीर्तितम् ॥
महता पुण्यपण्येन क्रीतेयं कायनौस्त्वया ।
गन्तुं दुःखोदधेः पारं त्वर यावन्न भिद्यते ॥
आयुरारोग्यमैश्वर्यं योगाङ्गं चेति कीर्त्यते ।
अरोगदृढगात्रत्वं सुखमुत्साहकारणम् ॥
आत्मनां नित्यतायां तु नैवास्थायाः परिक्षयः ।
तस्माद्देहात्मसिद्धान्तः द्रुतं रागविभञ्जकः ॥
4 अभ्यास एव सर्वत्र सुखदुःखनियामकः ।
मनःप्रीतिकरः स्वर्गः नरकः तद्विपर्ययः ॥
देशकालदशाभिन्नस्वभावेन व्यवस्थितः ।
तस्यैव परिभाषेयं पापं पुण्यमिति द्विधा ॥
अग्नेरशीतेन तोयस्य तृषा भक्तस्य च क्षुधा ।
क्रियते सुखकर्तृत्वं तद्विलोमस्य चेतरैः ॥
सुखाभावो दुःखमिति व्यवहारस्य गोचरः ।
आत्मा सुखे नियोक्तव्यः सुखभाजः प्रजाः स्मृताः॥
5 प्रकृतिं तद्विकारान्वा देहान्तान् ये तु मन्वते ।
आत्मानमिति ते ख्याताः तौष्टिका इति कापिलैः॥
पञ्चेन्द्रियविरक्तास्ते प्रकृत्यादौ लयं गताः ।
भवामेति च तानेव त्वात्मेत्येवमुपासते ॥

तत्त्वाभ्यासान्नास्मि न मे किंचिदित्येव केवलम् ।
ज्ञानमुत्पद्यते पश्चात् स्वयं सह विनश्यति ॥
विज्ञानघन एवैभ्यो भूतेभ्यश्च समुत्थितः ।
तानेवानुविनश्येदित्येव ब्राह्मणदर्शनम् ॥
येयं प्रेत इति श्रौते वचने नायमित्यपि ।
अनादिर्विचिकित्सेति सिद्धान्तः गीष्पतेरसौ ॥
विवृतं बहुधा सत्त्वं चैतन्यं नास्ति किंचन ।
इति श्रुतिः वाक्यपदव्याख्यायां समुदाहृता ॥
6 मज्ज्नामस्थ्नामथ प्लीह्नां यकृतां शकृतामपि ।
पूर्णाः स्नायुसिरास्यूताः प्रजाश्चर्मप्रसेविकाः ॥
मांसासृक्पूयविण्मूत्रस्नायुमज्जास्थिसंहतिः ।
देहः पटलपर्यन्तबिन्दुवत् क्षणभङ्गुरः ॥
सर्वाशुचिनिधानस्य कृतघ्नस्य विनाशिनः ।
शरीरकस्यापि कृते नराः पापानि कुर्वते ॥
यदि नामास्य देहस्य यदन्तस्तद्बहिर्भवेत् ।
दण्डमादाय लोकोऽयं शुनः काकांश्च वारयेत् ॥
दिवं स्पृशति भूमिं च शब्दः पुण्येन कर्मणा ।
यावत्स शब्दो भवति तावत्पुरुष उच्यते ॥
अकीर्तिर्यस्य कीर्त्येत लोके भूतस्य कस्य चित् ।
पतत्येवाधमान् लोकान् यावच्छब्दस्स कीर्त्यते ॥

नरः पतितकायोऽपि यशःकायेन जीवति ।
श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः ॥
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ।
इत्येव लक्षणं पुण्यपापयोस्सर्वसम्मतम् ॥
परश्शतैरेवमादिवचोभिरिह जीवता ।
आस्था निवर्तनीयाऽऽदौ आत्मन्याशुविनाशिनि ॥
जगतामुपकाराय वर्तितव्यं कृतात्मना ।
इदमेव हि चार्वाकदर्शनं रागभञ्जकम् ॥
देहपर्यन्तात्मवाद इति तत्त्वविदो विदुः ।
7 स्थिरदेहविदोऽप्येके जीवन्मुक्तिं समाश्रिताः ।
ते रसेश्वरसिद्धान्तनिष्ठाः तद्धृदयं त्विदम् ॥
आकाशस्य स्थितिर्यावद्यावच्च जगतः स्थितिः ।
तावन्मम स्थितिर्भूयाज्जगत्पापानि निघ्नतः ॥
इति बुद्धेन कथितमिति भास्करभाषितम् ।
तत् स्थेयं पुरुषेणेह जगतामुपकुर्वता ॥
बाह्यं केवलमेतत्स्यात् बौद्धं केवलमान्तरम् ।
सिद्धान्तस्यास्य संक्षेपः तत्तदुक्त्या प्रकाश्यते ॥

(6) सौगतदर्शनम्.

1 आत्मग्रहो महामोहः प्रथमस्तन्निवृत्तितः ।
मम किं नाहमेवेति विरंस्यति ममग्रहः ॥

तस्मादादावहंकारममकारप्रहाणतः ।
नैरात्म्यदर्शनं सिद्धं निर्वाणद्वारमुत्तमम् ॥
आत्मा यद्यप्रतीत्य स्यात् क्लेशानां नैव संक्षयः ।
अतो नैरात्म्यसिद्धान्तः बौद्धानामिति निर्णयः ॥
2 दुःखं स्वलक्षणं शून्यं क्षणिकं सकलं जगत् ।
इत्येवं भावनां सत्यां सौगतास्समुपादिशन् ॥
अनुकूलं चानुगतं सत्यं स्थिरमिति भ्रमाः ।
पूर्वोक्तभावनानाश्याः भवबन्धस्य हेतवः ॥
3 यस्मिन्नेव हि सन्ताने आहिता कर्मवासना ।
फलं तत्रैव बध्नाति कार्पासे रक्तता यथा ॥
कुसुमे बीजपूरादेः यल्लाक्षाद्युपसिच्यते ।
शक्तिराधीयते तत्र काचित्तां किं न पश्यसि ॥
सजातीयाः क्रमोत्पन्नाः प्रत्यासन्नाः परस्परम् ।
व्यक्तयस्तासु संतानः स चैक इति गीयते ॥
क्षणाभेदेऽपि तद्द्वारात्मकमासविभेदतः ।
धर्माः व्यवस्थिता यद्वत् तथा दुःखव्यवस्थितिः॥
4 रागादिज्ञानसंतानवासनोच्छेदसंभवा ।
चतुर्णामपि बौद्धानां मुक्तिरेषा प्रकीर्तिता ॥
माहायानिकनाम्ना च विश्रुता ये बुधोत्तमाः ।
ते माध्यमिकनाम्ना च प्रथिताश्शून्यवादिनः ॥

देशना लोकनाथानां सत्त्वाशयवशानुगाः ।
भिद्यन्ते बहुधा लोके उपायैर्बहुधा किल ॥
गम्भीरोत्तानभेदेन क्वचिच्चोभयलक्षणाः ।
भिन्ना हि देशना भिन्ना शून्यताऽद्वयलक्षणा ॥
द्वे सत्ये समुपाश्रित्य बुद्धानां धर्मदेशना ।
लोके संवृतिसत्यं च सत्यं च परमार्थतः ॥
5 चतुःप्रस्थानका बौद्धाः ख्याता वैभाषिकादयः ।
अर्थो ज्ञानान्वितो वैभाषिकेण बहुमन्यते ॥
सौत्रान्तिकेन प्रत्यक्षग्राह्योऽर्थो न बहिर्मतः ।
आकारसहिता बुद्धिर्योगाचारस्य सम्मता ॥
केवलां संविदं स्वस्थां मन्यन्ते मध्यमागमाः ।
प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणद्वितयं विदुः ॥
6 दुःखं समुदयं चैव निरोधो मार्ग एव च ।
आर्यसत्याख्यया बौद्धं तत्त्वमस्ति चतुर्विधम् ॥
दुःखं प्रसिद्धं तन्मूलमपि तच्छब्दशब्दितम् ।
दुःखहेतुस्समुदयः यः प्रत्ययपदाभिधः ॥
निरोधो मुक्तिरेव स्यात् शुद्धज्ञानमहोदयः ।
मार्गो भावनया तत्त्वज्ञानं तद्धेतुरुच्यते ॥
यद्भास्करेण भाष्ये स्वे त्वार्यसत्यं विभागशः ।
निरूपितं तदप्यत्र विशदीक्रियते यथा ॥

आद्यं समुदयाख्यं स्यात् सर्वमुत्पत्तिमत् स्थितम्।
इति यन्निर्णयज्ञानं तदेव स्यात् स्वलक्षणम् ॥
क्षणिकं सर्वमिति यत् तन्निरोधाख्यमुच्यते ।
सर्वं दुःखमिति ज्ञानं दुःखसत्यं विनिश्चितम् ॥
सर्वं शून्यमिति ज्ञानं मार्गसत्यं निरात्मकम् ।
इति भावयतो रागहानौ नाशो ह्यहेतुकः ॥
प्रायश्शास्त्रं सर्वमपि चतुर्धैव विभज्यते ।
रोगस्तद्धेतुरारोग्यं तद्धेतुश्चेति वैद्यके ॥
भूतं च भौतिकं चैव चित्तं चैत्तं च कृत्स्नशः ।
उत्पाद्यं क्षणिकं दुःखं निस्स्वभावं निरूपितम् ॥
7 द्विधस्समुदयश्च स्यात् आद्यो हेतुनिबन्धनः ।
अनन्तरः प्रत्ययोपनिबन्धन इतीरितः ॥
यदिदं प्रत्ययफलमिति संक्षिप्तसूत्रणम् ।
तत्प्रतीत्यसमुत्पादलक्षणं बुद्धदेशितम् ॥
स प्रतीत्यसमुत्पादः बाह्यश्चाभ्यन्तरो द्विधः ।
भूतभौतिकमाद्यं स्यात् चित्तचैत्तमनन्तरम् ॥
भूतं प्रसिद्धं देहादिर्विषयो भौतिको मतः ।
पञ्चस्कन्धी चित्तचैत्तं तद्विभागोऽवगम्यताम् ॥
विज्ञानं वेदना संज्ञा संस्कारो रूपमेव च ।
प्रवृत्त्यालयविज्ञानधारा विज्ञानमुच्यते ॥

चित्तावस्था वेदना स्यात् सुखदुःखादिलक्षणा ।
शब्दसंसर्गयोग्यार्थभासः संज्ञेति कीर्त्यते ॥
रागद्वेषादिसंतानः संस्कारस्कन्धसंज्ञितः ।
रूपस्कन्धः सविषयाणीन्द्रियाण्युच्यते बुधैः ॥
8 द्विप्रतीत्यसमुत्पादे द्विधस्समुदयो मतः ।
बीजादङ्कुरपत्रादिफलपर्यन्तसन्ततौ ॥
नास्ति कस्यापि चैतन्यं नान्यो वाऽत्राधितिष्ठति ।
कार्यकारणभावस्य नियमो न न दृश्यते ॥
एष प्रतीत्योत्पादे स्याद्बाह्ये हेतुनिबन्धनः ।
अत्रैवायं प्रत्ययोपनिबन्धोऽप्यवगम्यताम् ॥
अङ्कुरो जायते बीजात् षड्धातुसमवायतः ।
ऋतुश्च पञ्च भूतानि षड्धातव इति स्मृताः ॥
संगृह्णाति क्षितिर्बीजं अङ्कुरः कठिनस्ततः ।
जलधातुः स्नेहयति तेजो बीजं पचेदपि ॥
वायुधातुर्निर्हरति निर्गच्छति ततोऽङ्कुरः ।
आकाशधातुर्बीजस्य त्वनावरणकृत्यकृत् ॥
ऋतुधातोः परिणामः प्रसिद्धोऽङ्कुरबीजयोः ।
नातिरिक्तश्चेतनोऽत्र यः स्यात्कारकचक्रगः ॥
9 एवमाध्यात्मिकेऽप्यूह्यः यस्स्याद्धेतुनिबन्धनः ।
अविद्यया हि संस्काराः रागद्वेषादिलक्षणाः ॥

जायते तैर्हि विज्ञानं नामरूपं ततो भवेत् ।
स्यात् षडायतनं तस्मात् स्पर्शस्तस्माद्भवेदपि ॥
ततश्च वेदनातृष्णाभवजातिजरादयः ।
स्पष्टा रागादयस्तेभ्यः चित्ताभिज्वलनात्मकम् ॥
विज्ञानं तच्च गर्भस्थे चित्ते विषयसंजनम् ।
चित्तचैत्तात्मकं नामरूपं, आयतनं पुनः ॥
षडिन्द्रियाणि देहस्तु स्पर्शशब्देन कीर्त्यते ।
स्पष्टे हि वेदनातृष्णे धर्मोऽधर्मौ भवो मतः ॥
स्कन्धप्रादुर्भवो जातिः प्रसिद्धा हि जरादयः ।
तथाऽत्रैव प्रत्ययोपनिबन्धोऽप्यवगम्यताम् ॥
क्षित्यप्तेजोवायुनभोविज्ञानसमवायतः ।
कायस्य तत्र काठिन्यं पृथिवीधातुलक्षणम् ॥
अब्धातुस्तं स्नेहयति तेजोधातुः तनुस्थितम् ।
पीताशितं पाचयति वायुः श्वासयति त्वमुम् ॥
आकाशोऽन्तस्सुषिरकृत् विज्ञानं पुनरारभेत् ।
नामरूपाङ्कुरं तेन धातवस्सकला इमे ॥
उत्पादयन्ति सकलं कायं नात्रापि चेतनः ।
सोऽयं विज्ञानधातुर्यत्सकार्यं सास्रवं मनः ॥
आलम्बनं चाधिपतिः समनन्तर एव च ।
संहकारीति चत्वारः प्रत्ययाः ज्ञानहेतवः ॥

प्रत्ययांश्चतुरस्त्वेतान् प्रत्येत्योत्पत्तियोगतः ।
शब्दाद्या बाह्यविषयाः सुखाद्या आन्तरा मताः ॥
तत्र नीलालम्बनतः चित्तं स्यान्नीललक्षणम् ।
चक्षुराद्याधिपत्येन प्रतिरूपव्यवस्थितिः ॥
अनन्तरप्रत्ययेन बोधरूपत्वमश्नुते ।
आलोकादिकसाहाय्यादन्धकारादिसंक्षयः ॥
अर्थसत्ताविवादेऽपि प्रक्रियेयं समा मता ।
चतुर्णामपि वै मन्दमध्यमोत्तमयायिनाम् ॥
यस्मिन् सति समुत्पादो यस्य तत्तस्य कारणम् ।
इत्याहुस्सौगताः यस्मिन् सत्येवेतीतरे विदुः ॥
कारणं द्विविधं हेतुः प्रत्ययश्चेति निश्चितम् ।
प्रधानकारणं हेतुः प्रत्ययास्सहकारिणः ॥
तृतीयमिति यत्प्राहुर्निमित्तं न्यायवादिनः ।
तद्बुद्धिमदधिष्ठानं तदेवैतैर्निषिध्यते ॥
10 यद्यपि क्षणिका भावाः कार्यकारणलक्षणाः ।
तथाप्यविद्याशक्त्यैव तत्सर्वमुपपद्यते ॥
सैषाऽविद्या स्थायिजातिसुखवस्तुत्वबुद्धयः ।
विशेषे क्षणिके दुःखे शून्येऽप्यर्थे स्वभावतः ॥
भवन्ति रागद्वेषाद्याः ताभिस्संस्कारलक्षणाः ।
ते सूक्ष्मं चित्तसंतानं मातृकुक्षिं नयन्ति तम् ॥

स नीयते निराधारश्चापि देशान्तरं स्वयम् ।
ज्वालाबुद्बुदवद्वृत्तिरन्तरालेऽस्य सम्मता ॥
प्रतिक्षणं जायते यो दीपसंतानवत्सदा ।
स ग्राहकाभिमानेनारूढ आत्मेति कीर्त्यते ॥
गर्भं गतस्ततस्सोऽयं विज्ञानत्वं समश्नुते ।
चित्ताभिज्वलनं नाम, संसर्गो विषयैरसौ ॥
उत्तरोत्तरविज्ञानं स्थूलं चित्तमितीर्यते ।
सह तेनोत्पत्तिनाशभाजश्चैत्ता उदाहृताः ॥
स्पर्शश्च वेदना संज्ञा चेतना च वितर्कणा ।
विचारः प्रीतिरैकाग्र्यं श्रद्धा वीर्यं स्मृतिस्तथा ॥
प्रज्ञादयश्च धर्मा ये कुशलाकुशलात्मकाः ।
त एते चित्तचैत्तास्स्युः ये नामाख्या इतीरिताः ॥
ततः पृथिव्यादिरूपिद्रव्यं तत्पुञ्जलक्षणम् ।
ततस्त्विन्द्रियषट्कं स्यात् षडायतनसंज्ञितम् ॥
ततः स्पर्शाभिधः कायः ततः स्युः वेदना स्पृहा ।
उपादानं भवो जातिः जरा मरणमेव च ॥
शोकश्च परिवेदश्च दुःखं दौर्मनसं तथा ।
मदमानादयश्चोपक्लेशाः प्रादुर्भवन्त्यपि ॥
स्पृहा वाक्कायचेष्टा स्यात् धर्माधर्मौ भवो मतः ।
शुभाशुभा वासना सा चित्तसन्तानवर्तिनी ॥

तस्मादेतैर्मता चित्तवासना कर्मशब्दिता ।
स्कन्धप्रादुर्भवो जातिः अविद्यादिस्ततः पुनः ॥
अनादि चक्रमेतत्स्यात् संततं परिवर्तते ।
विच्छेदस्तस्य कर्तव्यः कुशलैरिह विद्यया ॥
प्राक्प्रतीत्यसमुत्पादे स्कन्धोत्पत्तिर्निरूपिता ।
प्रत्ययोत्पत्तिरपि च सैषा सौगतपद्धतिः ॥
सर्वं विवर्तं शून्यस्य मध्यमागमसम्मतम् ।
ज्ञानस्यैवायमाकारः योगाचारमतेऽखिलम् ॥
सौत्रान्तिकैरनुमितं बाह्यं क्षणिकमिष्यते ।
वैभाषिकमते बाह्यं प्रत्यक्षं क्षणभङ्गुरम् ॥
11 सर्वे स्वयंप्रकाशं तं ज्ञानमात्मानमभ्यधुः ।
स्वयंप्रकाशहीनस्य बाह्यस्योपासनं मतम् ॥
ज्ञानान्तरेणानुभवोऽनिष्टः तत्रापि च स्मृतेः ।
विषयान्तरसंचारः तथा न स्यात्स चेष्यते ॥
नान्योऽनुभाव्यो बुद्ध्याऽस्ति तस्या नानुभवोऽपरः।
ग्राह्यग्राहकवैधुर्यात्स्वयं सैव प्रकाशते ॥
12 न सन्नासन्न सदसन्न चाप्यनुभयात्मकम् ।
चतुष्कोटिविनिर्मुक्तं तत्त्वं माध्यमिका विदुः ॥
इदं वस्तुबलायातं यद्वदन्ति विपश्चितः ।
यथायथार्थाश्चिन्त्यन्ते विशीर्यन्ते तथातथा ॥

रजतं न मया दृष्टमित्येवमुपलम्भनम् ।
निषेधविषयं स्वप्ने जागरे चानुभूयते ॥
द्रष्टृदर्शनसंसर्गाध्यासाधिष्ठानलक्षणे ।
समूहे कस्य वाऽसत्त्वं कस्य सत्त्वं विविच्यते ॥
अविशेषेण सर्वस्य निषेधोऽत्र विनिश्चितः ।
न चार्धजरतीयं चोचितं प्रेक्षावतां यथा ॥
न ह्येकभागः कुक्कुट्याः पाकाय प्रविभज्यताम् ।
प्रसवायापरो भागः कल्प्यतामिति कल्पते ॥
बुद्ध्या विविच्यमानायां स्वभावो नावधार्यते ।
अतो निरभिलप्यास्ते निःस्वभावाश्च दर्शिताः ॥
यः प्रतीत्यसमुत्पादः शून्यतां तां प्रचक्षते ।
सा प्रज्ञप्तिरुपादाय प्रतिपत्सैव मध्यमा ॥
पूर्वोपलम्भोपशमः प्रपञ्चोपशमाच्छिवः ।
न क्वचित्कस्यचित्कश्चित् धर्मो बुद्धेन देशितः ॥
यो हेतुप्रत्ययापेक्षो भावोत्पादश्च कीर्त्यते ।
स प्रतीत्यसमुत्पादः नेश्वरान्न च कालतः ॥
नाणुभ्यो न स्वभावाच्च न वा प्रकृतितोऽपिच ।
अहेतोरेकहेतोर्वा विषमाद्वा न संभवः ॥
अप्रतीत्यास्तिता नास्ति कदाचित्कस्यचित्क्वचित् ।
न कदाचित्क्वचित्कश्चित् विद्यते तेन शाश्वतः ॥

भावानां निस्स्वभावानां न सत्ता विद्यते यतः ।
सतीदमस्मिन् भवतीत्येतन्नैवोपपद्यते ॥
फलं च प्रत्ययमयं प्रत्ययाश्चास्वयंमयाः ।
कथमस्वंमयेभ्यो यत् तत्प्रत्ययमयं कथम् ॥
पटः कारणतस्सिद्धः सिद्धं कारणमन्यतः ।
सिद्धिर्यस्य स्वतो नास्ति तदसज्जनयेत्कथम् ॥
अनुत्पन्नोऽयमुत्पादः स्वात्मानं जनयेत्कथम् ।
अथोत्पन्नो जनयति जातः किं जन्यते पुनः ॥
यः प्रतीत्यसमुत्पादं पश्यतीदं स पश्यति ।
दुःखं समुदयं चैव निरोधं मार्गमेव च ॥
प्रपञ्चोपशमायैव शून्यता सोपदिश्यते ।
तस्मात् प्रपञ्चोपशमः शून्यतायां प्रयोजनम् ॥
शून्यत्वं नास्तितारूपं भवांस्तु परिकल्पयन् ।
प्रपञ्चं वर्धयन्नेव न च वेत्ति प्रयोजनम् ॥
अपरप्रत्ययं शान्तं प्रपञ्चैरप्रपञ्चितम् ।
निर्विकल्पमनानार्थमेतत्तत्त्वस्य लक्षणम् ॥
प्रपञ्चविनिवृत्त्येकस्वभावा या च शून्यता ।
तस्यां तु नास्तितादृष्टिरमलायां नयुज्यते ॥
यं चार्थं शून्यताशब्दस्समुपादाय वर्तते ।
स प्रतीत्यसमुत्पादः मध्यमा प्रतिपत्तु सा ॥

आसीदसद्वेदमग्रे ततो वै सदजायत ।
इति छान्दोग्योपनिषद्ब्राह्मणं श्रूयते सदा ॥
इदं चापिहितं तुच्छेनेति ब्राह्मणदर्शनम् ।
यच्च तित्तिरिशाखायां तदप्यत्र समञ्जसम् ॥
आसीदिदं तमोभूतमित्याद्याः श्रुतयोऽपि च ।
स्मृतयश्चात्र सिद्धान्ते कटाक्षान् पातयन्ति हि ॥
एवं माध्यमिकैकान्तः स माध्यमिकपूर्वके ।
वृत्तिग्रन्थे च सव्याख्ये पर्यष्कारीति निर्णयः ॥
13 अविभागोऽपि बुद्ध्यात्मा विपर्यासितदर्शनैः ।
ग्राह्यग्राहकसंवित्तिभेदवानिव लक्ष्यते ॥
अवेद्यवेदकाकारा यथा भ्रान्तैर्निरीक्ष्यते ।
विभक्तलक्षणग्राह्यग्राहकाकारविप्लवा ॥
तथा कृतव्यवस्थेयं केशादिज्ञानभेदवत् ।
यदा तदा न संचोद्या ग्राह्यग्राहकलक्षणा ॥
अप्रत्यक्षोपलम्भस्य नार्थदृष्टिः प्रसिद्ध्यति ।
उपलम्भोपलम्भेन व्यवहारोऽखिलो मतः ॥
अन्यथा परकीयोपलम्भेनापि पुमानयम् ।
चेष्टेत तस्मात् स्वस्यैव स्वयमेवोपलभ्यते ॥
सहोपलम्भनियमादभेदो नीलतद्धियोः ।
भेदश्च भ्रान्तिविज्ञानैः दृश्येतेन्दाविवाद्वये ॥

तत्स्यादालयविज्ञानं यद्भवेदहमास्पदम् ।
तत्तु प्रवृत्तिविज्ञानं यन्नीलादिकमुल्लिखेत् ॥
सवासनालयज्ञानानुवृत्तिः बन्ध इष्यते ।
विशुद्धालयविज्ञानसंततिर्मोक्ष ईरितः ॥
14 कल्पनापोढमभ्रान्तं प्रमाणं निर्विकल्पकम् ।
विकल्पोऽवस्तुनिर्भासादसंवादादुपप्लवः ॥
ग्राह्यं वस्तु प्रमाणं तु ग्रहणं निर्विकल्पकम् ।
न तद्वस्तु न तन्मानं शब्दलिङ्गेन्द्रियादिजम् ॥
विकल्पविषये वृत्तिरिष्टा शब्दानुमानयोः ।
अवस्तुविषयाश्चैते विकल्पा इति निर्णयः ॥
विकल्पोऽध्यवसायः स्यात् ग्रहणं निर्विकल्पकम् ।
तस्माद्ध्यवसेयं च ग्राह्यं चेति द्विधं जगत् ॥
शब्दसंसर्गयोग्यार्थप्रतिभासा हि बुद्धयः ।
सविकल्पा भवन्त्येते व्यपदेशपदास्पदम् ॥
विकल्पयोनयश्शब्दाः विकल्पाश्शब्दयोनयः ।
कार्यकारणता तेषां नार्थं शब्दाः स्पृशन्त्यमी ॥
मानमेयफलानामप्यैक्यं विज्ञानवादिनः ।
"अविभागोऽपी"ति विदुः निरालम्बनसिद्धये ॥
फलक्रियाकारकाणामैक्यं वैभाषिकादयः ।
"क्रियैव कारकम्" इति क्षणभङ्गाय चाश्रयन् ॥

प्रत्यक्षवेद्यं यद्वस्तु विशेषः तत्स्वलक्षणम् ।
परोक्षवेद्यं यच्चापि तत्स्यात्सामान्यलक्षणम् ॥
सजातीयविजातीयव्यावृत्तं स्वत एव यत् ।
तत्स्वलक्षणमित्युक्तं विशेष इति निर्णयः ॥
यथा च पृथवी गन्धलक्षणा स्पर्शलक्षणम् ।
जलमित्यादिकं नैवं किंचित्स्यादन्यलक्षणम् ॥
धर्मधर्मिविभङ्गेन जात्यादेरपि भङ्गतः ।
नैव किंचित्त्वनुगतं यत्स्यात्सामान्यलक्षणम् ॥
अभिन्नदेशकालं यत् तत्स्वलक्षणमुच्यते ।
इति सर्वार्थसिद्धौ हि स्वलक्षणमनूदितम् ॥
सौत्रान्तिकाः पुनरिहापोहसामान्यवादिनः ।
स वादश्शून्यनिष्ठेति न्यायरत्नाकरोदितम् ॥
वात्सीपुत्रास्तु शब्दादीन् पञ्च वैभाषिका विदुः ।
शब्दात्मानश्चतुर्ष्वेव केचिदित्यपरेऽब्रुवन् ॥
निर्धर्मका निराधाराः रूपाद्यास्स्युः चतुर्विधाः ।
पदार्थास्ते चक्षुरादिप्रत्येकेन्द्रियगोचराः ॥
स्पर्शाद्येकद्वित्रिचतुःस्वभावाणुचतुष्कतः ।
पुञ्जः प्रपञ्चः संबन्धो नाम वस्तु न हीष्यते ॥
षट्केन युगपद्योगात्परमाणोष्षडंशता ।
तेषामप्येकदेशत्वे पिण्डः स्यादणुमात्रकः ॥

प्रतिसंख्याऽप्रतीसंख्यानिरोधौ व्योम चेति यत् ।
बुद्धिबोध्यं त्रयादन्यत्संस्कृतं क्षणिकं च तत् ॥
स निरन्वयनाशः स्याद्धर्मो धर्म्यपि वा पुनः ।
पूर्वसंघातभावो वा यद्भावे नानुवर्तते ॥
उत्पत्तिश्च तथाभूता निरन्वयसमुद्भवा ।
तावुभौ सर्वभावानां नियताविति सौगताः ॥
त्यज्यतां दीर्घसंसारकारणं स्थिरताग्रहः ।
गृह्यतां क्षणभङ्गित्वं परवैराग्यकारणम् ॥
यत्सत्तत् क्षणिकं सन्तश्चामी भावा इति स्थितम् ।
सत्ताऽर्थकर्मकारित्वं तत् व्याप्यं व्यापकः पुनः ॥
क्रमाक्रमान्यतरयोर्योगः स स्थिरवस्तुनः ।
व्यावर्तमानो व्याप्यं च विनिवर्तयतीत्यतः ॥
व्यतिरेकेण सा व्याप्तिः स्यात्तथाऽन्वयतः पुनः ।
सत्त्वं नानास्वभावत्वं स्थैर्यमेकस्वभावता ॥
तयोर्विरोधो युक्त्यापि वक्तुं न हि न शक्यते ।
एवं द्विधा व्याप्तियोगात् सत्त्वं साध्ये व्यवस्थितम् ॥
किंचात्र कारकावस्था स्यादेकक्षणवर्तिनी ।
सामग्री सा यतः कार्यसर्वदोत्पत्त्यदर्शनम् ॥
व्यापारावेशवशतः साह्यसन्निधितोऽपि वा ।
कारकत्वं वस्तुरूपं तदेकक्षणवृत्ति हि ॥

कार्योत्पत्त्यैव तत्क्लृप्तिः तत्पूर्वोत्तरयोरसत् ।
तदेव परमार्थं सत् अन्यस्याजनकत्वतः ॥
कारकत्वस्य चाभावे ह्यस्तित्वमपि दुर्वचम् ।
ततश्च सर्वैः प्रायेण क्षणिकत्वमुपाश्रितम् ॥
सौगताः पीतवन्तश्च यश एव हि केवलम् ।
यत्कारकं यच्च सत्स्यात् तत्सर्वं क्षणिकं ततः ॥
विनश्वरस्वभावेऽस्मिन् कृतं प्रलयहेतुभिः ।
अनश्वरस्वभावेऽस्मिन् कृतं प्रलयहेतुभिः ॥
केचित्तु बुद्धोपदिष्टं तत्त्वं नित्यं च किंचन ।
सत्त्वाख्यसाधनं तेन भवेदागमबाधितम् ॥
ध्रुवभावित्वाख्यहेतुं मन्यन्ते क्षणसिद्धये ।
तत्प्रकारस्य संक्षेप एषोऽस्ति श्लोकवार्तिके ॥
अहेतुको विनाशो हि ध्रुवभावितया स्थितः ।
जनित्वा ध्वंसते सर्वं स्थूलस्सूक्ष्मो द्विधा च सः॥
बुद्धिपूर्वं विनाशे हि प्रतिसंख्यानिरोधधीः ।
अबुद्धिपूर्वकस्तेषां निरोधोऽप्रतिसंख्यया ॥
तौ च द्वावप्यनाशित्वादिष्टौ अकृतकावपि ।
आहुः स्वभावतस्सिद्धं तं विनाशमहेतुकम् ॥
हेतुर्यस्य विनाशोऽपि तस्य दृष्टोऽङ्कुरादिवत् ।
विनाशस्य विनाशस्तु नास्ति तस्मादकृत्रिमः ॥

भवति ह्यग्निसंबन्धात्काष्ठादङ्गारसंततिः ।
मुद्गरादिहताच्चापि कपालं जायते घटात् ॥
स्वाभाविको विनाशस्तु जातमात्रप्रतिष्ठितः ।
सूक्ष्मः सदृक्संतानानुवृत्तेरनुपलक्षितः ॥
यदा विलक्षणो हेतुः पतेत्सदृशसंततौ ।
विलक्षणेन कार्येण स्थूलोऽभिव्यज्यते तदा ॥
तेनासदृशसंतानः हेतोस्संजायते यतः ।
तेनैवाक्रियमाणोऽपि नाशोऽभिव्यज्यते स्फुटः ॥
इत्येवं वर्तमानत्वप्रत्यक्षात् क्षणभङ्गिता ।
प्रत्यभिज्ञा चाप्रमाणं विरुद्धांशावगाहनात् ॥
16 उपप्लवो वासना स्यात् वासनामात्रनिर्मिताः ।
कल्पिताळीकभेदादिप्रपञ्चाः पञ्च कल्पनाः ॥
द्रव्यक्रियाजातिगुणनामलक्षणका हि ताः ।
तत्र द्रव्यक्रियाजातिगुणाकाराश्च विश्रुताः ॥
डित्थादिशब्दाकारत्वं वस्तुनः शब्दकल्पना ।
गौरयं दण्ड्ययं शुक्लोऽप्ययं यात्ययमर्भकः ॥
अयमित्यादि पञ्चानां वस्तूनां स्यादुपप्लवः ।
परिव्राट्कामुकशुनामेकस्यां प्रमदातनौ ॥
कुणपः कामिनी भक्ष्यमिति तिस्रो विकल्पनाः ।
रागादिवासनामूलं क्षणिकं सकलं ततः ॥

इति सौगतसिद्धान्तं कुतर्क इति ये विदुः ।
कणादगौतममुखाः तैः पुनः परिशोधिताः ॥
मानमेयादयः सर्वैस्सुगृहीताः परीक्षकैः ।
तथापि संगतिज्ञानायानूद्यन्ते तदुक्तयः ॥

(7) न्यायदर्शनम्.

1 काणादं गौतमीयं चाप्येकीकृत्यैव दर्शनम् ।
मानमेयविनिष्कर्षः संक्षेपादिह कथ्यते ॥
प्रमेयशास्त्रं काणादं मानशास्त्रं तु गौतमम् ।
2 आन्वीक्षिकी मानविद्याऽध्यात्मशास्त्रमितीर्यते ॥
प्रदीपस्सर्वविद्यानामालयस्सर्वकर्मणाम् ।
आश्रयस्सर्वधर्माणां विद्योद्देशे प्रकीर्तिता ॥
ज्ञातं सम्यगसम्यग्वा यन्मोक्षाय भवाय वा ।
तत्प्रमेयमिहाभीष्टं न प्रमाणार्थमात्रकम् ॥
3 द्रव्यं गुणस्तथा कर्म सामान्यं सविशेषकम् ।
समवायस्तथाऽभावः पदार्थास्सप्त कीर्तिताः ॥
क्षित्यप्तेजोमरुद्व्योमकालदिग्देहिनो मनः ।
द्रव्याण्यथ गुणा रूपं रसो गन्धः ततः परम् ॥
संयोगश्च विभागश्च परत्वं चापरत्वकम् ।
बुद्धिस्सुखं दुःखमिच्छा द्वेषो यत्नो गुरुत्वकम् ॥

द्रवत्वं स्नेहसंस्कारावदृष्टं शब्द एव च ।
उत्क्षेपणं ततोऽवक्षेपणमाकुञ्चनं तथा ॥
प्रसारणं च गमनं कर्माण्येतानि पञ्च च ।
भ्रमणं रेचनं स्पन्दनोर्ध्वज्वलनमेव च ॥
तिर्यग्गमनमप्यत्र गमनादेव लभ्यते ।
सामान्यं द्विविधं प्रोक्तं परं चापरमेवच ॥
द्रव्यादित्रिकवृत्तिस्तु सत्ता परतयोच्यते ।
परभिन्ना तु या जातिस्सैवापरतयोच्यते ॥
द्रव्यत्वादिकजातिस्तु परापरतयोच्यते ।
व्यापकत्वात्पराऽपि स्याद्व्याप्यत्वादपराऽपिच ॥
अन्त्यो नित्यद्रव्यवृत्तिः विशेषः परिकीर्तितः ।
घटादीनां कपालादौ द्रव्येषु गुणकर्मणोः ॥
तेषु जातेश्च संबन्धः समवायः प्रकीर्तितः ।
अभावस्तु द्विधा संसर्गान्योन्याभावभेदतः ॥
प्रागभावस्तथा ध्वंसोऽप्यत्यन्ताभाव एवच ।
एवं त्रैविध्यमापन्नः संसर्गाभाव इष्यते ॥
अन्यथासिद्धिशून्यस्य नियता पूर्ववृत्तिता ।
कारणत्वं भवेत्तस्य त्रैविध्यं परिकीर्तितम् ॥
समवायि निमित्तं चासमवायीति तत्त्रयम् ।
निमित्तत्वमधिष्ठानं तद्धीच्छाकृतिलक्षणम् ॥

विवादाध्यासितं सर्वं बुद्धिमत्कर्तृपूर्वकम् ।
कार्यत्वात् उभयोस्सिद्धं कार्यं कुम्भादिकं यथा ॥
कार्यायोजनधृत्यादेः पदात्प्रत्ययतः श्रुतेः ।
वाक्यात्संख्याविशेषाच्च साध्यो विश्वचिदव्ययः ॥
उत्प्रेक्षेत हि यो मोहादज्ञातमपि बाधकम् ।
स सर्वव्यवहारेषु संशयात्मा क्षयं व्रजेत् ॥
आत्मेन्द्रियाद्यधिष्ठाता करणं हि सकर्तृकम् ।
अहंकारस्याश्रयोऽयं मनोमात्रस्य गोचरः ॥
विभुः द्रव्यादिगुणवान् बुद्धिस्तु द्विविधा मता ।
4 अनुभूतिः स्मृतिश्च स्यात् अनुभूतिश्चतुर्विधा ॥
प्रत्यक्षमप्यनुमितिस्तथोपमितिशब्दजे ।
प्रमाणं करणं तासां तत एव चतुर्विधम् ॥
प्रमा चैवाऽप्रमा चेति साऽनुभूतिश्चतुर्विधा ।
दोषोऽप्रमाया जनकः प्रमायास्तु गुणो मतः ॥
सा प्रमा तत्प्रकारं यत् ज्ञानं तद्वद्विशेष्यकम् ।
तच्छून्ये तन्मतिर्या स्यात् अप्रमा सा निरूपिता ॥
ज्ञानं यन्निर्विकल्पाख्यं न प्रमा नापिच भ्रमः ।
प्रमात्वं न स्वतोग्राह्यं संशयानुपपत्तितः ॥
साक्षात्कारे सुखादीनां करणं मन उच्यते ।
अयौगपद्यात् ज्ञानानां तस्याणुत्वमिहेष्यते ॥

भावनाख्यस्तु संस्कारः जीववृत्तिरतीन्द्रियः ।
स्मरणे प्रत्यभिज्ञायामप्यसौ हेतुरुच्यते ॥
शब्दो ध्वनिश्च वर्णश्च मृदङ्गादिभवो ध्वनिः ।
कण्ठसंयोगादिजन्यः वर्णास्ते कादयो मताः ॥
सर्वश्शब्दो नभोवृत्तिः श्रोत्रोत्पन्नस्तु गृह्यते ।
तारङ्गाद्वा मौकुलाद्वा न्यायात्तस्य जनिर्मता ॥
तस्मादनित्या एवेति सर्वे शब्दाः व्यवस्थिताः ।
धर्माधर्मावदृष्टं स्याद्धर्मः स्वर्गादिसाधनम् ॥
अधर्मो नरकादीनां हेतुर्निन्दितकर्मजः ।
लोकान्तराणि तद्योग्यशरीराणि च सन्ति नः ॥
इमौ तु वासनानाश्यौ ज्ञानादपि विनश्यतः ।
क्षेत्रज्ञस्येश्वरज्ञानाद्विशुद्धिः परमा मता ॥
यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयन्तीह मानवाः ।
तदा शिवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥

(8) वैशेषिकदर्शनम्

1 योगाचारविभूत्या यस्तोषयित्वा महेश्वरम् ।
चक्रे वैशेषिकं शास्त्रं कणादं तं नमाम्यहम् ॥
काणादन्यायमतयोस्समानार्था इमे स्थिताः ।
वैशेषिके विशेषोऽपि त्वियानेवावगम्यते ॥

शब्दोपमानयोर्नैव प्रामाण्यमतिरिच्यते ।
अनुमानगतार्थत्वादिति वैशेषिकं मतम् ॥
पीलुपाकविदस्त्वेते गौतमीयाः पुनर्विदुः ।
पिठरे पाकमित्येतत् विदितं सर्ववादिनाम् ॥
समवायोऽतीन्द्रियस्स्यादिति वैशेषिकं मतम् ।
प्रत्यक्षस्समवायीति नैयायिकविनिर्णयः ॥
एते वैशेषिकाः प्रायः जरत्तार्किकलक्षणाः ।
प्रायो नैयायिका एव नव्यतार्किकशब्दिताः ॥
तेष्वपि प्रायशः प्राच्यनव्यभेदास्त्वनेकधा ।
भूता अपि भविष्यन्ति सर्वेषां दर्शनेष्विव ॥
आत्माऽनुमेयो जरतां नव्यानां मानसो मतः ।
इत्यौपनिषदैः भेदाः बहवः स्युः प्रदर्शिताः ॥
द्वित्वे च पाकजोत्पत्तौ विभागे च विभागजे ।
यस्य न स्खलिता बुद्धिः तं वै वैशेषिकं विदुः ॥
विनाशकविनाशस्य या बुद्धिः प्रतियोगिनी ।
साऽपेक्षाधीः तद्विनाशात् द्वित्वादिर्हि विनश्यति ॥
अनुमेयेन संबद्धं प्रसिद्धं च तदन्विते ।
तदभावे च नास्त्येव तल्लिङ्गमनुमापकम् ॥
विपरीतमतो यत्स्यात् एकेन द्वितयेन वा ।
विरुद्धासिद्धसंदिग्धमलिङ्गं काश्यपोऽब्रवीत् ॥

विद्याऽविद्याविभागोऽपि विशेषो न्यायनिर्णयात् ।
उपघातात्मकं दुःखं प्रसादजनकं सुखम् ॥
वीचीसंतानवच्छब्दसंतानश्च निरूपितः ।
सर्वा सर्वगता जातिरिति वैशेषिकं मतम् ॥
2 एवं सामान्यतः प्रोक्तस्समुद्देशः तथा पुनः ।
तत्तत्प्रकरणे तत्तद्विशेषः प्रतिपाद्यते ॥
एकं शास्त्रमिति प्रायः बहुभेदं विदुर्बुधाः ।
सांख्यास्तु निर्विशेषां तां प्रकृतिं कारणं विदुः ॥
भूतानि तु विशेषाः स्युः तस्मादाव्यक्तिकास्तु ते ।
विशेषेष्वेव विश्रान्ताः ये ते वैशेषिका इति ॥
सामान्यस्य प्रधानस्य प्रतिद्वन्द्वितया स्थिताः ।
प्राक्पाकजविशेषेण विशिष्टाः परमाणवः ॥
तंतं कार्यं प्रारभन्ते कलमाद्यङ्कुरं स्वयम् ।
संस्कारः पुंस एवेष्टः प्रोक्षणाभ्युक्षणादिभिः ॥
स्वगुणाः परमाणूनां विशेषाः पाकजा मताः ।
इत्यौदयनभारत्या सविशेषस्य हेतुताम् ॥
वदतां काणभक्षाणां ख्यातिर्वैशेषिका इति ।
विशेषाख्यपदार्थस्य स्वीकर्तृत्वविशेषतः ॥
वैशेषिका इति ख्यातिः आपातादिति तात्त्विकाः ।
3 अत्र तत्त्वावबोधार्थाः पदार्थपरिशुद्धयः ।

अथाऽत्र प्रथमोऽध्यायः पदार्थोद्देशलक्षणः ॥
अथ द्वितीयोऽध्यायस्स्यात्सामान्यद्रव्यलक्षणः ।
आत्माऽध्यायस्तृतीयस्स्यात् तुर्यस्स्यान्नित्यलक्षणः॥
कर्माध्यायः पञ्चमस्स्यात् षष्ठस्स्याद्धर्मलक्षणः ।
अथ स्यात्सप्तमोऽध्यायस्सामान्यगुणलक्षणः ॥
बुद्ध्यध्यायस्त्वष्टमः स्यात्प्रत्यक्षो नवमो मतः ।
सुखाध्यायस्तु दशमः इत्यध्यायार्थसंग्रहः ॥
या न्यायपरिशुद्धौ श्रीवेदान्ताचार्यसूरिभिः ।
न्यायवैशेषिकाभिदासूक्तिरेषा निशम्यताम् ॥
पञ्चाध्याय्यामाक्षपाद्यां यत्त्ववाग्भिर्निवेश्य च ।
कुशकाशालम्बनीत्या कणभक्षकथां पुनः ॥
निरुध्यन्ते नैगमिकयः पदव्यो विबुधोत्तमैः ।
स्वयमन्तः प्रहसति नूनं तत्र स गौतमः ॥
इत्येवं शास्त्रसारार्थः प्रमेयांशे समुद्धृतः ।
प्रमाणादिषु वादेषु प्रमेयाब्धिः पुरः स्थितः ॥
4 प्रायेण तार्किका एते स्वसिद्धान्तव्यवस्थितिम् ।
इच्छन्ति तर्कपर्यायभूतलाघवयुक्तिभिः ॥
तत्र लाघवयुक्तीनामुदाहरणसूचनम् ।
तमश्शक्त्योर्नातिरेकः हेम्नस्तैजसता तथा ॥
कालादेश्चातिरिक्तत्वं जीवे देहातिरिक्तता ।

विज्ञानादतिरेकश्चेत्यादिरन्यत्र विस्तरः ॥
अथात्र नव्यसिद्धान्तविशेषांशो विविच्यते ।
अनुमानागमाभ्यां च सिद्ध्यत्यत्र महेश्वरः ॥
नेश्वरादतिरिच्यन्ते दिक्कालाकाशशब्दिताः ।
त्रसरेणौ विश्रमेण न ह्रस्वपरिमण्डले ॥
सत्ता नाम न सामान्यं विशेषो नातिरिच्यते ।
नाना च समवायस्स्यात् प्रागभावो न सम्मतः ॥
शक्तिस्संख्या च कार्यत्वं कारणत्वं तथैवच ।
स्वत्वं च प्रतियोगित्वं विषयत्वादयोऽपिच ॥
अतिरिच्यन्त इत्याहुः स्पार्शनो वायुरुच्यते ।
त्रसरेणुर्मनो भूतं मूर्तं भूतमितीर्यते ॥
रूपादयो नानुद्भूताः नापिच व्याप्यवृत्तयः ।
चित्रं च नातिरिक्तं स्यादित्याद्यन्यत्र विस्तरः ॥

(५) सांख्य दर्शनम्

अथ कापिलसिद्धान्ते प्रमेयपरिकल्पना ।
प्रायेण विदिताऽप्यत्र मीमांसायै निरूप्यते ॥
चतुर्विधः पदार्थः स्यात्कश्चित्प्रकृतिरेवहि ।
प्रकृतिर्विकृतिः काश्चित् कश्चिद्विकृतिरेवच ॥
अन्योऽनुभयरूपस्स्यात् षष्टितन्त्रस्य संग्रहः ।
पञ्चविंशतितत्त्वानामपि संक्षेपलक्षणः ॥

आद्य एको विभुर्नित्यः प्रधानं गुणसाम्यतः ।
प्रतिक्षणसजातीयपरिणाम्यपि शाश्वतः ॥
द्वितीयस्सप्तधा प्रोक्तः महान् तस्मादहंकृतिः ।
रूपगन्धरसस्पर्शशब्दास्तन्मात्रलक्षणाः ॥
तृतीयष्षोडशविधः व्योमाद्यं भूतपञ्चकम् ।
एकादशेन्द्रियाणि स्युः ज्ञानकर्मोभयात्मना ॥
यद्यप्यनन्ता भूतानां स्याद्विकारपरम्परा ।
तत्त्वान्तरोत्पादकत्वं प्रकृतित्वमिहेप्सितम् ॥
तच्च सौक्ष्म्यं हेतुकार्यभावस्येत्यवगम्यते ।
गुणापचित्युपचितिभेदात्सौक्ष्म्यं तदन्यता ॥
चतुर्थः पुरुषोऽनेकः भोक्ता चैतन्यलक्षणः ।
कूटस्थनित्यो मध्यस्थः द्रष्टा साक्षी च केवलः ॥
तन्मात्रपञ्चकं भूतपञ्चकं ज्ञानपञ्चकम् ।
कर्मपञ्चकमन्यच्च पञ्चकं शेषपञ्चकम् ।
एवंच पञ्चकं पञ्च तत्त्वानां पञ्चविंशतिः ॥
2 अथ षष्टिपदार्थास्तु विभागोऽप्यवधार्यताम् ।
प्रधानास्तित्वमेकत्वं अर्थवत्त्वमथान्यता ।
पारार्थ्यं च तथाऽनैक्यं वियोगो योग एवच ॥
शेषवृत्तिरकर्तृत्वं मौलिकार्थाः दश स्मृताः ।
विपर्ययः पञ्चविधः तथोक्ता नव तुष्टयः ॥

करणानामसामर्थ्यं अष्टाविंशतिधा मतम् ।
इति षष्टिः पदार्थानां अष्टाभिस्सिद्धिभिस्सह ॥
3 षष्टितन्त्राभिधः कश्चिदागमः कपिलर्षिणा ।
प्रणीत इति वेदान्तसूत्रे भास्करभाषितम् ॥
संप्रतीश्वरकृष्णीयकारिका तत्त्वकौमुदी ।
सांख्यसिद्धान्तमुकुर इति सर्वत्र निश्चितम् ॥
सांख्यप्रवचनं नाम या षडध्याय्यपीक्ष्यते ।
विज्ञानभिक्षुभाष्यं च तत्प्राच्यैर्नाभिवीक्षितम् ॥
पातञ्जलं चतुष्पादं यदेतर्ह्युपलभ्यते ।
तद्धि सांख्यप्रवचनमिति माधवसंग्रहः ॥
4 स्वभावेनैव चिच्छक्तिर्विषयप्रवणा यदि ।
अनिर्मोक्षप्रसंगोऽतः किञ्चित् द्वारमपेक्षते ॥
न चक्षुरादिमात्रं तत् संकल्पानुपपत्तितः ।
न मनोमात्रविश्रान्तिः स्वप्ने व्याघ्राभिमानतः ॥
नाहंकारे तत्त्वपूर्तिः सुषुप्तौ प्राणदर्शनात् ।
न बुद्धयन्ता तत्त्वपङ्क्तिः बुद्धेः परिमितत्वतः ॥
5 कारणं त्वपरिच्छिन्नं प्रधानं प्रकृतिर्हि सा ।
कार्यहेत्वोरभेदः स्यादसतः संभवः कुतः ॥
असत्त्वे नास्ति संबन्धः कारणैस्सत्त्वसङ्गिभिः ।
असंबद्धस्य चोत्पत्तिमिच्छतो न व्यवस्थितिः ॥

6 आश्रयाश्रयिभावेन व्यवहारो विवक्षया ।
यथेह कानने सन्ति तिलका इति लौकिकः ॥
तदभेदैकान्तवादः सांख्यानामिति निर्णयः ।
पातञ्जलाः पुनर्भेदाभेदवादावलम्बिनः ॥
भिन्नाभिन्नत्वमेकस्य कुतोत्र परिकल्पितम् ।
द्वयं सांख्यमतेनैव मुक्त्वा बुद्धस्य शासनम् ॥
इति वार्तिककारोक्त्या भेदाभेदविदोऽपिच ।
सांख्यास्सन्तीति विदुषामेवमभ्यूहितुं क्षमम् ॥
तस्माद्गुणः क्रिया जातिर्न द्रव्यादतिरिच्यते ।
7 सारूप्यमेव सामान्यं तत्रापि परिनिश्चितम् ॥
प्रकृतेरविशेषेण विशेषो नात्र संमतः ।
अत्यन्तभेदाभावेन समवायोऽनपेक्षितः ॥
भावान्तरमभावस्स्यात्परिणामविशेषतः ।
तत्त्वान्तरं नैव कालः उत्पत्तिरुपाधिभिः ॥
न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥
8 शरीरं द्विविधं लिङ्गं मातापितृजमित्यपि ।
सूक्ष्ममाकल्पनियतं स्थूलं तूत्पत्तिनाशवत् ॥
सूक्ष्मं महदहंकारेन्द्रियतन्मात्रसंचयः ।
सर्गादिजं तत्प्रत्यात्ममेकैकं भावरूषितम् ॥

धर्माधर्मादयो भावाः तैर्लिङ्गमधिवासितम् ।
परिगृह्य स्थूलदेहं नटवद्व्यवतिष्ठते ॥
9 भावैर्विना न लिङ्गं स्यात् न भावा लिङ्गमन्तरा।
अतोऽस्ति द्विविधस्सर्गः एष प्रत्ययलक्षणः ॥
तृतीयो भौतिकस्सर्गः स्थूलो देवादिभेदतः ।
लिङ्गेषु बुद्धिर्मुख्येति सैव व्यवहृतेः पदम् ॥
साऽचेतना चितिच्छायापत्त्या चेतनवद्भवेत् ।
चेतनोऽपि ज्ञानसुखदुःखवानिव लक्ष्यते ॥
10 अन्योन्यानुग्रहस्सोऽयमविवेकनिबन्धनः ।
बुद्धिर्महत्तत्त्वमेतदन्तःकरणमुच्यते ॥
प्रत्यभिज्ञाऽनुसंधानकार्यनिर्वहणक्षमा ।
विषयाकारिणी बुद्धिवृत्तिः ज्ञानमितीर्यते ॥
बुद्धेस्सत्त्वसमुद्रेकोऽध्यवसायोऽपि स स्मृतः ।
उपलब्धिः पुनः पुंसो वृत्तिमद्बुद्धिदर्शनम् ॥
तस्मात् ज्ञानं चोपलब्धिः बुद्धिश्चार्थान्तरं मतम्।
ततश्च बुद्धिः त्रिविधै रञ्जकैरुपरज्यते ॥
11 विषयेणोपरागोऽयं संबन्धो ज्ञानलक्षणः ।
पुरुषेणोपरागो यः स भेदाग्रहलक्षणः ॥
व्यापारेणोपरागोऽयं वृत्तिः कर्तव्यमित्यसौ ।
तस्मान्ममेदं कर्तव्यमिति बुद्धेर्निरूपणा ॥

अविभागोऽपि बुद्ध्यात्मा भ्रान्तैरेवं निरीक्ष्यते ।
ग्राह्यग्राहकसंवित्तिभेदवानिति सौगताः ॥
सविभागोऽपि बुद्ध्यात्मा भ्रान्तैरित्थं विलोक्यते ।
उपरागैस्त्रिभिरविभक्तात्मेवेति कापिलाः ॥
बाह्यमाभ्यन्तरं चेति करणं द्विविधं मतम् ।
12 चक्षुराद्यं दशविधं बाह्यमाभ्यन्तरं पुनः ॥
मनोऽहंकारबुद्ध्याख्यं त्रिविधं तत्प्रकीर्तितम् ।
आलोचना बाह्यवृत्तिः संकल्पो मनसो मतः ॥
अभिमानोऽहंकृतेः स्याद्बुद्धिरध्यवसायभूः ।
अन्तःकरणसामान्यवृत्तिः प्राणा इतीर्यते ॥
शारिरके प्राणचिन्ता चैतत्सिद्धान्तदूषणी ।
अस्ति ह्यालोचनं ज्ञानं प्रथमं निर्विकल्पकम् ॥
बालमूकादिविज्ञानसदृशं शुद्धवस्तुजम् ।
संमुग्धं वस्तुमात्रं तु प्राग्गृह्णन्त्यविकल्पितम् ॥
तत्सामान्यविशेषाभ्यां कल्पयन्ति मनीषिणः ।
इति प्राहुस्सांख्यवृद्धाः प्रायस्सौगतसोदराः ॥
13 सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिलक्षणाः ।
सुखं दुःखं च मोहश्च तदेषामुपलक्षणम् ॥
प्रकाशश्च प्रवृत्तिश्च नियमश्च प्रयोजनम् ।
अन्योन्याभिभवे शान्ता घोरा मूढा च वृत्तयः ॥

साम्येनावस्थितौ तुल्यपरिणामपरंपरा ।
अविनाभाववृत्तित्वमित्याद्या इह वृत्तयः ॥
14 आत्मा ज्ञातव्य इत्युक्त्या विवेक्तव्यः प्रधानतः ।
इत्यप्युक्त्या च युक्त्या च ज्ञानान्मोक्षं विदुस्त्विमे॥
आत्मानुमेयसिद्धान्तः सांख्यानामिति निर्णयः ।
आत्मप्रत्यक्षसिद्धान्तः प्रायेणेतरसम्मतः ॥
वैराग्यं विषयत्यागादित्यौपनिषदं मतम् ।
भोगाद्विषयवैराग्यमिति कापिलदर्शनम् ॥
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ।
सर्वकर्मक्षयादेव मोक्षस्स्याद्भोगवादिनाम् ॥
इत्यतश्चैकभविकपक्षः पातञ्जलानुगैः ।
स्वीकृतस्तस्य वैशद्यं मोक्षवादे भविष्यति ॥
अतो विवेकख्यात्याख्यतत्त्वसाक्षात्कृतेः पुनः ।
अप्रारब्धविपाकानां बीजभावविदाहतः ॥
कर्माशयानां प्रारब्धविपाकानां तु भोगतः ।
अवश्यंभावि चानाशि कैवल्यमिति निर्णयः ॥
तत्त्वसाक्षात्कृतिः प्रायः मोक्षसाधनमुच्यते ।
अविद्या भ्रान्तिरूपा हि साक्षात्कृत्या निवर्तते ॥
15 ये त्विच्छन्ति च सर्वेशं सप्रसादं सशक्तिकम् ।
सर्वज्ञं तैः तत्प्रसादमूलोपासनमिष्यते ॥

तत्त्वनिर्णयमात्रेण भगवान्न प्रसीदति ।
न वा निश्श्रेयसं तस्मादुपास्त्यै तत्त्वनिर्णयः ॥

(10) पातञ्जल दर्शनम्.

1 हिरण्यगर्भोपज्ञं यद्योगशास्त्रं प्रकीर्तितम् ।
तदीयसंहितासारं संजग्राह पतञ्जलिः ॥
न परीक्षाशास्त्रमेतत् किंतु स्यादनुशासनम् ।
स्वार्थोपदेशेन परनिरासोऽप्यभिसंहितः ॥
तत्त्वज्ञानं सांख्यशास्त्रे योगेऽनुष्ठानमुच्यते ।
ज्ञानानुष्ठानसंयोगात् अपृथक्स्थितिरेतयोः ॥
ज्ञानयोगो भक्तियोगः प्रथमे पाद ईरितः ।
कर्मयोगस्तदुभयहेतुस्साधनपादगः ॥
विभूतिपादेऽभ्युदयः निश्श्रेयसमथान्तिमे ।
प्रतिपाद्यं प्रधानार्था इति शास्त्रार्थसंग्रहः ॥
ज्ञानयोगस्स्वात्मचिन्ता भक्तिरीश्वरचिन्तनम् ।
कर्मयोगः कर्मनिष्ठा फलसंगविवर्जिता ॥
हेयं च हेयहेतुश्च मोक्षस्तद्धेतुरित्यपि ।
शास्त्रं व्युत्पादयत्येतदिदमर्थचतुष्टयम् ॥
2 सर्वान् जन्तूनुद्दिधीर्षुः दुःखसंसारसागरात् ।
उपादत्ते सत्त्वचित्तं परः कारुणिकः पुमान् ॥

अनुग्रहोपदेशादेर्विना तेन न संभवः ।
सर्गप्रलयसन्तानः बीजाङ्कुरवदिष्यते ॥
ज्ञानक्रियाशक्तियुक्तं चित्तं सर्वातिशाय्यदः ।
अनादिसिद्धं तस्यास्ति शुद्धसत्त्वं प्रधानजम् ॥
पूर्वपूर्वोपात्तचित्तं तादृक्संकल्पवासितम् ।
उत्तरोत्तरचित्तानामुपादाने निबन्धनम् ॥
सात्त्विकाः परिणामाश्च तस्य भोग्यतया स्थिताः ।
नचेश्वराणां नानात्वं भिन्नाभिप्रायभङ्गतः ॥
ज्ञानैश्वर्ये शुद्धसत्त्वे स्यातामस्य सनातने ।
पुंप्रकृत्योश्च संयोगवियोगौ तन्निबन्धनौ ॥
3 सर्वज्ञलिङ्गं निरतिशयमीशानलक्षणम् ।
प्रणिधानं नाम भक्तिः तदुपासनलक्षणम् ॥
इच्छामात्रेण सकलजगदुद्धरणक्षमः ।
यतस्तदेकाश्रयणं वरणं शरणस्य तत् ॥
यद्यस्येष्टं तत्तु तस्य प्रयोजनमिति स्थितम् ।
सर्वभूतानुग्रहोऽस्य जगत्कर्तुः प्रयोजनम् ॥
स कालेनानवच्छेदात्पूर्वेषां गुरुरुच्यते ।
प्रणवो वाचकस्तस्य तन्मूलं तदुपासनम् ॥
स्वाध्यायाद्योगमासीत योगात्स्वाध्यायमाचरेत् ।
स्वाध्याययोगसंपत्त्या परमात्मा प्रसीदति ॥

अनादिनिधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम् ।
लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत् ॥
सादृश्यादीश्वरध्यानं तदनुग्रहमूलतः ।
स्वात्मसाक्षात्कारहेतुरिति तद्यौगदर्शनम् ॥
उपायस्सुकरस्सोऽयं शीघ्रं चापि फलप्रदः ।
केषांचित् क्षीणदोषाणां विश्वासोऽत्र महात्मनाम् ॥
4 स एव भक्तियोगस्स्यात् ज्ञानयोगोऽधुनोच्यते ।
चित्तवृत्तिनिरोधोऽसौ स्वसाक्षात्कारकारणम् ॥
आगमेनानुमानेन ध्यानाभ्यासवशेन च ।
त्रिधा प्रकल्पयन् प्रज्ञां लभते योगमुत्तमम् ॥
ध्यानाभ्यासरसश्चैषः धर्ममेघ इतीर्यते ।
परं प्रसंख्यानमेतत्पुंमात्रध्यानलक्षणम् ॥
ध्यानप्रकर्षपर्यन्तजा चिच्छायावती तु या ।
अविप्लवा विवेकोपलब्धिः मोक्षस्य कारणम् ॥
सा शुक्लकृष्णमुत्पाद्य धर्मं बन्धं विमोचयेत् ।
प्रकृष्टधर्मजो मोक्ष इति स्वायंभुवं मतम् ॥
अत्र कैश्चिद्धर्ममेघस्समाधिः पक्क उच्यते ।
तेन ज्ञानैकसाध्योऽसौ मोक्ष इत्येव तन्मतम् ॥
अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम् ।
इति स्मृतिवचस्तत्र प्रमाणं च प्रदर्श्यते ॥

प्रज्ञाप्रासादमारुह्य ह्यशोच्यश्शोचतो जनान् ।
भूमिष्ठानिव शैलस्थस्सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति ॥
5 अधिकारस्स चित्तस्य स्थितिहेतुरुदीरितः ।
यः कृत्यशेषः तच्छून्यं चित्तं मूले विलीयते ॥
तस्य चित्तस्य विलयात्स्वस्वरूपे प्रतिष्ठितः ।
पुरुषः केवलो गौणी सा प्रतिप्रसवात्मिका ॥
संयोगाभाव एवासौ दृशेः कैवल्यमुच्यते ।
कृतकृत्यं ख्यातिपर्यवसानं चित्तचेष्टितम् ॥
यश्च नैरात्म्यसिद्धान्तो निर्वाणद्वारमुच्यते ।
तदेतच्चित्तविषयमिति सम्यग्विशोधितम् ॥
6 ज्ञातव्यमखिलं ज्ञातं हातव्यमखिलं तथा ।
प्राप्तव्यमखिलं प्राप्तं कर्तव्यमखिलं कृतम् ॥
चतुर्विधा इमाः ख्याताः यास्ताः कार्यविमुक्तयः ।
चरितार्था च मे बुद्धिः गुणाश्चानधिकारिणः ॥
स्वस्वरूपप्रतिष्ठोऽहं एताश्चित्तविमुक्तयः ।
ततश्च नाहं नैवास्मि न मे चेति विनिश्चयः ॥
7 क्षिप्तं मूढं च विक्षिप्तमेकाग्रं पञ्चमं पुनः ।
निरुद्धमिति चित्तस्य भूमयः पञ्च कीर्तिताः ॥
चित्तं चतुर्विधं तत्र व्युत्थानं प्रथमं मतम् ।
समाध्यारम्भसंज्ञं तु द्वितीयं परिकीर्तितम् ॥

एकाग्रता निरोधश्च तृतीयं च तुरीयकम् ।
तत्र पूर्वस्य संस्कारश्चोत्तरेण निहन्यते ॥
स्वयं निरोधसंस्कारः नश्येत्सीससुवर्णवत् ।
स्वभावतस्तत्त्वपक्षपातस्सर्वत्र दृश्यते ॥
8 निरोधश्च समाधिश्च तथैवैकाग्रतेति च ।
स्थूलमध्यमसूक्ष्माख्याः परिणामास्स्युरान्तराः॥
ते धर्मलक्षणावस्थाभेदात् बाह्याः प्रकीर्तिताः ।
देशकालदशाभेदात् त्रैविध्यमभिसंहितम् ॥
चितिशक्तेः ऋते सर्वे प्रतिक्षणविकारिणः ।
प्रतिक्षणपरीणामोऽवस्था सूक्ष्म उदाहृतः ॥
मध्यमो भूतभाव्यादिव्यवहारस्य गोचरः ।
घटादिपरिणामो यः स स्थूल इति निर्णयः ॥
भेदाभेदोऽत्राभिमतः तादात्म्यं धर्मधर्मिणोः ।
भावाभावविरोधस्तु स्यात्प्रतीतिपराहतः ॥
9 बुद्धिवृत्तिः प्रमाणं स्याच्चिच्छायाऽत्र प्रमा मता ।
आप्तेश्वरप्रणीतश्च वेद आगमलक्षणः ॥
वाच्यवाचकभावोऽस्य नित्यः संकेतसूचितः ।
यो विकल्पो निर्विषयख्यातिवादस्स उच्यते ॥
नात्रासत्ख्यातिवादस्स्यान्नापि ख्यातेरपह्नुतिः ।
तस्माद्योगाचारगुर्वोः मार्गादेष विलक्षणः ॥

10 चित्तवृत्तिनिरोधस्याभ्यासवैराग्यलक्षणौ ।
उपायौ प्रथमौ ज्ञेयौ तत्स्वरूपं निशम्यताम् ॥
अभ्यासः स्थितियत्नः स्यात् तृष्णाहानिर्विरागता ।
तृष्णाक्षयसुखं सर्वसुखेभ्यो हि विशिष्यते ॥
11 योगो द्विधस्स्यात्संप्रज्ञातासंप्रज्ञातभेदतः ।
ध्येयमात्रस्फूर्तिराद्यः तच्छून्योऽनन्तरो मतः ॥
सालम्बनस्स्यात्प्रथमः निरालम्बन उत्तरः ।
सबीजः प्रथमः प्रोक्तः निर्बीजस्स्यादनन्तरः ॥
मृदुर्मध्योऽधिमात्रश्च स्यादुपायास्त्रिधा मतः ।
मृदुर्मध्यश्च तीव्रश्च संवेगोऽपि त्रिधा स्थितः ॥
तत्र प्रत्येकयोगेन योगिनो नवधा मताः ।
तत्रोत्तरेषु चासन्ना सिद्धिः भक्ते ततोऽपिच ॥
संप्रज्ञातसमाधिस्तु समापत्तिरितीर्यते ।
तत्र ग्राह्यसमापत्तिः स्थूलसूक्ष्मविभेदतः ॥
सवितर्का निर्वितर्का सविचारा तथेतरा ।
चतुर्विधैवं तद्भिन्ना या तु ग्रहणगोचरा ॥
समापत्तिश्च सानन्दा निरानन्देति भिद्यते ।
स्याद्गृहीतृसमापत्तिः सास्मिता च निरास्मिता ॥
इति द्विधा तथा चाष्टौ समापत्तय ईरिताः ।
सर्वस्फूर्तिनिरोधे तु द्वितीयो योग उच्यते ॥

संस्कारमात्रशेषं तु चित्तमत्रावतिष्ठते ।
12 तद्भवप्रत्ययोपायप्रत्ययाभ्यां द्विधं मतम् ॥
एते भवप्रत्ययाः स्युः ये भवन्ति पुनर्भुवि ।
योगिनस्ते बहुविधाः पुराणेषु प्रपञ्चिताः ॥
दश मन्वन्तराणीह तिष्ठन्तीन्द्रियचिन्तकाः ।
भौतिकास्तु शतं पूर्णं सहस्रं त्वाभिमानिकाः ॥
बौद्धा दशसहस्राणि तिष्ठन्ति विगतज्वराः ।
पूर्णं शतसहस्रं तु तिष्ठन्त्यव्यक्तचिन्तकाः ॥
पुरुषं निर्गुणं प्राप्य कालसंख्या न विद्यते ।
एते हि तौष्टिकाः प्रोक्ताः विवेकख्यातिवर्जिकाः ॥
तेषां चित्तं लीनमपिचोत्तिष्ठेत्सुप्तचित्तवत् ।
उपायप्रत्ययानां तु चित्तं नावर्तते पुनः ॥
विवेकिनस्सर्वमिदं हेयं दुःखमनागतम् ।
हेयहेतुस्तु संयोगोऽविद्यया द्रष्टृदृश्ययोः ॥
हानं दृशेस्तु कैवल्यं संयोगाभावलक्षणम् ।
हानोपायोऽविप्लवा स्यात् विवेकख्यातिलक्षणा ॥
प्रतिप्रसवहेयास्स्युः सूक्ष्माः संस्कारलक्षणाः ।
स्थूलास्तु ध्यानहेयाः स्युः क्लेशलक्षणवृत्तयः ॥
स प्रतिप्रसवः ख्यातः तस्यैव ध्वंसलक्षणः ।
तथाच धर्मिनाशेन धर्मनाश इति स्थितम् ॥

13 हेतुवादोच्छेदवादशाश्वद्वादा इति त्रयम् ।
उपादाने च हाने चोपेक्षायां च क्रमान्मतम् ॥
तन्नोपादेय आत्माऽसौ नापि हेयोऽपितु स्वयम् ।
उपेक्षणीय एवातः आत्मा शाश्वतिको मतः ॥
14 नित्योदिता च व्यङ्ग्या च चिच्छक्तिः द्विविधा मता ।
आद्या कूटस्थचिच्छक्तिः पुरुषस्स प्रकीर्तितः ॥
तत्सन्निधानाच्चित्तस्य या पुनः व्यज्यतेऽपरा ।
तदभिव्यक्तचैतन्यं चित्तं व्यङ्ग्येति कीर्त्यते ॥
चिच्छायया चेतनायमानं चापि भवत्यदः ।
प्रतिबिम्बाभिधा सैव पूर्वा बिम्बाभिधा मता ॥
सांनिध्यात् व्यञ्जनं यच्च तदेव प्रतिबिम्बनम् ।
तच्चित्तं वेद्यतां याति स्वाकारस्य समर्पणात् ॥
स्वकर्मानुगुणं भोक्ताऽधिष्ठितः परमात्मना ।
इति सांख्यैः स कथितः ये शान्तब्रह्मवादिनः ॥
तस्य यस्सुखदुःखादिभोगः कर्मनिबन्धनः ।
स एव पौरुषो भोगः त्विवेकाग्रहमूलकः ॥
अभिप्रायेण तेनैव कथितं विन्ध्यवासिना ।
या सत्त्वतप्यता सैव पुरुषे तप्यतेति च ॥
चित्तमेव द्रष्टृदृश्योपरक्तं त्वंशभेदतः ।
सर्वार्थमित्युच्यते यच्चेतनाचेतनात्मकम् ॥

न तत्स्वभासं दृश्यत्वात् साक्षिवेद्यमतस्स्थितम् ।
नार्थः प्रतीतो भवति तत्प्रतीतेरवेदने ॥
बुद्धिवृत्तिश्चिदाकारा चिच्छायाप्रतिसंक्रमात् ।
सा चितिः वृत्त्यवच्छिन्ना चिद्वेद्येत्यभिधीयते ॥
नातश्चित्तं स्वप्रकाशं न चित्तान्तरगोचरः ।
किंतु वेद्यं साक्षिणेति व्यवहारव्यवस्थितिः ॥
एवं सवृत्तिकं चित्तं साक्षिवेद्यं सदा मतम् ।
यतस्साक्षी स कूटस्थोऽन्यथाऽलं चित्तवस्तुना ॥
15 तथैव प्रकृतेश्चापि द्वे शक्ती सहजे स्थिते ।
अनुलोमप्रतीलोमपरिणामविभेदतः ॥
अनुलोमः परीणामो भूतान्तो यो बहिर्मुखः ।
स्वकारणानुप्रवेशः प्रतिलोमोऽस्मितावधिः ॥
ते एव पुरुषार्थस्य कर्तव्यत्वमितीर्यते ।
तादृक्षशक्तिद्वितयक्षय एव कृतार्थता ॥
16 यद्यप्येते तु सहजे शक्ती यत्नो विमुक्तये ।
शास्त्रोपदेशवैयर्थ्याभावश्चाप्यवधार्यताम् ॥
पुंप्रकृत्योरनादिर्यः भोक्तृभोग्यत्वलक्षणः ।
बन्धः तस्मिन् सति व्यक्तचेतना प्रकृतिः पुनः ॥
कर्तृत्वस्याभिमानेन दुःखस्यानुभवेन च ।
कथमात्यन्तिकी दुःखनिवृत्तिस्स्यान्ममेत्यपि ॥

अध्यवस्यति शास्त्रं चापेक्षते मुक्तिहेतवे ।
कर्मानुरूपं तद्बुद्धिसत्त्वं शास्त्रस्य गोचरः ॥
शास्त्राधिकारी योऽविद्यास्वभावो दर्शनान्तरे ।
परमार्थस्वभावोऽसाविति निर्धार्यतेऽत्र तु ॥
17 चित्तं स्वसंवेदनं स्यात् तदेव जगदित्यपि ।
ब्रुवाणा ये सौगताः स्युः तैर्नैते प्रतिबोधिताः ॥
गुणाः परिणामिनित्याः कूटस्थाः पुरुषा मताः ।
प्रतिक्षणपरीणामाः क्षणविध्वंसिनोऽपरे ॥
गुणानां परमं रूपं न दृष्टिपथमृच्छति ।
यत्तु दृष्टिपथं प्राप्तं तन्मायेत्याह भाष्यकृत् ॥
संहतास्ते गुणाः पुंसां शेषत्वाद्गुणशाब्दिताः ।
सर्वकार्यप्रधानत्वात्प्रधानमिति चोच्यते ॥
नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
अतीताध्वप्रविष्टाः स्युः भावाः नात्यन्तिकक्षयाः ॥
चित्तं वा चित्ततन्त्रं वा न वस्त्वित्यनुशिष्यते ।
विज्ञानप्रतिभासादिवादास्तेन पराहताः ॥
वस्तुसाम्ये चित्तभेदाद्विक्षेपे नाश आपतेत् ।
प्रत्यभिज्ञादिकं तावत्पुंभेदेऽपि प्रदृश्यते ॥
पुमैक्ये किमु वक्तव्यं तस्माद्वस्त्वस्ति तत् स्थिरम् ।
चित्तचैत्तोभयं नावधार्येत क्षणिकं यदि ॥

हेतुहेतुमतोरेककालत्वानुपपत्तितः ॥
प्रतिसंधीयतेऽद्राक्षमहं घटमितीत्यपि ॥
ज्ञाताज्ञातं वस्तु चित्तस्योपरागप्रतीक्षणात् ॥

18 पुरुषार्थोऽनागतोऽसौ गुणानां तु प्रवर्तकः ।
मतो निरीश्वरे सांख्ये सेश्वरे त्वीश्वरो मतः ॥
धर्मादिकं तु प्रकृतिकार्यत्वान्न प्रवर्तकम् ।
किंत्वावरणभेदेऽस्य सम्मता हि निमित्तता ॥
अधर्मावरणे तत्र धर्मेण विनिवारिते ।
जात्यन्तरपरीणामः प्रकृत्यापूरपूर्वकः ॥

19 समाधिमात्रजा सिद्धिर्यदि, विज्ञानवादतः ।
न विवेकस्ततः जन्मौषधिमन्त्रजकीर्तनम् ॥
ध्यानेन संस्कृतं चित्तमपवर्गाधिकार्यदः ।
विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारमिति कीर्त्यते ॥

20 समाः गुणाः प्रधानं स्यात् समत्वादेकतत्त्वता ।
विवर्तवादोऽन्यथा स्यादनेकं चैकमित्यसौ ॥
तथा चाङ्गाङ्गिभावेन परिणामेन चैकता ।
तत्त्वं च महदादेः स्यात् सत्त्वाङ्गित्वे महान् भवेत्॥
रजःप्रधानान्महतोऽहङ्कारस्य समुद्भवः ।
तमःप्रधानान्महतो जातं तन्मात्रपञ्चकम् ॥
अहङ्कारात्सात्त्विकात्स्यात् तद्बुद्धीन्द्रियपञ्चकम् ॥

तस्मात्तु राजसात्कर्मेन्द्रियाणां स्यात्तु पञ्चकम् ।
प्रादुर्भूतं मनश्चैवाहङ्कारादुभयात्मकात् ॥
अङ्गि चेच्छब्दतन्मात्रं आकाशस्य समुद्भवः ।
एवं स्पर्शाद्यङ्गितायां पवनादिसमुद्भवः ॥
बाह्योऽर्थः त्रिगुणः चित्तं यथैव त्रिगुणं तथा ।
धर्मादिस्सहकारी स्यात् तेनार्थो ज्ञायते यदा ॥
तदुद्भवाभिभवतः व्यज्यते बहुरूपतः ।
ततस्सुखं दुःखमिति विचित्रं जगदुच्यते ॥
21 ननु सर्वे च पुरुषाः मुच्यन्ते वाऽथ किं न वा ।
आद्ये प्रधानस्य परिणामस्सावधिको भवेत् ॥
द्वितीये तत्त्वविज्ञानाविस्रम्भ इति चेन्न तत् ।
अस्ति हि त्रिविधः प्रश्नः तदुत्तरविभागतः ॥
एकान्तवचनीयश्चावचनीयस्तथैव च ।
विभज्य वचनीयश्चेत्यत्रोदाहरणं क्रमात् ॥
जन्तुर्जातः स्थिरः कश्चित्तिष्ठतीत्यनुयोगतः ।
सर्वो मरिष्यतीत्यत्र त्वेकान्तवचनीयता ॥
समाप्यते किं प्रधानपरिणामक्रमस्त्विति ।
प्रश्नोऽयमुत्तरानर्होऽनवधारणशक्तितः ॥
मुच्यन्ते किं पुनस्सर्वे इत्यत्र त्विदमुत्तरम् ।
तत्त्वख्यातिर्यस्य पुंसः मुच्यतेऽसौ नचेतरः ॥

विभज्य वचनीयोऽसौ तृतीयः प्रश्न उच्यते ।
प्रायस्सर्वत्र शङ्कानां विभागेनैवमुत्तरम् ॥
22 मुक्तिर्नामात्र कैवल्यं मतं चिन्मात्रलक्षणम् ।
व्यावर्त्यते मात्रचाऽत्र स्वात्मसंवेदनाऽपि हि ॥
स्वात्मानन्दानुभवनं कैवल्य इति केचन ।
सांख्याः प्राहुः तदप्यन्यैः कौटस्थ्यान्नाभ्युपेयते ॥
वैशेषिकादिसिद्धान्तसंसिद्धादात्मनो जडात् ।
वैलक्षण्यं मतं त्वेतच्चिद्रूपत्वमिहात्मनः ॥
आत्मा न स्वप्रकाशात्मा प्रकाशात्मैव केवलः ।
इति पातञ्जलाः सांख्याः प्राहुर्निर्णयमात्मनाम् ॥

(11) प्राभाकरदर्शनम्.

1 द्रव्यं गुणस्तथा कर्म सामान्यं शक्तिरेवच ।
सादृश्यं समवायश्च संख्या चेत्यष्टधा स्थितम् ॥
प्रमेयमिति सिद्धान्तः प्रभाकरगुरोर्मतः ।
क्षित्यप्तेजोमरुद्व्योमदिक्कालात्ममनांसि च ॥
द्रव्याणि नवधा तेजोहीनाधिकरणं तमः ॥
रूपं गन्धो रसः स्पर्शः वियोगो योग एवच ॥
पृथक्त्वं च गुरुत्वं च द्रवत्वं स्नेह एवच ।
बुद्धिस्सुखं दुःखमिच्छा द्वेषः यत्नश्च संस्क्रिया ॥

परिमाणं च परताऽपरता शब्द एवच ।
इत्येकविंशतिविधो गुण इत्यवगम्यते ॥
2 द्रव्यसामान्यवृत्तित्वे सामान्यगुणतेष्यते ।
प्रत्येकद्रव्यवृत्तित्वे विशेषगुणता मता ॥
नैल्यादयो गुणा विभ्व्यः एकैकव्यक्तिलक्षणाः ।
तेषामाश्रयभेदेन भेदो नाभ्युपगम्यते ॥
अथ कर्मपदार्थं तु सूक्ष्ममाहुरतीन्द्रियम् ।
अनुमेयं च संयोगाद्विभागाद्वाऽर्ककर्मवत् ॥
सामान्यं न्यायमतवत् शक्तिस्सर्वपदार्थगा ।
नानाविधा च सादृश्यमनेकं सर्ववस्तुगम् ॥
समवायोऽनेकविधोऽप्यनित्योऽप्यक्षगोचरः ।
संख्याऽपि सर्वगा ज्ञेया सर्वेषां विस्तरोऽग्रतः ॥

(12) कौमारिलदर्शनम्.

1 द्रव्यं गुणस्तथा कर्म जातिश्चाभाव इत्यपि ।
भट्टपादस्य सिद्धान्ते प्रमेयं पञ्चधा मतम् ॥
क्षित्यप्तेजोमरुद्व्योमदिक्कालात्ममनांसि च ।
तमो वर्ण इति द्रव्यमेकादशविधं मतम् ॥
रूपं गन्धो रसः स्पर्शः संख्यासंयोगशक्तयः ।
विभागः परिमाणं च परताऽपरता ध्वनिः ॥

पृथक्त्वं च गुरुत्वं च द्रवत्वं स्नेह एव च ।
बुद्धिस्सुखं दुःखमिच्छा द्वेषः संस्कार इत्यपि ॥
प्राकट्यं च प्रयत्नश्च चतुर्विंशतिधा गुणाः ।
कर्मत्वजातिमत्कर्म प्रत्यक्षं चलनात्मकम् ॥
जात्यभावौ तार्किकाद्यैः कीर्तितावेव सम्मतौ ।
शिष्टं विशेषवादेषु स्पष्टमग्रे भविष्यति ॥
2 प्रत्यक्षाणि हि सर्वाणि द्रव्याण्यात्मा तथाऽऽन्तरः ।
दृश्यमानातिरिक्तं तु द्रव्यं भाट्टैर्न मन्यते ॥
स्वयंप्रकाशमात्मानं कालाकाशमनांसि तु ।
अप्रत्यक्षाणीति वेत्ति प्रभाकरगुरुः पुनः ॥
3 द्रव्याज्जातिगुणादीनां नात्यन्तं भेद इष्यते ।
किंतु तादात्म्यमेतस्मादनेकान्तः यथोच्यते ॥
जात्याद्यर्थान्तरं यस्मादतद्रूपेऽपि वस्तुनि ।
भवत्यध्यस्य धीस्तस्मान्मृगतृष्णादिभिस्समा ॥
नैतत्, अश्वादिबुद्धीनामध्यारोपाद्यसंभवात् ।
स्थितं नैवहि जात्यादेः परत्वं व्यक्तितो हि नः ॥
यदि ह्येकान्ततो भिन्नं विशेष्यात्स्याद्विशेषणम् ।
स्वानुरूपां सदा बुद्धिं विशेष्ये जनयेत्कथम् ॥
नतु जात्यादिनिर्मुक्तं वस्तु दृष्टं कदाचन ।
तद्विमोकेन वा तानि लाक्षादिस्फटिकादिवत् ॥

नचाप्ययुतसिद्धानां संबन्धित्वेन कल्पना ।
नानिष्पन्नस्य संबन्धो निष्पत्तौ युतसिद्धता ॥
अत्यन्तभिन्नताऽस्माभिर्नैव कस्यचिदिष्यते ।
सर्वं हि वस्तुरूपेण भिद्यते न परस्परम् ॥
उपलब्ध्यनुसारेण व्यवस्थासिद्धिरीदृशी ।
इति कौमारिलैकान्तः शिष्टमग्रे निरूप्यते ॥

(13) द्वैताद्वैतदर्शनम्.

1 अथ भेदाभेदवादे प्राचां सिद्धान्त उच्यते ।
महासमुद्रस्थानीयं परं ब्रह्माक्षरं मतम् ॥
तदप्रचलितावस्थं ईषत्प्रचलितं यदा ।
तदन्तर्यामिसंज्ञं स्यात् अत्यन्तचलितं यदा ॥
तदा क्षेत्रज्ञसंज्ञं स्यात् इति त्रेधा व्यवस्थितम् ।
पञ्चावस्था अपि प्राहुः भूतसंस्थानभेदतः ॥
पिण्डो जातिर्विराट् सूत्रं दैवमित्युक्तलक्षणाः ।
भूतमात्रामहदहमिन्द्रियापरनामकाः ॥
अष्टावस्था इमाः भर्तृप्रपञ्चादिभिरीरिताः ।
एतेऽवस्थावादिनस्स्युः केचिदुत्पत्तिवादिनः ॥
विकारवादिनः केचित् अन्ये स्युः शक्तिवादिनः ।
शक्तिवादिन एवैते प्रायोऽभिव्यक्तिवादिनः ॥

जगन्मायावादिन इत्येत एव मता बुधैः ।
बृहदारण्यकव्याख्याविदितं मतमीदृशम् ॥
2 एतं पन्थानमाश्रित्य मध्ये भास्करयादवाः ।
आसन् भाष्यकृतोऽद्वैतविशिष्टाद्वैतभाष्ययोः ॥
तत्र जीवो ब्रह्मणोंऽशः विष्फुलिङ्गवदिष्यते ।
पृथिव्युपष्टम्भभेदात् तेजः खण्डमिवेक्ष्यते ॥
तत्र भास्करसिद्धान्तः परिणाम इति श्रुतः ।
भेदाभेदः स्वभावेन स्याज्जगद्ब्रह्मणोरिह ॥
जीवेशयोः पुनर्भेदस्स्यादुपाधिविभेदतः ।
स्वाभाविको मोक्षदशाकालिकोऽभेद इष्यते ॥
श्रीमद्यादवसिद्धान्तः भेदाभेद इति श्रुतः ।
स्वभावात् ब्रह्मजगतोः तथैव ब्रह्मजीवयोः ॥
अथापि भेदाभेदस्तु द्वाभ्यामप्युररीकृतः ।
3 तत्र भास्करभाष्यस्थं वचनं त्ववगम्यताम् ॥
एकस्यैकत्वमस्तीति प्रमाणादेव गम्यते ।
नानात्वं तस्य तत्पूर्वं कस्माद्भेदोऽपि नेष्यते ॥
यत्प्रमाणैः परिच्छिन्नं अविरुद्धं हि तत्तथा ।
वस्तुजातं गवाश्वादि भिन्नाभिन्नं प्रतीयते ॥
प्रतीयते चेदुभयं विरोधः कोऽयमुच्यते ।
विरोधे चाविरोधे च प्रमाणं कारणं मतम् ॥

एकं रूपं प्रतीतत्वात् द्विरूपं च तथेष्यताम् ।
एकरूपं भवेदेकमिति नेश्वरभाषितम् ॥
नरभेदान्न हि ज्ञेया वस्तुनस्सदसत्त्वता ।
नहि रूपमनन्धानां सत्यमन्धेष्वसद्भवेत् ॥
प्रपञ्चास्तित्वमज्ञस्य तस्यैव ज्ञानिनः पुनः ।
स एव किल नास्तीति कथं सत्यं वचो भवेत् ॥
नहि द्विचन्द्रः प्रागासीत् पश्चान्नास्तीति युज्यते ।
द्विचन्द्रज्ञानतुल्यत्वं प्रत्यक्षादेस्त्वपेक्ष्यते ॥
अतो भिन्नाभिन्नरूपं ब्रह्मेत्येवावधार्यते ।
न गृह्यते च करणदोषः तिमिरवत् स्वतः ॥
कार्यरूपेण नानात्वं अभेदः कारणात्मना ।
हेमात्मना यथाऽभेदः कुण्डलाद्यात्मना भिदा ॥
अप्रच्युतस्वभावस्य शक्तिविक्षेपलक्षणः ।
परिणामः यथा तन्तुनाभस्य पटतन्तुवत् ॥
आहुर्विधातृ प्रत्यक्षं न निषेद्धृ विपश्चितः ।
इत्युच्यते कैश्चिदत्र प्रत्युक्तिरियमुच्यते ॥
स्वरूपमेव वस्तूनां परस्परविलक्षणम् ।
नानात्वं तत्सुसंवेद्यं भेद इत्यभिधीयते ॥
पटरूपं घटे नास्ति घटरूपं पटे नहि ।
इति देशान्तराभावः अन्योन्याभाव उच्यते ॥

एतन्मूलमनेकान्तवादस्यापीति निर्णयः ।
कार्यकारणभावस्य मीमांसायां तु विस्तरः ॥

(14) विशुद्धाद्वैतदर्शनम्.

1 अथाद्वैतविदामेष प्रमेयपरिनिश्चयः ।
पदार्थो द्विविधः तत्त्वमतत्त्वं चेति संग्रहात् ॥
तत्त्वं ब्रह्मैकमेव स्यात् अतत्त्वं द्विविधं मतम् ।
अनिर्वाच्यमसच्चेति प्रथमं द्विविधं पुनः ॥
व्यावहारिकमाद्यं स्यात् द्वितीयं प्रातिभासिकम् ।
आद्यं चतुर्विधं प्राहुः प्रकृतिर्विकृतिस्तथा ॥
उभयात्मकमन्यत्स्यात् उदासीनं तुरीयकम् ।
आद्यत्रयं द्रव्यमुक्तं उदासीनं गुणः क्रिया ॥
जातिस्संख्या च शक्तिश्चेत्यनन्तविधमुच्यते ।
असच्च शशशृङ्गादिः विकल्पविषयस्तु सः ॥
विकल्पो निस्स्वभावस्य वस्तुनस्स्ववभासकः ।
प्रतीतिस्सस्वभावस्य वस्तुनस्त्विति निर्णयः ॥
2 इयमेका प्रक्रियोक्ताऽथापराऽपि निशम्यताम् ।
अर्थो द्विधस्स्वतस्सिद्धः परतस्सिद्ध इत्यपि ॥
आद्य आत्मा त्वनात्माऽन्यः स च द्विविध इष्यते ।
साक्षिभास्यो वृत्त्यपेक्षसाक्षिभास्य इतीतरः ॥

मनस्सुखादिराद्यः स्यात् द्वितीयोऽपि द्विधो मतः।
मनोवृत्तिमपेक्ष्यैकोऽविद्यावृत्तिमनन्तरः ॥
घटादिः प्रथमस्तत्र सुषुप्त्यादिरनन्तरः ।
एवं शिक्षा पदार्थानां समग्राहि समासतः ॥
3 ब्रह्मैवानाद्यनिर्वाच्याऽविद्यारूपोपधानतः ।
नामरूपप्रपञ्चाख्यप्रभेदेन विवर्तते ॥
यथा च मुखमेवैकं कृपाणमणिभेदतः ।
प्रतिबिम्बविभेदेन विविधं भुवि वर्तते ॥
प्रत्यासः परिणामश्च विवर्तश्चेति च त्रिधा ।
प्रवादास्तत्र चाध्यास एव प्रत्यासलक्षणः ॥
यथा च स्फाटिकी बुद्धिः लाक्षारुणिमगोचरा ।
यथा वा वनबुद्धिः स्यात्किंशुकादिसमूहिषु ॥
यथा वा शशशृङ्गादौ शब्दसत्त्वप्रकल्पना ।
यथा पदार्थेष्वेकत्वं स्फोटो वाक्यार्थ इष्यते ॥
तथाचाध्यास एष स्यादनेकं यत्र चैकधा ।
परिणामस्सुवर्णस्य मकुटाद्याकृतिः स्फुटा ॥
विवर्तो विविधा वृत्तिः यत्र चैकमनेकधा ।
एकं बिम्बमनेकेषूपाधिषु प्रतिबिम्बते ॥
एवं वाचस्पतेर्न्यायकणिकायां निरूपितः ।
भेदो विधिविवेकस्य व्याख्यायां अधुना पुनः ॥

समसत्ताकक्कार्यं यत्परिणामस्स ईर्यते ।
कार्यं विषमसत्ताकं विवर्त इति गीयते ॥
4 विवर्तसिद्ध्यै चाविद्या नाम दोषः प्रकल्प्यते ।
अर्थक्रियाकारितया स भावोऽज्ञानलक्षणः ॥
तच्चाज्ञानं नाग्रहणं न मिथ्याज्ञानमप्यथ ।
नापि तत्संस्कारभेदः किंतु त्रयविलक्षणः ॥
अहमज्ञो मां न जानामीत्यध्यक्षावभासतः ।
अज्ञानसिद्धिः नाभावः धर्मिज्ञानाद्यपेक्षणात् ॥
विवादाध्यासितं ज्ञानं स्याद्वस्त्वन्तरपूर्वकम् ।
अर्थप्रकाशकत्वाद्यदेवं तद्वै तथेक्ष्यते ॥
यथा प्राथमिकी दीपप्रभा स्यात् ध्वान्तपूर्विका ।
स्वप्रागभावातिरिक्तं विषयावरणं तथा ।
स्वनिवर्त्यं स्वदेशस्थं चेति वस्तु विशेष्यते ॥
एतादृगनुमानैश्च भावाज्ञानं प्रसाध्यते ।
अविद्याबोधकं शास्त्रं बहुलं चोपलभ्यते ॥
तेनाज्ञानेन विश्वस्य रचना परिकल्पते ॥
अङ्गीकृता च प्रायेण मानमेयप्रकल्पना ।
व्यवहारे भट्टनयादिति सर्वत्र विश्रुतम् ॥
5 निर्विशेषविदां मानं मेयं स्याद्व्यावहारिकम् ।
व्यवहारानुरोधेन यथावदुपगम्यते ॥

यद्यत्र न्यायसिद्धान्तानुरोधे सोऽवकल्पते ।
तदिष्यतेऽथवा सांख्यानुरोधे सोऽपि चेष्यते ॥
यद्वा भाट्टादिसिद्धान्तस्वीकारस्स्वरसो भवेत् ।
व्यवहारस्तदा भाट्टनयोऽपि परिगृह्यते ॥
तस्मादद्वैतसिद्धान्ते यःकश्चिदपिवा भवेत् ।
व्यवहारव्यवस्थायै न विशेषोऽत्र वस्तुतः ॥
तथाऽपि विदुषां प्रायो ह्यभ्यासो वैदिके नये ।
व्यवहारे भाट्टसांख्यसंग्रहो वासनावशात् ॥

(15) विशिष्टाद्वैतदर्शनम्.

1 विशिष्टाद्वैतसिद्धान्ते लिख्यते तत्त्वसंग्रहः ।
द्रव्याद्रव्यविभेदेन द्विविधं तत्त्वमिष्यते ॥
द्रव्यं द्वेधा विभक्तं स्यात् जडं चाजडमित्यपि ।
प्राच्यमव्यक्तकालौ स्तः ह्यन्त्यं प्रत्यक्परागिति ॥
जीवेश्वरविभेदेन प्रत्यक् द्विविधमिष्यते ।
मतिर्नित्यविभूतिश्चेत्युच्यते द्विविधं पराक् ॥
एवं द्रव्यं षड्विधं स्यात् अद्रव्यं दशधा मतम् ॥
शब्दादयः पञ्च सत्त्वं रजस्तम इति त्रयम् ॥
संयोगश्शक्तिरिति च द्वयं दशविधं ततः ।
संयोग एव कर्म स्यात् संस्थानं जातिरिष्यते ॥

समवायोऽपृथक्सिद्धिः सिद्धिः ज्ञप्तिस्थिती मते ।
भावान्तरमभावः स्यात् जातिर्भेद इतीर्यते ॥
इतरत्त्वन्यथासिद्धं द्रव्यलक्षणया धिया ।
अचिच्चिदीशभेदेन केचित्त्रेधा विविञ्चते ॥
भोग्यं भोक्ता नियन्तेति तस्यैव विवृतिस्त्वियम् ।
सर्वथेष्टं फलमिदं देहात्मेश्वरनिर्णयः ॥
तत्राव्यक्तं महदहंकारभूतादिभेदतः ।
चतुर्विंशतिधं कालः दिनमासादिभेदतः ॥
विभागवान् ईश्वरस्तु भवेदेकस्सदातनः ।
सर्वेश्वरः स्वातिरिक्तसर्ववस्तुविलक्षणः ॥
द्विलिङ्गो द्विविभूतिश्च परिपूर्णः परः पुमान् ।
जीवः पुनः नित्यमुक्तबद्धभेदादनेकधा ॥
मतिः प्रत्यात्मनियता नैकधा च विकारिणी ।
नित्यभूतिरनन्ता स्यात्परस्तात्तमसः सदा ॥
ईशान्तर्यामिकं कृत्स्नं ईशितुः कार्यमित्यपि ।
2 आधेयं च विधेयं च शेषश्चेत्यपि सम्मतम् ॥
ततश्शरीरमिति तदपृथक्सिद्धमित्यपि ।
सर्वदा सर्वथा सर्वं सर्वत्रेति विनिर्णयः ॥
3 सामानाधिकरण्योक्तस्यैक्यस्यानुपपत्तितः ।
विवर्तवादिनः केचित् तेऽविद्यावादिनोऽभवन् ॥

उपाधिवादिनः केचित्परिणामं समाश्रिताः ।
भेदाभेदं वदन्त्यन्ये विशिष्टैक्यमिमे विदुः ॥
इदं तु तत्त्वविज्ञानं तदुपासनसाधनम् ।
याथात्म्यज्ञानपूर्वस्तु व्यवहारोऽनुपप्लवः ॥
कविधीचित्रवज्ञात्रानन्ता सिद्धान्तसंततिः ।
तत्त्वालोकश्शास्त्रजन्यः समस्तां लोप्तुमर्हति ॥
भक्त्या परमया वाऽपि प्रपत्त्या वा परः पुमान् ।
प्राप्योऽसौ नान्यथा प्राप्य इति सिद्धान्तसंग्रहः ॥

(16) द्वैतदर्शनम्.

1 आनन्दतीर्थसिद्धान्ते तत्त्वोद्देशो विबुद्ध्यताम् ।
स्वतन्त्रमस्वतन्त्रं च प्रमेयं द्विविधं मतम् ॥
स्वतन्त्रो भगवान् विष्णुः निर्दोषोऽखिलसद्गुणः ।
द्विविधं परतन्त्रं स्यात् भावाभावविभेदतः ॥
चेतनोऽचेतनश्चेति भावोऽपि द्विविधो मतः ।
नित्यमुक्ता मुक्तियोग्या मुक्त्ययोग्या इति त्रिधा ॥
चेतनोऽचेतनस्तु स्यात् नित्योऽनित्य इति द्विधा ।
नित्याः स्युः प्रकृतिः कालः वेदश्चेति त्रिधा मताः॥
असंसृष्टं च संसृष्टं इत्यनित्यो द्विधा मतः ।
महदाद्यमसंसृष्टं अण्डं संसृष्टमिष्यते ॥

2 गुणक्रियाजातिपूर्वाः धर्मास्सर्वेऽपि वस्तुनः ।
स्वरूपभूताः ये त्वेतेष्वयावद्वस्तुभाविनः ॥
भेदाभेदो मतस्तेषां स्याद्विकारविकारिणोः ।
कार्यकारणयोश्चैव तथैवांशांशिनोरपि ॥
विशिष्टशुद्धयोश्चैव भेदाभेदः स्वतो मतः ।
अयमत्र विशेषांशः ज्ञातव्यस्सर्ववादिभिः ॥
3 एके द्रव्यं गुणः कर्म सामान्यं सविशेषकम् ।
अभावश्शक्तिसादृश्ये अंशोंशीति विदुर्दश ॥
भेदहीने वस्तुनि या भेदबुद्धिनियामिका ।
शक्तिर्विशेषसंज्ञा सा मता सर्वपदार्थगा ॥
विशेषेण विभागोऽयं दशधाऽनेन कल्पते ।
व्यवहारव्यवस्था हि सर्वाऽनेनोपपाद्यते ॥
विशेषाणां तु वैशिष्ट्यं शक्तिशक्तनयात् स्थितम् ।
भिन्नाश्च भिन्नधर्माश्च पदार्थास्सकला अपि ॥
नानुवृत्ता जातिरपि द्वैतकाष्ठेयमुच्यते ।
प्राक्प्रध्वंससदाभेदात् अभावस्त्रिविधो मतः ॥
भावाभावस्वरूपत्वात् नान्योन्याभावता पृथक् ।
4 सृष्टिः स्थितिः संहृतिश्च नियमोऽज्ञानबोधने ॥
बन्धो मोक्षः सुखं दुःखं आवृतिर्ज्योतिरेव च ।
विष्णुनैव समस्तस्य समासव्यासयोगतः ॥

य एतत्परतन्त्रं तु सर्वमेव हरेस्सदा ।
वशमित्येव जानाति संसारान्मुच्यते हि सः ॥
घातयन्ति हि राजानो राजाऽहमिति वादिनः ।
ददात्यखिलमिष्टं च स्वगुणोत्कर्षवादिनाम् ॥
मुक्तानामाश्रयो विष्णुः अधिकाधिपतिस्तथा ।
तद्वशा एव ते सर्वे सर्वदैव स ईश्वरः ॥
जीवेश्वरभिदा चैव जडेश्वरभिदा तथा ।
जीवभेदो मिथश्चैव जडजीवभिदा तथा ॥
मिथश्च जडभेदो यः प्रपञ्चो भेदपञ्चकः ।
सोऽयं सत्योऽप्यनादिश्च सादिश्चेन्नाशमाप्नुयात् ॥
नच नाशं प्रयात्येषः नचासौ भ्रान्तिकल्पितः ।
कल्पितश्चेन्निवर्तेत नचासौ विनिवर्तते ॥
महामायेत्यविद्येति नियतिर्मोहिनीति च ।
प्रकृतिर्वासनेत्येव विष्णोरिच्छा प्रकीर्त्यते ॥
तदिच्छयैव सकलं सर्वदा परिवर्तते ।
इति सिद्धान्तसारांशः शेषोऽन्यो ग्रन्थविस्तरः ॥

(17) आर्हतदर्शनम्.

1 अथार्हतानां सिद्धान्ते प्रमेयपरिचिन्तना ।
प्रायो वैशेषिकान्मीमांसकांश्चाप्यनुवर्तते ॥

द्विधा च पञ्चधा चैव षोढा चापि च सप्तधा ।
नवधाऽपि विवक्षायाः भेदात्तत्त्वं विविश्यते ॥
प्रवादास्स्युर्मत्सरिणः परेऽन्योन्यविपक्षतः ।
समयोऽपक्षपातोऽसौ स्यादशेषाविशेषतः ॥
सर्वज्ञो जितरागादिदोषः त्रैलोक्यपूजितः ।
यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन्परमेश्वरः ॥
2 चिदचिद्वे परे तत्त्वे विवेकस्तद्विवेचनम् ।
तत्र बोधात्मको जीवोऽजीवोऽबोधात्मको मतः ॥
क्षायिकश्चौपशामिकः मिश्रश्चौदयिकस्तथा ।
पारिणामिक इत्येते भावाः पञ्चात्मनो मताः ॥
बद्धमुक्तविभेदेन ते जीवाः द्विविधा मताः ।
न कश्चिन्नित्यसंसारी नित्यमुक्तो न कश्चन ॥
तथैव चिदचिद्भिन्नमीशतत्त्वं च नेष्यते ।
अचिच्च पुद्गलाकाशकालादिविविधं मतम् ॥
ज्ञानाद्भिन्नो नचाभिन्नः भिन्नाभिन्नः कथंचन ।
ज्ञानं पूर्वापरीभूतं सोऽयमात्मेति कीर्तितः ॥
विज्ञानं स्वपराभासि प्रमाणं बाधवर्जितम् ।
प्रत्यक्षं च परोक्षं च द्विधा मेयविनिश्चयात् ॥
3 जीवो धर्मोऽप्यधर्मश्च पुद्गलः काल एवच ।
आकाश इति षड्द्रव्यं अद्रव्यं च द्विधा मतम् ॥

गुणः पर्याय इति तत्स्वरूपं स्फुटमग्रतः ।
अनागतपरिणामावस्थं द्रव्यमितीर्यते ॥
तद्वर्तमानपर्यायं भाव इत्यभिधीयते ।
द्रूयन्ते यानि पर्यायैः पर्यायैर्वा द्रवन्त्यपि ॥
तानि द्रव्याणि निर्दिष्टान्यद्रव्यं तु तदाश्रितम् ।
पर्येत्युत्पत्तिनाशौ यः स पर्याय इतीर्यते ॥
ताथागतैर्हि पर्यायः पारमार्थिक इष्यते ।
तदाधारं त्रिकालस्थं द्रव्यं नाभ्युपगम्यते ॥
तदाहि प्रत्यभिज्ञादेर्विरोधस्स्याद्दुरुद्धरः ।
अनिरोधमनुत्पादं जगत्स्यात्पुञ्जलक्षणम् ॥
4 परमाणुषु वाय्वादिविभागो नाभ्युपेयते ।
सामान्यं द्विविधं तिर्यगूर्ध्वताशब्दशाब्दितम् ॥
तुल्या परिणतिर्या तु प्रतिव्यक्ति प्रदृश्यते ।
सामान्यं तत्तिर्यगिति तद्धि गोत्वादिलक्षणम् ॥
पूर्वापरपरिणामसाधारण्येन यत्पुनः ।
तदूर्ध्वताख्यं सामान्यं कटकादिषु काञ्चनम् ॥
विशेषोऽपि द्विरूपस्स्याद्गुणपर्यायभेदतः ।
सहभावी तु यो धर्मः स गुणः परिकीर्त्यते ॥
यथा चात्मनि विज्ञानव्यक्तिशक्त्यादिलक्षणः ।
क्रमभावी तु यो धर्मः स पर्यायः प्रकीर्त्यते ॥

5 आत्मन्येव सुखं दुःखमिच्छाद्वेषादिलक्षणम् ।
यत्सम्यग्दर्शनं ज्ञानं चारित्रं चेति तत्त्रयम् ॥
मोक्षमार्गश्चावरणक्षयोपशमकारणम् ।
श्रद्धा जिनोक्ततत्त्वेषु सम्यग्दर्शनमुच्यते ॥
जायते यन्निसर्गेण गुरोरधिगमेन वा ।
अवबोधस्तमत्राहुः सम्यज्ज्ञानं मनीषिणः ॥
सर्वथाऽवद्ययोगानां त्यागश्चारित्रमुच्यते ।
कीर्तितं तदहिंसादिव्रतभेदेन पञ्चधा ॥
पूरयन्ति गलन्तीति पुद्गलाः परमाणवः ।
वर्णगन्धरसस्पर्शगुणवद्द्रव्यलक्षणाः ॥
अनन्तदेशे द्रव्येऽस्तिकायशब्दः प्रयुज्यते ।
पञ्चास्तिकायाः कीर्त्यन्ते तेऽन्येऽणोः काललक्षणात्
6 सप्तधा वादिनो दृष्टाः सत्त्वासत्त्वादिनिर्णये ।
सर्वस्यात्राभ्युपगमात् सप्तभङ्गनयास्थितिः ॥
एकस्मिन् वस्तुनि प्रश्नवशेनैवाविरोधतः ।
कल्पना सप्तभङ्ग्येषा या विधिप्रतिषेधयोः ॥
वाक्येष्वनैकान्तद्योती गम्यं प्रति विशेषणम् ।
स्यान्निपातोऽर्थयोगित्वात् तिङन्तप्रतिरूपकः ॥
तद्विधानविवक्षायां स्यादस्तीति गतिर्भवेत् ।
स्यान्नास्तीति प्रयोगस्स्यात् तन्निषेधे विवक्षिते ॥

क्रमेणोभयवीक्षायां प्रयोगस्समुदायवान् ।
युगपत्तद्विवक्षायां स्यादवाच्यमशक्तितः ॥
आद्यावाच्यविवक्षायां पञ्चमो भङ्ग इष्यते ।
अन्त्यावाच्यविवक्षायां षष्ठभङ्गसमुद्भवः ॥
समुच्चयेन युक्तस्य सप्तमो भङ्ग इष्यते ।
तत्सत्त्वैकत्वनित्यत्वसर्वरूपेषु नीयते ॥
सर्वोऽपि धर्मः प्रष्टव्यः सप्तधैव व्यवस्थितः ।
सर्वेऽप्यत्रान्तर्भवन्ति विधयो वेतरेऽपिवा ॥
तृतीयाद्यविवक्षायां अष्टमो भवतीति चेत् ।
द्विःसत्त्वानुपलम्भेन तृतीयात्मक एव सः ॥
तृतीयान्त्याविवक्षाऽपि ह्यसत्त्वाद्वयमूलका ।
एवं विनिगमाभावमूलशङ्कानिराकृतिः ॥
प्रमेयाम्बुजमार्ताण्डे विस्तरस्त्ववगम्यताम् ।
प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकारेऽपि विस्तृतः ॥
आप्तमीमांसादिसिद्धः संक्षेपादिह दर्शितः ।
विरोधस्य विधूत्यैवापक्षपातीति विश्रुतः ॥
7 अथैतावन्त एवात्र पदार्थाः न परास्त्विति ।
तैस्तैः कथं विनिर्णीतः सिद्ध्यसिद्ध्योरयोगतः ॥
मैवं योऽस्त्येष संसिद्धान्न परास्त्विति कीर्तने ।
न दोषोऽस्ति प्रवक्तॄणां विकल्पानवकाशतः ॥

अधिकानधिकाशङ्का सत्येव स्यात्तवापिहि ।
नैवंचेन्नैव शङ्का वा परिहारोऽपि वा भवेत् ॥
तथाचात्रत्यैवकारः नान्ययोगनिषेधकः ।
एतावत्त्वायोगमेव छिनत्तीत्यवबुद्ध्यताम् ॥

(18) शक्तिवादः.

1 अतिरिक्तं पदार्थं तं शक्तिं ये गुरवो विदुः ।
अनुमानप्रमाणस्य प्रमेयं ते विजानते ॥
शक्तेर्गुणत्वमिच्छन्तो गुणलक्षणसंगतेः ।
अर्थापत्त्याऽधिगम्यां तां प्राहुः कौमारिला यथा ॥
यादृशादग्निसंयोगात्सर्वथा दाहदर्शनम् ।
तादृशादेव मन्त्रादिप्रयोगे तददर्शनात् ॥
अग्निसंयोगातिरिक्तं यत्किंचित्कारणान्तरम् ।
अस्ति दृश्यमदृश्यं वेत्येषा साधारणा प्रमा ॥
दृश्यादर्शनजाभावप्रमाणेन विहन्यते ।
तत्रानयोर्विरोधे सत्यविरोधाय कल्प्यते ॥
अदृश्यं कारणं किंचिद्द्रव्यकर्मगुणाश्रयम् ।
शक्तित्वसामान्ययोगात्सा शक्तिरिति गीयते ॥
2 आधेया सहजा चेति द्विविधां तां प्रचक्षते ।
आद्या व्रीह्यादिसंस्कारः वह्न्यादौ स्यादनन्तरा ॥

3 अत्र वैशेषिकाः प्राहुः शक्तिं नाभ्युपयन्ति ये ।
संस्कारः पुंस एवेष्टः प्रोक्षणाभ्युक्षणादिभिः ॥
स्वगुणाः परमाणूनां विशेषाः पाकजादयः ।
भावो यथा तथाऽभावः कारणं कार्यवन्मतः ॥
प्रतिबन्धो विसामग्री तद्धेतुः प्रतिबन्धकः ।
स्वरूपादुद्भवत्कार्यं सहकार्युपबृंहितात् ॥
नहि शक्तं कल्पयितुं शक्तिमन्यामतीन्द्रियाम् ।
एतत्पद्यं पठन्तीत्थं त एते शक्तिवादिनः ॥
स्वरूपात् क्वाप्यनुद्यत्तत्सहकार्युपबृंहितात् ।
किं न कल्पयितुं शक्तं शक्तिमन्यामतीन्द्रियाम् ॥
4 इदं फलं शक्तिवादे तत्तद्वाद्यभिसंहितम् ।
करणं चाप्यकरणं क्षणभङ्गस्य कारणम् ॥
निरास्थन् वैदिकाश्शक्त्या तार्किकास्सहकारिणा ।
स्वभाववादावकाशः शक्तिवादे प्रसज्यते ॥
इति तार्किकसंत्रासः ह्यर्धस्वाभाविकाः परे ।
रहस्यमेतदेव स्यात्सामान्याच्छक्तिवादिनाम् ॥
5 कार्यानुकूलमपृथक्सिद्धं यत्तु विशेषणम् ।
तच्छक्तिशब्दितं सर्वं विष्णुशक्तिरतः स्मृतम् ॥
न शक्तिः शक्तमात्रं स्यात् सर्वाद्वैतप्रसक्तितः ।
नचापीष्टापत्तिरत्र जयी स्यान्मध्यमागमः ॥

इति भेदविदामौपनिषदानां परिष्कृतिः ।
अभेदविदुषां शक्तितद्वतोः भेदनिह्नवः ॥
वटबीजे वृक्षशक्तिः ह्याश्रयान्न विभिद्यते ।
कया चिदपि युक्त्येति तादात्म्यविभवो ह्यसौ ॥
तादात्म्यतत्त्वे तत्सर्वं स्पष्टमग्रे निरूप्यते ।
यत्र चैवौपनिषदा बहुधा हि विशेरते ॥

(19) शब्दशक्तिवादः.

1 शब्दशक्तिविशेषे तु रहस्यं बहु विद्यते ।
तदप्यत्रैव संक्षिप्य सूचयामः कुतूहलात् ॥
शब्देऽनवयवे स्फोटे तदर्थे जातिलक्षणे ।
अध्यासलक्षणा शक्तिस्संबन्ध इति शाब्दिकाः ॥
शब्दार्थयोश्च संबन्धं केचित्तादात्म्यलक्षणम् ।
नित्यं चाभ्युपगच्छान्ति परिणामं तु केचन ॥
तद्बिम्बप्रतिबिम्बत्वं कैश्चिदत्र विकल्प्यते ।
एवं तयोर्योगभेदाः स्युर्जगद्ब्रह्मणोरिव ॥
2 शाक्यदृष्ट्या तु शब्दार्थे बौद्धे विज्ञाननीतितः ।
कार्यकारणभावाख्यस्संबन्ध इति निश्चितम् ॥
3 शब्दशक्तिर्योग्यताख्या वह्नेरौष्ण्यादिशक्तिवत् ।
रूपादिज्ञानजनने चक्षुरादेरिवेष्यते ॥

स्वाभाविकी सा शब्दानां विज्ञातैवार्थकारिणी ।
यतश्शब्दार्थसंबन्धो बोध्यबोधकतैव सः ॥
धूमादीनां तु संबन्धान्तरात् गमकता मता ।
चेष्टावद्बोधकत्वं स्याद्यदि संकेतमूलकः ॥
संकेतकर्तृपुरुषाज्ञानं चात्रास्ति बाधकम् ।
इति शब्दार्थसंबन्धनित्यतावादिनो विदुः ॥
ते च मीमांसकाः पूर्वोत्तराः नव्याश्च शाब्दिकाः ।
यथात्र वैयाकरणभूषणोक्तं विमृश्यताम् ॥
इन्द्रियाणां स्वविषये ह्यनादिर्योग्यता यथा ।
अनादिरर्थैश्शब्दानां संबन्धो योग्यता तथा ॥
शाब्दधीजनकत्वावच्छेदकत्वेन वीक्षितः ।
स्वीकर्तव्यः पुनः शब्दः सङ्केतेनार्थबोधकः ॥
अर्थधीजनकत्वेन ज्ञातः शब्दस्स्वभावतः ।
बोधकस्स्यादिति मते लाघवं परिदृश्यते ॥
ग्राह्यत्वं ग्राहकत्वं च द्वे शक्ती तेजसो यथा ।
तथैव सर्वशब्दानां द्वे शक्ती अपि ते विदुः ॥
तस्मात्स्वभावसिद्धान्तो वरं समयकल्पनात् ।
अत्र नैयायिकमनोरथतत्त्वं विचिन्त्यताम् ॥
4 नैयायिकाः पुनः प्राहुः शक्तिं सङ्केतलक्षणाम् ।
इच्छा हि किल सङ्केतः नित्योऽनित्योऽपिवाऽस्तु सः

बौद्धा वैशेषिकाश्चैव शब्दमानापलापिनः ।
कथंचिदनुमानान्तर्भावमेते प्रचक्षते ॥
स्वाभाविकस्तु संबन्धश्शक्तिर्यद्युपगम्यते ।
निरुपाधिकसंबन्धो व्याप्तिरेव स निश्चितः ॥
शब्दोऽनुमानमेव स्यादतस्सङ्केत इष्यते ।
अत्र वैदिकसिद्धान्तसमाधिरवगम्यताम् ॥
सङ्केतो वाऽतिरिक्तो वा योऽविनाभावरूपतः ।
ज्ञातश्चेदनुमैव स्यात् न स्यात् ज्ञातः स्वरूपतः ॥
तथात्वप्रतिसंधानाभावेऽप्यनुभवोदयात् ।
शब्दो मानान्तरं तस्मादन्यथा सर्वविप्लवः ॥
अत्र प्राभाकराः प्राहुश्शब्दस्स्याल्लौकिकोऽनुमा ।
वैदिकस्त्वतिरिक्तोऽस्त्वित्येषाऽर्धजरतीयता ॥
सर्वनाशे समुत्पन्ने ह्यर्धं त्यजति पण्डितः ।
इति न्यायः स्वीकृतः स्यादिति तत्त्वविदो विदुः ॥
5 शक्तेरस्याः पुनश्शक्यविकल्पोऽप्यवधार्यताम् ।
व्याडी च वैयाकरणः व्यक्तिशब्दार्थवाद्यसौ ॥
वाजप्यायननामा यः जातिशब्दार्थवाद्यसौ ।
6 शक्तिर्जात्याकृतिव्यक्तिष्विति नैयायिका विदुः ॥
जातिव्यक्त्योरेव शक्तिर्गुणकर्माभिधायिनाम् ।
न तयोराकृतिर्यस्मात्प्रतीकव्यूहलक्षणा ॥

आकाशाद्या जातिहीनाः शब्दास्स्युः पारिभाषिकाः
ते शब्दाद्याश्रयतया शाब्दधीहेतवो मताः ॥
यथा न स्याल्लक्ष्यतावच्छेदके लक्षणा तथा ।
शक्यतावच्छेदकेऽपि शक्तिर्नव्यैर्नचेष्यते ॥
7 अथ भाट्टैः शक्तिरेषा जातावेवाभ्युपेयते ।
जातिरेवाकृतिस्तेषां व्यक्तिराक्षिप्यते यया ॥
जातेश्चोपस्थितिः शक्त्या निर्विकल्पकलक्षणा ।
आक्षेपाद्व्यक्तिलाभस्स्यादाक्षेपोऽप्यनुमा मता ॥
स्यादर्थापत्तिरथवा जातिहीनास्तु ये स्वनाः ।
अखण्डोपाधयस्तेषामर्था नित्या हि तन्मताः ॥
8 शक्तिर्जातौ व्यक्तिलाभो लक्षणाधीन इष्यते ।
इति मण्डनसिद्धान्तः गदाधरसुधीरितः ॥
जातेरस्तित्वनास्तित्वे न हि कश्चिद्विवक्षति ।
नित्यत्वाल्लक्ष्यमाणायाः व्यक्तेस्ते हि विशेषेण ॥
इति पद्यं शक्तिवादे मानत्वेन ह्यनूदितम् ।
वाक्याधिकरणे श्लोकवार्तिकेऽपिच दृश्यते ॥
9 व्यक्तेरौपादानिकी स्याद्बुद्धिरित्यपरे विदुः ।
एष श्रीकरसिद्धान्तः शक्तिवादे निरूपितः ॥
यदत्रानुपपत्तेस्तु प्रतिसंधानमुच्यते ।
उपादानं नाम तत्स्यात् सैषार्थापत्तिरन्ततः ॥

10 शक्तिर्जातावेव तत्र शक्तिधीरेव बोधिका ।
व्यक्तेरिति विदुः प्राभाकराः बोधक्रमस्त्वसौ ॥
व्युत्पत्तितो जातिशक्तिज्ञानाज्जातिप्रकारतः ।
व्यक्तिस्मृतिः तथैव स्यात् शाब्दधीरिति तन्मतम् ॥
11 जातिज्ञाने शक्तिरिति जरन्मीमांसकाः विदुः ।
ज्ञाने शक्तमिति ज्ञानाच्छाब्दबोधस्तु तन्मते ॥
12 गुर्वेकदेशिनः व्यक्तौ कुब्जशक्तिं प्रचक्षते ।
कुब्जत्वं च स्वरूपेण व्यक्तौ शक्तेस्तु हेतुता ॥
प्रतिबन्धं विना पक्षधर्मताशक्तिवैभवात् ।
लिङ्गं लिङ्गिविशेषे तु यथा वै पर्यवस्यति ॥
विनाऽपि संगतिं शक्तिविशेषात्पर्यवस्यति ।
व्यक्तौ शक्तिरिति प्राहुः कुब्जशक्तिविदो बुधाः ॥
यस्याः कारणता शक्तेः शाब्दबोधे न विद्यते ।
सा कुब्जा रुचिदत्तस्य मकरन्दकृतो मता ॥
13 सर्वेष्वर्थेषु शक्तास्स्युस्सर्वे शब्दाः स्वभावतः ।
समयान्नियमस्सिद्ध इत्यप्याहुः कुमारिलाः ॥
सर्वाकारपरिच्छेद्यशक्तेऽर्थे वाचकेऽपिवा ।
सर्वाकारार्थविज्ञानसमर्थे नियमः कृतः ॥
एष सार्वात्म्यसिद्धान्तः नैरात्म्यैकान्तभञ्जकः ।
पदार्थास्तित्वसिद्धान्तवादिनां प्रायशो मतः ॥

अन्ये दार्शनिकास्तत्र यंकंचिन्मार्गमाश्रिताः ।
एतावताऽस्तूपरमः बुधा विस्तरभीरवः ॥

(20) साहश्य वादः

1 साहश्यनामकः कश्चित्पदार्थस्सर्ववस्तुगः ।
नानाप्रकारः प्रत्यक्ष इति प्राभाकरा विदुः ॥
तदेव चोपमानस्य प्रमेयमिति कीर्त्यते ।
दृश्यमानार्थसाहश्यात्स्मर्यमाणार्थगोचरम् ॥
असन्निकृष्टसाहश्यज्ञानं ह्युपमितिर्मता ।
गवयस्थितसाहश्यदर्शनं करणं मतम् ॥
फलं गोगतसाहश्यज्ञानमित्यभिधीयते ।
वेदार्थनिर्णये तस्य चोपयोगोऽवधार्यताम् ॥
सौर्यवाक्ये तु संदृष्टे चौषधिद्रव्यकत्वतः ।
एकदैवत्यत्वतश्च ह्याग्नेयमुपतिष्ठते ॥
तस्मिंश्चोपमिते तेन तदर्थोऽपि प्रमीयते ।
सौर्येणाग्नेयवद्ब्रह्मवर्चसं भावयेदिति ॥
एवं शास्त्रोपयोगित्वात् प्रमेयत्वात्पृथक्त्वतः ।
साहश्यं नाम सिद्धोऽस्ति पदार्थः सार्वलौकिकः॥
2 कुमारिलस्य सिद्धान्ते साहश्यं नातिरिच्यते ।
भूयोऽवयवसामान्ययोगो जात्यन्तरस्य तत् ॥

एकस्य वस्तुनस्स्वावयवे कर्मणि वा गुणे ।
समवेतैश्च सामान्यैः योगो येन प्रकारतः ॥
तेनैवच प्रकारेण योगो वस्त्वन्तरस्य तत् ।
अतस्संबन्धिसामान्ययोगस्साद‍ृश्यमुच्यते ॥
स च योगोऽनुवृत्त्याख्यः सप्रतिद्वन्द्विलक्षणः ।
साद‍ृश्यमेव सारूप्यं सामान्यं चेति निर्णयः ॥
सद‍ृशावयवत्वं तु यत्र पद्मदळाक्षिवत् ।
तत्स्वावयवसामान्यभूम्ना तेषां भविष्यति ॥
एवं जातिगुणद्रव्यक्रियाशक्तिस्वधर्मतः ।
एकैकद्वित्रिसामस्त्यभेदादेतस्य चित्रता ॥
न धर्मा एव साद‍ृश्यं भूयस्ता वा तदाश्रया ।
भूयस्त्ववद्धि जात्यादि सद‍ृशत्वेन द‍ृश्यते ॥
क्वचिच्च भूयसामेतत् क्वचिदल्पीयसामपि ।
नैतावता विशेषेण वस्तुत्वं तस्य हीयते ॥
सामान्यान्यपि चैतानि नाशीन्याश्रयनाशतः ।
अनन्ताश्रययोगाच्च न नाशोऽन्यत्र विद्यते ॥
तेन सर्वं न सामान्यं नित्यत्वेन प्रकल्प्यते ।
सर्वस्य ह्याश्रयः कश्चित् अस्ति देशान्तरादिषु ॥
सद‍ृशावयवत्वं तु यत्र नाम प्रतीयते ।
तदप्यवयवानां स्यात् समानावयवान्तरैः ॥

रूपगन्धरसानां च कस्यचित्तुल्यता क्वचित् ।
नावश्यं सर्वसामान्यात् सादृश्यमुपजायते ॥
धर्माणां नच नानात्वमस्ति चावान्तरस्थितिः ।
तेन भिन्नमभिन्नं च सादृश्यमिति निर्णयः ॥
सादृश्यं न त्ववस्तु स्यान्नापि तत्त्वान्तरं मतम् ।
किंतु संबन्धिसामान्ययोग इत्यवधारितम् ॥
3 तद्भिन्नत्वे च तन्निष्ठभूयोधर्मानुयोगिता ।
सादृश्यं ते पुनर्धर्माः जातिकर्मगुणादयः ॥
इति वैशेषिकप्राज्ञः नव्यास्तस्यातिरिक्तताम् ।
आहुरेते न सप्तैव पदार्था इति वादिनः ॥
4 सारूप्यमेव सामान्यं तच्च सादृश्यमित्यपि ।
इतिचाकृतिवादे हि सांख्यसिद्धान्त ईरितः ॥
सारूप्यमेव सामान्यं पिण्डानां येन कल्प्यते ।
तेन सारूप्यशब्देन किं पुनः प्रतिपद्यते ॥
समानरूपभावश्चेत् जातिस्साऽस्माभिरिष्यते ।
सादृश्यमथ सारूप्यं कस्य केनेति कथ्यताम् ॥
नचावयवसामान्यैर्विना सादृश्यकल्पना ।
सामान्यप्रत्ययोत्पादो न विशेषेषु जायते ॥
व्यक्तितश्चातिरेकोऽस्य स्यान्न वेति विचारिते ।
सामान्यमेव सादृश्यं भवेद्वा व्यक्तिमात्रकम् ॥

तेन नात्यन्तभिन्नोऽर्थः सारूप्यमिति वर्णितम् ।
ग्रन्थे विन्ध्यनिवासेन भ्रान्तेः सादृश्यमुच्यते ॥
इतिचाकृतिवादान्ते सांख्यानां विन्ध्यवासिनाम् ।
सामान्यमेव सादृश्यं न तत्त्वान्तरकल्पना ॥
तत्त्वतोऽनवगत्यैव त्वर्थे सादृश्यलक्षणम् ।
सामान्यनिह्नवः कैश्चित्कृत इत्युपपादितम् ॥
सारूप्यमेव सामान्यमिति युक्तं न सांख्यवत् ।
विजातीयेषु तद्दृष्टेः गवादिगवयादिषु ॥
इत्याह न्यायमञ्जर्यां शब्दनित्यत्वरूपणे ॥
5 न वस्तुरूपं सादृश्यं वासनामात्रनिर्मितम् ।
प्रतियोगिमतिं यस्मादपेक्ष्यैवावबुद्ध्यते ॥
तज्ज्ञानं च ततः शाक्यैः प्रत्यक्षाभासमिष्यते ।
यतश्च कल्पनाध्यक्षवादिनः ते प्रकीर्तिताः ॥

(21) तमोवादः

1 तमः खलु चलं नीलं बहुलं विरलं परम् ।
अपरं च महद्दीर्घं ह्रस्वं चेति प्रतीयते ॥
कदाचिदपि कस्यापि नैव बाधोऽत्र दृश्यते ।
प्रभामण्डलवच्चेदं द्रव्यमित्येव वैदिकाः ॥
2 पृथिव्या एव भेदोऽयं तमस्स्यादितिकेचन ।
प्रकृतेरेव भेदस्स्यादिति वेदान्तिनो विदुः ॥

आलोकेनोत्सारितत्वात् विनष्टत्वादथापिवा ।
अभिभूतत्वतो वाऽपि तन्मध्ये नोपलभ्यते ॥
विषयाच्छादकत्वं तु तमसो नहि युक्तिमत् ।
तमोऽव्यवहितालोकास्थितनानार्थदर्शनात् ॥
अतो मर्त्यादिदृष्टीनां दृश्यसंबन्धमात्रतः ।
दर्शनप्रतिघातित्वं स्वभावात्तमसि स्थितम् ॥
वायू रूपेण रहितः स्पर्शेन सहितो यथा ।
तथा रूपेण सहितं स्पर्शेन रहितं तमः ॥
3 गुरूणां तु मते तेजोहीनाधिकरणं तमः ।
ग्राहकात्मोपलब्धेश्च नीलरूपस्मृतेरपि ॥
नीलं तम इति ज्ञानं भेदाग्रहनिबन्धनम् ।
आलोकक्रियययैव स्याज्ज्वलतिप्रत्ययोऽपिच ॥
4 तेजोऽभावस्तम इति काणादकिरणावलिः ।
अन्धसाधारणं रूपज्ञानाभावं विदुः परे ॥
आरोपितं निरालोके देशे मालिन्यवत्तले ।
नीलं रूपं तम इति सिद्धान्तः कन्दळीकृतः ॥
5 अणवः सर्वशक्तित्वात् तमश्छायाऽऽतपात्मना ।
अभ्राणीव प्रचीयन्त इति प्राहुरिहार्हताः ॥
6 निराधिष्ठानविज्ञानवादिवैभाषिकादयः ।
केशोण्ड्रकादिविज्ञानं भ्रम इत्यभिमन्वते॥

7 भूच्छायादर्शनं लोके तमोदर्शनमुच्यते ।
इत्युक्तवानपि विधिविवेके किल मण्डनः ॥
एवंरूपः तमस्तत्त्वे विकल्पः परिदृश्यते ।
निरूप्यते यथा यच्च तत्तथा व्यवतिष्ठते ॥

(22) कालवादः

1 सांख्यसौगतचार्वाकैः क्रियते कालनिह्नवः ।
वैशेषिकादयः कालं मन्यन्ते दुरपह्नवम् ॥
अनुमेयं विदुः प्रायः परे दार्शनिकाः पुनः ।
प्रत्यक्षगोचरं प्राहुः इत्थमेषोऽपलप्यते ॥
उपाधिभिर्वा बुद्धिस्थैः तादृग्भिर्वाऽथ बुद्धिभिः ।
व्योमादिभिर्वा विभुभिः कालं निह्नुवते बुधाः ॥
नतावद्गृह्यते कालः प्रत्यक्षेण घटादिवत् ।
चिरक्षिप्रादिबोधोऽपि कार्यमात्रावलम्बनः ॥
नचामुनैव लिङ्गेन कालस्य परिकल्पना ।
प्रतिबन्धो हि दृष्टोऽत्र न धूमज्वलनादिवत् ॥
प्रतिभासातिरेकस्तु कथंचिदुपपत्स्यते ।
प्रचितां कांचिदाश्रित्य क्रियाक्षणपरंपराम् ॥
नचैष ग्रहनक्षत्रपरिस्पन्दस्वभावकः ।
कालः कल्पयितुं युक्तः क्रियातो नापरो ह्यसौ ॥

मुहूर्तयामाहोरात्रमासर्त्वयनवत्सरैः ।
लोके काल्पनिकैरेव व्यवहारो भविष्यति ॥
यदि त्वेको विभुर्नित्यः कालो द्रव्यात्मको मतः ।
अतीतवर्तमानादिभेदव्यवहृतिः कुतः ॥
तादृक्स्वभावसहितः कालो यद्यतिरिच्यते ।
सिद्धस्यैवहि तादृक्षस्वभावोपगमो वरम् ॥
2 अथानुमेयसिद्धान्तः संगृह्यात्र प्रदर्श्यते ।
परापरं चिरं क्षिप्रं युगपत्क्रमिकं त्विति ॥
व्यवहाराः पुनः सूर्यपरिस्पन्दनिबन्धनाः ।
मूर्तैस्साक्षान्न संसर्गः कर्मणामर्कवर्तिनाम् ॥
क्रियोपनायकः कश्चित्स्यादेवोभयसंयुतः ।
परत्वादौ हेतुरेतत्संयोगोऽसमवाय्यसौ ॥
नाकाशेनान्यथासिद्धिः अविशेषाद्दिगादिभिः ।
दिक्कालावीश्वरान्नव्यैरतिरिक्तौ नचेष्यते ॥
स एवात्रोपनेता स्यादित्येतेषां हृदि स्थितम् ।
अप्रत्यक्षत्वमात्रेण नच कालस्य नास्तिता ॥
युक्ता पृथिव्यधोभागचन्द्रमःपरभागवत् ।
प्रत्यक्षत्वादुपाधीनां प्रत्यभिज्ञादिसंभवः ॥
उपाधयः स्वरूपेण कालाश्चेदनवस्थितिः ।
चिरेणास्तंगतो भानुः शीतांशुः शीघ्रमुद्गतः ॥

उदिताविव दृश्येते युगपद्भौमभार्गवौ ।
इत्यादिव्यवहारेण तदुपाधिगवेषणात् ॥
ननु त्वत्कल्पितः कालः स्वत एव क्रमात्मकः ।
हेत्वन्तराद्वा प्रथमे कार्याणि न कुतस्स्वतः ॥
द्वितीये त्वनवस्था स्यात् अन्यस्मादित्यपेक्षणात्।
मैवं, शुक्लगुणादावप्येवं वक्तुं हि शक्यते ॥
स्वतोऽस्य तत्स्वभावत्वे द्रव्यस्य न कुतस्तथा ।
गुणान्तरस्यापेक्षायामनवस्था प्रसज्यते ॥
स्वतः क्रमाद्यात्मकोऽसौ काल इत्यवधार्यते ।
नाध्वव्यङ्ग्यः काल एषः वर्तमानविलोपतः ॥
3 किंतु क्रियाव्यङ्ग्य इति सौगतेतरपद्धतिः ।
रहस्यं पक्षयोस्तत्र संक्षेपादिह सूच्यते ॥
कालो यदि क्रियाव्यङ्ग्यः क्षणिकत्वं न सिद्ध्यति।
क्षणिकास्सर्वसंस्काराः अस्थिराणां कुतः क्रियाः ॥
इति सिद्धान्तभङ्गस्स्यात् इति सौगतमानसम् ।
पतितः पतितव्यश्च देशो द्विविध एवहि ॥
4 वर्तमाननिषेधे च भवित्री विश्वनिह्नुतिः ।
न ह्यतीतं भविष्यद्वा प्रत्यक्षविषयोऽस्ति नः ॥
वर्तमानभ्रमश्चात्र तत एव न सिद्ध्यति ।
पौर्वापर्यातिरिक्ता तु दुस्त्यजा वर्तमानता ॥

अतीतागामिधीरेव वर्तमानमतिर्यदि ।
भूतभाविसमस्तासया न शोकादिसमुद्भवः ॥
पूर्वापरत्वसंभेदे वर्तमानमतिर्यदि ।
त्रिकालस्थेऽपि तत्सिद्धेः क्वातीतागामिता भवेत् ॥
प्रारब्धश्चासमाप्तश्च वर्तमानो य उच्यते ।
व्यापारसमुदायोऽसौ विवक्षितफलावधिः ॥
तत्रापि क्षणभेदेन नष्टत्वादिविकल्पतः ।
वैवक्षिकमिहान्यच्च वर्तमानत्वमक्षतम् ॥
सत्त्वं यद्वर्तमानत्वं कालसंबन्धलक्षणम् ।
तस्य स्वपरनिर्वाहान्नानवस्था प्रसज्यते ॥
मानसंबन्धरूपं तु सत्त्वं सर्वगतं मतम् ।
सत्त्वमित्थमविद्वांसः कालोऽसन्निति बभ्रमुः ॥
विशेषलिङ्गाभावेन तल्लिङ्गस्याविशेषतः ।
एकस्तथा विभुश्चापि सर्वत्र व्यवहारतः ॥
आश्रयानुपलम्भेन निरंशो नित्य एवच ।
द्रव्यं चेति स्वीकृतोऽसाविति वैशेषिकाशयः ॥
5 शैवादिभिः पुनः कालो ह्यनित्योऽव्यापकोऽपिच ।
हेतुः परिमितं कार्यं प्रतीत्यभ्युपगम्यते ॥
नित्यता सर्वदा सत्ता नहि कालस्य संभवेत् ।
यतः कालान्तरं नास्ति किंतु ध्वंसविहीनता ॥

कालतत्त्वस्य चोत्पत्तिं विनाशं चानुजानताम् ।
उत्पत्तेः प्राक्च पश्चाच्चेत्याद्या वाचो निरर्थकाः ॥
6 कालतो देशतो वाऽपि व्यतिरेकस्य चाग्रहात् ।
कथं च नित्यस्य विभोः कालादेर्हेतुतेति चेत् ॥
धर्मिग्राहकमानेन कारणत्वमिहेष्यते ।
क्वचिल्लोकोपदेशेनाप्यस्ति कारणताग्रहः ॥
कारणत्वं तु नियतप्राग्वृत्तित्वं ननूच्यते ।
अस्मिन् सत्येवेदमिति नियमः सुग्रहः कथम् ॥
प्रसंगतोऽपि नियमसिद्धिस्स्यादिह तद्यथा ।
यद्येतन्न भवेत्सर्वं नोत्पद्येत ततस्त्विदम् ॥
सर्वोत्पत्तिनिमित्तं स्यादित्यत्रास्ति प्रसंजनम् ।
इदं यत्र यदा नास्ति नास्ति तत्र तदाऽखिलम् ॥
इत्याकारस्तु नियमः नहि तत्र विवक्षितः ।
अतः कालस्सर्वहेतुरित्युक्तिर्न विरोत्स्यते ॥
7 इति कालानुमेयत्ववादिनां रीतिरीरिता ।
अथ तत्प्रत्यक्षवादिवैदिकानां मतिस्त्वियम् ॥
कालोऽनादिरनन्तश्च प्रत्यक्षश्चेति सम्मतः ।
विशेषणतया कार्यप्रत्यये प्रतिभासनात् ॥
कालोपश्लिष्टवेषेण ह्यभूदस्तिभविष्यतीन् ।
प्रयुञ्जतेऽर्थभेदेषु सदा चास्तिमनेहसः ॥

तस्मात्सर्वेन्द्रियग्राह्य इति तत्त्वविदां मतम् ।
सर्वेन्द्रियज्ञानवादो यथा सत्तागुणत्वयोः ॥
कालांशस्यानुमेयत्वे पदार्थेऽपि प्रसज्यते ।
तदा सौत्रान्तिकादीनां कोऽपराधोऽतिरिच्यते ॥
कालानुमेयवादे तु पामराणामधोगतिः ।
कालानुमा चोक्तरीत्या सर्वदा न विपश्चिताम् ॥
क्रमेण युगपत् क्षिप्रं चिरात्कृतमितीदृशाः ।
प्रत्यया नावकल्पन्ते कार्यमात्रावलम्बनाः ॥
अरूपो नन्वयं कालः कथं गृह्येत चक्षुषा ।
रूपमेव तवारूपं कथं गृह्येत चक्षुषा ॥
कथं वा रूपवन्तोऽपि परोक्षाः परमाणवः ।
तस्मात्प्रतीतिरन्वेष्या किं निमित्तपरीक्षया ॥
नचानुद्घाटिताक्षस्य चिरादिप्रत्ययोदयः ।
तद्भावानुविधानेन कालस्स्यादेव चाक्षुषः ॥
एवं गुरु द्रव्यमिति प्रत्ययात्तदपीदृशम् ।
पूर्वापरप्रत्ययेन दिशोऽप्यध्यक्षतां विदुः ॥
8 नित्योऽप्येकोऽप्ययसौ कालः द्रव्यत्वाद्विदुरो मतः ।
अवस्थाभेदतः ते चोपाधिसंबन्धलक्षणाः ॥
स्वयं विक्रियतेऽजस्रं स क्षणाद्यात्मनेत्यपि ।
यद्यादवप्रकाशोक्तं तदप्यनुमतं बुधैः ॥

अत एवच मासादेः स्याद्विवक्षानुसारतः ।
आद्यन्तमध्यमोत्पत्तिक्षणप्रभृतिकल्पना ॥
क्षणादिभेदाभावे तु कथं वा स्यादुपाधिभिः ।
भेदस्तेषां कालमात्रे संबन्धान्निर्विशेषणे ॥
विकारपक्षे कृत्स्नैकदेशयोगविकल्पना ।
परिहार्या ह्याश्रयैकदेशवृत्तिगुणादिवत् ॥
उपाधिसंबन्धमात्रपक्षेऽपि न विशिष्यते ।
परिहारोऽयमिति च प्राहुर्लाघवदृष्टयः ॥
स्पन्दसंततिसिद्ध्यर्थं कालस्याणुत्वकल्पनम् ।
आशावसनसिद्धान्ते युक्तिचातुर्यजृम्भितम् ॥
क्रियासंततिवत्काले परिणामपरंपरा ।
किं न स्यात्स्वापकर्षाद्यैः परत्वादिप्रसाधिका ॥
9 एकाश्रयक्रियासंख्या काल इत्यपरे विदुः ।
तदुपाधिविशेषाणामुपलक्षणतत्परम् ॥
अव्यक्तं परमाकाशः कालश्चेति त्रिधा स्थिता ।
सैषा प्रकृतिरित्यन्ये ह्येकदेशविदो बुधाः ॥
10 कालोपाधिविशेषाश्च मञ्जरीप्रकटीकृताः ।
संगृह्यन्ते सुमनसां स्वान्तविक्षेपशान्तये ॥
चञ्चुप्रचुम्बितातास्रचूताङ्कुरकदम्बकैः ।
कथ्यते कोकिलैरेव मधुः मधुरकूजितैः ॥

दिवाकरकरालातपातनिर्दग्धवीरुधः ।
मार्गास्समल्लिकामोदा भवन्ति ग्रीष्मशंसिनः ॥
शिखण्डमण्डनारब्धोद्दण्डताण्डवडम्बरैः ।
प्रावृडाख्यायते मेघमेदुरैर्मेदिनीधरैः ॥
मौक्तिकाकारविस्तारितारानिकरचित्रितम् ।
शरत्पिशुनतां याति यमुनाम्भोनिभं नभः ॥
आयामियामिनीभोगसफलाभोगविभ्रमाः ।
हेमन्तमभिनन्दन्ति सोष्माणस्तरुणीस्तनाः ॥
आस्कन्दनदलत्कुन्दकलिकोत्करदन्तुराः ।
वदन्ति शिशिरं वाताः तुषारकणकर्कशाः ॥
तस्मादेकोऽप्ययं कालः क्रियाभेदाद्विभिद्यते ।
एतेन सदृशन्यायात् मन्तव्या दिक्समर्थिता ॥
1 कौमारिलाश्श्रावणत्वमाहुर्दिक्कालयोरपि ।
कालश्चैको विभुर्नित्यः प्रविभक्तोऽधिगम्यते ॥
वर्णवत् सर्वभावेषु व्यज्यते केनचित्क्वचित् ।
आनुपूर्वी च वर्णानां ह्रस्वदीर्घप्लुताश्च ये ॥
कालस्य प्रविभागास्ते जायन्ते ध्वन्युपाधयः ।
तस्मात्सर्वेन्द्रियग्राह्यः सत्तावत्काल इष्यते ॥
12 अथ पातञ्जलाः कालं महान्तं नोपयन्ति ते ।
क्षणैरेव मुहूर्तादिव्यवहारं प्रचक्षते ॥

कालेन यावता पूर्वं देशं जह्याच्चलन् अणुः ।
संपद्येतोत्तरं देशं स कालः क्षण उच्यते ॥
क्षणः कालकला पूर्वापरभागविवर्जिता ।
स एव वस्तुतः कालः क्रमस्याप्यवलम्बनम् ॥
मुहूर्ताहोरात्ररूपः बुद्धिनिर्माणलक्षणः ।
वस्तुशून्यो लौकिकानां वस्त्वात्मेवावभासते ॥
क्षणतत्क्रमयोर्नास्ति समाहारो न वस्तुतः ।
तस्माद्बुद्धिसमाहारः मुहूर्तादिरिति स्थितम् ॥
अनेन चैव न्यायेन संख्यां द्वित्वादिलक्षणाम् ।
एकत्वेनान्यथासिद्धां कुर्वन्ति सुधियोऽपरे ॥
आर्हतानामेवमेव कालोऽणूनां समुच्चयः ।
तेनैव भूतभाव्यादिव्यवहारो निरूपितः ॥
तथा महाकालमेके खण्डमेकेऽथचोभयम् ।
इति त्रिधा कालसत्त्वे सिद्धान्ता इति निर्णयः ॥

(23) आकाशवादः.

1 चत्वार्येव हि भूतानि नाकाशमतिरिच्यते ।
व्योमादिशब्दाः व्यामोहमात्रनिघ्ना इतीरिताः ॥
शून्यधातौ खपुष्पादौ निस्तत्त्वेऽप्यस्ति वाचकः ।
योऽयमावरणाभावो निस्स्वभावश्च संमतः ॥

अवकाशोऽयमाकाश इति चार्वाकसौगताः ।
नञुपश्लेषविरहादसद्रूपतिरस्कृतिः ॥
अपोहजातिवादे च यथा वस्तुतयैव धीः ।
वासनावशतस्तद्वत् परीक्षायां तु शून्यता ॥
तलत्वं मलिनत्वं च विपुलत्वं तथाऽल्पता ।
बालातपादिसांनिध्येनारुण्याद्यपि दृश्यते ॥
केशोण्डूविभ्रमनिभाः निरधिष्ठानविभ्रमाः ।
दुःखाभावे सुखाध्यासः स्यात्सर्वजनसाक्षिकः ॥
तेजोऽभावे च नीलादिरध्यस्तो न्यायविन्मतः ।
अतीतेषु च वर्णेषु क्रमस्संख्या च दृश्यते ॥
अतीतानागतादौ च प्राकट्यं वित्तिवेद्यता ।
स्मृतेः प्रमोषो नीलादिवस्तूनामिति केचन ॥
2 समवायितया शब्दस्याकाशः परिशेषतः ।
अनुमानात्सिध्यतीति प्राहुर्वैशेषिकादयः ॥
स च नित्यो विभुश्चैक इति लाघवयुक्तितः ।
उपाधिभेदात्कार्याणामुपष्टम्भक इष्यते ॥
नेश्वरादतिरिच्यन्ते दिक्कालगगनानि तु ।
इति लाघवविज्ञानाः प्राहुर्ये नव्यतार्किकाः ॥
3 उद्भूतरूपमाकाशं विदुस्सांशं च चाक्षुषम् ।
सांख्याः प्राथमिकं भूतं अवकाशप्रदं विदुः ॥

भेरीशब्दः पुष्पगन्धः इति व्यवहृतिस्समा ।
पञ्चभूताश्रितश्शब्द इति तैरभ्युपेयते ॥
4 अजस्रमूर्तिर्यश्शब्दः सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यते ।
व्यजनाद्वायुरिव यः स्वनिमित्तात्प्रतीयते ॥
स एव कैश्चित्कुशलैराकाश इति पठ्यते ।
इत्याहुरपरे प्राज्ञा इति वाक्यपदीवचः ॥
5 चन्द्रिकादिविशेषानुन्मेषेण विततं तु यत् ।
विरलावस्थितं द्रव्यं नभस्तदिति केचन ॥
6 परस्परानवष्टब्धप्रदेशस्थस्वरूपयोः ।
परमाण्वोश्च संयोगो विना देशं न सिध्यति ॥
दिक्त्वेऽत्रान्तरिक्षान्तर्भावं केचिद्विदुस्ततः ।
अतिरिक्तत्वपक्षे तु सोऽण्वोर्देशो भवेदपि ॥
7 प्रत्यक्षसिद्ध आकाश इति वेदविदो विदुः ।
विधिरूपतया सर्वलोकसाक्षिकतादिना ॥
भावान्तराभाववादे विवादो नैव विद्यते ।
अतिरिक्ताभाववादे युक्तिरेषा निरूपिता ॥
न तावदत्रागमिकी प्रतीतिर्नाभसी भवेत् ।
आगमस्यानभिज्ञानामपि तद्बुद्धिदर्शनात् ॥
नाप्यानुमानिकी सा स्यात् तत्रानधिकृतास्तु ये ।
अबलाबालगोपानां तेषामप्यस्ति तन्मतिः ॥

प्रतीयतेऽयमाकाशः यदैवोन्मीलनं दृशः ।
प्रतीत्यभावे गन्तॄणां कूपादिपतनं ध्रुवम् ॥
इह पक्षी नेह पक्षीत्येवं जानन्ति लौकिकाः ।
एतदालम्बनतया वस्तु किंचित्प्रसिध्यति ॥
कल्पितालम्बनं केचिदालोकालम्बनं परे ।
ध्वान्तालम्बनमेकेऽन्ये तन्निरालम्बनं विदुः ॥
तत्रापि कल्पितादीनां स्यादेवाधारकल्पना ।
विधिर्निषेधो निराधिकरणो नेति केचन ॥
तथात्वे चाद्वैतवादः शून्यवादोऽपि वा ध्रुवः ।
तस्मादध्यक्षसंयोगः परिशेषाद्व्यवस्थितः ॥
तस्मादङ्गुलिनिर्देशपूर्वं व्यवहरत्यसौ ।
परीक्षको लौकिकश्च निर्बाधं सप्रमाणकम् ॥
नाभावो निस्स्वभावस्स्यात् स्वस्वभावतया स्थितेः
स्वविरुद्धस्वभावाच्चेत् निःस्वभावोऽखिलो भवेत्॥
यदि चावरणाभावोऽत्रात्यन्ताभावलक्षणः ।
तदाधारतया कश्चिदस्त्येव मतिगोचरः ॥
प्रध्वंसप्रागभावौ तु सत्सु तेषु न सिद्ध्यतः ।
तथाऽऽवरणभेदस्तु तस्य सत्त्वेऽपि सिद्ध्यति ॥
8 अव्याकृतो व्याकृतश्च स चाकाशो द्विधा मतः ।
प्रधानमेव प्रथम इति केचन सूरयः ॥

कैश्चित्तु तद्विष्णुपदं परमं पदमिष्यते ।
पञ्चभूतान्तर्गतो यः स द्वितीयोऽभिधीयते ॥
9 स्याद्वादिभिरथाकाशः लोकालोकविभेदतः ।
विभक्तः प्रथमः लोकाकाशो लोकेषु विद्यते ॥
सर्वलोकोपरिस्थो यः सोऽलोकाकाश उच्यते ।
स चानन्तः तत्र मुक्तास्सन्तीति सुधियो विदुः ॥
इत्थं विकल्पो वियतः संक्षेपादिह सूचितः ।
सर्वार्थसिद्धौ सन्नयायमञ्जर्यामस्य विस्तरः ॥

(24) परमाणुवादः.

1 अनित्यं सकलं वस्तु क्षणत्वाच्छून्यमित्यपि ।
दुःखं चेति हि सिद्धान्तः सौगतानां व्यवस्थितः ॥
कार्यकारणयोरैक्यं तथैक्यं धर्मधर्मिणोः ।
अतो नित्यैकान्तवादः सांख्यानामिति निर्णयः ॥
वैशेषिकादयस्तत्र नित्यानित्यत्ववादिनः ।
क्षितिवार्यग्निमरुतां नित्यास्स्युः परमाणवः ॥
व्योमकालदिगात्मानः नित्या एवं मनांस्यपि ।
अन्यानि कार्यद्रव्याद्यान्यनित्यानीति निर्णयः ॥
नित्यानित्यविभागः प्राक्स्थितो वेदान्तिनां मते ।
परमाणुस्वरूपे तु विचारोऽयं विमृश्यताम् ॥

2 स्पर्शाद्येकद्वित्रिचतुस्स्वभावाणुचतुष्कतः ।
पुञ्जः प्रपञ्चः संयोगोऽनुपपत्तिपराहतः ॥
इति वैभाषिकैः कैश्चित्सौगतैरभिधीयते ।
3 तत्रातिरिक्तावयविवादिभिः किल तार्किकैः ॥
प्रथमं संघटेते द्वौ परमाणू ततस्त्रिभिः ।
आरभ्यते च त्र्यणुकं द्व्यणुकैरिति कथ्यते ॥
परस्परानवष्टब्धदेशास्थितिरुपेयते ।
अण्वोर्द्व्यणुकयोर्वापि स देशो व्योमसंज्ञितः ॥
प्रभामण्डलमेवैतदिति केचन जानते ।
तस्याप्याश्रयदेशोऽन्यो वक्तव्य इति साम्प्रतम् ॥
बहुत्वसंख्यया दृष्टं महत्त्वं हेतुनिष्ठया ।
परोक्षत्वापरोक्षत्वसिद्धिस्तद्धेतुसाध्ययोः ॥
4 परमाणुरणुह्रस्वं द्व्यणुकं दीर्घमुच्यते ।
त्र्यणुकं तु महत्तस्मात्परिमाणचतुष्टयम् ॥
महत्त्वं षट्पार्श्ववत्त्वं त्रिभिर्दीर्घैस्तदुद्भवः ।
तस्मादुत्पद्यते सर्वं त्र्यणुकं द्व्यणुकैस्त्रिभिः ॥
ततश्च क्रमसामान्ये मानं खण्डनिदर्शनम् ।
मानं सङ्ख्याविशेषे तु नास्तीत्यारम्भ इष्यते ॥
5 अत्रेतरेषामाक्षेपसारांशोऽयं प्रदर्श्यते ।
स्वांशैस्संयुज्यावयवाः प्रारभन्तेऽतिरेकिणम् ॥

इति वादो निर्विघातः द्व्यणुकावधि संभवेत् ।
ततोऽणवो निरंशाश्चेत् संयोगस्तत्र दुर्घटः ॥
सांशाश्चेदविशेषस्स्यान्मेरुसर्षपयोरिति ।
षट्केन युगपद्योगात्परमाणोष्षडंशता ॥
षण्णां समानदेशत्वे पिण्डस्स्यादणुमात्रकः ।
इति पद्यं विश्रुतं हि यन्माध्यमिकशासनम् ॥
निरंशाऽनेकविषया बुद्धिर्नात्र निदर्शनम् ।
अंशानपेक्षस्संयोगस्तव नारम्भकः क्वचित् ॥
मूर्तैर्विभूनां संयोगोऽप्यत्र न स्यान्निदर्शनम् ।
अनिच्छतां विभुद्रव्यं, इच्छतामयमाशयः ॥
प्रवत्स्यामो यदि वयं संयोगगुणनिह्नव ।
तदा प्रदर्श्येत विभुप्रतिबन्ध्यणुषु त्वया ॥
किंत्वारम्भकसंयोगः प्रदेशनियतो मतः ।
अन्यत्राङ्गीकृतश्चेति कल्प्येऽप्येष प्रसज्यते ॥
उपलम्भानुसारेण वस्तुसत्ता व्यवस्थिता ।
तस्मात्त्र्यणुकविश्रान्तिर्वरमित्याह वैदिकः ॥
6 अतश्च तार्किका नव्या नित्ये महति चाक्षुषे ।
त्रुटौ विश्रममिच्छन्ति न ह्रस्वपरिमण्डले ॥
परमाणुत्रयेणैव त्र्यणुकारम्भ इष्यते ।
गवाक्षरन्ध्रदृष्टं वा लाघवात् द्व्यणुकं विदुः ॥

जालसूर्यमरीचिस्थं यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः ।
प्रथमं तत्प्रमाणानां त्रसरेणुरिति स्मृतिः ॥
त्रसरेणुपदं मण्डपादिवद्रूढमिष्यते ।
त्रिभिश्च सहितो रेणुस्त्रसरेणुरितीतरे ॥
7 अनन्तावयवत्वं चाप्यणोरिच्छन्ति केचन ।
विभज्यमाने नाभावपरिशेषः प्रसज्यते ॥
मेरुसर्षपवैधर्म्यं देशव्याप्त्या न संख्यया ।
व्यक्त्यानन्त्येऽपि जात्योस्तां परताऽपरते यथा ॥
अण्वंशानामनन्तत्वे गन्तॄणां तदतिक्रमः ।
कदाऽपि न स्यात्, किं न स्याद्वेगातिशयवैभवात्॥
द्युमणेरातपस्सर्पन्नुदयाद्रिशिखामणेः ।
तत्क्षणं किं न निर्भाति पश्चिमाद्रिशिखण्डकः ॥
नन्वनन्तावयवता मूर्तैरवयवैर्मिथः ।
अन्तरं त्वप्रयच्छद्भिः सर्वदिग्व्याप्तिकारिणी ॥
एकेन सर्षपेणैव पूर्येत सकलं जगत् ।
अतोऽनवयवाः केचित्स्वीकर्तव्याः किलेति चेत् ॥
अनन्तावयवत्वे तु सर्वदिग्व्याप्तिरित्यसत् ।
तावद्देशेऽपि सौक्ष्म्येणानन्तावयवसंभवात् ॥
सर्वापकृष्टः संघातस्सत्त्वादेरणुरित्यपि ।
सांख्यैरुक्तं निरंशाऽपि प्रकृतिश्चेति भाषितम् ॥

निरंशा प्रकृतिस्सैव परिणामविभागिनी ।
अनन्तांशात्मिका चेति विरुद्धं सांख्यदर्शनम् ॥
8 शास्त्रैकविषयत्वे च परमाणोर्न सिद्ध्यति ।
नित्यस्पर्शादियोगित्वं भूतानां विकृतित्वतः ॥
निर्धर्मका निराधारा प्रकृतिर्यद्वदिष्यते ।
निर्धर्मका निराधारा अणवः बौद्धसम्मताः ॥
आगमालम्बने कार्यं कारणे प्रतितिष्ठति ।
अन्ततः प्रकृतिस्साऽपि परे ब्रह्मणि तिष्ठति ॥
तदपि स्वे महिम्नीति यदि वा नेति चेत्यपि ।
श्रूयतेऽतो निराधारं सर्वाधारं परं पदम् ॥
वाचक्नवीयाज्ञवल्क्यसंवादोऽप्ययमेव हि ।
बृहदारण्यकेऽधीतः विचारोऽसौ महान् ततः ॥
9 जगत्कारणमेवेदं सर्वैर्जिज्ञास्यते ततः ।
सधर्मकांश्च साधारान् पीलून् वैशेषिका विदुः ॥
तेभ्योऽपिच परां सूक्ष्मां प्रकृतिं कापिला विदुः ।
ततोऽपि परमं सूक्ष्मं ब्रह्मौपनिषदा विदुः ॥
10 सृष्टिप्रलयसंतानं शाबरा न प्रपेदिरे ।
न कदाचिज्जगच्चैतदनीदृगिति तन्मतम् ॥
केचित्पौराणिकाः कल्पमेकमेव विदुः ततः ।
तेषामेका सृष्टिरिष्टा प्रलयोऽप्येक एव हि ॥

एत एव तु कल्पान्तजीववादिन ईरिताः ।
परे सर्वे सृष्टिभङ्गप्रवाहानादिवादिनः ॥
तस्मात्कारणवाक्यानि सर्वासूपनिषत्स्वपि ।
लयपूर्वां सृष्टिमाहुः सृष्टिपूर्वो लयो यतः ॥
तत्र वैशेषिकाः सर्वजीवानां मुक्तिवादिनः ।
ते वै मताः सृष्टिभङ्गप्रवाहस्यान्तवादिनः ॥
ये पुनर्नित्यसंसारवादिवेदान्तिनो बुधाः ।
तेषां सृष्टिप्रवाहोऽयमनन्तोऽनादिरप्यसौ ॥
नित्यसंसार्यभावेऽपि जीवानन्त्यवचोबलात् ।
लीलाभूतिर्भगवतोऽनन्तेति सुधियो विदुः ।

(25) शरीरवादः

1 शरीरस्य स्वरूपं हि विज्ञेयं सर्ववादिभिः ।
तद्धेयं क्षणिकं चात्मभ्रमकारणमुच्यते ॥
अनुकूलो हि सर्वेषामात्मा, तादात्म्यविभ्रमात् ।
आनुकूल्यधिया प्रीतिर्देहे यादृशि तादृशि ॥
चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयत्वं शरीरत्वं निरुच्यते ।
इष्टप्राप्त्याद्यनुगुणा क्रिया चेष्टेति कथ्यते ॥
आधेयत्वं विधेयत्वं शेषत्वं नियतं तु यत् ।
शरीरशब्दप्रवृत्तिनिमित्तमिति केचन ॥

वायवीयं तैजसं च जलीयं पार्थिवं तथा ।
चतुर्विधं शरीरं स्यात् कारणं च चतुर्विधम् ॥
भवेदुपष्टम्भकं तु प्रत्येकमितरत्त्रयम् ।
आरम्भकं सजातीयमन्यथा जातिसंकरः ॥
तच्छरीरं द्विधं ज्ञेयं मानसं यौनमित्यपि ।
देवर्ष्याद्या मानसास्स्युः योनिजास्त्वितरे मताः ॥
वाय्वादिषु हि लोकेषु तेते देहा व्यवस्थिताः ।
इति तार्किकसिद्धान्तः तत्र मीमांसका विदुः ॥
2 पार्थिवा एव देहाः स्युः ते सर्वे योनिजा मताः ।
देवाश्च देवलोकाश्च न प्रमाणपदे स्थिताः ॥
विग्रहो हविरादानं युगपत्कर्मसन्निधिः ।
तृप्तिः फलप्रदानं च देवतानां न विद्यते ॥
ततश्चैतन्यरहितदेवतावादिनस्त्विमे ।
इन्द्रादिशब्दरूपास्ताः ते शब्दाः स्वाभिधायिनः ॥
सर्वं शब्दात्मकमिति हर्यादिषु वदत्स्विह ।
शब्दात्मदैवतविदां कोऽपराधोऽतिरिच्यते ॥
3 अत्रेदमवधातव्यं कुमारिलमुखोद्गतम् ।
ग्रहैकत्वाधिकरणतन्त्रवार्तिकसंगतम् ॥
ऋग्वेदादिसमूहेषु क्षेत्रज्ञा ये प्रतिष्ठिताः ।
तेषां वाऽयमभिप्रायः स्याद्विवक्षाऽविवक्षयोः ॥

महाभौतिकदेहस्थाः यथाऽऽत्मानस्सचेतनाः ।
किंचिदर्थं विवक्षन्ति न विवक्षन्ति चापरम् ॥
तेषामन्तर्गताऽपीच्छा तद्वाक्यार्थविचारिभिः ।
ज्ञायते शब्दशक्त्यैव स्फुरन्तीव बहिःस्थिता ॥
देहभेदप्रकाराश्च कर्मशक्तिवशानुगाः ।
प्रकृत्यारम्भवैचित्र्यात् दृश्यन्ते परमात्मनाम् ॥
पार्थिवावयवप्रायाः शेषतोयाद्यनुग्रहात् ।
जरायुजादयो देहाः दृष्टा भुवि चतुर्विधाः ॥
भूतान्तरानुबद्धेन तोयेनैव विनिर्मिताः ।
श्रूयन्ते वारुणे लोके देहाः स्वच्छाङ्गलक्षणाः ॥
अन्तरिक्षे च बहवः प्राणिनो वातनिर्मितैः ।
भ्रमन्ति लघुभिस्सूक्ष्मैः देहैर्भूम्याद्यनुग्रहात् ॥
स्वर्लोके तैजसप्रायाः देहाः शुद्धप्रभान्विताः ।
आप्यायन्ते विकीर्णेन भानवीयेन तेजसा ॥
ये हि स्वर्गं यन्ति लोकं जनाः पुण्यकृतस्त्विह ।
ज्योतींषि तेषामेतानि नक्षत्राणीति वै श्रुतिः ॥
तथा व्योमशरीरोऽपि परमात्मा श्रुतौ श्रुतः ।
इज्यते वारिणा नित्यं यः खं ब्रह्मेति चोदितः ॥
रूपस्पर्शादयो येऽपि महाभूतगुणाः स्थिताः ।
प्रत्येकमात्मनां तेपि देहास्संभोगहेतवः ॥

4 शब्दब्रह्मेति यच्चेदं शास्त्रं वेदाख्यमुच्यते ।
तदप्यधिष्ठितं सर्वं एकेन परमात्मना ॥
तथर्ग्वेदादयो देहाः प्रोक्ता येऽपि पृथक्पृथक् ।
भोग्यत्वेनात्मनां तेऽपि चैतन्यानुगतास्सदा ॥
तेषां चान्तर्गतेच्छानां वाक्यार्थप्रतिपादने ।
विवक्षा वाऽविवक्षा वा ज्ञायते शब्दशक्तितः ॥
विधिशक्त्या गृहीतं यत्तत्सर्वं हि विवक्षितम् ।
तथैव तु परित्यक्तं व्याख्येयमविवक्षितम् ॥
शब्दब्रह्मात्मनोऽप्येवं सर्ववेदानुसारिणः ।
विवक्षा वाऽविवक्षा वा वक्तव्या विधिशक्तितः ॥
अनादिनिधनेऽप्येवं वेदे वेदार्थगोचरे ।
व्याख्यानं मुख्यवृत्त्याऽपि स्याद्विवक्षाऽविवक्षयोः ॥
5 अथ कापिलसिद्धान्ते शरीरपरिकल्पना ।
विस्तरेणोदिता तत्र सारांशोऽयं निरूप्यते ॥
विशेषाः स्थूलनामानः पञ्च स्युः भूतलक्षणाः ।
तन्मात्रलक्षणाः पञ्चाविशेषास्सूक्ष्मलक्षणाः ॥
विशेषाः त्रिविधाः ज्ञेयाः सूक्ष्मदेहोऽत्रचादिमः ।
स्थूलदेहो द्वितीयः स्यात् प्रभूतस्तदनन्तरः ॥
आ सर्गात्प्रतिसर्गान्तं याः पुंसां सन्ति मूर्तयः ।
बुद्ध्यहंकारतन्मात्रेन्द्रियसंहतिलक्षणाः ॥

ते सूक्ष्मदेहाः नियताः लिङ्गाख्याः प्रथमा इमे ।
षाट्कोशिकाः स्थूलदेहाः ये मातापितृसंभवाः ॥
निवर्तन्ते प्रजायन्ते प्रभूताः स्थावरा मताः ।
घटादीनां निवेशोऽत्रेत्येवं त्रैविध्यमीरितम् ॥
इति सांख्योक्तसिद्धान्तं प्राय इच्छन्ति सूरयः ।
नैयायिकादयो नोपयन्तीदं तत्त्वविप्लवात् ॥
विभ्वात्मवादे गत्युक्तिस्सर्वत्रैवौपचारिकी ।
जन्मान्तरोपपत्तिश्च स्थितस्यैव भविष्यति ॥
कुमारिलश्चात्मवादे मीमांसाश्लोकवार्तिके ।
अन्तराभवदेहस्तु निषिद्धो विन्ध्यवासिना ॥
तदस्तित्वे प्रमाणं हि न किञ्चिदिति पद्यतः ।
विन्ध्यवासिमतं प्राह सांख्यस्स्याद्विन्ध्यवास्यसौ ॥
6 तथौपनिषदैः कैश्चिल्लिङ्गदेहो मतो यथा ।
पञ्चप्राणमनोबुद्धिदशेन्द्रियसमन्वितम् ॥
अपञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्माङ्गं भोगसाधनम् ।
परं चाप्यपरं चेति द्विधा तत्परिकीर्तितम् ॥
परं हिरण्यगर्भीयं तन्महत्तत्त्वशब्दितम् ।
अपरं त्वस्मदादीनां सोऽहंकार इतीर्यते ॥
पञ्चीकृतेभ्यो भूतेभ्यश्चान्येषां सृष्टिरिष्यते ।
लिङ्गं मतं भेदविदां भेदाभेदविदामपि ॥

7 प्राग्देहाकृष्टभूतांशसंघसंपत्तिमान् पुमान् ।
अणुस्संसरतीत्येकैर्लिङ्गदेहो न चेष्यते ॥
भूतसूक्ष्मपरिष्वङ्गविषयं शास्त्रमुच्यते ।
गतिसाधनमेवेदं न चेष्टं भोगसाधनम् ॥
आरम्भवादे सांकर्यं जात्यादेः स्थूल इष्यते ।
उपाधिसंकरन्यायादिति केचन जानते ॥
कुर्वद्रूपत्वाख्यजातिवादभङ्गाय संकरः ।
दोषोऽभ्युपगतः प्राज्ञैरिति तत्त्वविदो विदुः ॥
8 अवस्थावादपक्षे तु नैव तस्य प्रसञ्जनम् ।
इत्याभिप्रेत्य बहुभिः शरीरं पाञ्चभौतिकम् ॥
क्षणिकं हेयमित्यादि बहुधा विजुगुप्स्यते ।
संरम्भस्तु तदत्यन्तभिन्ननित्यात्मधीफलः ॥
तत्सिद्धिश्च विरागस्य हेतुस्स्यादिति तन्मतम् ।
क्षणात्मवादे देहात्मवादे तत्सूपपादितम् ॥
द्रष्टॄणामिह सर्वेषामास्थाया हि परिक्षयः ।
परमोद्देश्य इति च सर्वथा सुव्यवस्थितम् ॥

(26) इन्द्रियवादः

1 शरीरस्यैवेन्द्रियत्वात् नेन्द्रियं नाम किंचन ।
इति शाक्यविशेषा हि प्राहुर्लौकायता अपि ॥

त्वगेकमेव वा तत्स्यात् मनो वाऽप्येकमेव वा ।
इति कश्चित्सौगतानां सिद्धान्त इति गम्यते ॥
कल्प्यते शक्तिभेदश्चेत् शक्तिरेवेन्द्रियं भवेत् ।
इत्ययुक्तं, वरं धर्मिकल्पनाद्धर्मकल्पना ॥
शक्तिशक्तिमतोरैक्यं प्रायशस्सर्वसम्मतम् ।
शक्तीनां नामभेदेन व्यवहारोऽनवस्थितः ॥
पुमिन्द्रियं स्त्रीन्द्रियं च द्विधा वेन्द्रियमित्यपि ।
प्राचीनानां व्यवहृतिः पूर्वाचार्यैरनूदिता ॥
क्षीणानि चक्षुरादीनि रूपादिष्वेव पञ्चसु ।
न षष्ठमिन्द्रियं द्रव्यग्राहकं विद्यते बहिः ॥
नैकं रूपाद्यभेदो वा दृष्टं चेन्नेन्द्रियेण तत् ।
अक्षानेकत्ववैयर्थ्यं स्वार्थे भिन्नेऽपि शक्तिमत् ॥
न सुखादिप्रमेयं वा मनो वाऽस्तीन्द्रियान्तरम् ।
अनिषेधादुपात्तं चेदन्येन्द्रियमतं वृथा ॥
नैकमित्यादिपद्यस्याप्यर्थ एषोऽवधार्यताम् ।
दर्शनस्पर्शनाभ्यां यद्ग्राह्यं ग्राहकभेदतः ॥
रूपादिवत्ताद्भिद्येत नोचेद्रूपाद्यभेदिता ।
सामान्यं पञ्चभिर्ग्राह्यं दृष्टं चेत्तदसन्मतम् ॥
तथापीन्द्रियसांकर्ये व्यर्था तद्भेदकल्पना ।
त्वगेकमेवेन्द्रियं स्यात् नैकार्थे नैकशक्तिमत् ॥

इत्येवं भिक्षुवाक्यस्य भावो रत्नाकरोदितः ।
एकेन्द्रियादिवादस्तु गौतमेनाप्यनूदितः ॥
तद्भेदसाधनं तत्रानात्मसाधनसंगतम् ।
2 यः पञ्चेन्द्रियसिद्धान्तः तत्रापि श्रोत्रचक्षुषी ॥
अप्राप्यकारिणी स्यातामिति सौगतनिर्णयः ।
आभिमुख्यं च संबन्धोऽयस्कान्तादिवदिष्यते ॥
अनवस्थाऽतिप्रसङ्गौ संबन्धस्य ग्रहेऽग्रहे ।
प्राप्तेश्च कल्पनाऽन्येषामेषां त्वनुपलब्धितः ॥
प्राप्त्यभावास्सिद्ध एव स्वभावान्नियमः स्थितः ।
सान्तरं ग्रहणं न स्यात्प्राप्तौ दूरादिदर्शनात् ॥
महीमहीधरादीनां महतां चाग्रहो भवेत् ।
कणभक्षोऽक्षपादश्च जैमिनिः कापिलस्तथा ॥
सर्वेन्द्रियाणामेते स्युः प्राप्यकारित्ववादिनः ।
चक्षुश्श्रोत्रेतरेषां तु केचित्ताथागतास्तथा ॥
तत्रापि चक्षुर्भिन्नानां तेषां स्याद्वादिनस्तथा ।
3 अथ नैयायिकानां स्यादेष सिद्धान्तसंग्रहः ॥
भौतिकानीन्द्रियाणिस्युः पञ्च बाह्यानि देहवत् ।
न महान्ति न चाणूनि मध्यमानीति निर्णयः ॥
अणु नित्यं द्रव्यमपि मनोऽन्तःकरणं मतम् ।
तत्र पञ्चभिरप्यक्षैः बोधस्सत्तागुणत्वयोः ॥

द्रव्यमाने पुनर्द्वाभ्यां रूपादावेकशः स्थितिः ।
मनोग्राह्यं सुखं दुःखमिच्छा द्वेषो मतिः कृतिः ॥
स मानसीनो जनानामात्माऽप्येतैर्गुणैस्सह ।
अतीन्द्रियाणीन्द्रियाणि सिद्धयन्ति ह्यनुमानतः ॥
प्रतिदेहं विभिन्नानि षडेतान्यखिलात्मनाम् ।
शरीरावयवा एव स्युः कर्मेन्द्रियशब्दिताः ॥
शब्देतरोद्भूतगुणविशेषानाश्रयश्च सन् ।
ज्ञानहेतुमनोयोगस्याश्रयो हीन्द्रियाभिधः ॥
सर्वाणि प्राप्यकारीणि कारकाणि यतो धियाम् ।
संसृष्टं कारकं लोके तत्फलायावकल्पते ॥
सन्निकर्षस्ततस्सिद्धः सत्तयैवोपकार्यसौ ।
नानवस्थातिप्रसंगौ स्वभावनियतं जगत् ॥
नीरन्ध्रेऽप्यम्बुकाचादौ दृक्प्रभादेः प्रवेशनम् ।
वस्तुस्वभाववैचित्र्यात् इत्येतत्सर्वसम्मतम् ॥
लौकिकोऽलौकिकश्चेति सन्निकर्षो द्विधेष्यते ।
प्रथमः षड्विधस्तत्र द्वितीयस्त्रिविधो मतः ॥
पृथ्वग्रं चाक्षुषं तेजोऽधिकग्रहणशक्तिमत् ।
शालिकाचार्यसिद्धान्ते चक्षुर्बाह्येन तेजसा ॥
महच्चक्षुर्जनयति गृह्यते तेन चाधिकम् ।
तथा शाखाचन्द्रमसोर्यौगपद्येन च ग्रहः ॥

बाह्येन ज्योतिषा चक्षुःज्योतिस्संवलितं सदा ।
दूरस्थं विपुलं चापि गृह्णातीति विदुः परे ॥
4 अथ सांख्यास्त्विन्द्रियाणि विभून्येकादशेति च ।
प्राहुराहंकारिकाणि वृत्त्या च व्याप्नुवन्त्यपि ॥
ज्ञानकर्मात्मकं चेदं मनोऽन्तःकरणं मतम् ।
अहंकारश्च बुद्धिश्चाप्यन्तःकरणमिष्यते ॥
तथाच त्रिविधा तेषामन्तःकरणकल्पना ।
आनुमानिकतैतेषां प्रधानादिवदेवहि ॥
सात्त्विकाहंकार एषामुपादानमिति स्थितिः ।
अहंकारविशेषाः स्युरिन्द्रियाणीति केचन ॥
हैरण्यगर्भा इति हि प्राह सर्वार्थसिद्धिकृत् ।
कर्मेन्द्रियं राजसं स्यादिति केचन तान्त्रिकाः ॥
प्रतिदेहं जनिध्वंसौ स्यातामस्येति केचन ।
5 मीमांसकास्तु प्रायेण नैयायिकमते स्थिताः ॥
विजृम्भन्तेऽभीष्टसिद्ध्यै श्रोत्रे शब्दे च भूयसा ।
दिशश्श्रोत्रमितिश्रुत्या श्रोत्रं ते दैशिकं विदुः ॥
ध्वनिजन्यस्तु संस्कारः शब्दग्रहणकारणम् ।
6 न श्रोत्रमिन्द्रियमिति भर्तृमित्रादयो विदुः ॥
कुमारिलस्त्विमं पक्षं निरास्थत् श्लोकवार्तिके ।
विषयेन्द्रियदेशानां संस्कारमपि चेच्छति ॥

वीचीतरङ्गादिनीतिं शब्दानित्यत्वसाधकाः ।
ध्वनीनामुपगच्छन्ति ध्वनितत्त्वं पुरः स्थितम् ॥
7 मनसो वैभवं प्राहुः संयोगमजयोरपि ।
अदृष्टान्नियमः सिद्ध्येत् अदृष्टशरणा हि ते ॥
ज्ञानस्यायौगपद्यार्थमणुत्वं तार्किका विदुः ।
दूरस्मृत्युपपत्त्यर्थं वैभवं वैदिका विदुः ॥
विकासो वृत्तिभेदो वाऽऽप्यायकप्रचयोऽपि वा ।
पृथुत्वहेतुः वेगस्तु यौगपद्यभ्रमावहः ॥
नैवाभिनिविशन्तेऽन्यप्रकारेषु बुधा इमे ।
8 अथौपनिषदानामप्येष सिद्धान्तसंग्रहः ॥
देहेन्द्रियमनःप्राणधीभ्योऽन्योऽनन्यसाधनः ।
आत्मा सेद्धव्य इति हि ब्रह्म मीमांस्यते बुधैः ॥
इन्द्रियस्य तु देवत्वं कारणत्वमुपास्यता ।
प्राणत्वाद्यं श्रूयतेऽतः स एवात्मेति संशयः ॥
एतादृक्संशयोच्छित्त्यै भगवान् बादरायणः ।
प्रावर्तयत्प्राणपादं द्वितीये लक्षणेऽन्तिमम् ॥
नेन्द्रियेष्वनुमानं स्यात् अप्राप्ते शास्त्रमर्थवत् ।
ज्ञानेन्द्रियाणां क्लृप्तिश्चेन्न किं कर्मेन्द्रियेषु सा ॥
करणत्वेनेन्द्रियत्वं दोषदीपाञ्जनादिषु ।
प्रसज्यते सहायत्वव्यवस्था त्वनियन्त्रिता ॥

उद्विग्नो ह्यन्धकारेण क्वचिदेवं ब्रवीत्यपि ।
किं चक्षुषा ममैतेन दृष्टं दीपेन यन्मया ॥
अतीन्द्रियस्येन्द्रियस्यासिद्धिसिद्धिविकल्पतः ।
पक्षाप्रसिद्ध्यादिदोषात् विजृम्भन्ते न युक्तयः ॥
शुद्धाहंकृत्युपादानं द्रव्यमिन्द्रियमुच्यते ।
भूतैराप्यायनं तेषां मनोऽन्नमयताश्रुतेः ॥
इन्द्रियाणां भौतिकत्वं केचिद्वेदान्तिनो विदुः ।
पञ्चभूतमयत्वं च मनसः प्रतिपेदिरे ॥
शाब्दापरोक्षसिद्धान्ते मनो नेन्द्रियमिष्यते ।
कैश्चिदात्माऽऽपरोक्ष्यार्थं मनः करणमुच्यते ॥
9 एकं मनोऽन्तःकरणं नैयायिकमते मतम् ।
द्विविधं भास्कराः प्राहुः त्रिविधं कापिला विदुः ॥
चतुर्विधं केचिदाहुः तदुक्तिरवधार्यताम् ।
मनो बुद्धिरहंकारश्चित्तं करणमान्तरम् ॥
संशयो निश्चयो गर्वः स्मरणं विषया इति ।
तत्र कापिलभिन्नास्तु वृत्तिभेदाद्द्विदां विदुः ॥
मनः स्मृत्यनुभूतिभ्यां द्विधा भास्करभाषितम् ।
श्रुतिश्च विविधा मानं सर्वेषामिह विद्यते ॥
तदर्थनिर्णायकं च सूत्रं तात्पर्यभेदतः ।
व्याख्यायते यदि तदा कः पक्षः श्रुतिसम्मतः ॥

अप्राप्यकारिणी श्रोत्रचक्षुषी इति सौगताः ।
चक्षुर्मात्रं विदुर्जैनाः सर्वेऽन्ये प्राप्तिवादिनः ॥
एवमिन्द्रियवृत्तान्ते विकल्पोऽत्र निरूपितः ।
प्रायस्सर्वार्थसिद्ध्यादौ विस्तरोस्यावलोक्यते ॥

(27) आत्मवादः—लौकायतात्मा.

1 अथ प्रस्तूयतेऽत्रात्ममीमांसा सर्वतोमुखी ।
यत्कृते सर्वमीमांसाः तीर्थकृद्भिः प्रवर्तिताः ॥
तथाहि लौकायतिकाः परलोकापवादिनः ।
चैतन्यखचितात्कायान्नात्माऽन्योऽस्तीति मन्वते ॥
भीष्मः खल्वपवर्गोऽयं भद्रं बह्वत्र लुप्यते ।
संसारो हि वरं यत्र सुखलेशः कियानपि ॥
स्वर्गेण चिरसाध्येन मृतिव्यवहितेन किम् ।
अत्र भोजनशय्यादि सुखमेव त्रिविष्टपम् ॥
चैतन्यं भौतिकी शक्तिः न तत्त्वान्तरमिष्यते ।
भूतसंघावस्थितिर्वा धीसामग्र्यथवा भवेत् ॥
शरीरवृद्धौ तद्वृद्धिः तत्क्षये चापि तत्क्षयः ।
मूर्छा चैतन्यविकृतिः अभिघातादितो भवेत् ॥
दृश्यते चेतना पट्वी ह्यन्नपानादितृप्तितः ।
ब्राह्मीघृतादिसंस्कारे स्यात्पटुप्रज्ञता तथा ॥

चलन्ति दध्यवयवाः काले नातिदवीयसि ।
स्वेदादिनैव वर्षासु पूतरक्रिमिलक्षणाः ॥
गौरोऽहमस्मि स्थूलोऽहं कृशोऽहमिति सम्मताः।
व्यवहाराश्चानुभवाः भूतचैतन्यसाक्षिणः ॥
अहं जानामीति मतिः शरीरमवलम्बते ।
इत्याहुरात्माऽप्रत्यक्षवादिनोऽपि हि तार्किकाः ॥
मम पाणिर्भुजो वेति भिन्नत्वादुपपद्यते ।
शरीरं तु ममेत्येषा कल्पना राहुमूर्धवत् ॥
2 चैतन्यं यदि शक्तिः स्यात् शक्तिशक्तिमतोर्यदा ।
भेदस्तदा शक्तिनाम्ना तत्त्वान्तरपरिग्रहः ॥
इति शङ्का नैव कार्या संघातश्शक्तिरिष्यते ।
ज्ञानं नाम पदार्थो यः स नास्त्येवेति तन्मतम् ॥
ज्ञानस्योत्पादिका याऽस्ति सामग्री सर्वसम्मता ।
तयैव सर्वनिर्वाहात्किमन्तर्गडुनाऽमुना ॥
देहधातुविशेषो वा विकासो वाऽस्य कश्चन ।
ज्ञानमित्येव वक्तव्यं वरं धार्मिप्रकल्पनात् ॥
हृदयस्थः पित्तभागः प्रकाश इति वैद्यकम् ।
एवमाद्यास्तु सर्वार्थसिद्धौ वादाः ह्यनूदिताः ॥
स एव भूतचैतन्यवादिनः परमाशयः ।
अन्यथा तस्य चैतन्यं तस्यापीत्यनवस्थितिः ॥

सुखदुःखेच्छादयोऽपि परिणामा हि भौतिकाः ।
संघातवेद्यास्ते सर्वे न संज्ञा प्रेत्य विद्यते ॥
भूतेभ्यश्च समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति ।
इतिहि ब्राह्मणं येयं प्रेते संशय इत्यपि ॥
नाचिकेतानुयोगश्च सिद्धान्तं द्रढयत्यमुम् ।
एष देहात्मसिद्धान्तः सुराचार्यप्रवर्तितः ॥
चार्वाककृतभाष्यादिनिबन्धैः प्रचयं गतः ।
कामनीतिस्तेयशास्त्रप्रमुखं तस्य विस्तरः ॥
शेषः सिद्धान्तसारांशः सूचितः प्रायशः पुरा ।
प्रमेयसंग्रहे सोऽपि वैशद्यायावधार्यताम् ॥

(28) सौगतात्मा.

1 अथो तथागताः प्राहुः किं पुंसा कल्पितेन वा ।
ज्ञानमात्रेण सर्वोऽपि व्यवहारोऽवकल्पते ॥
ज्ञानस्यैव प्रभेदोऽयमिच्छाद्वेषसुखादिकः ।
न वस्त्वन्तरमित्येवं न ततोऽन्यप्रकल्पनम् ॥
गुणत्वमपि नास्त्यस्य यतोऽधिष्ठानकल्पना ।
न गुणव्यतिरिक्तश्च गुणी नामास्ति कश्चन ॥
स्मृतिवत्परिहर्तव्यौ कृतनाशाकृतागमौ ।
तत्संतानोपसंक्रान्त्या कुसुमे बीजरागवत् ॥

यस्मिन्नेव हि संताने आहिता कर्मवासना ।
फलं तत्रैव बध्नाति कार्पासे रक्तता यथा ॥
वर्षातपाभ्यां किं व्योम्नः चर्मण्यस्ति तयोः फलम् ।
चर्मोपमश्चेत्सोऽनित्यः खतुल्यश्चेदसत्समः ॥
बुद्धिजन्मनि पुंसश्च विकृतिर्यद्यनित्यता ।
अथाविकृतिरात्माऽयं प्रमातेति न युज्यते ॥
अत्यन्तमलिनः कायः देही चात्यन्तनिर्मलः ।
उभयोरन्तरं ज्ञात्वा कस्य शौचं विधीयते ॥
2 निर्धर्मका निराधारा निर्मूर्तिश्चित्तसंततिः ।
प्रतिक्षणं जायमाना दीपसन्तानसन्निभा ॥
ज्वालाबुद्बुदवद्वृत्तिः मातृकुक्षिप्रवेशभाक् ।
सा ततो विषयज्ञप्तिः चित्ताभिज्वलनात्मिका ॥
कामक्रोधौ लोभमोहौ रागद्वेषौ च सैव हि ।
रागो द्वेषश्च मोहश्च यद्युत्कटदशां गतः ॥
कामः क्रोधो लोभ इति व्यवहारस्य गोचरः ।
देवासुरमनुष्याणां भेदोऽतो गुणभेदतः ॥
आत्मा यद्यप्रतीत्य स्यात्क्लेशानां नैव संक्षयः ।
अतो नैरात्म्यसिद्धान्तः बौद्धानामिति निर्णयः ॥
आत्मग्रहो महामोहः प्रथमं तन्निवृत्तितः ।
मम किं नाहमेवेति विरंस्यति ममग्रहः ॥

तस्मादादावहंकारममकारप्रहाणतः ।
निर्वाणद्वारमेवैतत्सिद्धं नैरात्म्यदर्शनम् ॥

(29) सांख्यात्मा.

1 अथ कापिलसिद्धान्तरीत्याऽऽत्माऽत्र विचार्यते ।
विदितः सांख्यपुरुषः सोऽसौ पुष्करपर्णवत् ॥
श्रुतिर्ह्यपौरुषेय्येषा कल्पादौ कपिलादिभिः ।
स्मर्यते चापि विद्वद्भिः सर्वा सुप्तप्रबुद्धवत् ॥
तथा स्मृतीतिहासाद्याः प्रमाणं वेदमूलकाः ।
प्रकृतेः पुरुषस्यापि विवेकस्तैर्विशोध्यते ॥
तच्छ्रुत्वा शास्त्रयुक्त्या च व्यवस्थाप्य ततः परम् ।
निरन्तरं दीर्घकालमादरेण च सेवितात् ॥
साक्षात्काराच्च विज्ञानात् मुच्यते भावनामयात् ।
अभेदधीरुपादेयाऽन्येषामेषां तु भेदधीः ॥
2 तत्र युक्तिस्तु शास्त्रीया प्रयुक्ता तैः पुनर्यथा ।
अतिरिक्तोऽस्ति पुरुषः ह्यव्यक्तादेर्यतस्त्विमे ॥
अव्यक्ताद्याः परार्थाः स्युः संघातत्वात् गृहादिवत् ।
परस्स्यात्संहतो देहो दर्शनादिति चेन्न तत् ॥
तस्यापि संहतत्वेन स्यात्संघातान्तरार्थता ।
नच सत्यां व्यवस्थायामायुष्मत्यनवस्थितिः ॥

स व्यापकपरार्थत्वव्यावृत्त्या चागुणो मतः ।
पुरुषोऽयमधिष्ठाता बुद्ध्यादेरगुणत्वतः ॥
भोक्ता च पुरुषस्सिद्ध्येत् बुद्ध्यादेर्भोक्त्रभावतः ।
पुमान्न कस्यचित्कर्ता किन्तु भोक्तैव केवलम् ॥
इति सांख्यास्त्वाहुरिति न्यायरत्नाकरोदितम् ।
द्रष्टा वा पुरुषश्चेष्टः बुद्ध्यादेर्दृश्यभावतः ॥
शास्त्राणां च महर्षीणामन्येषां दिव्यचक्षुषाम् ।
कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च स्यात्पुमान् प्रकृतेः परः ॥
दुःखात्मका हि बुद्ध्याद्याः स्वभावो दुरतिक्रमः ।
वियोगश्शक्यसंपादः पुरुषस्यातदात्मनः ॥
तस्माद्योऽस्ति स आत्मेति सिद्धः सत्त्वविलक्षणः ।
सुखदुःखव्यवस्थातः नाना सर्वगतश्च सः ॥
शरीरभेदाद्भेदश्चेत्स्यात्पाण्यादिविभेदतः ।
मध्यस्थः केवलः साक्षी द्रष्टाऽकर्तेति निश्चितः ॥
चिदभिव्यक्तिचित्सङ्गचिच्छायापत्तिलक्षणात् ।
संनिधेः बुद्धिरप्येषाऽचेतना चेतनायते ॥
विमृश्य शास्त्रयुक्त्यैवं कूटस्थं ज्ञानलक्षणम् ।
साक्षात्कृत्वाऽन्यताख्यात्याऽनन्तं कैवल्यमश्नुते ॥
इति कापिलसिद्धान्तसिद्धः पुरुष ईरितः ।
प्रमेयसंग्रहोक्तं यत्तदप्यत्रोपयुज्यताम् ॥

(30) वैशेषिकात्मा.

1 कणादीयात्मचर्चायां यत्तु संगृह्य भाषितम् ।
सम्यक् प्रशस्तपादेन क्रियते तस्य संग्रहः ॥
अप्रत्यक्षोऽपि सौक्ष्म्येण युक्त्याऽसावधिगम्यते ।
शब्दोपलब्ध्यनुमितश्रोत्रादि करणं पुनः ॥
कर्तृप्रयोज्यं वास्यादि करणं सर्वसम्मतम् ।
प्रयोजकश्च श्रोत्रादेः करणस्यानुमीयते ॥
मनश्शरीरेन्द्रियाणामज्ञत्वान्न प्रयोक्तृता ।
शरीरस्य न चैतन्यं भौतिकत्वाद्धटादिवत् ॥
इन्द्रियाणां न चैतन्यं करणत्वेन कल्पनात् ।
क्वचिद्विनष्टेष्वेतेषु विषयासन्निधावपि ॥
अनुस्मृतिः कस्य भवेत् प्रयोक्तर्यपिचासति ।
मनसश्च न चैतन्यं तस्यापि करणत्वतः ॥
करणान्तरक्लृप्तौ च यौगपद्यं धियां भवेत् ।
परिशेषात्स्वकार्येण ज्ञानेनात्माऽधिगम्यते ॥
प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च शरीरसमवायिनी ।
हिताहितप्राप्तिपरिहारयोग्ये क्रिये हि ते ॥
ताभ्यां प्रयत्नवान् देहस्याधिष्ठाताऽनुमीयते ।
प्रयत्नवान् सारथिर्हि ज्ञायते रथकर्मणा ॥
वायौ देहगृहीते तु विकृतं कर्म दृश्यते ।
तेन भस्त्राध्मायितेव सिद्ध्यत्यात्मेति कथ्यते ॥

देहस्य वृद्धिसंभग्नक्षतसंरोहणादिभिः ।
गृहाध्यक्ष इवात्माऽपि देहाध्यक्षोऽनुमीयते ॥
यदिष्टादानकरणसंबन्धस्य नियामकम् ।
मनसः कर्म तेनापि सिद्ध्यत्यात्मा यथापुनः ॥
गृहकोणोपलप्रेरयितृदारकवत् तथा ।
दारुयन्त्रप्रयोक्तेव निमेषोन्मेषकर्मणा ॥
नायनालोचनात्पश्चाद्रसस्य स्मरणे सति ।
रसनं यद्विक्रियते तेनात्मोभयबुद्धिमान् ॥
यथाऽनेकगवाक्षान्तर्गतप्रेक्षक इष्यते ।
2 सुखेच्छाद्वेषयत्नैश्च गुणैर्गुण्यनुमीयते ॥
विषयेन्द्रियदेहादियोगं नार्हन्ति ते गुणाः ।
अयावद्द्रव्यभावित्वात् तथा प्रादेशिकत्वतः ॥
अहंकारेणैकवाक्यभावाभावात्तथैवच ।
बाह्येन्द्रियाप्रत्यक्षत्वात् अतिरिक्ताश्रया हि ते ॥
यथा पृथिव्यादिशब्दाः पृथिव्याद्यर्थगोचराः ।
तथाहंशब्द इत्यादिरिति भाष्यार्थसंग्रहः ॥

(31) नैयायिकात्मा.

1 अथ गौतमसूत्रेषु तद्भाष्ये चापि पाक्षिले ।
निर्णीतं यच्चात्मतत्त्वं क्रियते तस्य संग्रहः ॥

क्रियाकरणयोः कर्त्रा संबन्धस्यानुकीर्तनम् ।
व्यपदेशस्स द्विविधः प्रथमोऽयं निशम्यताम् ॥
प्रासादो ध्रियते स्तम्भैः वृक्षो मूलैश्च तिष्ठति ।
इत्यत्र समुदायस्यावयवेनानुकीर्तनम् ॥
तथैवान्येन चान्यस्य व्यपदेशोऽपि दृश्यते ।
प्रपश्यति प्रदीपेन कुठारेण प्रवृश्चति ॥
अत्रास्ति व्यपदेशोऽयं यथा पश्यति चक्षुषा ।
मनसा च विजानाति बुद्ध्या मीमांसते पुनः ॥
शरीरेण सुखं दुःखं तथाऽनुभवतीत्यपि ।
व्यपदेशस्योभयथा सिद्धेः तन्नावधार्यते ॥
किमत्रावयवेन स्यात् संघातस्यानुकीर्तनम् ।
अथवाऽन्येन चान्यस्येत्येवं संशयसंभवे ॥
2 यद्दर्शनस्पर्शनाभ्यामेकार्थग्रहणादिति ।
न्यायाचार्यकृतं सूत्रं तद्भाष्यमिह वर्ण्यते ॥
दर्शनेन गृहीतोऽर्थः स्पर्शनेनापि गृह्यते ।
यमद्राक्षं चक्षुषा तं स्पर्शनेन स्पृशाम्यहम् ॥
यं चास्पार्क्षं स्पर्शनेन तं पश्यामीह चक्षुषा ।
इत्येकविषयावेतौ प्रत्ययावेककर्तृकौ ॥
प्रतिसंधानविषयौ नच संघातकर्तृकौ ।
तथैव प्रत्ययावेतौ नेन्द्रियेणैककर्तृकौ ॥

तद्योऽसौ चक्षुषा चैव त्वचा चैकार्थलम्भुकः ।
अनन्यकर्तृकौ भिन्ननिमित्तौ प्रत्ययावपि ॥
यश्चापि प्रतिसन्धत्ते समानविषयाविमौ ।
सोऽर्थान्तरतया सिद्धः आत्मेत्याहुर्नयोत्तराः ॥

3 अथचास्यैव सूत्रस्य तात्पर्यार्थोऽवधार्यताम् ।
प्रामाण्यं प्रत्यभिज्ञायाः नित्यत्वमपि चात्मनः ॥
इन्द्रियाण्यपि नाना स्युः विभिन्नविषयाण्यपि ।
तत्तद्ग्रहणलिङ्गानि ज्ञातुस्तत्करणान्यपि ॥
भेदश्च गुणगुण्यादेः द्रव्याधिकरणा गुणाः ।
चेतनाश्चाप्यनियताविषयास्स्युः तथैवच ॥
स्थिराः स्युः विषयाश्चापि चक्षुरादेश्च नात्मता ।
एतादृशार्था बहवः तत्त्वटीकाप्रदर्शिताः ॥

4 अथचाधुनिकन्यायाचार्यैर्योऽत्र प्रदर्शितः ।
निष्कर्षस्सोऽपिचात्रैव संक्षेपादवधार्यताम् ॥
प्रत्यक्षादिप्रमाणैर्यो व्यवहारस्स चात्मना ।
विना नित्येन नेत्येवं ततस्तस्य प्रकल्पना ॥
तत्र प्रत्यक्षमात्मानमौपवर्षाः प्रपेदिरे ।
अहंप्रत्ययगम्यत्वात् स्वयूथ्या अपि केचन ॥
प्रत्यक्षत्वे कर्तृकर्मविरोधं केचिदूचिरे ।
लैङ्गिकत्वे कथं न स्यादात्मैवानुमिनोति हि ॥

तत्रानुमानज्ञानस्य यथाऽऽत्मा याति कर्मताम् ।
तथाऽहंप्रत्ययस्यैव प्रत्यक्षस्यापि गच्छतु॥
देहादिव्यतिरिक्तश्च यथा लिङ्गेन गम्यते ।
तथाऽहंप्रत्ययेनापि गम्यतां तद्विलक्षणः ॥
ज्ञानेच्छासुखदुःखादि किलेदं लिङ्गमात्मनः ।
एकाश्रयतया ज्ञातमनुसन्धातृबोधकम् ॥
ज्ञाते तत्राफलं लिङ्गं अज्ञाते तु न लिङ्गता ।
तस्मात्प्रत्यक्ष एवात्मा वरमभ्युपगम्यताम् ॥
वृद्धागमानुसारेण संविदालोकनेन वा ।
अथवाऽभिनिवेशेन किमनेन प्रयोजनम् ॥
अनुमेयत्वमेवास्तु लिङ्गेनेच्छादिनाऽऽत्मनः ।
शास्त्रेष्वनेकहेतूक्तिः न दोषाय कथास्विव ॥
नहि प्रत्यक्ष आत्मा किं त्वपरोक्ष इतीतरे ।
केवलं शब्दभेदोऽत्र तुच्छता वा प्रसज्यते ॥
सुखदुःखादिभोक्तृत्वस्वभावो हेय एव सः ।
उपादेयस्तु भोगादिव्यवहारपराङ्मुखः ॥
5 तत्त्वज्ञानेन तेनास्य मिथ्याज्ञानेऽपबाधिते ।
रागद्वेषादयो दोषाः तन्मूलाः क्षयमाप्नुयुः ॥
क्षीणदोषस्य नोदेति प्रवृत्तिः पुण्यपापिका ।
तदभावान्न तत्कार्यं शरीराद्युपजायते ॥

अशरीरश्च नैवात्मा स्पृश्यते दुःखडम्बरैः ।
अशेषदुःखोपरमस्त्वपवर्गोऽभिधीयते ॥
स चेतनश्चिता योगात् तद्योगेन विना जडः ।
नार्थावभासादन्यद्धि चैतन्यं नाम विद्यते ॥
अधिकांशो मोक्षहेतुजिज्ञासायां निरूपितः ।
आम्रेडनं हि विदुषां भवेदालस्यकारणम् ॥

(32) मीमांसकात्मा.

1 अथ शाबरभाष्योक्तमात्मतत्त्वं विचिन्त्यते ।
यदेवचोपवर्षेण शारीरकनिरूपितम् ॥
नैरात्म्येनात्र चाक्षिप्ताः सर्वा एवहि चोदनाः ।
वेदप्रामाण्यसिद्ध्यर्थमात्माऽत्र प्रतिपाद्यते ॥
यजमानः स्वर्गलोकं याति यज्ञायुधीति वाक् ।
एतच्छरीरं यस्यासावात्मा तत्परतामियात् ॥
परैरभिहितान् पूर्वमात्महेतून्निरस्यति ।
न चेदहंप्रत्यये स्युश्शिष्यास्सामान्यदृष्टयः ॥
आह कोऽसावन्य आत्मा नैनं ह्युपलभामहे ।
एनं प्राणादिभिरुपलभामह इतीर्यते ॥
प्राणापानोच्छ्वासनिमेषादिचेष्टितवांस्तु यः ।
शरीरे सोऽत्र यज्ञायुध्यादिशब्दैः विवक्षितः ॥

शरीरगुणवैधर्म्यात् प्राणाद्याः न शरीरगाः ।
अयावद्द्रव्यभावित्वात् रूपाद्याः यावदाश्रयाः ॥
एवं देहात्मवादोऽयं चार्वाकाणां विदूषितः ।
2 अथ विज्ञानात्मवादः सौगतानां अनूद्यते ॥
एष संप्रत्ययः कस्मात् सुखादन्योऽवसीयते ।
सुखमेवात्मनो रूपं तद्वान् शशविषाणवत् ॥
अथोच्यते विना तेन सुखं कस्येति चेन्न तत् ।
न कस्यापीति वक्ष्यामः न तत्सप्रतियोगिकम् ॥
यथा सूर्यस्य चन्द्रस्य संबन्ध्यन्वेषणा वृथा ।
तथा सुखादेरन्योऽस्ति तद्वानिति न शोभनम् ॥
अथोपलब्धस्यावश्यं संबन्ध्यन्तरकल्पना ।
आत्मनः कल्पितस्यापि संबन्ध्यन्यः प्रसज्यते ॥
अव्यवस्थेति विज्ञाने विरन्तुं तदिहार्हसि ।
अथान्यो नास्ति विज्ञानात् जानातीत्युच्यते च कः॥
जानातिशब्दो ज्ञानस्य कर्तारमभिधित्सति ।
शब्दोऽर्थवान्न स कर्तव्यः इति विज्ञानवानसौ ॥
बहवो नन्विह जनाः अस्त्यात्मेत्यादिवादिनः ।
सन्ति प्रत्यक्षवक्तारः न सिद्धिस्तावताऽऽत्मनः ॥
जानातीति परोक्षोऽयं शब्दः किं कल्पयिष्यति ।
3 इति चेदिच्छयैवोपलभामह इतीर्यते ॥

पूर्वोपलब्धेऽभिप्रेते हीच्छा भवति कस्यचित् ।
नान्येन पुरुषेणोपलब्धेऽपि विषये क्वचित् ॥
अन्येद्युरुपलब्धेऽर्थेऽप्यन्येद्युर्भवति ह्यसौ ।
समानकर्तृका सोपलम्भेनेत्यवगम्यते ॥
यदि विज्ञानमात्रं तदुपलम्भकमिष्यते ।
तस्मिन्नस्तमिते कस्यान्येद्युरिच्छा भविष्यति ॥
विज्ञाता यदि विज्ञानात् नित्यः कश्चिदुपेयते ।
स एवचोपलब्धा स्यात्स भवेदेषिताऽपि च ॥
4 अत्राह नोपपन्नेच्छेत्येष संप्रत्ययः क्व नः ।
विज्ञानात्तावदन्यं तं नचैवोपलभामहे ॥
नास्मिन्नसति विज्ञानसद्भावो नोपपद्यते ।
प्रत्यक्षसिद्धत्वादेव तत एव क्षणात्मता ॥
नच ज्ञातरि विज्ञानादन्यस्मिन् असति क्वचित् ।
नोपपन्नाऽन्येद्युरिच्छा ज्ञाने च क्षणिकात्मनि ॥
प्रत्यक्षसिद्धत्वादेव दृष्टं नैतदपि क्वचित् ।
अन्येद्युरुपलब्धा यस्स एवैषिष्यतीत्यपि ॥
इदं तु दृष्टमस्माभिः क्वचिदन्यविलोकितम् ।
इच्छत्यन्यः क्वाचिन्नेति सन्तत्यैकयं नियामकम् ॥
5 अत्रोच्यते नास्मर्तार इच्छन्तीत्युपपद्यते ।
नादृष्टपूर्वे स्मरणं कस्यापि हि भविष्यति ॥

विज्ञानस्कन्धमात्रेण स्मृतिर्नैवोपपद्यते ।
समानायां संततावप्यैक्यं व्यक्तिषु दुर्लभम् ॥
ननु स्मृतिरपीच्छावत्पूर्वविज्ञानसन्निभम् ।
विज्ञानं तच्च नष्टेऽपि द्रष्टर्यन्येद्युरुद्भवेत् ॥
नैवचानुपपन्नं तत् प्रत्यक्षावगतत्वतः ।
किंचैकस्मिन् स्कन्धघनेऽन्येन स्कन्धघनेन यत् ॥
विज्ञातं तत्संततिजेनान्येनाप्युपलभ्यते ।
नातत्संततिजेनान्येनेति प्रत्यक्षनिश्चितम् ॥
तस्माच्छून्याः स्कन्धघनाः इत्यर्थे ब्राह्मणं पुनः ।
विज्ञानघन एवैभ्यो भूतेभ्यश्च समुत्थितः ॥
तान्येवानुविनश्येन्न प्रेत्य संज्ञेति पठ्यते ।
6 हेतुष्वेवं परोक्तेषु प्रतिषिद्धेषु संप्रति ॥
अहंप्रत्ययविज्ञेयः स्वयमात्मोपपाद्यते ।
तथाहि प्रतिसंधानमन्येद्युरवलोकिते ॥
अपरेद्युर्ह्यहमिदमदर्शमिति दृश्यते ।
प्रत्यगात्मैकविषयं न परत्र प्रसर्पति ॥
यतोऽन्येद्युर्दृष्टवतोऽपरेद्युः स्याद्विलक्षणः ।
तस्मात्तद्व्यतिरिक्तोऽस्ति यत्राहंशब्द ईर्यते ॥
स्मरणप्रत्यभिज्ञाने स्यातामन्यार्थगोचरे ।
वासनावशतः ज्ञातुः प्रत्यभिज्ञा तु दुर्लभा ॥

7 नन्वन्यत्राप्यहंशब्दप्रयोगो दृश्यते यथा ।
पुत्रोऽहमेवाहमेव देवदत्तोऽहमेवच ॥
पुमान् नीलः कृशः स्थूलः गच्छामीत्येवमादयः ।
अत्रोच्यते नहि वयं प्रयोगविषयं ध्वनिम् ॥
अर्थेऽन्यस्मिन् हेतुतया निर्दिशामः परंत्वमुम् ।
तस्माच्छब्दात्प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षं प्राङ्निरूपितम् ॥
व्यतिरिक्तं प्रतीमोऽतश्चायमर्थः प्रसिद्ध्यति ।
वयमेवान्येद्युरिममर्थं ह्युपलभामहे ॥
वयमेव स्मरामोऽद्य ततो जानीमहे पुनः ।
यथाच वयमेव ह्यः वयमेवाद्यचेत्यपि ॥
ये ह्योऽद्य च न ते नष्टाः अत्रार्थे ब्राह्मणं पुनः ।
स वा अयमसावात्मा ह्यशीर्यो नहि शीर्यते ॥
अविनाशी वाऽयमरे आत्मानुच्छित्तिधर्मकः ।
इति क्षणिकविज्ञानादन्य आत्मेति निर्णयः ॥
अर्था यथोपलभ्यन्ते न तथा सन्ति किंपुनः ।
यथा तु नोपलभ्यन्ते तथा सन्तीति नोचितम् ॥
तथासति शशो नास्ति विषाणं तस्य विद्यते ।
इत्येवमवगम्येत तस्माल्लोकोत्तरं त्विदम् ॥
नचाहंप्रत्ययो मोहः बाधकानुपलम्भनात् ।
तस्माद्यज्ञायुधीत्युक्तस्सुखेच्छादिविलक्षणः ॥

8 अत्राह यदि विज्ञानादन्यद्विज्ञातृ विद्यते ।
अपास्य तत्तु विज्ञानं तद्विज्ञातृ निदर्श्यताम् ॥
इदं तदीदृशं चेति न त्वयैतन्निदर्श्यते ।
तस्मात्ततोऽन्यदस्तीति कथं स्यादवधारणा ॥
अत्रोच्यते स्वसंवेद्यः नासावन्येन शक्यते ।
द्रष्टुं कथमसावन्यैः निदर्श्येतेति चिन्तय ॥
यथाच कश्चिच्चक्षुष्मान् स्वयं रूपं प्रपश्यति ।
नच शक्नोति जात्यन्धायान्यस्मै तन्निदर्शने ॥
एतावता तन्नास्तीति न केनाप्यवगम्यते ।
तथोपलभते चासावात्मानं पुरुषः स्वयम् ॥
नचान्यस्मै दर्शयितुं शक्नोतीन्द्रियवर्त्मतः ।
अन्यस्य दर्शने शक्तिः नास्ति तं पुरुषं प्रति ॥
एवमन्योऽपि पुरुषः स्वात्मानमवगच्छति ।
नचात्मानं परं तस्मात्सर्व एवात्मसाक्षिणः ॥
अत्रच ब्राह्मणं ह्यात्मज्योतिस्सम्राडितीक्ष्यते ।
अत्र स्वयं ज्योतिरयं पुरुषो भवतीत्यपि ॥
अन्येनाशक्य इत्यत्राप्यगृह्यो नहि गृह्यते ।
इति श्रुतं अभिप्रायोऽप्ययमेवास्य संगतः ॥
9 उपायेन पुनः केन वाऽन्यस्मै कथ्यते त्वसौ ।
इत्यत्रोपायोपदेशो ब्राह्मणं पठितं यथा ॥

स एष नेति नेत्यात्मेति होवाचेति, तस्य तु ।
अयमर्थः—इदंरूप इत्यादेष्टुं न शक्यते ॥
परः पश्यति यद्रूपं तद्रूपं प्रतिषिध्यते ।
तस्योपदेशोपायोऽयं तत्प्रकारोऽवधार्यताम् ॥
शरीरं दृश्यतेऽन्येन तेनात्माऽत्रोपदिश्यते ।
नात्मा शरीरं अन्योऽस्ति शरीरादिति युक्तितः ॥
शरीरप्रतिषेधेन शारीर उपदिश्यते ।
प्राणादिप्रतिषेधेन तेभ्योऽप्यन्योऽवगम्यते ॥
तथा परगताः दुःखसुखाद्या अपि लिङ्गतः ।
परेण ह्युपलभ्यन्ते तेऽपि नात्मान इत्यपि ॥
तेषां तु प्रतिषेधेन तदन्योऽत्रोपदिश्यते ।
स एष नेतिनेत्यादेः अर्थ एषोऽवधारितः ॥
किंच स्वयं पश्यति यं न ततोऽन्यः पुमानिह ।
इत्येतदपि चात्मीयप्रवृत्त्यैवानुमीयते ॥
किंचासौ पुरुषः पूर्वमर्थानां सामिकल्पितम् ।
ततः प्रतिसमाधत्ते शेषांशं चानुतिष्ठति ॥
एवं प्रवृत्त्याऽप्येषोऽर्थो ज्ञायते सूक्ष्मदर्शिभिः ।
नूनं नित्यमनित्यानप्यवगच्छत्यसाविति ॥
10 किंचोपदिश्यते चोपमानादात्मा यथापुनः ।
भवान् यादृशमात्मानं स्वयं पश्यति तादृशम् ॥

पश्याम्यहमपीत्येवमुपमानेन गम्यते ।
यथाच कश्चिदात्मीयां वेदनां संप्रचक्षते ॥
दह्यमानस्येव मे स्यात् यात्यमानस्य वा पुनः ।
रुद्ध्यमानस्येव मेऽद्य भवतीति विकल्प्यते ॥
अतः स्वेनैवावगम्यमानत्वादस्ति पूरुषः ।
अतिरिक्तो वेदनाभ्यः तस्मादात्मा स्वयंप्रभः ॥
11 यदुच्यते च विज्ञानमपास्यैतन्निदर्श्यताम् ।
इति तच्चेदुपायस्य निषेधो न स युज्यते ॥
विनोपायमुपेयं तूपेतुं नैव हि शक्यते ।
ज्ञातव्यानामथार्थानामभ्युपायोऽयमेव हि ॥
यो यथा ज्ञायते सोऽसौ तथेत्यपिच तद्यथा ।
कश्शुक्लो नाम यत्रास्ति शुक्लत्वं शुक्लता च का ॥
शुक्लशब्दप्रवृत्तिस्स्याद्यत्र सा शुक्लता ह्यसौ ।
क्व वा तस्य प्रवृत्तिस्स्यात् यस्तच्छब्दात्प्रतीयते ॥
तत्प्रत्याख्याय विज्ञानं रूपं कस्यापि वस्तुनः ।
न निदर्शयितुं शक्यं ज्ञानात्सर्वं हि सिद्ध्यति ॥
प्रत्ययेऽथ प्रतीतेऽपि प्रत्ययार्थो नियोगतः ।
नच प्रतीतो भवति तस्मात् ज्ञानविलक्षणः ॥
प्रत्यये ह्यप्रतीतेऽपि प्रत्ययार्थः प्रतीयते ।
प्रत्यक्षं तन्न विज्ञानं ज्ञेयोऽध्यक्ष इतीर्यते ॥

अथचापह्नवेऽवश्यवक्तव्ये ज्ञानमेव तु ।
अपह्नूयेतैव कामं नार्थ इत्यप्युदीरितम् ॥
12 अथ यद्विज्ञानघन इति ब्राह्मणकीर्तनम् ।
भूतचैतन्यवादस्य तत्र प्रतिविधीयते ॥
अत्रैव मां हि भगवान् मोहस्यान्तमपीपदत् ।
इत्यस्य चोत्तरं मोहमरे न प्रब्रवीम्यहम् ॥
अविनाशी वाऽयमात्मा तथाऽनुच्छित्तिधर्मकः ।
मात्रासंसर्गमात्रं तु भवत्यस्येति च श्रुतम् ॥
सदसन्नाश्यनाशात्मपरिकीर्तनमूढया ।
चोदितः पूर्वपक्षोऽयमिति सिद्धान्तमब्रवीत् ॥
अविनाशी स्वरूपेण पुरुषः या तु नाशिता ।
मात्राणां साधिकाराणां भूतादीनामसौ मता ॥
तस्मान्न विज्ञानमात्रं आत्माऽन्योऽस्ति सुखादितः ।
अहंप्रत्ययगम्यश्च नित्यः व्यापी स्वयंप्रभः ॥
इति शाबरभाष्यस्थमात्मतत्त्वं विचिन्तितम् ।
इतोऽप्यधिकयुक्त्यंशो वार्तिकं त्ववधार्यताम् ॥

(33) कौमारिलात्मा.

1 अथ वार्तिककारीयस्यात्मवादस्य संग्रहम् ।
सारांशविषयं धीरा विमृशन्तु विशुद्धये ॥

शरीरेन्द्रियबुद्धिभ्यो व्यतिरिक्तत्वमात्मनः।
नित्यत्वं चेष्यते शेषं शरीरादि विनश्यति ॥
नित्यः कर्तृत्वभोक्तृत्वे प्रतिपन्नोऽपि सन् यदा ।
न कर्मफलसंबन्धं भोगकालेऽवबुध्यते ॥
मया तत्तु कृतं कर्म तस्येदं भुज्यते फलम् ।
शुभाशुभं मयैवेति तदा कोऽस्य रसो भवेत् ॥
कुर्वन्नप्यशुभं कर्म तेनैवं चिन्तयेन्नरः ।
न स्मरिष्यामि भोगेऽहमिति नैतद्विवर्जयेत् ॥
तत्र नित्यत्वपक्षेऽपि कृतनाशाकृतागमौ ।
फलतस्तुल्यरूपौ चेत् वृथा तत्प्रतिपादनम् ॥
2 नैष दोषः न भोगे हि स्मृतिर्न उपयुज्यते ।
न प्रवृत्तिर्निवृत्तिर्वा भोगकाले स्मृतेर्भवेत् ॥
प्राक्प्रवृत्तेस्तु साऽस्त्येव विदुषां शास्त्रतः स्फुटा ।
पश्चादपिच शास्त्रज्ञाः विमृशन्त्येव केचन ॥
अपरामृश्यमानेऽपि स्वापकाले सुखाश्रये ।
संभोगे मृदुशय्यादौ प्राक्प्रवृत्तिश्च दृश्यते ॥
3 तत्र नित्यविभुत्वाभ्यामात्मानो निष्क्रिया यदि ।
सुखदुःखाविकार्याश्च कीदृशी कर्तृभोक्तृता ॥
अथ कर्तृत्ववेलायां दुःखादेश्चापि जन्मनि ।
प्राग्रूपादन्यथात्वं स्यात् नित्यताऽस्य विरुध्यते ॥

नानित्यशब्दवाच्यत्वमात्मनो विनिवार्यते ।
विक्रियामात्रवाचित्वे, न ह्युच्छेदोऽस्य तावता ॥
स्यातामत्यन्तनाशेऽस्य कृतनाशाकृतागमौ ।
न त्ववस्थान्तरप्राप्तौ लोके बालयुवादिवत् ॥
सुखदुःखाद्यवस्थाश्च गच्छन्नपि नरो मम ।
चैतन्यद्रव्यसत्तादिरूपं नैव विमुञ्चति ॥
दुःखिनः सुख्यवस्थायां नश्येयुस्सर्व एव ते ।
दुःखित्वं चानुवर्तेत विनाशे विक्रियात्मके ॥
तस्मादुभयहानेन व्यावृत्त्यनुगमात्मकः ।
पुरुषोऽभ्युपगन्तव्यः कुण्डलादिषु सर्पवत् ॥
4 नैरात्म्यवादपक्षे तु पूर्वमेवावबुद्ध्यते ।
मद्विनाशात्फलं न स्यान्मत्तोऽन्यस्याथवा भवेत्॥
इति नैव प्रवृत्तिः स्यात् नच वेदप्रमाणता ।
जन्मान्तरेऽभ्युपेतेऽपि ज्ञानमात्रात्मवादिनाम् ॥
ज्ञानानां क्षणिकत्वाद्धि कर्तृभोक्त्रन्यता भवेत् ।
निष्क्रियत्वाविभुत्वाभ्यां नच देहान्तराश्रितिः ॥
कर्ता स एव सन्तानः ननु भोक्ता स एव नः ।
विज्ञानक्षणभेदस्तु त्वदवस्थान्तरैस्समः ॥
कर्तृत्वमेव दुस्साधं दीर्घकालेषु कर्मसु ।
सत्सु ज्ञानसहस्रेषु कुलकल्पोपमं हि तत् ॥

व्यतिरिक्तो हि संतानो यदि नाभ्युपगम्यते ।
संतानिनामनित्यत्वात् कर्ता कश्चिन्न लभ्यते ॥
तस्मादत्यन्तभेदो वा कथंचिद्भिन्नताऽपिवा ।
संतानस्येत्ययं चात्मा स्याद्वैशेषिकसांख्ययोः ॥
नन्वन्यत्वं विदन्तोऽपि पुत्रादिफलसिद्धये ।
प्रवर्तन्ते यथा तद्वत् ज्ञानसंतानिनोऽपि नः ॥
अन्यत्वे च समानेऽपि यथा वंशान्तरोद्भवाः ।
न लभन्ते फलं तद्वत् संतानान्तरजाः क्षणाः ॥
न तावद्बुद्धिरत्रैवं, अपिचात्मफलेच्छया ।
पुत्रादिभरणे वृत्तिः स्यात्तदप्यत्र नास्ति ते ॥
भरणं यदपत्यानां तिर्यगादिषु दृश्यते ।
अज्ञानं शरणं तत्र प्राज्ञानां तु न युज्यते ॥
नच त्वमपि कृत्येषु निरन्वयविनाशतः ।
मत्सन्तानसमृद्ध्यर्थमिति मत्वा प्रवर्तसे ॥
5 देहान्तरे च संचारो बुद्धीनां नोपपद्यते ।
पूर्वदेहाद्बहिर्भावः नच तासां प्रतीयते ॥
वायुना प्रेर्यमाणं हि ज्वालाद्यन्यत्र संचरेत् ।
बुद्धेः कारणदेशात्तु प्रेरणं नास्ति केनचित् ॥
अमूर्तत्वात्स्वयं नासावुत्प्लुत्यान्यत्र गच्छति ।
अन्तराभवदेहस्तु निषिद्धो विन्ध्यवासिना ॥

सहसा जायते तच्च सहसैव विनश्यति ।
सूक्ष्मरूपादियुक्तं चेत् उत्प्रेक्षामात्रमेव तत् ॥
कललादिषु विज्ञानमस्तीत्येतच्च साहसम् ।
असंजातेन्द्रियत्वाद्धि न तत्रार्थोऽवगम्यते ॥
यदि भूतेन्द्रियाधारा ज्ञानशक्तिः भवेत्ततः ।
तच्चैतन्यं प्रसज्येत नच जन्मान्तरं भवेत् ॥
परिणामविवेकाद्यैः शक्त्यभिव्यक्त्यनुग्रहात् ।
तेभ्य एव भवेद्बुद्धिः न बुद्ध्यन्तरपूर्विका ॥
अथाधारविनिर्मुक्ता शक्तिस्स्यात्कललादिषु ।
पश्चाद्विज्ञानसिद्ध्यर्थं आत्मा शक्त्यभिधो भवेत् ॥
6 ज्ञानशक्तिस्वभावोऽतो नित्यस्सर्वगतः पुमान् ।
देहान्तरक्षमः कल्प्यः सोऽगच्छन्नेव योक्ष्यते ॥
शक्त्याधारप्रक्लृप्तौ वा नात्मनोऽन्यः प्रकल्प्यते ।
ज्वालाबुद्बुदवद्वृत्तिः नचाधाराद्विना धियाम् ॥
तस्माद्यथाऽऽकृतौ शास्त्रं प्रवृत्तं व्यक्तिमाश्रयेत् ।
तथा पुंसि प्रवृत्तस्य भूतेन्द्रियसमाश्रयः ॥
7 कृतं भूतेन्द्रियाणां च चैतन्यप्रतिषेधनम् ।
समस्तव्यस्तसंघातविवेकपरिणामिनाम् ॥
सांख्यादिभिरशुद्धत्वात् संघातात्सान्निवेशतः ।
मृतवच्च शरीरत्वात् भूतत्वाद्बाह्यभूतवत् ॥

स्मरणप्रत्यभिज्ञाने भवेतां वासनावशात् ।
अन्यार्थविषये ज्ञातुः प्रत्यभिज्ञा तु दुर्लभा ॥
अहं वेद्मीत्यहंबुद्धिः ज्ञातारमधिगच्छति ।
तत्र स्यात् ज्ञातृ विज्ञानं तदाधारोऽथवा पुमान् ॥
गुरुः स्थूलः कृशो वाऽहं इति देहेऽपि या मतिः ।
भ्रान्तिस्सा भेदरूपं हि गुरु मे तदितीक्ष्यते ॥
ममात्मेति मतिर्भेदव्यपदेशेन याऽऽत्मनः ।
तत्रावस्थाऽऽत्मना भेदं ज्ञानस्याश्रित्य कल्पना ॥
वेदादेवात्मनास्तित्वं यो नाम प्रतिपद्यते ।
विरोधं वाऽऽत्मनो ब्रूयात्तं प्रति ब्राह्मणाभिधा ॥
अन्यथाऽनुपपत्तेश्च विधिनाऽऽत्मन्यपेक्षिते ।
अस्तित्वद्योतनादेतैः अर्थाक्षिप्तसमर्थनम् ॥
इत्यात्मवादसारांशः श्लोकवार्तिकशोधितः ।
अथापूर्वाधिकरणतन्त्रवार्तिकसंग्रहः ॥
7 अनवच्छिन्नसद्भावं वस्तु यद्देशकालतः ।
तन्नित्यं विभु चेच्छन्तीत्यात्मनो विभुतेष्यते ॥
सर्वत्र कार्योपलब्धेरात्मा सर्वगतो मतः ।
तच्च कार्यमहंबुद्धिः सुखदुःखादिधीरपि ॥
ननु लिङ्गं तदेव स्याद्देशान्तरगतेरपि ।
आत्मा शरीरसंमिश्रः तैरेव सह संगमात् ॥

तत्रतत्र सुखादीनि कार्याणि प्रतिपद्यते ।
युगपद्यदि सर्वत्र कार्यमात्मगतं भवेत् ॥
ततस्सर्वगतत्वं स्यात् पर्याये तु शरीरवत् ।
अन्यथा सर्वगतता शरीरस्यापि कथ्यताम् ॥
नैवं स्वतोऽस्यामूर्तत्वात् न मूर्तैर्मिश्रताऽऽत्मनः ।
ततश्च तैरसंश्लिष्टः न नेतुं शक्यते क्वचित् ॥
मूर्तानामपि सूक्ष्माणां चन्द्रदीपरवित्विषाम् ।
न मृत्पिण्डादिभिस्साकं मिश्रणं नयनं क्वचित् ॥
स्याद्वादिभिर्मता मूर्ता बद्धा जीवास्तथाऽपि ते ।
शरीरसंपर्कायत्तमूर्ततारहिताः पुनः ॥
ज्वालादीनां स्पर्शवत्त्वात् वायुना वोल्मुकादिना ।
युक्तं स्यान्नयनं वक्तुं तस्मात्सर्वगतः पुमान् ॥
४ असर्वगतपक्षे स्यात् जीवो देहादनिर्गतः ।
अणुश्शरीरमात्रो वा सर्वथाऽपि न युज्यते ॥
यद्यणुः कल्प्यते तत्र देहं न व्याप्नुयादसौ ।
ततश्च सर्वगात्रस्थसुखप्राप्त्याद्यसंभवः ॥
लघुसंचारयोगेन संभवो निष्प्रमाणकः ।
बह्वदृष्टं कल्पनीयं यथा स्यादवधार्यताम् ॥
सद्भावोऽवयवानां च तथा तेषामनन्तता ।
अश्लेषश्च विनाऽन्येन तद्भावेऽपि च नित्यता ॥

अतिसंकोचविस्तारौ पुत्तिकाहस्तिदेहयोः ।
अन्तराभवसंचारः तज्ज्ञानाज्ञानकारणे ॥
यद्वियोजितमात्राणामङ्गानां स्फुरणं तु तत् ।
अभिघातप्रेरितेन वायुनेत्यवधार्यते ॥
दीपप्रभायास्संकोचविकासौ दर्शनान्मतौ ।
यद्वांशारम्भनाशाभ्यामुपपत्तिस्तयोर्भवेत् ॥
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुष इति ये च श्रुतिस्मृती ।
सूक्ष्मग्रहणयोग्यत्वतत्परे इति बुध्यताम् ॥
अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं निश्चकर्षेति यद्वचः ।
द्वैपायनीयं तदपि काव्यशोभानिबन्धनम् ॥
गीतादिषु हि तेनैव वर्णिताऽनेकरूपतः ।
सर्वत्र गतता तस्मात् आत्मानो विभवः स्थिताः॥
9 ननु चैवं व्योमवत्स्यात् ऐकात्म्यमिति चेन्न तत् ।
सुखदुःखव्यवस्थातो नानेति प्रथितं हि तत् ॥
जन्ममृत्याद्यनियमात् पुंसां च बहुतोदिता ।
सर्वे समानदेशास्स्युरस्पर्शा हि यतास्त्विमे ॥
चैतन्यमात्रात्मकत्वाद्यविभागनिबन्धनः ।
ऐकात्म्यव्यवहारः स्यात् ततश्चोपनिषत्स्वपि ॥
यथा शरीरमात्रेऽपि मातृगर्भात्मवर्तिनाम् ।
सुखादीनां व्यवस्थैवं सर्वत्रैषा भविष्यति॥

देशव्याप्त्या यदीष्येत सुखादेरुपभोग्यता ।
ततो दोषः प्रसज्येत योग्यभोगे त्वदुष्टता ॥
चलनादिक्रियाहीनोऽप्यसौ कर्तृत्वमात्रतः ।
देशान्तरप्रापणादिक्रियार्होऽतो न निष्क्रियः ॥
कर्तैव चाश्रयः तस्य कर्माप्यत्रैव च स्थितम् ।
अत एव स्थितं ह्येतत्कर्तृत्वं सर्वकर्मसु ॥
यदि स्वसमवेतैव शक्तिरिष्येत कर्मणाम् ।
तद्विनाशे ततो न स्यात्कर्तृस्था तु न नश्यति ॥
कथमन्यत्रान्यशक्तिः समवैतीति चेत् शृणु ।
अत्यन्तभेदाभावो हि यागदानक्रियात्मनोः ॥
शक्तिः कार्यानुमेयत्वाद्यद्गतैवोपयुज्यते ।
तद्गतैवाभ्युपेतव्या स्वाश्रयाऽन्याश्रयाऽपिवा ॥
तादर्थ्येन हि शेषत्वं नाश्रयाश्रयिभावतः ।
राजार्थौपयिकं नित्यमुष्ट्रो वहति कुङ्कुमम् ॥
आत्माश्रिताङ्गापूर्वाणामेकार्थसमवायतः ।
प्रधानैस्सह संबन्धात् न तेषां पुरुषार्थता ॥
अर्थापत्तेरिहापूर्वं पूर्वमेकं प्रतीयते ।
ततस्तत्सिद्धये भूयस्स्यादपूर्वान्तरप्रमा ॥
प्रमाणवन्त्यदृष्टानि कल्प्यन्ते सुबहून्यपि ।
अदृष्टशतभागोऽपि न कल्प्यो ह्यप्रमाणकः ॥

11 आवृत्तिभिर्यथाऽध्याये संस्कारो भवति क्रमात् ।
वाक्यावयवरूपेण तथाऽपूर्वं भविष्यति ॥
नैकरूपैव भावानामभिव्यक्तिः प्रतीयते ।
आत्मस्थोन्मीलनं तेन व्यक्तिरस्य भविष्यति ॥
सर्वावाप्तिसमर्थो वा प्रकृत्याऽऽत्मा सदेष्यते ।
कश्चित्तु प्रतिबन्धोऽस्य कर्मभिस्सोऽपनीयते ॥
एवं विभुत्वं कर्तृत्वं भोक्तृत्वं तत्समर्थता ।
भाट्टसिद्धान्तानुरोधादात्मनामिह दर्शितम् ॥

(34) प्राभाकरात्मा.

1 आत्मतत्त्वं प्रकरणपञ्चिकायां निरूपितम् ।
श्रीमच्छालिकनाथेन तत्त्वालोकेऽस्य संग्रहः ॥
बुद्धीन्द्रियशरीरेभ्यो भिन्न आत्मा विभुर्ध्रुवः ।
नानाभूतः प्रतिक्षेत्रं अर्थवित्तिषु भासते ॥
भोक्ता च भोगायतनं भोगसाधनमेव च ।
भोग्यं भुक्तिरिति ह्यत्र भोक्ता त्वात्मेति निश्चितः॥
शरीरं भोगायतनं इन्द्रियं भोगसाधनम् ।
भोग्यं सुखादिकं भुक्तिः वेदनेति च विश्रुता ॥
आसु पञ्चविधास्वर्थतत्त्वं परिसमाप्यते ।
जरायुजं चाण्डभवं स्वेदजं च त्रिधा मतम् ॥

उद्भिज्जं दैवमिति च द्विविधं तैर्न हीष्यते ।
श्मशाने जायते वृक्ष इत्यादिस्त्वर्थवादगीः ॥
2 प्रकाशरूप एवात्मा न स्वयं स्वस्य गोचरः ।
न परोक्षो न चाध्यक्षोऽपरोक्ष इति निर्णयः ॥
अतश्च मोक्षे दृषदा तौल्यमापाद्यते परैः ।
संवित्तिफलभागिन्यप्यात्मनीष्टा न कर्मता ॥
गन्तृवत्, परगामित्वं फलस्यास्ति विशेषणम् ।
आत्मा विषयसंवित्तेर्गोचरः सर्वदा ततः ॥
संवित्त्युपायोपरमे सन्मात्रं स्वापवन्मतः ।
विशेषोऽभिमतः कैश्चिदात्मनां स्वापमोक्षयोः ॥
संवित्तिवत्स्वतस्सिद्धमात्मानमपरे विदुः ।
निरूपकत्वाश्रयत्वयुता विषयता हि सा ॥
प्रकाशैकस्वरूपत्वात् स्वतो वा परतोऽपि वा ।
प्रकाशांशानपेक्षत्वं केचिदत्र प्रचक्षते ॥
घटादयो ह्यप्रकाशस्वरूपाः तदपेक्षिणः ।
विषयव्यपदेश्यास्स्युः आत्मा सर्वविलक्षणः ॥
प्रकाशतत्त्वनिष्कर्षः वासनैकनिबन्धनः ।
सौगतानां रीतिरन्या तार्किकाणां विलक्षणा ॥
देहादिव्यतिरिक्तत्वयुक्तयः प्राक्प्रपञ्चिताः ।
न विशेषः विशेषांशस्त्वियानन्यत्र विस्तरः ॥

3 जयन्तन्यायमञ्जर्यां गुरूणामात्मनिर्णयः ।
कृतः तस्यापि सारांशस्संक्षेपात्किंचिदुच्यते ॥
गुरूणामपरोक्षोऽसावात्मा चापरसाधनः ।
चितिशक्तिस्वभावश्च तस्यैषा विवृतिर्यथा ॥
आत्मा ज्ञानेन जन्येन न चकास्ति घटादिवत् ।
अपितु स्वत एवासौ संविद्वदवगम्यते ॥
अनेककारकाधीनाऽप्येषा संवित्करोति तम् ।
आत्मानमेव ज्ञातारं चित्स्वभावोऽतएव सः ॥
संवित्तयैव संवेद्या यथा संवित्तथैव च ।
स्याद्ग्राहकतयैवात्मा ग्राह्यः ग्राह्यतया न तु ॥
तयोः प्रकाशयोर्मध्ये परोक्षो ज्ञानलक्षणः ।
व्यापारो जायते तस्य फलं संवित्तिरिष्यते ॥
द्वैरूप्यचोदना येषा कर्तृता कर्मतेति च ।
नात्मन्यस्मिन्न पक्ष इति दृश्यते न्यायमञ्जरी ॥
अहंप्रत्ययकर्तृत्वेनैव सिद्धिरिहात्मनः ।
अहंप्रत्ययकर्मत्वेनैवेत्याहुः कुमारिलाः ॥

(35) बादरायणात्मा

1 यत्तु लोकायतः प्राह देहान्न व्यतिरिच्यते ।
आत्मेति तत्र प्रत्युक्तमाचार्यैर्बादरायणैः ॥

एक आत्मन इत्यादिसूत्रेष्विति हि भाषितम् ।
श्रीशङ्करादिभिः यत्तत्सारांशोऽत्रावधार्यताम् ॥
यो मन्येतात्मधर्माणां देहभावे तु भावतः ।
शरीरधर्मतां सोऽसौ देहभावेऽप्यभावतः ॥
अतद्धर्मत्वमेवैषां किं न मन्येत बुद्धिमान् ।
अपिचैते देहधर्मवैलक्षण्यान्न देहगाः ॥
ये तु रूपादयो धर्माः यावद्देहं भवन्ति ते ।
प्राणचेष्टादयो न स्युः मृतावस्थे शरीरके ॥
देहधर्मश्च रूपादिः परैरप्युपलभ्यते ।
नत्वात्मधर्मश्चैतन्यस्मृत्यादिरिति भाव्यताम् ॥
किंच जीवति देहेऽस्मिन्नेषां भावोऽवगम्यते ।
असत्यभावो निश्चेतुं तेषां नैव हि शक्यते ॥
कदाचित्पतितेऽप्यस्मिन् देहे देहान्तराश्रयात् ।
अनुवृत्तिर्भवेदात्मधर्माणामिति शङ्क्यते ॥
न निवर्तयितुं शक्या सहसा विपरीतधीः ।
इति संशयमात्रेण परपक्षो निषिद्ध्यते ॥
2 किंच भूतेभ्य उत्पत्तिमिच्छन् धीमान्निदर्शनः ।
किमात्मकं पुनरिदं चैतन्यं मन्यते भवान् ॥
नहि भूतचतुष्केभ्यः किंचित्तत्त्वं विलक्षणम् ।
भवान् प्रत्येति येनैतज्ज्ञायेत मदशक्तिवत् ॥

तच्चानुभवनं भूतभौतिकानां मतं यदि ।
विषयत्वात्तर्हि तेषां न तद्धर्मत्वमश्नुते ॥
न ह्यग्निरुष्णः स्वात्मानं दहतीत्युपगम्यते ।
शिक्षितस्सन्न हि नटः स्वस्कन्धमधिरोक्ष्यति ॥
अतः क्रिया विरुद्धैषा स्वात्मनीति श्रुतं बुधैः ।
रूपादिभिः स्वस्वरूपं विषयीक्रियते न हि ॥
नह्येवं भूतधर्मेण सता चैतन्यवस्तुना ।
भूतभौतिकवस्तूनां विषयीकरणं भवेत् ॥
भूतभौतिकवस्तूनि बाह्यान्याध्यात्मिकानि च ।
तच्चैतन्येन विषयीक्रियन्त इति सम्मतम् ॥
अतो यथैवोपलब्धेः सद्भावोऽभ्युपगम्यते ।
व्यतिरेकोऽप्येवमस्याः विषयेऽभ्योऽभ्युपेयताम् ॥
उपलब्धिस्वरूपोऽसावात्मेत्यस्माभिरिष्यते ।
तस्मात्तथाविधो ह्यात्मा सिद्धो देहविलक्षणः ॥
उपलब्धेरैकरूप्यान्नित्यत्वमपिचात्मनः ।
अहं वस्त्विदमद्राक्षमिति प्रत्यभिसन्धितः ॥
स्मृतीच्छाद्युपपत्तेश्च विज्ञानं क्षणिकं न सः ।
3 युक्त्यन्तरं पुनरिदं वस्तुतस्त्ववधार्यताम् ॥
यथोपलब्धिर्भवति दीपादौ सति साधने ।
नैतावता दीपधर्मः सोपलब्धिर्भविष्यति ॥

तथैव सति देहेऽस्मिन् साधने धीर्भविष्यति ।
न भविष्यत्यसति च न स्याद्देहगता ततः ॥
देहेनापि नचात्यन्तमुपयोगोऽत्र दृश्यते ।
निश्चेष्टेऽपिच देहेऽस्मिन् दृश्यन्ते स्वाप्नसंविदः ॥
तस्माद्देहातिरिक्तत्वमनवद्यं तथाऽस्तिता ।
इत्यात्मचिन्ता युक्तिस्था विज्ञेया बादरायणी ॥
चैत्रस्तारक्षवीं स्वप्ने तनुमास्थाय बुध्यते ।
मानुषीमात्मनः पश्यन् तनुं तदुभयानुगम् ॥
आत्मानमनुसंधत्ते स्वयं देहविलक्षणम् ।
सर्वलोकप्रसिद्धोऽयं प्रत्ययोऽप्यवमृश्यताम् ॥

(36) वेदान्तात्मा.

1 अथ सर्वार्थसिद्ध्युक्तः वैदिकात्मविनिर्णयः ।
विलिख्यते सुनिष्पन्नः विस्तरोऽन्यत्र दृश्यताम् ॥
मनुष्योऽहं कृशः स्थूलः इत्यादिस्सार्वलौकिकः ।
अभेदप्रत्ययोऽह्यस्ति नीलो घट इतीदृशः ॥
मम देहोऽप्यहमिमं जानामीत्यादिभेदधीः ।
अपिह्यस्ति मम क्षेत्रमित्यादिप्रत्ययो यथा ॥
लोके भेदेऽप्यभेदेन प्रत्ययो दृश्यते यथा ।
सेयं ज्वाला तथाचायो दहतीत्यादिलक्षणः ॥

तथा भेदप्रत्ययोऽपि ह्यभेदेऽपिच दृश्यते ।
चन्द्रद्वयं घटमठाकाश इत्यादिलक्षणः ॥
बलाबलव्यवस्थायां कर्तव्यायां प्रसज्यते ।
सर्वत्राप्रामाण्यशङ्का यथा चैषाऽवधार्यताम् ॥
निर्वापितारोपितवत् ज्वालैक्यप्रत्ययस्थले ।
सादृश्यसादेश्यमुखदोषाणां संभवो यथा ॥
अयःपिण्डस्थलेऽन्योन्यव्यतिहारधियामपि ।
हेतुर्विलक्षणो योगः यथा स्यात्प्रकृते तथा ॥
सादेश्यसंसर्गमुखदोषसद्भावशङ्कया ।
स्यादभेदप्रत्ययोऽप्रामाण्यशङ्काकलङ्कितः ॥
तथा भेदप्रत्ययोऽपि शिलापुत्रस्य देहवत् ।
राहोश्शिरोवदैक्यस्याग्रहणाद्वा भवेदिति ॥
तादृशाप्रामाण्यशङ्काकलङ्कान्न विमुच्यते ।
घटस्यात्मेत्यादिवत्तु ममात्मेत्यन्यथा भवेत् ॥
2 एवंच नित्यशास्त्रोत्थसंप्रदायानुसारतः ।
भेदधीः प्रबला नान्येत्याहुश्शास्त्रैकलोचनाः ॥
यथा चन्द्रे यथा सूर्ये परिमाणाल्पविभ्रमः ।
दिङ्मोहादिभ्रमश्चैव तलमालिन्यविभ्रमः ॥
एवंलक्षणकस्सर्वश्शास्त्रेणैव निवार्यते ।
तथा शास्त्रानुग्रहेण बलाबलविनिर्णयः ॥

ततः स्वतो वा युक्त्या वा योगदर्शनतोऽपिवा ।
आत्मनः सिद्धिरित्याहुः इति देहात्मसंग्रहः ॥

(37) आर्हतात्मा.

1 आर्हतानामात्मतत्त्वं प्रागेव सुनिरूपितम् ।
तदेवचात्माऽध्यायेऽस्मिन् अन्यूनत्वाय चिन्त्यते ॥
देहेन्द्रियमनःप्राणधीभ्योऽन्योऽनन्यसाधनः ।
स्वयंप्रकाशप्रत्यक्षसिद्ध आत्मेति निर्णयः ॥
आत्मा चैतन्यरूपस्स्यात्परिणामी करोति च ।
साक्षाद्भोक्ता स्वीयदेहसमानपरिमाणवान् ॥
प्रतिक्षेत्रं विभिन्नश्च विचित्रश्चाप्यनन्तकः ।
स च पौद्गलिकादृष्टसंयुतः पुरुषार्थभाक् ॥
आत्मतत्त्वं तु सहजचिद्रूपपरिणामवत् ।
आवृतिप्रक्षयादेषः सार्वज्ञ्यैकरसः स्वयम् ॥
ज्ञानाद्भिन्नो नचाभिन्नः भिन्नाभिन्नः कथंचन ।
ज्ञानं पूर्वापरीभूतं सोऽयमात्मेति कीर्तितः ॥
उपादेयं परं ज्योतिरुपयोगैकलक्षणः ।
उपयोगः कर्मणैकीभूतस्यास्य विवेचनम् ॥
2 औदयश्चौपशामिकः क्षायिकः पारिणामिकः ।
एते जीवस्य चत्वारः भावाः पर्यायलक्षणाः ॥

स स्यादौदयिको भावः यः कर्मोदयलक्षणः ।
स चौपशामिको भावः यः कर्मोपशमात्मकः ॥
स एव क्षायिको भावः यस्स्यात् मोक्षपदाभिधः ।
स पारिणामिको भावः सहजः चित्स्वभावता ॥
समनस्कोऽमनस्कश्च स जीवो द्विविधो मतः ।
संज्ञिनस्समनस्काः स्युः अमनस्काः त्रसाः स्थिराः
गुणपर्यायवद्द्रव्यं तत्रस्थाः निर्गुणाः गुणाः ।
चैतन्यसुखदुःखाद्याः पर्यायगुणलक्षणाः ॥
3 सत्कर्मपुद्गलाः पुण्यं पापं तस्य विपर्ययः ।
पूरयन्ति गलन्तीति पुद्गला इति निर्णयः ॥
धर्मः प्रवृत्तिहेतुः स्यादधर्मः स्थितिकारणम् ।
अधर्मे गलिते धर्मः स्यादूर्ध्वगतिसाधनम् ॥
आत्मनश्चलनं योगः तेन कर्म पुमानयम् ।
आदत्ते सलिलं विष्वक् तप्तायःपिण्डवत् सदा ॥
तदेव पौरुषं ज्योतिः इन्द्रियेभ्यस्स्रवत्सदा ।
स्पृशच्च विषयान् तद्धीरूपेण परिणाम्यदः ॥
स चास्रवः, तस्य धीरैः कर्तव्यस्संवरस्सदा ।
आस्रवस्स्रोतसो द्वारं संवृणोतीति संवरः ॥

इति मानमेयरहस्यश्लोकवार्तिके प्रमेयकाण्डे
प्रथमः परिच्छेदः

अथ प्रमेयकाण्डे द्वितीय परिच्छेद प्रारम्भः.

---

(38) धर्मधर्मिभाववादः.

1 अथ मीमांस्यते धर्मधर्मिभावे विदां मतम् ।
सर्वेषां च विवादानां प्रायशोऽत्रैव विश्रमः ॥
सदसत्कार्यवादो वा नित्यानित्यविकल्पना ।
क्षणास्थिरविवादश्च सृष्टिप्रळयकल्पना ॥
द्वैताद्वैतविवादश्च मोक्षवादोऽपि तादृशः ।
तदुपायविवादो वा वादेऽस्मिन् पर्यवस्यति ॥
अद्रव्यवादिनः केचित्केचिद्द्रव्यैकवादिनः ।
तदैक्यवादिनः केचित् केचित्तद्भेदवादिनः ॥
भेदाभेदं वदन्त्यन्ये केचित्सन्मात्रवादिनः ।
असन्मात्रविदः केचित् तेषां भावोऽवमृश्यताम् ॥
2 स्पर्शादीन् जगतो धातून् पञ्च वैभाषिका विदुः ।
शब्दात्मनश्चतुर्ष्वेव केचिदित्यपरेऽब्रुवन् ॥
स्पर्शाद्येकद्वित्रिचतुस्स्वभावानपरे विदुः ।
निर्धर्मका निराधाराः न चेत्स्यादनवस्थितिः ॥
धर्मोपकारशक्तीनां भेदे तास्तस्य किं यदि ।
नोपकारस्ततस्तासां, तथा स्यादनवस्थितिः ॥

नानोपाध्युपकाराङ्गशक्त्यभिन्नात्मनो ग्रहे ।
सर्वात्मनोपकार्यस्य को भेदस्स्यादनिश्चितः ॥
एकोपकारके ग्राह्ये नोपकारास्ततोऽपरे ।
दृष्टे तस्मिन्नदृष्टेऽपि तद्ग्रहे सकलग्रहः ॥
त्वगाद्यैकैकेन्द्रियस्य ग्राह्या इत्यपि तत्स्थितिः ।
तेषां पुञ्जः प्रपञ्चोऽयं संबन्धस्यानवस्थितेः ॥
क्षीणानि चक्षुरादीनि रूपादिष्वेव पञ्चसु ।
न षष्ठमिन्द्रियं द्रव्यग्राहकं विद्यते बहिः ॥
तत्र धर्मातिरेकेण धर्मिणोऽनुपलम्भनात् ।
संघातमात्र एवायं गवादिस्स्याद्वनादिवत् ॥
सिद्धे ज्ञानसुखादीनां गुणत्वे गुणिकल्पना ।
न तु तत्सिद्धमस्माकं तावन्मात्रोपपत्तितः ॥
एत एव विशेषैकवादिनोऽद्रव्यवादिनः ।
प्रायो वैभाषिका एते यथाच वनवादिनः ॥
3 अथ केचन सन्मात्रं विदुः तत्तु स्वलक्षणम् ।
तदेतत्सर्वसामान्यसहमित्यपि तैः स्मृतम् ॥
द्रव्यं गुणः कर्म जातिः नाम चेत्यपि पञ्चधा ।
विकल्प्यते वासनया वस्तुभावेन तद्यथा ॥
गोविन्दो वेणुमान् श्यामः गोपोऽयं गायतीत्यपि ।
प्रतीतिर्व्यवहारश्च वर्तते न तु वस्तुतः ॥

एकस्यार्थस्वभावस्य प्रत्यक्षस्य सतस्स्वयम् ।
कोऽन्यो न दृष्टो भागस्स्यात् यः प्रमाणैः परीक्ष्यते ॥
स्वलक्षणः स प्रत्यक्षः निर्विकल्पकगोचरः ।
इत्याहुस्ते हि सन्मात्रवादिनः धर्मिवादिनः ॥
सामान्यवादिनश्चापि तथैवापोहवादिनः ।
बाह्याद्वैतिन इत्येवं कथ्यन्ते बहुरूपतः ॥
भेदे धर्मिस्वरूपे तु भ्रमः क्वापि न संभवेत् ।
धर्मरूपेऽनवस्था स्यात् अन्योन्याश्रयताऽपि वा ॥
भेदकाग्रहणे भेदो न गृह्येत कथंचन ।
तस्य चाग्रहणे सोऽपि न गृह्येतेति संग्रहः ॥
अभावस्य यथा देशकालाद्यैः सिद्धिरन्यथा ।
तथा रूपादिवस्तूनां किं न स्यात्सिद्धिरन्यथा ॥
साधारणोऽथान्यथा वा संबन्धो धर्मधर्मिणोः ।
आद्ये सकलसांकर्यं अन्त्ये भेदो न सिद्ध्यति ॥
आधाराधेयभावोऽपि न भेदे व्यवतिष्ठते ।
स्वभावान्नियमश्चेत्स्यात् स्वभावादेव चैकता ॥
4 सौत्रान्तिकानां सिद्धान्तः प्रायेणायमिति स्थितः ।
द्रव्याद्रव्यैक्यसिद्धान्तस्त्वथ कापिलसम्मतः ॥
वस्तुजातं प्रतीत्यैव व्यवस्थाप्यं हि सर्वशः ।
धर्मी धर्मः प्रतीयेते नातोऽन्यतरनिह्नवः ॥

कार्यकारणयोर्द्रव्यगुणयोः कर्मकार्मिणोः ।
जातिव्यक्तयोरभेदोऽयं सम्मतोऽयुतसिद्धयोः ॥
धर्मत्वादथ कार्यत्वात् संयोगाप्राप्त्यसंभवात् ।
संवित्त्युत्पत्तिसत्तानां भेदेनानवभासनात् ॥
धर्मोऽसौ धर्म्यभिन्नस्स्यादिति सांख्यव्यवस्थितिः।
कथंचिदाश्रितत्वादिः स्यात्तु भेदविवक्षया ॥
यथेह कानने सन्ति तिलका इति गीस्तथा ।
5 वैशेषिकादयः केचिद्भेदमेकान्ततो विदुः ॥
प्रतीतिं व्यवहारं च प्रमाणं तेऽपि मन्वते ।
दर्शनस्पर्शनाभ्यां चाप्येकार्थग्रहणादिति ॥
अबाधिता प्रत्यभिज्ञा धर्म्यभावे हि दुर्घटा ।
धर्माभावः पटूवपटुप्रत्ययानुपपत्तितः ॥
पीतशङ्खभ्रमादेश्चाप्ययोगान्न हि संभवी ।
स एवच तदैवान्यैः शुक्लत्वेनोपलभ्यते ॥
अधिष्ठानस्य कार्त्स्न्येन भानेऽभाने च न भ्रमः ।
भाताभाताकृतिभिदा कथं निर्धर्मके भवेत् ॥
आविर्भावतिरोभावधर्मकेष्वनुयायि यत् ।
तद्धर्मि यत्र वा ज्ञानं प्राग्धर्मग्रहणाद्भवेत् ॥
ग्राह्यभेदे ग्राहकाणां भेदस्स्यादन्यथापुनः ।
अन्योन्यसंश्रयापत्त्या विजयी मध्यमागमः ॥

वेद्यहेतुफलाकारैः भिन्नैरेका समेति धीः ।
तथा बाह्येऽपि दृष्टत्वात् युगपत्क्रमशोऽपिवा ॥
प्रतिसंबन्ध्यनेकत्वं यथा नैकस्य बाधकम् ।
तथा संबन्ध्यनेकत्वं नाश्रयैकत्वबाधकम् ॥
अनादाविह संसारे पूर्वपूर्वोपदेशतः ।
शिक्ष्यमाणाः पुनर्बालाः व्युत्पद्यन्ते तथातथा ॥
सर्वोऽपि भेदो युगपत्सहसैवोपलभ्यते ।
सेनावनसभातारामण्डलादिविभागवत् ॥
आगन्तुकोऽथवाऽवस्था धर्मो मिथ्येति न क्षमः ।
जननादेश्च मिथ्यात्वे नित्यत्वं वाऽथ तुच्छता ॥
नित्यं सत्त्वमसत्त्वं वाऽहेतोरन्यानपेक्षणात् ।
अपेक्षातो हि भावानां कादाचित्कत्वसंभवः ॥
अस्तिहीति प्रतिज्ञाने नास्तिहीत्युत्तरं क्षमम् ।
प्रवृत्तिभिर्विशिष्टार्था बालमूकादिधीरपि ॥
6 ननु निर्धर्मको धर्मः उत वा स्यात्सधर्मकः ।
आद्येऽभिलपनं न स्यात् अन्त्ये स्यादनवस्थितिः॥
केचिद्धर्माः धर्मिणः स्युः स्वान्यनिर्वाहकाः परे ।
गोत्वादिनिष्कर्षशब्दे धर्मी धर्मविशेषकः ॥
सत्त्वं प्रामाणिकत्वाख्यं प्रमेयत्वं च वाच्यता ।
पदार्थत्वादिकं सर्वैः स्वस्ववृत्तीति सम्मतम् ॥

घटकुड्यवदन्यत्वेऽनन्यत्वे तु स्वरूपवत् ।
न गुणस्य गुणत्वं स्यादित्यसत्स्वोक्तिबाधतः ॥
दूष्यादन्यदनन्यद्वा दूषणं नतु दूषणम् ।
गर्दभादिवदन्यत्वे,ऽनन्यत्वे दूषणीयवत् ॥
सामान्यं वा विशेषं वा वादी नाङ्गीकरोति चेत् ।
भ्रान्तिबाधौ हि न स्यातां कुत्र किं केन साध्यते ॥
द्रव्यं सत्त्वमथाद्रव्यमसत्त्वमिति शाब्दिकम् ।
असत्त्वेन मृषात्वं स्यादद्रव्यस्येति चेन्न तत् ॥
असत्त्वं सत्त्वभिन्नत्वं द्योतकत्वादि तन्मतम् ।
नतु तुच्छं यतश्चार्थक्रियाकारित्वमिष्यते ॥
7 भेदाभेदे हेतवो ये कीर्तिताः धर्मधर्मिणोः ।
अभेदधीः प्राक्, परतश्चैकशब्दानुविद्धधीः ॥
सामानाधिकरण्यं च मत्वर्थीयाविनाकृतम् ।
सहोपलम्भनियमः इत्याद्याः, तत्र चोच्यते ॥
नाभेदधीः प्राग्वैशिष्ट्यात् धर्म्यैक्यादेकतामतिः ।
मत्वर्थीयः पृथक्सिद्धे सहभावोऽपि भेदकः ॥
तदिहाभिन्नधीर्भिन्ने भ्रान्तिः ज्वालैक्यबुद्धिवत् ।
अभिन्ने भेदधीश्चैवं स्याच्चन्द्रद्वित्वबुद्धिवत् ॥
धर्मधर्मिस्वरूपैक्ये स्यान्नान्यतरधीः क्वचित् ।
सहधीश्च क्वचिन्न स्यात् सम्मतैक्ये यथा घटे ॥

सहस्रशस्सुप्रयोगास्सन्त्येव ह्यौपचारिकाः ।
तत्त्वं विनिश्चाययितुं अज्ञानां तैर्न शक्यते ॥
भेदाग्रहाद्विकारित्वात् धर्मत्वाद्देशसाम्यतः ।
परिमाणैक्यतश्चेत्याद्यसारं सांख्यकल्पितम् ॥
बाधासिद्ध्यन्यथासिद्धिव्यभिचारादिविप्लुताः ।
हेतवस्तद्विदामेव जुगुप्सामात्रहेतवः ॥
यत्तु भेदे स्वरूपादिविकल्पः तत्र कथ्यते ।
यद्बुद्धौ यत्र यद्भ्रान्तिः न स्यात्, सा तत्र तद्भिदा ॥
अभेदेऽपि स्वरूपादिविकल्पानुपपत्तयः ।
भेदे यथा तथैव स्युः समाधिश्चोभयोस्समः ॥
8 तस्माद्धर्मश्च धर्मी च निरपेक्षौ परस्परम् ।
विवादानवकाशस्स्यादभावे धर्मधर्मिणोः ॥
क्वा विधीयते किंवा साध्यं किं किंच साधनम् ।
कः पक्षः कश्च दृष्टान्तः सर्वं खल्विह दुर्घटम् ॥
इदमित्थंत्वयो किंचिद्यदि केनापि भज्यते ।
इदं नास्तीति वाचोऽपि भङ्गोऽन्यतरभङ्गतः ॥
विसंवादादिसाध्येषु विकल्पत्वादिहेतवः ।
व्याकुलाः पक्षहेत्वादिबाधाबाधविकल्पतः ॥
व्यवहारो हि जगतो भवत्यालम्बने क्वचित् ।
न तत्सामान्यतो नास्ति कथंता तु परीक्ष्यते ॥

सामान्यनिश्चितार्थेन विशेषे तु बुभुत्सिते ।
परीक्षा वर्तते स्वेष्टप्रमाणोत्पादनात्मिका ॥
संबन्धेऽनुपपत्तिर्या वृत्तित्वे याऽपि तादृशी ।
स्वीयकार्यविरोधेन सा नात्रोत्प्रेक्षितुं क्षमा ॥
वासनावशतस्सर्वनिर्वाहे शून्यता वरम् ।
इष्टप्रसक्तिरितिचेदनिष्टं तेऽस्तिवा नवा ॥
नास्ति चेन्नैव दूष्योऽन्योऽप्यस्ति चेत्तत्प्रसज्यते ।
इष्टानिष्टाविभागस्तु तिरश्चामपि दुर्वचः ॥
भेदमात्रापह्नवस्तु स्वक्रियायां विरुध्यते ।
न विरोधस्य संत्यागी लौकिको नाप्यलौकिकः ॥
9 अथ भेदाभेदवादसारांशोऽत्रावधार्यताम् ।
अर्हत्पातञ्जलकुमारिलप्रभृतिसम्मतः ॥
यदि ह्येकान्ततो भिन्नं विशेष्यात्स्याद्विशेषणम् ।
स्वानुरूपां सदा बुद्धिं विशेष्ये जनयेत्कथम् ॥
स्फटिकादौ तु लाक्षादिस्वरूपा या मतिर्भवेत् ।
अव्युत्पन्नस्य सा मिथ्या व्युत्पन्नानां हि भेदधीः ॥
न तु जात्यादिनिर्मुक्तं वस्तु दृष्टं कदाचन ।
तद्विवेकेन वा तानि लाक्षादिस्फटिकादिवत् ॥
तत्रापि चेन्न दृश्येत भेदः कैश्चित्कदाचन ।
रक्तादिबुद्धिसम्यक्त्वं विनिवार्येत केन वा ॥

नानिष्पन्नस्य संबन्धो निष्पत्तौ युतसिद्धता ।
तथाच सति संबन्धे हेतुः कश्चिन्न विद्यते ॥
समवायवियोगाच्च विश्लेषस्स्यात्परस्परम् ।
तत्क्लृप्तावव्यवस्था स्यात्तस्यतस्यान्यसंगतेः ॥
अथ तस्यात्मरूपत्वान्नान्यसंबन्धकल्पना ।
अभेदात्समवायोऽस्तु स्वरूपं धर्मधर्मिणोः ॥
अतो जात्यादिरूपेण धर्मी यद्गृह्यते नरैः ।
पाररूप्यं न तस्यास्तीत्यप्रामाण्यं न युज्यते ॥
यो ह्यन्यरूपसंवेद्यः संवेद्येतान्यथापुनः ।
स मिथ्या नतु तेनैव यो नित्यमवभासते ॥
अत्यन्तभिन्नताऽस्माभिः नैव कस्यचिदिष्यते ।
सर्वं हि वस्तु रूपेण भिद्यते न परस्परम् ॥
सर्ववस्तुषु बुद्धिश्च व्यावृत्त्यनुगमात्मिका ।
तेन नात्यन्तभेदोऽपि स्यात्सामान्यविशेषयोः ॥
तस्मात्सास्नादिमत्स्वेव गोत्वं यस्मात्तदात्मकम् ।
तादात्म्यमस्य कस्माच्चेत्स्वभावादिति गम्यताम् ॥
स्वरूपसत्त्वमात्रेण नच किंचिद्विशेषणम् ।
स्वबुद्ध्या रज्यते येन विशेष्यं तद्विशेषणम् ॥
अस्ति ह्यालोचनं ज्ञानं प्रथमं निर्विकल्पकम् ।
बालमूकादिविज्ञानसदृशं शुद्धवस्तुजम् ॥

व्यावृत्तिरनुवृत्तिर्वा तदानीं नानुभूयते ।
तयोराधारभूता तु व्यक्तिरेवावसीयते ॥
महासामान्यमन्यैस्तु द्रव्यं सदिति चोच्यते ।
सामान्यविषयत्वं च प्रत्यक्षस्यैवमाश्रितम् ॥
विशेषास्तु प्रतीयन्ते सविकल्पकबुद्धिभिः ।
ते च केचित्प्रतिद्रव्यं केचिद्बहुषु संश्रिताः ॥
पूर्वोक्तादेव तु न्यायात्सिद्ध्येदत्रावयव्यपि ।
तस्याप्यत्यन्ताभिन्नत्वं न स्यादवयवैस्सह ॥
व्यक्तिभ्यो जातिवच्चैष न निष्कृष्टः प्रतीयते ।
कैश्चिदव्यतिरिक्तत्वं कैश्चिच्च व्यतिरिक्तता ॥
दूषिता साधिता वापि नच तत्र बलाबलम् ।
कदाचिन्निश्चितं कैश्चित् तस्मान्मध्यस्थता वरम् ॥
ततोऽन्यानन्यते तस्य स्तो न स्तश्चेति कीर्त्यते ।
तस्मात्स्याच्चित्रवत्सर्वं मृषैव त्वेकरूपता ॥
तदभिन्नादभिन्नस्य तदभेदो न हीष्यते ।
रसरूपादिभेदस्य विनिपातः प्रसज्यते ॥
वस्त्वनेकान्तवादाच्च न संदिग्धाप्रमाणता ।
ज्ञानं संदिह्यते यत्र तत्र न स्यात्प्रमाणता ॥
इहानैकान्तिकं वस्त्वित्येवं ज्ञानं सुनिश्चितम् ।
संदिग्धैकान्तवादो हि स्यात्क्लैब्यैकनिबन्धनः ॥

इदं कौमारिलमतमुक्तं तादात्म्यलक्षणम् ।
पातञ्जलार्हदादीनां सिद्धान्तोऽप्ययमेव हि ॥
अत्रैव च क्वचित्कंचिद्विशेषं परिगृह्य ये ।
प्रवृत्ता मतभेदास्ते सन्ति वेदान्तिनामपि ॥
सत्यासत्यविभागेनाविरोधं केचिदूचिरे ।
प्रतीत्यैव विरोधस्य पराहतिरितीतरे ॥
परे विप्रतिपद्यन्ते प्रतीतावेव तादृशि ।
तत्त्वं देवो विजानाति चित्रा मानुषशेमुषी ॥

(39) द्रव्यवादः.

1 द्रव्यादिव्यवहारेषु विकल्पोऽथ प्रदर्श्यते ।
न द्रव्यं नाम वस्त्वस्ति वस्तुत्वेऽपि गुणादितः ॥
नातिरिक्तं पृथक्त्वेऽपि न प्रत्यक्षं तदिष्यते ।
प्रत्यक्षेऽपि विकल्पोऽयमिति वादः प्रवर्तते ॥
उपलम्भे विश्रमोऽतः तत्रापि शपथोक्तयः ।
एवं प्रकारस्सर्वत्र विचारः सौगताहृतः ॥
गुणे कर्मणि सामान्ये विशेषादौ प्रवर्तते ।
विवर्तवासना काचिन्महती तैस्समाश्रिता ॥
तामेवाश्रित्य कतिचित् स्वंस्वं सिद्धान्तमभ्यधुः ।
तद्विवर्तपदार्थेऽपि विकल्पो विविधोऽस्ति हि ॥

तुच्छं विवर्तमपरेऽथानिर्वाच्यं विदुः परे ।
अन्यथात्वं विदुः केचित् साधारण्यं विदुः परे ॥
2 ख्यातिवादे पुनस्तत्त्वमेतस्य स्फुटमग्रतः ।
द्रव्यं नित्यं ब्रह्म तत्त्वं परमार्थं च सन्मतम् ॥
इति ब्रह्मविदः प्राहुः अत्रच श्लोकवार्तिकम् ।
महासामान्यमन्यैस्तु द्रव्यं सदिति भाषितम् ॥
शब्दाद्वैतविदः शब्दं द्रव्यमित्यभिमन्वते ।
कालाद्वैतविदः कालं द्रव्यमेकमुदैरयन् ॥
स्याद्वादिनां तु सिद्धान्ते त्वेतत्स्याद्द्रव्यलक्षणम् ।
अनागतपरिणामावस्थं द्रव्यमितीर्यते ॥
तद्वर्तमानपर्यायं भाव इत्यभिधीयते ।
द्रूयन्ते यानि पर्यायैः पर्यायैर्वा द्रवन्त्यपि ॥
द्रव्याणि तानि निर्दिष्टान्यद्रव्याणि द्विधा पुनः ।
आगन्तवः स्युः पर्यायाः सहजास्स्युर्गुणा इति ॥
सांख्यानां सकलं द्रव्यं अनेकान्तविदामपि ।
वैशेषिकादिसिद्धान्ते द्रव्यं धर्मितया स्थितम् ॥
गुणकर्मादिधर्माणामिति पूर्वं निरूपितम् ।
मूर्तं द्रव्यं विदुः केचित् परिणामीति केचन ॥
द्रव्यं शक्तिमदित्येके ह्यद्रव्यं नहि शक्तिमत् ।
यथा शक्तिरशक्तैवं अद्रव्यं स्वान्यसाधकम् ॥

अवस्थाधारता द्रव्यमिति स्वायंभुवादयः ।
आगन्तुकापृथक्सिद्धधर्मोऽवस्थेति कीर्त्यते ॥
स्फुरद्द्रव्यमिळद्धर्मोऽवस्थेत्येके विदुर्बुधाः ।
अवस्थातद्वतोर्भेदाभेदं तु बहवो विदुः ॥
द्रव्यं नित्यमवस्थास्स्युरनित्या इति भाषितम् ।
पातञ्जले महाभाष्ये सुवर्णमकुटादिवत् ॥
3 एवं गुणपदं कर्मपदाद्यमपि दृश्यते ।
वस्तुमात्रे संप्रयुक्तं कथं तत्त्वव्यवस्थितिः ॥
तस्माद्वस्तुव्यवस्थायां व्यवहारा न चेशते ।
प्रयोगाल्पत्वभूयस्त्वनिर्णयः प्राज्ञदुश्शकः ॥
तस्माद्विरुद्धसंस्कारशिक्षितानां मनीषिणाम् ।
अन्योन्यं प्रत्यवस्थाने व्यवहारान्न निर्णयः ॥
अतएव हि शब्दानां सर्वेषां सर्वशक्तताम् ।
सार्वात्म्यवादिनः प्राहुः व्यवस्थां सहकारिभिः ॥
सहकारिविकल्पस्तु वासनामनुवर्तते ।
अतश्च वासना सर्वमिति सौगतनिर्णयः ॥
4 वासनानां तु वैचित्र्यं वस्तुवैचित्र्यमूलकम् ।
वैचित्र्यं चापि वस्तूनां स्वभावादिति तद्विदः ॥
एवंविधाऽपि काचित्स्याद्वासनेति च सौगताः ।
साऽपि बाह्यार्थनिघ्नेति विदुर्बाह्यार्थवादिनः ॥

एवंविधविचारे तु प्रतिष्ठा कुत्र शाश्वती ।
इति संचिन्त्य मध्यस्थाः सम्प्रदायमुपाश्रयन् ॥
सर्वेऽपि हि स्वोपलम्भं वदन्त्यखिलसाक्षिकम् ।
तथाच लोकानुभवोऽप्येवमेवेति सम्भ्रमात् ॥
तेन वादी स्वोपलम्भं भ्रमबुद्धया त्यजेदपि ।
त्रासितोऽपि बुधैरेवं न बिभेति विशुद्धधीः ॥
भवन्ति बहवः क्लीबाः अचलो यस्स बुद्धिमान् ।
इत्यतो वादभेदोऽपि सत्त्वाशयवशानुगः ॥

(40) गुणवादः.

1 गुणाः प्रधानं सांख्यानां त्रयस्सत्त्वादिलक्षणाः ।
अप्रधानं याज्ञिकानां मतं द्रव्यादिलक्षणम् ॥
शक्त्यादयो गुणाः प्रोक्ता ह्यर्थशास्त्रविशारदैः ।
शोभादयो गुणास्त्विष्टाः काव्यालङ्कारवेदिभिः ॥
शुक्लादयो गुणाः केचित्तार्किकैः परिभाषिताः ।
दोषप्रातिद्वन्द्वितया गुणास्स्युस्सर्वसम्मताः ॥
रज्ज्वादिकं तु संघातं वस्त्वस्ति गुणशब्दितम् ।
तस्मात्सामान्यतो दृष्टौ वस्तुमात्रं गुणो मतः ॥
तथैव सर्वश्शब्दो हि वस्तुमात्रे प्रयुज्यते ।
तथापि पारिभाषिकया वृत्त्या शास्त्रे व्यवस्थितिः॥

गुणे द्रव्यव्यपेक्षेऽपि द्रव्येऽपि गुणकाङ्क्षिणि ।
अन्योन्यनिरपेक्षे च गुणद्रव्ये प्रसिद्ध्यतः ॥
सर्वेषां वासना प्रायस्तर्कशास्त्रानुसारिणी ।
यतः पदार्थसंशुद्ध्यै शास्त्रमेतत्प्रवर्तितम् ॥
अतस्तदनुरोधेन गुणोद्देशोऽत्र गृह्यते ।
रूपं रसस्ततो गन्धस्स्पर्शस्संख्या ततः परम् ॥
परिमाणं पृथक्त्वं च संयोगस्तदनन्तरः ।
विभागश्च परत्वं चापरत्वं बुद्धिरेवच ॥
ततस्सुखं दुःखमिच्छा द्वेषो यत्नो गुरुत्वकम् ।
द्रवत्वस्नेहसंस्काराः शब्दोऽदृष्टं गुणा इमे ॥
न गुणानां पृथक्सत्ता व्याहारो द्रव्यसत्तया ।
इति केचित्तार्किकाश्च प्राहुरित्यपि दृश्यते ॥
स्वरूपमेव संबन्धः स स्वभावनिबन्धनः ।
इत्याहुर्गुणगुण्याद्योस्समवायं द्विषन्ति ये ॥
विशेषसामान्यभेदात् गुणान् द्वेधा विदुर्बुधाः ।
सामान्यद्रव्यवृत्तित्वे सामान्यगुणतेष्यते ॥
विशेषद्रव्यवृत्तित्वे तत्त्वं प्राहुः कुमारिलाः ।
रूपं गन्धो रसः स्पर्शः स्नेहस्सांसिद्धिको द्रवः ॥
बुद्ध्यादिभावनान्ताश्च शब्दो वैशेषिका गुणाः ।
संख्यादिरपरत्वान्तः द्रवोऽसांसिद्धिकस्तथा ॥

गुरुत्ववेगौ सामान्यगुणा इति हि तार्किकाः ।
अथ रूपादिवस्तूनां विकल्पोऽप्यवधार्यताम् ॥
2 चक्षुर्ग्राह्यः गुणो रूपं तत्सप्तविधमुच्यते ।
तार्किकैरिति सिद्धान्तः सर्वेषामेव विश्रुतः ॥
चित्रं रूपं नोपयन्ति मीमांसकविपश्चितः ।
अवयव्यतिरेके तु चित्रं रूपं मतं भवेत् ॥
भेदाभेदेऽप्यभेदे वा नोपगन्तव्यमेव तत् ।
अंशैरेवान्यथासिद्धेः नव्यैरप्येवमिष्यते ॥
मन्त्रशास्त्रे तु वस्तूनां रूपादिस्स्याद्विलक्षणः ।
विलक्षणो वैद्यशास्त्रे वेदान्तेऽपि विलक्षणः ॥
प्रत्यक्षेणापि बहुधा वैलक्षण्यं समीक्ष्यते ।
निर्वाहस्तूपदेशस्स्यादिति केचित्प्रचक्षते ॥
चित्रं यद्यतिरिक्तं स्यात् स्पर्शो गन्धः तथा रसः ।
एवमाद्याः किंनु चित्रा न भवेयुरितीतरे ॥
दुरालभादिवस्तूनां स्पर्शास्सन्ति विलक्षणाः ।
कस्तूरीप्रभृतीनां तु गन्धास्सन्ति विलक्षणाः ॥
एवं रसादिभेदाश्च सर्वानुभवसाक्षिकाः ।
व्यवहाराय सामान्यात्तीर्थकृद्भिर्विभज्यते ॥
अतिरिक्तं रूपमाहुः स्निग्धत्वं वर्णलक्षणम् ।
तथैव पिच्छिलत्वं च, स्याद्गुणान्तरमन्यथा ॥

नैल्यादयो गुणा विभ्व्यः एकैकव्यक्तिलक्षणाः ।
तेषामाश्रयभेदेन भेदधीरिति शाबराः ॥

3 रसस्तु रसनाग्राह्यः स च षड्विध इष्यते ।
मधुरादिविभेदेन स्थूलदृष्ट्या बुधैरिह ॥
रसानां सूक्ष्मभेदस्तु सर्वज्ञस्यापि दुर्ग्रहः ।
इक्षुक्षीरगुडादीनां माधुर्यस्यान्तरं महत् ॥
तथापि न तदाख्यातुं सरस्वत्याऽपि शक्यते ।
इति दण्ड्यादयः प्राहुः विद्वद्रसिकशेखराः ॥
तदाश्रयविकल्पोऽपि विविधः परिदृश्यते ।
चिन्तनानलसाश्चापि सन्ति दुश्शकनिर्णयाः ॥

4 घ्राणग्राह्यो गुणोगन्धः स च द्विविध इष्यते ।
सुगन्धश्चाथ दुर्गन्धः इत्यत्र तु विचार्यते ॥
तत्तदन्यविभेदेन विभागो न हि दुश्शकः ।
सूक्ष्मभेदाविवक्षा चेत् रूपादौ सा प्रसज्यते ॥
सौगतादिप्रबन्धेषु विभागोऽस्ति विलक्षणः ।
विचाररसिकानां तु केवलं दिक्प्रदर्शनम् ॥

5 स्पर्शस्त्वगिन्द्रियग्राह्यस्स च त्रिविध इष्यते ।
अनुष्णाशीतशीतोष्णभेदादिति हि तार्किकैः ॥
वह्निरुष्णो जलं शीतं समस्पर्शस्तथाऽनिलः ।
पृथिव्यपि तथैवेति सर्वैरभ्युपगम्यते ॥

आयुर्वेदे शीतगुणो मारुतस्संप्रकीर्तितः ।
तच्चिकित्सानियत्यर्थमिति सर्वार्थसिद्धिकृत् ॥
संयोगभेद एवायं स्पर्श इत्यपरे विदुः ।
संबन्धवादे संयोगविचारेऽस्त्यस्य विस्तरः ॥
काठिन्यमार्दवाद्यास्स्युः स्पर्शा हि विविधा भुवि।
तेषां संयोगरूपत्वे का शीताद्युपकारिता ॥
6 सर्ववस्तुषु संख्याया व्यवहारो हि दृश्यते ।
तेन संख्याऽतिरिक्तोऽर्थः सा चैकत्वादिलक्षणा ॥
बहुत्वं नातिरिक्तं स्यात्किंतु त्रित्वादिलक्षणम् ।
इति प्राभाकराः प्राहुः अथ कौमारिलाः पुनः ॥
वैशेषिकादिवत्संख्यां गुण इत्यभिमन्वते ।
द्रव्य एवाहि दृश्यन्ते व्यवहारास्तु भूयसा ॥
संख्यायामपि संख्यायाः व्यवहारस्य दर्शनात् ।
अनवस्था प्रसज्येत यदि संख्याऽतिरिच्यते ॥
गुणादावपि संख्यायाः व्यवहारस्य दर्शनम् ।
एकार्थसमवायादिसंसर्गादन्यथा भवेत् ॥
अपेक्षा बुद्धिरेव स्यात्संख्या द्वित्वादिलक्षणा ।
अपेक्षाबुद्धिजन्यं तत् इति प्राञ्चः प्रचक्षते ॥
संघातः पुनरेकत्वमिति संख्यापलापिनः ।
ऐक्यं भेदाभावरूपमिति भूषणनिर्णयः ॥

स्वरूपभेद एव स्यात् द्वित्वाद्यपिच तन्मते ।
वस्तुतस्सर्ववस्तूनि संख्या ग्रसितुमर्हति ॥
वनादौ नियतापेक्षाबुद्ध्यभावेऽपि दृश्यते ।
बहुत्वं, न शतत्वादि, तद्बहुत्वातिरिक्तता ॥
इति श्रीधरसिद्धान्तः तत्र चोदयनः पुनः ।
सेनेयं महती याति सैषा सेना महत्तरा ॥
इत्यादिव्यवहारेण ह्यतिरेकं निषेधति ।
त्रित्वाद्येकाधिकरणं बहुत्वमिति शंकरः ॥
7 एकत्वं त्वसहायत्वं मुख्यत्वं वाऽन्यतां जगुः ।
भावत्वेनैव वेद्यत्वात् अमुख्येष्वपि दर्शनात् ॥
स्वस्मिन्नप्यैक्यबुद्धेश्च त्रितयं नैक्यमिष्यते ।
संघातैक्यं तु राश्यादाविव स्यादौपचारिकम् ॥
तस्मादसंघातसंस्थमेकत्वं निरुपाधिकम् ।
अपेक्षाबुद्धिभेदैः स्यात् द्वित्वादीनां निराक्रिया ॥
इति सर्वार्थसिद्धौ हि वेदान्ताचार्यनिर्णयः ।
अभूदैक्यभ्रमो भेदादर्शनादिति वेदनात् ॥
ऐक्यं स्वसत्त्वमेवेति निरणैषुः परे बुधाः ।
स्वरूपादतिरिक्तं तत्पक्षयोरुभयोरपि ॥
यतः स्वरूपे ज्ञातेऽपि द्वित्वव्यामोहदर्शनम् ।
प्रामाणिकः स्वभावो यः तत्स्वरूपमिति स्थितम् ॥

अभिज्ञाग्राह्यमेकत्वमन्यत् तस्माद्विलक्षणम् ।
प्रत्यभिज्ञाग्राह्यमिति विपश्चिद्भिर्निरूपितम् ॥
देशकालादिभेदेन भेदो यस्तु प्रसज्यते ।
तद्विरोध्यैक्यमेतत्स्यादिति तल्लोकसाक्षिकम् ॥
तेनैव क्षणभङ्गं तं निरुन्धन्ति विपश्चितः ।
प्रत्यभिज्ञाविचारस्तु क्षणवादे प्रतिष्ठितः ॥
8 मानव्यवहृतेर्हेतुः परिमाणमितीर्यते ।
महद्दीर्घमणु ह्रस्वमिति तत्स्याच्चतुर्विधम् ॥
परमाणुरणुः ज्ञेयः त्र्यणुकाद्यं महत् मतम् ।
द्व्यणुकं स्यादणु ह्रस्वं तदूर्ध्वं दीर्घमिष्यते ॥
विभुद्रव्याणि परममहान्तीति विनिर्णयः ।
परमाणौ विभौ चापि मानं नास्तीति केचन ॥
परिमाणं तु परितो भाववेष्टनलक्षणम् ।
तच्चापरिमितख्यातेः विभौ नास्तीति केचन ॥
देशव्याप्तिविशेषः स्यात् परिमाणमितीतरे ।
राश्यादिषु महत्त्वादिः देशसंबन्ध एवहि ॥
आर्जवेनैकदिग्योगो दीर्घतेत्येवमूह्यताम् ।
वक्रत्वं चतुरश्रत्वं कुण्डलत्वादिकं तथा ॥
परिमाणं हि परितो मानमित्यभिधीयते ।
आकाशधातुरेवायं स तुच्छ इति सौगताः ॥

अणूनां स्यात्परिमितिराकाशमिततैव हि ।
तस्मादवच्छेदभेदान्महदित्यादिधीरिति॥
विभुत्वं तर्हि सर्वेषां स्यादित्यापाद्यते बुधैः ।
परस्परविरोधे हि न प्रकारान्तरस्थितिः ॥
सर्वप्रकारपरिमित्यभावो विभुतैव हि ।
सर्वोत्कृष्टपरीमाणं विभुत्वमिति केचन ॥
अवस्थैव परीमाणं प्रकृतेरिति कापिलाः ।
उपाधिभिः पार्श्वभेदः परमाणोरितीतरे ॥
स प्रदेशो निरंशोऽपि स्वभावादिति चार्हताः ।
उपाधीनामुपाधिश्चेत् भवेदेवानवस्थितिः ॥
9 पृथक्त्वं भेद इत्यन्ये वैशिष्ट्यमिति केचन ।
परे वैधर्म्यमित्याहुः गुणान्तरमितीतरे ॥
अयमस्मात्पृथगिति प्रतीतेः भिन्न इत्यसौ ।
विलक्षणा प्रतीतिः स्यादित्याहुर्वृद्धतार्किकाः ॥
वैशिष्ट्यस्य पृथक्त्वे तु व्योम्नि शब्दविशेषिते ।
व्यवहारः पृथक्त्वेनापाद्यते प्रागपेक्षया ॥
वैधर्म्यस्य पृथक्त्वे तु पाकरक्ते घटे पुनः ।
श्यामाद्धटात्पृथगिति व्यवहारः प्रसज्यते ॥
पृथक्त्वं भेद एवेति नव्यतार्किकनिर्णयः ।
भेद एव पृथक्त्वं स्यात् भिन्नः पृथगसाविति ॥

सामानाधिकरण्येन व्यपदेशो न विद्यते ।
पृथक्त्वं लक्षणं भेद इत्यनर्थान्तरं विदुः ॥
भेदोऽप्यसाधारणोऽसौ धर्म एवेति तात्त्विकाः ।
एकद्वित्रिपृथक्त्वादि संख्यावदिति निर्णयः ॥
वैशेषिकविशेषाणां पृथक्त्वेनान्यथा गतेः ।
नित्यानां निष्प्रमाणोऽयं विशेष इति वैदिकाः ॥
अप्राप्तिपूर्विका प्राप्तिः संयोगस्सार्वलौकिकः ।
अबाधिता प्रतीतिश्च संयुक्त इति तद्वति ॥
नान्यथाऽवयवी सिद्ध्येत् उत्पत्तिरपि पाकजा ।
न स्याच्च जगतः सृष्टिः तथा यन्त्रादिकल्पना ॥
आलानादिविनिर्माणं संसर्गश्चेन्द्रियार्थयोः ।
संबन्धो बीजजलयोः शौचाशौचव्यवस्थितिः ॥
न स्याच्छब्दोत्पत्तिरपि जगत्स्यादपि निश्चलम् ।
विभोर्न च्छिद्रमणुना नाणूनां विभुना च तत् ॥
यथाप्रमाणं संबन्धमात्रमेव तयोर्भवेत् ।
न विभज्यते गच्छद्भिः न विहन्ति गतिं च यत् ॥
अस्पर्शत्वात्तथाभूतं विभु वाऽविभु वाऽस्तिहि ।
कौमारिलास्त्वजमपि संयोगं श्रोत्रशब्दयोः ॥
विभ्वोरिच्छन्ति तत्पक्षे स्याद्विभागोऽपि तादृशः ।
इत्याक्षेपस्तार्किकाणां नचेष्टापत्तिसंभवः ॥

विरोधस्य परित्यागप्रसङ्गादिति तात्त्विकाः ।
इति वैशेषिकाः प्राहुरेषा सौगतपद्धतिः ॥
असिद्धः क्षणभङ्गेन संयोगस्स्यात्सहेतुकः ।
स्याच्चाविरलदेशस्योत्पत्त्या वा सिद्धिरन्यथा ॥
तस्मात्संयोगसंबन्धो विकल्प इति ते विदुः ।
संबन्धतत्त्वापलापः प्राग्रूपं शून्यसंपदः ॥
नैरन्तर्यं त्वन्तरालाभावस्संयोग एव चेत् ।
अभावस्स्यादसन् तुच्छः न कार्यं नापि कारणम् ॥
संयोगेऽन्तर्भावयन्ति पदार्थं कर्मलक्षणम् ।
केचिद्दार्शनिकाः केचित्तार्किकाः भूषणानुगाः ॥
संयोगमेव विषयविषयित्वं विदुः परे ।
द्रव्ययोरेव संयोगनियमं न प्रचक्षते ॥
अतीतेऽनागते चापि संयोगस्यास्ति संभवः ।
समकालिकयोरेव संयोग इति नेष्यते ॥
11 संयोगयुक्तिरेवात्र विभागेऽपि विपर्ययात् ।
शक्याऽनुसंधातुमिति क्रियते नात्र विस्तरः ॥
संयोगाभावरूपश्चेद्विभक्त इति शेमुषी ।
भवेद्विज्ञानवादेन सर्वापह्नवसंभ्रमः ॥
विभागो यदि संयोगनाशः किं न विपर्ययः ।
मिथो विनिगमाभावे तूभयं चेह निर्भयम् ॥

पूर्वसंयोगनाशश्चेदौत्तरो योग उच्यते ।
विभक्तसंयुक्तधियां सांकर्यं दुर्निवारणम् ॥
12 परत्वं चापरत्वं च दैशिकं कालिकं द्वयम् ।
आद्यं संयुक्तसंयोगभूयस्त्वाल्पत्वधीकृतम् ॥
कालिकं सूर्यचलनभूयस्त्वाल्पत्वधीकृतम् ।
भूयस्त्वाल्पत्वबुद्धी ते अपेक्षाबुद्धिसंज्ञिते ॥
ताभ्यामेवान्यथासिद्धिं तयोः केचिद्विदुर्बुधाः ।
बुद्ध्यधीने हि विज्ञानवादशङ्का प्रसज्यते ॥
विद्यावृत्ताभिजात्यादौ परताऽपरताऽपिच ।
गुणे गुणमजानद्भिः अखिलैर्व्यपदिश्यते ॥
द्विपरत्वादयो न स्युः द्विपृथक्त्वादिवत्पुनः ।
नीलाविमौ द्वाविति वत् द्वाविमौ च पराविति ॥
सदाऽनवधिकत्वेन प्रतीतेरिति गम्यताम् ।
द्वित्वैकार्थत्वतश्चापि तेषां स्यादन्यथागतिः ॥
परत्वादिगुणाभावे चाभावो देशकालयोः ।
तद्विस्तरः कालवादे स्थित इत्युपरम्यते ॥
13 गुरुत्वमाद्यपतनासमवायितया गुणः ।
अतीन्द्रियं चाम्बुभूम्योः कल्प्यते किल तार्किकैः ॥
नव्यास्तन्नोपगच्छन्ति वस्त्वधोदेश एवहि ।
गुरुत्वबुद्धिविषयः ततस्स्यात्पतनादिकम् ॥

ततश्चांशप्रभेदः स्याद्गुरुत्वं ततएव हि ।
मारुतः पवते वायुः पोपवीतीति कथ्यते ॥
वह्निः ज्वलति सप्तार्चिः जाज्वल्यत इतीर्यते ।
एवं जले च भूमौ च क्रियासमभिहारतः ॥
पततीति प्रयोगस्स्यात् अंशभेदनिबन्धनः ।
लघुत्वमतिरिक्तं च किंवा न स्याद्विभागवत् ॥
तिर्यगूर्ध्वाधोगुरूणीत्याहुः केचिद्विधात्रयम् ।
तानि वाय्वग्निवारीणि क्रमादिह निदर्शनम् ॥
गुरुत्वातिशयोऽप्येषः यदाक्रमणमुच्यते ।
सांख्यैस्तमःकार्यभूतं गुरुत्वमभिधीयते ॥
पृथिवीजलवृत्त्येतत्पतनस्य प्रयोजकम् ।
तेजःपवनयोरूर्ध्वगतिहेतुर्लघुत्वकम् ॥
सत्त्वकार्यं ह्येषितव्यमिति तान्प्रत्युदीर्यते ।
अदृष्टकारितत्वोक्तिः पृथिव्यादावपीष्यताम् ॥
14 आद्यस्यन्दनहेतुस्तु द्रवत्वमभिधीयते ।
सांसिद्धिकं द्रवत्वं स्यात् नैमित्तिकमथापरम् ॥
सांसिद्धिकं तु सलिले द्वितीयं क्षितितेजसोः ।
पृथिव्यां घृतजत्वादौ सुवर्णादौ च तेजसि ॥
मसृणत्वं तद्विशिष्टं गुरुत्वं स्यन्दयेज्जलम् ।
माषादिषु तथा दृष्टेः द्रवत्वं नातिरिच्यते ॥

मसृणत्वं त्ववयवव्यूहः संयोगलक्षणः ।
इति सिद्धान्तयन्त्यन्ये तर्को न प्रतितिष्ठति ॥
चूर्णादिपिण्डीभावस्य हेतुः स्नेहो गुणान्तरम् ।
जलमात्रे त्वसाविष्टः नान्यथासिद्धिरन्यतः ॥
तैलादौ पार्थिवे तस्य प्रकर्षाद्दाहहेतुता ।
इति तार्किकसिद्धान्ते प्रत्युक्तिरियमुच्यते ॥
अग्नौ स्नेहविरुद्धं यद्रौक्ष्यं तत्स्याद्गुणान्तरम् ।
द्रव्यस्वभाववादस्तु सुलभस्सर्वसम्मतः ॥
लौकिकोऽलौकिकश्चेति संस्कारो द्विविधो मतः ।
वेगादिलक्षणस्त्वाद्यः चोदनालक्षणः परः ॥
वेगः स्थितस्थापकश्च भावनेति त्रिधाऽऽदिमः ।
मूर्तमात्रे तु वेगस्स्यात् कर्मजः, वेगजः क्वचित् ॥
स्थितस्थापकसंस्कारः क्षित्यादिषु मतः क्वचित् ।
भावनाख्यस्तु संस्कारः जीववृत्तिरतीन्द्रियः ॥
उपेक्षाऽनात्मकस्तस्य निश्चयः कारणं भवेत् ।
अदृष्टं सहदृष्टं च सदृकृद्दृष्टमिति त्रिधा ॥
सहकारी स्मृतेर्हेतोस्संस्कारस्य प्रदर्श्यते ।
इति तार्किकसिद्धान्तं शक्त्याऽपह्नुवते परे ॥
संस्कारः ज्ञानशक्तिः स्यात् कर्मशक्तेर्विलक्षणा ।
वेगः कर्मविशेषेऽन्तर्भवतीत्यपरे विदुः ॥

संस्थानस्य प्रभेदोऽयं स्थितस्थापकतेत्यपि ।
मीमांसकाः कर्मततिं वेगमाहुर्निरन्तराम् ॥
शरादौ प्रथमं वेगः नोदनेन प्रजायते ।
ततश्च कर्मसंतानः चरमोत्तरदेशजात् ॥
संयोगाद्वेगनाशस्स्यात् इति वैशेषिका विदुः ।
कर्मसंततिवद्वेगसंततिं गौतमा विदुः ॥
चोदनागम्यसंस्कारो बहुधा प्रतिपादितः ।
तद्धेतुर्गुणकर्मैति तच्छक्तिरिति केचन ॥
मीमांसकास्तु संस्कारं तं द्रव्यादिगतं विदुः ।
नैयायिकाः पुनः प्राहुः तं वै पुरुषसंगतम् ॥
स्वभाववादावकाशः वस्तुवादे प्रसज्यते ।
आत्मवादेऽदृष्टवादः, विस्पष्टः कुसुमाञ्जलौ ॥
केचित्तु ज्ञानसंस्कारः कर्मसंस्कार इत्यपि ।
विभजन्ते च तत्राद्यो भावनान्तर्गतो भवेत् ॥
अन्त्यो वीणामृदङ्गादिवाद्यवादनकौशलम् ।
शिल्पादिकौशलं वा स्यात्तत्सर्वं शक्तिसात्कृतम् ॥
संस्कारो वासना चैव भावनेत्यपि गीयते ।
पूर्वप्रज्ञा प्रत्यभिज्ञा श्रद्धा चैवास्य विस्तरः ॥
स एव ह्यात्मनो रूपं मुख्यमित्यभिधीयते ।
तेनाभ्युदयिकं नैश्श्रेयसं चाहुः विपश्चितः ॥

(41) बुद्धिवादः.

1 देहधातुविशेषो वा विकासो वाऽस्य कश्चन ।
ज्ञानमित्येव वक्तव्यं वरं धर्मिप्रकल्पनात् ॥
हृदयस्थः पित्तभागः प्रकाश इति वैद्यकम् ।
एवं चार्वाकसिद्धान्ते बुद्धिवस्तु विविच्यते ॥
बौद्धा विदुश्चित्तचैत्तमान्तरं बुद्धिलक्षणम् ।
चित्तं ज्ञानं चैत्तमेतत् रागाद्यं बहुधा स्थितम् ॥
तार्किकाः सुखबुद्ध्याद्यानष्टावात्मगुणान्विदुः ।
निमित्तकारणान्यत्वमपि कार्यस्य भेदकम् ॥
तद्भेदात्सुखदुःखाद्याः न विज्ञानात्मका मताः ।
सर्वं सुखं ज्ञानपूर्वं न ज्ञानं ज्ञानपूर्वकम् ॥
गर्भादौ च प्रबोधादौ प्रथमज्ञानसंभवात् ।
सांख्याः बुद्धिपरीणामाः वुद्ध्याद्या इति जानते॥
सर्वेऽप्यात्मपरीणामाः इत्याहुः शाबराः पुनः ।
कौमारिला आर्हताश्च तथौपनिषदा अपि ॥
केचित्तु धर्मभूतस्य ज्ञानस्य परिणामिनः।
एते विकारास्तेनात्मा सुखाद्याधार इष्यते ॥
आनुकूल्यप्रातिकूल्योपेक्षावस्थाविभेदतः ।
बुद्धिरेव सुखं दुःखमुपेक्षेत्यपि शक्यते ॥
इच्छाद्वेषादिकं बुद्धेः प्रपञ्चः स्यादिहान्यथा ।
ईर्ष्याभ्यसूयाकरुणाभयधैर्यबलादयः ॥

इच्छाद्वेषादिवत्किं वा न भवेयुः पृथग्गुणाः ।
केचिदिच्छाप्रभेदं तद्रागद्वेषादिकं विदुः ॥
रागोऽनुकूलविषयोपादानेच्छेति निर्णयः ।
प्रतिकूलजिहासा तु द्वेष इत्यभिधीयते ॥
तावेव तीव्रभावेन कामक्रोधाविति स्थितौ ।
अशनायापिपासाद्यास्सहस्रं स्युरिहान्यथा ॥
तस्माद्द्वेषो विशेषः स्यादिच्छाया इति निर्णयः ।
2 शृङ्गारादिरसाश्चापि बुद्धिभेदाः प्रकीर्तिताः ॥
शृङ्गारवीरबीभत्सरौद्राद्याः स्यू रसा दश ।
बुद्धेरात्मस्वरूपत्वे त्वात्मैव रस उच्यते ॥
बुद्धेरात्मगुणत्वे तु गुणा एव रसा मताः ।
बुद्धेश्चित्तस्वरूपत्वे सत्त्वोद्रेको रसो भवेत् ॥
बुद्धेस्स्वयंप्रकाशत्वे स्वयंवेद्यो रसो मतः ।
बुद्धेर्मानसपक्षे तु सोऽपि मानस उच्यते ॥
बुद्धिर्यद्यनुमेया स्यात्तदा चानुमितो रसः ।
एवं सिद्धान्तभेदेन रसतत्त्वं विकल्प्यते ॥
बुद्धेः प्रपञ्चः प्रामाण्यवादे सम्यग्विचिन्त्यते ।
सुखदुःखेच्छादयस्तु गुणास्स्युर्बुद्धिसात्कृताः ॥
3 प्रयत्नोऽपि धियो भेदः पौरुषेयी कृतिर्हि सा ।
सर्वत्राख्यातवाच्यैषा या त्वार्थी भावनोच्यते ॥

वाक्यार्थवादे तत्तत्त्वं स्फुटमग्रे भविष्यति ।
प्रवृत्तिश्च निवृतिश्च तथा जीवनकारणम् ॥
एवं प्रयत्नत्रैविध्यं तार्किकैः परिकीर्तितम् ।
तत्र जीवनयोनिर्यः स च कैश्चिन्न कल्प्यते ॥
अदृष्टादेव च प्राणसंचारं ते विदुर्बुधाः ।
प्रवृत्त्यभाव एव स्यान्निवृत्तिरिति केचन ॥
निवृत्त्यभावः पवृत्तिरित्याशङ्का दुरुत्तरा ।
निवृत्तिर्यत्नभेदस्स्यादिति नव्याः विदुर्बुधाः ॥
4 आनूकूल्यप्रातिकूल्यवेद्यत सुख ुःखयोः ।
लक्षणं तत्रानुकूलं सुखं, दुःखं विपर्ययः ॥
प्रायो विदितमेवैतत् कैश्चिद्वेदान्तिभिः पुनः ।
अनुकूलतया वेद्यं सर्वं सुखमितीष्यते ॥
प्रतिकूलतया वेद्यं सर्वं दुःखमिति स्मृतम् ।
अतः सर्वे पदार्थास्स्युः सुखदुःखपदाभिधाः ॥
सैषाऽऽनन्दस्य मीमांसा युवा स्यादित्युपक्रमात् ।
अनुकूलतया वेद्यं सर्वमानन्दमब्रवीत् ॥
आनुकूल्यं विषयताविशेषः सर्वगामि तत् ।
तस्मात्सर्वं सुखं यद्वा तज्ज्ञानं सुखमिष्यते ॥
तद्धेतोरेव तत्त्वे तु किं वस्त्वन्तरचिन्तया ।
तस्मादाविदितावस्थायोगित्वं तस्य नेष्यते ॥

साक्षिवेद्यत्वसिद्धान्तः पर्यायादयमेवहि ।
स्वप्रकाशात्मवादो वा सर्वमेकफलोन्मुखम् ॥
अत्रैव शाक्यभिक्षूक्तं वचनं त्ववधार्यताम् ।
तदतद्रूपिणो भावास्तदतद्रूपहेतुजाः ॥
तत्सुखादि किमज्ञानं विज्ञानाभिन्नहेतुजम् ।
विकल्पो यदि बाह्येऽपि किं वक्तव्यमिहान्तरे ॥

(42) प्राकट्यवादः.

1 अथ बुद्धिप्रसङ्गेन प्राकट्यमिह कथ्यते ।
भाट्टदृष्टः प्रकटता गुणः न तु परैः बुधैः ॥
घटो हि विद्यमानोऽपि कस्यचिद्व्यवहार्यताम् ।
प्रपद्यते न सर्वेषामथवा नापि सर्वदा ॥
तस्माद्यदा व्यवहरेत् चेतनोऽसौ घटादिना ।
तदा तद्व्यवहारस्यानुगुणोऽतिशयोऽस्ति यः ॥
स ज्ञानमिति सर्वेऽपि कल्पयन्ति परीक्षकाः ।
उत्पन्नमेव तत् ज्ञानं प्रत्यक्षमिति केचन ॥
ज्ञानजन्याद‍तिशयादनुमेयमितीतरे ।
कीर्त्यतेऽसौ प्रकटता दृष्टता ज्ञाततेति च ॥
सामान्यतस्तु प्राकट्यमिति तैः परिभाष्यते ।
दृष्टता जायतेऽध्यक्षात्परोक्षात् ज्ञाततेत्यपि ॥

तत्रापरोक्षं दृष्टत्वं घटो दृष्टो मयेति हि ।
दृष्टत्वमनुसंधत्ते सर्वोऽप्यर्थस्य चात्मना ॥
नान्यथा ह्यर्थसद्भावो दृष्टस्सन्नोपपद्यते ।
ज्ञानं चेन्नेत्यतः पश्चात्प्रमाणमुपजायते ॥
तथैवानुमिते ह्यर्थे मया ज्ञातोऽग्निरित्यपि ।
ज्ञातत्वमनुसंधत्ते ज्ञातता नाक्षगोचरा ॥
अथाप्यत्रोपपत्तिं ते सूक्ष्मदृष्ट्या प्रचक्षते ।
ज्ञातता ह्यात्मनोऽर्थेन संबन्धः प्राप्तिलक्षणः ॥
कर्तृकर्मात्मनोर्मातृमेययोराप्तिरेव सा ।
सैव प्राकट्यदृष्टत्वज्ञातत्वादिपदोदिता ॥
व्यापारोऽवश्यवक्तव्यः पुमान् येन प्रवर्तितः ।
अर्थोऽपि प्रापितश्च स्यात्प्रमेयाधिगतिर्हि सा ॥
मानसाध्यक्षवेद्या सा परोक्षो विषयो यदि ।
कल्पयेदेव विज्ञानमन्यथाऽनुपपत्तितः ॥
तं पदार्थान्तरं प्राहुः प्राकट्यमिति पण्डिताः ।
एवं प्राकट्यतत्त्वार्थो न्यायरत्नाकरे स्फुटः ॥
2 संविदं स्वप्रकाशां तु मन्यन्ते ये च तन्मते ।
स्वोत्पत्तिसमये संवित् वेत्तारं वेद्यमेव च ॥
स्वस्वरूपं भासयति न त्वेषां तु परस्परम् ।
संबन्धं स्वस्वरूपस्यानिष्पन्नत्वादसत्त्वतः ॥

संविदन्तरनिष्पत्तिसमये पूर्वसंविदः ।
नष्टत्वादुक्तसंबन्धो न तद्गोचरतामियात् ॥
किंतु संवेत्तृधर्मोऽसौ प्राप्तयाख्यः स्वात्मसाक्षिकः।
निष्पन्नायां तु संवित्तौ स संबन्धोऽवभासते ॥
ततएवच संवित्तिवस्तुकल्पनसंभवात् ।
संवित्तैः स्वप्रकाशत्वकल्पना गुरुताऽऽहृता ॥
3 प्राकट्यं स्यात् ज्ञानधर्मः इत्याहुः किल सौगताः।
आत्मधर्म इति प्राहुः प्राभाकरमतानुगाः॥
प्राकट्यं नाम सर्वेषु विषयेषु स्थितो गुणः ।
इति कौमारिलाः प्राहुः हेतुः प्रागेव विस्तृतः ॥
ज्ञानार्थयोश्च संबन्धः यस्स्याद्विषयताऽऽत्मकः ।
स ज्ञानरूप एवेति नैयायिकमुखा विदुः ॥
अतिरिक्तं पदार्थं तं नव्यनैयायिका विदुः।
विषयत्वविकल्पस्तु संबन्धेऽत्र प्रपञ्चयते ॥
सर्वासां च प्रतीतीनां बुद्धिसंबन्धमात्रतः।
उपपत्तेः प्रकाशोऽन्यैः तदन्यो नाभ्युपेयते ॥
यदि कल्प्येत विषये प्राकट्यं व्यवहारतः ।
तद्धेतुत्वेन कल्प्या धीः तत्फलार्थं प्रकल्प्यताम् ॥
यदि तत्रैव तस्यैव प्राकट्यं ते धिया भवेत् ।
तथा ज्ञानादयोऽपि स्युः किमन्तर्गडुनाऽमुना ॥

प्राकट्यं प्रकटं वा स्यादन्यतः स्वत एव वा ।
आद्येऽनवस्थितिश्शेषे बुद्धिरेव तथा न किम् ॥
स्वदते मोदत इति यथा भाति घटस्तथा ।
शब्दानां नियतिस्सेयं नार्थधर्मप्रसाधकम् ॥
इष्टता द्विष्टता चैव कृतता च प्रणष्टता ।
तथा संस्कृतता च स्यात् अधिका ज्ञातता यथा ॥
प्राकट्यं हि गुणः प्रोक्तस्स रूपादौ कथं भवेत् ।
गतिक्रियायाः कर्मत्वं प्राप्त्या चेत्फलरूपया ॥
प्राप्तिक्रियायाः कर्मत्वं किमन्यदिह कथ्यते ।
तस्मात्प्राकट्यसिद्धान्तः मतिजाड्यनिबन्धनः ॥
ज्ञानस्य द्रव्यरूपत्वे स स्यात्संयोगलक्षणः ।
दृग्दृश्यसंगतिं चान्ये दुर्निरूपां विदुर्बुधाः ॥
स योगाचारमार्गः स्यात्तादात्म्ये पर्यवस्यति ।
तद्वादधूननायैव प्राकट्यपरिरक्षणम् ॥

(43) शब्दवादः

1 वैभाषिकास्तु शब्दादीन् पञ्चधाऽणून् प्रचक्षते ।
शब्दात्मानश्चतुर्ष्वेव केचिदित्यपरेऽब्रुवन् ॥
अणवस्सर्वशक्तित्वाद्भिदसंसर्गवृत्तयः ।
छायातपतमश्शब्दभावेन परिणामिनः ॥

स्वशक्तौ व्यज्यमानायां प्रयत्नेन समीरिताः ।
अभ्राणीव प्रचीयन्ते शब्दाख्या इति तन्मतम् ॥
2 निरोधोत्पत्तिधर्मं च शब्दं वस्त्वन्तरं परे ।
अनाश्रितं महाभूतसंक्षोभजनितं विदुः ॥
3 शब्दस्यावयवास्सूक्ष्माः सन्ति केचन पुद्गलाः ।
तैर्वर्णो जायते तैश्च शब्दोऽन्योऽवयवी भवेत् ॥
स च क्रियाश्रयः स्पर्शगुणवान् त्वगगोचरः ।
महत्त्वाणुत्वगुणवानुद्भवाभिभवाश्रयः ॥
स्वभूमेस्सोऽभिनिष्क्रम्य तिर्यगूर्ध्वमधोऽपि च ।
पुंसां श्रुत्यन्तरं चोपसर्पतीत्यार्हतं मतम् ॥
4 अजस्रमूर्तिर्यश्शब्दः सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यते ।
व्यजनाद्वायुरिव सः स्वनिमित्तात्प्रतीयते ॥
स एव कैश्चित्कुशलैराकाश इति पठ्यते ।
इत्याहुरपरे शब्दसाक्षात्कारविचक्षणाः ॥
5 अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम् ।
विवर्ततेऽर्थभावेन स्फोटं तं मनुते हरिः ॥
शब्दब्रह्म यदेकं यच्चैतन्यं प्राणिनां तथा ।
इदं त्रिभुवनं सर्वं यत्परीणाम इत्यपि ॥
हलायुधोऽब्रवीदेवं तथाऽऽलंकारिका विदुः ।
देवतां कांचिदुद्दिश्य भक्त्या यो वक्ति किंचन ॥

तस्य दोषं न यत्किंचिन्मनसाऽपि विचिन्तयेत् ।
इति चोक्तं परमतभङ्गे भागे चतुर्दशे ॥
नादैराहितबीजायां अन्त्येन ध्वनिना सह ।
आवृत्तपरिपाकायां बुद्धौ शब्दोऽवधार्यते ॥
अप्रच्युतस्वभावस्य तत्त्वादेकस्य वस्तुनः ।
स विवर्तो विभक्तान्यरूपोपग्राहिता तु या ॥
भेदानुकारेणासत्या स्वाप्नार्थप्रतिभासवत् ।
तद्वाक्यपदवर्णादिभेदस्सर्वो विकल्पना ॥
6 अनेकव्यक्त्यभिव्यङ्ग्या जातिः स्फोट इति स्मृता ।
वर्णाः पदानि वाक्यानि व्यक्तयो व्यक्तिहेतवः ॥
7 कौष्ठ्यो बहिर्निस्सरति समीरण इति स्फुटम् ।
स गच्छन् सर्वतोदिक्कः स्तिमितानिलनोदनम् ॥
करोति कर्णाकाशे च प्रयाति श्रुतियोग्यताम् ।
स मूर्तः प्रसरन् मूर्तैः अपरैः प्रतिहन्यते ॥
कुड्यादिभिरतो नास्य श्रुतिर्व्यवहितात्मनः ।
इति वायुं तत्क्रियां वा शब्दं शिक्षाविदो विदुः ॥
वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासीति नमोऽस्तु ते ।
इति शान्तिं तैत्तिरीयाः पठन्त्युपनिषन्मुखे ॥
8 गन्धादिसहसंस्थानः पञ्चभूतेष्ववस्थितः ।
शब्दोऽभिव्यक्तिधर्मेति प्रसिद्धं कापिलं मतम् ॥

9 आकाशस्य गुणश्शब्दो यस्संयोगविभागजः ।
वर्णध्वन्यात्मकः गत्वगान्धारत्वादिजातिमान् ॥
उत्पन्नः को विनष्टः कः इति बुद्धेरनित्यता ।
तदेवौषधमित्यादितुल्यस्सोऽयमिति भ्रमः ॥
क्षणिकस्स्वसजातीयशब्दमारभते पुनः ।
तारङ्गान्मौकुलाद्वाऽपि न्यायादिति हि तार्किकाः॥
10 भगवानुपवर्षोऽपि मतान्येतान्यधिक्षिपन् ।
गौरित्यत्राथ कश्शब्दः इत्याद्याहेति शाबरम् ॥
वर्णात्मकास्तु ये शब्दा नित्यास्सर्वगतास्तथा ।
पृथग्द्रव्यतया ते तु न गुणाः कस्यचिन्मताः ॥
वर्णराशिः क्रमव्यक्तः पदमित्यभिधीयते ।
पदे न वर्णा भिद्यन्ते वर्णेष्ववयवा नच ॥
वाक्यात्पदानामत्यन्तं प्रविवेको न कश्चन ।
ह्रस्वोदात्तद्रुतत्वादिधर्माः व्यञ्जकसंस्थिताः ॥
अध्यस्ता अपि वर्णेषु प्रतीत्यौपयिका मताः ।
व्यञ्जकस्तु ध्वनिस्सोऽयं वायुर्वा तद्गुणोऽस्तु वा॥
अभिव्यञ्जकनानात्वात् वर्णो नानेव लक्ष्यते ।
नेत्रवृत्तिविभेदेन वर्णस्तैमिरिकैरिव ॥
यथा तुरगदेहस्थो वेगः पुंसोऽर्थसिद्धये ।
ध्वनिधर्मोऽपि दीर्घादिः वर्णानामुपकारकः ॥

यथा सर्वगता जातिः पिण्डदेशैव गृह्यते ।
नच कार्त्स्न्यगृहीताऽपि पिण्डेऽन्यत्र न दृश्यते ॥
तथा सर्वगतश्शब्दः नाददेशेषु गृह्यते ।
कार्त्स्न्येन च गृहीतोऽपि पुनरन्यत्र गृह्यते ॥
पिण्डोऽभिव्यञ्जको जातेः वर्णस्य व्यञ्जको ध्वनिः।
आश्रितानाश्रितत्वादिविशेषः क्वोपयुज्यते ॥
प्रतिभावाक्यवाक्यार्थवादाद्यनवकाशिनी ।
शब्दस्य नित्यता वर्णलक्षणस्यैव साध्यते ॥
1 व्यवहारानादितायै सैषा कूटस्थनित्यता ।
प्रवाहतस्तु नित्यत्वं क्रमस्याभ्युपगम्यते ॥
क्रमस्य कालरूपत्वात् कालो नित्यो विभुस्ततः ।
क्रमोऽपि कूटस्थनित्य इति केचिद्विदुर्बुधाः ॥
शब्दत्वं परसामान्यमपरं स्वरतादिकम् ।
गत्वादिकं न सामान्यं एकव्यक्त्याख्यदोषतः ॥
वर्णा एवावगम्यन्ते न पूर्वापरवस्तुनी ।
वर्णकारणभूता येऽवयवाः पूर्वशब्दिताः ॥
गत्वमत्वं चावयवी गोशब्दत्वं गणोऽपि वा ।
स्फोटश्चेति विकल्पाश्चापरशब्दविवक्षिताः ॥
प्रयोजनं तु यज्जात्या तद्वर्णादेव जायते ।
व्यक्तिलभ्यं तु नादेभ्यः इति गत्वादिधीः वृथा ॥

त्रिगुणः पौद्गलो वाऽयं आकाशस्याथवा गुणः ।
वर्णादन्योऽथ नादात्मा वायुरूपोऽर्थवाचकः ॥
पदवाक्यात्मकः स्फोटः सारूप्यान्यनिवर्तने ।
एतेषामस्त्वनित्यत्वं नास्माकं तेषु नित्यता ॥
प्रत्यभिज्ञा यदा शब्दे जागर्ति निरवग्रहा ।
अनित्यत्वानुमानानि सैव सर्वाणि बाधते ॥
नादेन संस्कृताच्छ्रोत्राद्यदा शब्दः प्रतीयते ।
तदुपश्लेषतस्तस्य बोधं केचित्प्रचक्षते ॥
नैव वा ग्रहणं तेषां शब्दे बुद्धिस्तु तद्वशात् ।
संस्काराननुकृतेः, यद्वत् महत्त्वाद्यवगम्यते ॥
12 एवं सिद्धान्तयन्त्यत्र कुमारिलविपश्चितः ।
अपिचैते स्फोटवादे नैयायिकमतेऽपि नः ॥
व्यक्त्याकृतिकृतो भेदो यद्यप्येकान्ततो भवेत् ।
वर्णेषु, जैमिनेः पक्षः तथाऽपि न विरोत्स्यते ॥
नित्यत्वयत्नस्सर्वोऽपि गत्वादिषु भविष्यति ।
गकारादिवचस्त्वेतत्तेष्वेव न विरोत्स्यते ॥
इति स्पष्टं यतः प्राहुः युक्तिज्ञास्सरलाशयाः ।
अतस्तार्किकासिद्धान्तो नानिष्ट इति गम्यते ॥
कर्मैकं बुद्धिरप्येका जगत्येकास्सितो गुणः ।
वर्णोऽप्येको गकारादिरिति युक्तिर्गरीयसी ॥

शब्दनित्यत्ववादे हि विस्तरेण निरूपिता ।
तस्मात्सर्वेऽपि सिद्धान्ताः विश्रान्ताः किल युक्तिषु॥

13 इति कौमारिलमतमथ प्राभाकराः पुनः ।
नभोगुणं ध्वनिं शब्दं वर्णं चापि प्रचक्षते ॥

14 भर्तृमित्रस्तु वदति श्रोत्रं नाम न किंचन ।
ध्वनिजन्यो हि संस्कारः श्रोत्रमित्युच्यते त्विति॥
ध्वनिर्विषयसंस्कारं श्रोत्रसंस्कारमेव वा ।
करोति न तु संस्कारमात्रं श्रोत्रमितीतरे ॥

15 श्रोत्रमप्राप्यकारीति प्राहुस्ताथागताः पुनः ।
श्रोत्रवृत्तिश्शब्ददेशं गच्छतीति हि कापिलाः ॥
शब्दस्स्वभूमेर्निष्क्रम्य सर्पतीत्याहतं मतम् ।
स्वस्मिन् गृह्णाति संभूतमिति तार्किकपद्धतिः ॥
ध्वनयश्श्रवणग्राह्याः वर्णाः व्यज्यन्त इत्यपि ।
वर्णनित्यत्वसिद्धान्ते प्राहुर्मीमांसका बुधाः ॥

16 वेदानित्यत्वभीत्यैव स्थाप्यते वर्णनित्यता।
शब्दनित्यत्ववादस्थं वार्तिकं त्ववधार्यताम् ॥
स्थिते कूटस्थनित्यत्वे व्यवहारस्य नित्यता ।
कूटस्थेन विनैतेन न तस्यालम्बनं भवेत् ॥
प्रसिद्धत्वादृते सर्वो व्यवहारो हि नेष्यते ।
तस्माद्वेदप्रमाणार्थं नित्यत्वमिह साध्यते ॥

नित्येषु सत्सु वर्णेषु व्यवहारात्क्रमोदयः ।
घटादिरचना यद्वत् नित्येषु परमाणुषु ॥
अणुकल्पाश्च वर्णांशाः न सन्त्यनुपलम्भनात् ।
द्रष्टव्यो विस्तरस्तत्र, चेत्कुतूहलशीलता ॥
तस्माच्छ्रोत्रग्राह्यतैव शब्दलक्षणमिष्यते ।
अर्थप्रत्यायकत्वं तु स्फोटवादिभिरुच्यते ॥
तत्रेतरेषां सिद्धान्तस्वान्तमित्थं विचिन्त्यते ।
वर्णानामेव वेदत्वे वाङ्मात्रं नित्यमापतेत् ॥
नहि वर्णाः स्वयं वेदाः वाक्यं तद्व्यपदेशभाक् ।
अस्वातन्त्र्यं तु संदर्भे स्यात्प्रवाहनिबन्धनम् ॥
तत्र प्रवाहनित्यत्वं संदर्भेऽपि समत्यजन् ।
तार्किका हीश्वरत्वं स्यात्तदानीं पुष्कलं त्विति ॥

(44) ध्वनिवादः.

1 एवं वर्णविकल्पोऽत्र संगृहीतः प्रमाणतः ।
अथ ध्वनिविकल्पोऽपि विद्वद्भिः श्रूयतां मुदे ॥
शब्दत्वं नाम सामान्यं ध्वनिमाहुः परे बुधाः ।
ध्वनिर्नादश्च घोषश्चेत्यनर्थान्तरवादिनः ॥
अतएव हि संस्थासु दूरस्थैः श्रूयते ध्वनिः ।
न व्यञ्जनं न स्वरो वा न पदं वाक्यमेववा ॥

शब्दाः स्युस्तन्मते नूनं स्वरव्यञ्जनलक्षणाः ।
ततो विशेषसामान्यभा स्स्यात् ध्वनिशब्दयोः ॥
2 शब्दत्वव्याप्यसामान्यं ध्वनित्वं कतिचिद्विदुः ।
मतमेतत्तु बहुशो भवेत्तार्किकसम्मतम् ॥
3 अनेकव्यक्त्यभिव्यङ्ग्या जातिः स्फोट इति स्मृता ।
शाब्दिकैः व्यक्तयस्तास्तु ध्वनित्वेन प्रकल्पिताः ॥
तन्मते ध्वनयो ज्ञेयाः स्वरव्यञ्जनलक्षणाः ।
4 अनित्यस्फोटपक्षे तु ध्वनितत्त्वमिदं मतम् ॥
यः शब्दः प्रथमं जातः स स्फोट इति कीर्त्यते ।
तद्रूपप्रतिबिम्बावग्राहिणः सर्वतोमुखाः ॥
मन्दप्रदीपप्रकाशरूपभानक्रमेण ये ।
भासमानाः श्रुतिं वार्णीं ध्वनयो विभजन्ति ते ॥
5 स्फोटानित्यत्वपक्षे तु यस्संयोगविभागजः ।
स ध्वनिः तदभिव्यङ्ग्यः स्फोटो वर्णविभागशः ॥
6 आदौ कारणतो जातः शब्दः कैश्चित् ध्वनिः स्मृतः।
नादो द्वितीयादिशब्दः तद्व्यङ्ग्यः स्फोट इष्यते ॥
7 तथाऽऽकाशगुणश्शब्दः ध्वनिस्स्यात् गौरवे मते ।
वर्णास्ते तदभिव्यङ्ग्याः तेऽप्याकाशगुणा मताः ॥
8 वायुसंयोगादिरेव संयुक्तादिस्स एव वा ।
ध्वनिरित्याहुरपरे वायव्यध्वनिवादिनः ॥

यद्वा वायुगुणश्शब्दो ध्वनिनादपदाभिधः ।
पूर्वकल्पेऽतीन्द्रियस्स्यात् द्वितीये श्रुतिगोचरः ॥
9 ध्वनिर्नादश्च घोषश्च वीणाघण्टादिभेदतः ।
प्रायेण व्यवहारेण विभिन्ना लोकविश्रुताः ॥
एवं ध्वनिविकल्पस्तु बहुधा प्रसमीक्ष्यते ।
शब्दनित्यत्वाधिकृतौ वाक्यपद्यां च विस्तृतः ॥

(45) अदृष्टवादः

1 धर्माधर्मावदृष्टं स्याद्धर्मः स्वर्गादिसाधनम् ।
गङ्गास्नानादियागादेः व्यापारस्स तु कीर्तितः ॥
नाश्यस्त्वसौ कर्मनाशास्पर्शसंकीर्तनादिना ।
अधर्मो नरकादीनां हेतुर्निन्दितकर्मजः ॥
प्रायश्चित्तादिना नाश्यः जीववृत्ती त्विमौ गुणौ ।
संस्कारः पुंस एवेष्टः प्रोक्षणाभ्युक्षणादिभिः ॥
स्वगुणाः परमाणूनां विशेषाः पाकजा मताः ।
इमौ तु तत्त्वविज्ञानादपि क्वापि विनश्यतः ॥
अपूर्वं कर्मनिर्वर्त्यं वृद्धमीमांसका विदुः ।
2 शाबरा ब्रुवते धर्मं कर्म यागादिलक्षणम् ॥
तस्मात्फले प्रवृत्तस्य यागादेश्शक्तिमात्रकम् ।
उत्पत्तौ वाऽपि पश्वादेः अपूर्वं न ततः पृथक् ॥

3 अपूर्व एव वाक्यार्थः नियोगः धर्मशब्दितः ।
इति प्राभाकराः प्राहुः ते वाच्यापूर्ववादिनः ॥
4 कर्मजन्यो हि संस्कारः पुंसो बुद्ध्यादिवद्गुणः ।
तस्य चाफलसंयोगादवास्थितिरुपेयते ॥
स यागदानहोमादिजन्यो धर्मगिरोच्यते ।
ब्रह्महत्यादिजन्यस्तु सोऽधर्म इति कथ्यते ॥
इति कौमारिलाः प्राहुः ते कल्प्यापूर्ववादिनः ।
5 सांख्याः पुनः प्राहुरन्तःकरणस्याचिदात्मनः ॥
बुद्धेः वृत्तिविशेषं तत् अदृष्टमिति कल्पितम् ।
6 धर्मः स्यात् शाक्यभिक्षूणामदृष्टा चित्तवासना ॥
7 धर्मत्वेन व्यपदिशन्त्यार्हताः पुण्यपुद्गलान् ।
विभुरूपं तत्तु तत्त्वान्तरं चेत्यपि कीर्त्यते ॥
8 आराध्यदेवताप्रीतिरिति वैयासिकं मतम् ।
स च सर्वेश्वरस्यैव सङ्कल्प इति निर्णयः ॥
9 विस्तरस्तस्य च पुनर्विवेकाय विलिख्यते ।
शास्त्रैकसमधिगम्यं श्रेयसस्साधनं तु यत् ॥
स धर्म इति जैमिन्याचार्यैर्लक्षणमुच्यते ।
तस्यैव शाबरो भाट्टो गौरवो निर्णयः कृतः ॥
द्रव्यक्रियागुणादीनां धर्मत्वं स्थापयिष्यते ।
तेषामैन्द्रियकत्वेऽपि न ताद्रूप्येण धर्मता ॥

श्रेयस्साधनता ह्येषां नित्यं वेदात्प्रतीयते ।
ताद्रूप्येण च धर्मत्वं तस्मान्नेन्द्रियगोचरः ॥
कार्यमात्रे कारणं तत् अदृष्टमिति वैदिकाः ।
तत्र लोकायताः प्राहुः कुतोऽदृष्टं प्रकल्प्यते ॥
नित्यसत्त्वा भवन्त्येके नित्यासत्त्वाश्च केचन ।
विचित्राः केचिदित्यत्र तत्स्वभावो नियामकः ॥
वह्निरुष्णो जलं शीतं समस्पर्शस्तथाऽनिलः ।
केनेदं चित्रितं तस्मात् स्वभावात्तद्व्यवस्थितिः ॥
दृष्टेषु कारणेष्वेव सूक्ष्मो भेदः प्रकल्प्यताम् ।
किं धर्म्यन्तरकॢप्त्येति तत्रेत्थं यौक्तिका विदुः ॥
जगतो यच्च वैचित्र्यं सुखदुःखादिभेदतः ।
कृषिसेवादिसाम्येऽपि विलक्षणफलोदयः ॥
अकस्मान्निधिलाभश्च विद्युत्पातश्च कस्यचित् ।
क्वचित्फलमयत्नेऽपि यत्नेऽप्यफलता क्वचित् ॥
तदेतद्दुर्घटं दृष्ट्वा कारणाद्व्यभिचारिणः ।
तेनादृष्टमुपेतव्यमस्य किंचन कारणम् ॥
अदृष्टो भूतधर्मस्तु जगद्वैचित्र्यकारणम् ।
यदि कश्चिदुपेयेत को दोषः कर्मकल्पने ॥
संज्ञामात्रे विवादश्च तथा सत्यावयोर्भवेत् ।
भूतवद्भूतधर्मस्य नच दृश्यत्वसंभवः ॥

दृष्टश्च साध्वीसुतयोर्यमयोः तुल्यजन्मनोः ।
विशेषो वीर्यविज्ञानसौभाग्यारोग्यसम्पदाम् ॥
स्वाभाविकत्वं कार्याणां बहुधा सुनिराकृतम् ।
तस्मात्कर्मभ्य एवैष विचित्रजगदुद्भवः ॥
सापेक्षत्वादनादित्वात् वैचित्र्याद्विश्ववृत्तितः ।
प्रत्यात्मनियमाद्भुक्तेरस्ति हेतुरलौकिकः ॥
चिरध्वस्तं फलायालं न कर्मातिशयं विना ।
संभागो निर्विशेषाणां न भूतैस्संस्कृतैरपि ॥
अथ स्यात्कर्मवैचित्र्यं कर्मान्तरकृतं यदि ।
अनवस्था स्वतः तस्माज्जगत्स्यादिति चेन्न तत् ॥
कर्मणां शास्त्रतो ज्ञाता विचित्रफलशक्तता ।
दृष्टार्थेषु च वाक्येषु दृष्टा प्रत्यक्षतश्च सा ॥
तस्माद्दृष्टस्य कार्यस्य युक्ता कारणकल्पना ।
कारणस्य त्वदृष्टत्वे किं हेत्वन्तरचिन्तया ॥
हेत्वन्तरनिमित्तेऽपि कर्मवैचित्र्यकल्पने ।
संसारस्य ह्यनादित्वान्नानवस्था भयावहा ॥
शपता यत्कृतं पुण्यं शप्यमानमुपैति तत् ।
शप्यमानस्य यत्पापं शपन्तमुपगच्छति ॥
तथाच पुण्यः पुण्येन पापः पापेन कर्मणा ।
जायते जन्तुरित्येवं धर्मशास्त्रेषु पठ्यते ॥

11 इति यौक्तिकसिद्धान्ते धर्मादिरनुमीयते ।
चोदनैकाधिगम्यत्वसिद्धान्ते किंचिदुच्यते ॥
विहितप्रतिषिद्धत्वे मुक्त्वाऽन्यत् नच कारणम् ।
धर्माधर्मावबोधस्य तेनायुक्ताऽनुमानगीः ॥
अनुग्रहाच्च धर्मत्वं पीडातश्चाप्यधर्मताम् ।
वदतो जपसीध्वादिपानादौ नोभयं भवेत् ॥
क्रोशता हृदयेनापि गुरुतल्पादिगामिनाम् ।
भूयान् धर्मः प्रसज्येत भूयसी ह्युपकारिता ॥
अनुमानप्रधानस्य प्रतिषेधानपेक्षिणः ।
हृदयक्रोशनं कस्मात् दृष्टां पीडामपश्यतः ॥
पीडातश्चाप्यधर्मत्वं तथा पीडामधर्मतः ।
अन्योन्याश्रयमाप्नोति विना शास्त्रेण साधयन् ॥
तस्मादनुग्रहं पीडां तदभावमपास्य च ।
धर्माधर्मार्थिभिर्नित्यं मृग्यौ विधिनिषेधकौ ॥
हिंसायाः विषयो यादृक् प्रेत्य कर्तुस्तथाविधम् ।
फलं प्रजायते यद्वच्छास्त्रोक्ते दानकर्मणि ॥
मां स भक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम् ।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥
य एवमाह तस्यापि गुरुस्त्रीगमनादिभिः ।
सुरापानादिभिश्चापि विपक्षैः व्यभिचारिता ॥

क्षत्रं क्षत्रस्य यद्धर्मः नास्ति तस्मात्परं भुवि ।
इति सृष्टिप्रकरणे श्रुता ज्ञातपथी श्रुतिः॥
12 इत्याहुर्धर्ममीमांसाविदो यद्यपि युक्तितः ।
तथापीदं बुधास्तत्र विमृशन्ति धिया यथा ॥
अनुग्रहो निग्रहो वा नैकस्यात्र विवक्षितः ।
अन्यथा दण्ड्यदण्डादावपि पापादि संभवेत् ॥
निग्राहकं भूयसां यत् यच्चानुग्राहकं तथा ।
विवक्षितं तदेवात्र जपादिष्वपि चास्ति तत् ॥
यत्परंपरया साक्षाद्वा स्याच्चेदुपकारकम् ।
भूयसां धर्म एवासौ विपरीतं विपर्ययः ॥
यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥
आर्याः प्रशंसन्ति यत्तु क्रियमाणमितीरितम् ।
आपस्तम्बादिभिः व्यासमहर्षिप्रमुखैः पुनः ॥
श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः ।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥
इत्युदीरितमेतेन निष्कृष्टार्थोऽयमुच्यते ।
एतावज्जन्मसाफल्यं प्राणिनामिह देहिषु ॥
प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेयआचरणं सदा ।
निष्कर्षोऽयं सर्वनरदेशकालानुपप्लुतः ॥

13 कर्मानुष्ठानजनितदेवताबुद्धिरेव हि ।
अदृष्टमिति सिद्धान्तः बादरायणसम्मतः ॥
यागो हि देवतापूजा पूजनं प्रीणनं मतम् ।
अतो यज्ञाराधितस्सन् फलं देवः प्रयच्छति ॥
नच प्रीतेरपूर्णत्वं नच कोपात्सदुःखता ।
फलप्रदित्सारूपत्वादुभयोरपि कर्मणोः ॥
विग्रहो हविरादानं युगपत्कर्मसन्निधिः ।
प्रीतिः फलप्रदानं च देवतानां न विद्यते ॥
इति लाघवयुक्तिस्तु शास्त्रेणैव व्यपोद्यते ।
प्रजया पशुभिश्चैव तृप्त एनं समर्धयेत् ॥
अन्नादो वसुदानश्चेत्याद्याः बह्वीरधीयते ।
यथा स्वर्गपरो वेदः तथा वै देवतापरः ॥
प्रत्यक्षमुभयं कस्माद्देवताद्वेषसंभवः ।
कृष्यादौ मर्दनादौ च फलं स्यात्स्वस्वशक्तितः ॥
न तद्वदेव शास्त्रीये कर्मण्यपि कुतो भवेत् ।
नहि दृष्टान्तमात्रेण श्रुतस्य त्याग इष्यते ॥
राज्ञामाज्ञानुवृत्त्यादेः प्रीतिकोपौ हि सिध्यतः ।
प्रधानकर्मवत्प्रीतिः गुणकर्मस्वपीष्यते ॥
केचित्सत्त्वसमुद्रेकं द्रव्यादिष्वनुजानते ।
सोऽपीशसंकल्पनिघ्नः तं विना न तृणं चलेत् ॥

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
इत्याह भगवान् देवः सर्वदेवमयोऽच्युतः ॥
आत्मनां विभुतासिद्ध्यै गीताऽधीता कुमारिलैः ।
अन्यत्र विस्मृता कस्मात् प्रमादो धीमतामपि ॥
तस्मादिन्द्राद्यपायेऽपि न फलस्य च्युतिः क्वचित् ।
सुप्तिर्मृतिः यस्य न स्तः तस्य त्वाज्ञा श्रुतिः स्मृतिः ॥
पितृत्वं देवतात्वं च केषां चित्कर्मणां फलम् ।
तेषां समाराध्यताऽतः द्वारं तत्सर्वशासितुः ॥
बहुधा दृश्यते धर्मः दुर्ज्ञानः सूक्ष्म इत्यपि ।
महर्षयोऽपि धर्मज्ञाः प्राहुरन्यत्र विस्तरः ॥

(46) कर्माविभागवादः.

1 वेदेन सकलं कर्म काम्यमेवोपदिश्यते ।
इत्येतत् भर्तृमित्रादेः मतमित्यूहितुं क्षमम् ॥
यतस्ते नोपगच्छन्ति फलं नित्यनिषिद्धयोः ।
इति कौमारिलाः प्राहुरित्यूचे पार्थसारथिः ॥
निषिद्धस्य फलाभावे न त्याज्यमितिचेन्न तत् ।
द्विजातिकर्मणो हानिः परत्रासिद्धिरित्यपि ॥
तमेते नरकं प्राहुरिति गौतमसूत्रणम् ।
नरकं स्यान्यक्करणं नीचैर्गमनमेव वा ॥

नास्यास्मिन् रमणं वेति निरुक्तं यास्कसूरिणा ।
इति गौतमशास्त्रस्य भाष्ये मस्करिणोदितम् ॥
विहितस्याननुष्ठानान्निन्दितस्य च सेवनात् ।
अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति ॥
हिंसास्तेयानृताब्रह्मचर्यग्रहणभेदतः ।
निषिद्धं कर्म सकलं संजग्राह पतञ्जलिः ॥
यत् शौचसंतोषतपस्स्वाध्यायेश्वरसेवनम् ।
विहितस्य च सर्वस्य पञ्चधा संग्रहो ह्ययम् ॥
2 नित्यकाम्यविभेदेन विहितं द्विविधं पुनः ।
काम्यमेव हि कर्मेति यदि मीमांसका विदुः ॥
सर्वस्यैव च काम्यत्वे कामना न भवेद्यदि ।
सर्वोऽपि वैदिकः पन्थाः भवेद्दत्तजलाञ्जलिः ॥
कैश्चित्तु सकलं कर्म नित्यमेवेति भण्यते ।
तथात्वे पुरुषाशक्त्या शास्त्रं हि स्यादवत्सलम् ॥
तन्नित्यकाम्यभेदेन विभागो न्यायविन्मतः ।
तत्र नित्यं तु शक्याङ्गं काम्यमुक्ताङ्गकं मतम् ॥
नित्यकाम्यस्वरूपैक्ये विनियोगपृथक्त्वतः ।
फलार्थं क्रियमाणेऽपि नित्यं भवति तन्त्रतः ॥
नित्येन काम्यसिद्धिं तु कल्पकाराः प्रचक्षते ।
प्रत्यवायपरिहारफलं नित्यं प्रचक्षते ॥

पापक्षयफलं केचित् काम्यं चापि क्वचित् यदा ।
आरब्धे कामनाहानावुक्ताङ्गाशक्तिसंभवे ॥
नित्यं सामान्यफलतः काम्यं फलविशेषतः ।
पापक्षयादिस्सामान्यं पश्वादिस्तु विशेषतः ॥
प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते ।
एवमेव प्रवृत्तिश्चेच्चैतन्येनास्य किं फलम् ॥
3 नैमित्तिकं कर्मभेदं प्रायश्चित्तादिलक्षणम् ।
प्राहुः परे तत्तु कर्म काम्यमेवेति केचन ॥

(47) हिंसावादः

1 कर्माङ्गपशुहिंसादिः हिंसेत्येव हि कापिलाः ।
यत्पशुर्मायुमित्यादिमन्त्रलिङ्गेन सा दृढा ॥
तत्त्याज्यं दोषवदिति चान्ववादीद्यदूत्तमः ।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चाब्रवीत् ॥
2 अपि पापं निषिद्धं स्यात् श्येनस्य विहितत्वतः ।
यागाङ्गपशुहिंसावत् हिंसात्वं नेति केचन ॥
3 साक्षान्मरणहेतुर्यः स हिंसाशब्दशब्दितः ।
श्येनस्याताद्दशत्वेन न हिंसेत्यपरे विदुः ॥
अदृष्टाद्वारकत्वेन मृतिः कैश्चिद्विवक्ष्यते ।
मरणानुगुणस्साक्षाद्व्यापारो वधलक्षणः ॥

अभिचारे कृते प्रायश्चित्तस्यापि विधानतः ।
अधर्म एव श्येनादिरिति तार्किकपद्धतिः ॥
धर्मस्त्विष्टस्य बलवदनिष्टाननुबन्धिनः ।
साधनं स्यात्तता हिंसानिषेधश्श्येनगोचरः ॥
4 मीमांसकास्तु श्येनस्य धर्मत्वमनुजानते ।
तत्र कौमारिलमते हिंसा श्येनफलं मतम् ॥
अभिचारो हि मरणानुगुणव्यापृतिर्मता ।
श्येनो विधीयते तस्मान्न निषेधस्य गोचरः ॥
तथाऽपि तामसत्वेन शिष्टास्तावन्न कुर्वते ।
प्रभाकरमते श्येनापूर्वं कर्तव्यमिष्यते ॥
यागो निषेधविषयः विरोधविरहस्ततः ।
प्रायेणाधर्म इत्येव परेषामिव सम्मतः ॥
कर्मस्वपि च काम्येषु विधिरेव प्रवर्तकः ।
फलरागात्प्रवृत्तिश्चेत् निषिध्येत क्रतौ वधः ॥
साध्यसाधनविध्यन्तलक्षणांशत्रयास्थिता ।
हिंसा तत्र फलांशस्था निषेधविषयो मता ॥
अंशद्वये तु या नाम तन्निषेधाभिधायिनाम् ।
अविशेषेण यच्छास्त्रं शिरोवदिति चोत्तरम् ॥
निषेधेनानवष्टब्धे विषये न ह्यनर्थता ।
प्रत्यक्षाद्दरशक्यत्वात् कल्प्यते निष्प्रमाणिका ॥

ज्ञानमेव च शक्तीनां नावापोद्वापनक्रियाः ।
ज्ञायन्ते शास्त्रतस्तास्तु क्रियाभेदव्यवस्थिताः ॥
व्यवस्थाऽशक्तिभेदानां दृष्टार्थेष्वपि कर्मसु ।
अभिन्नत्वेऽपि दृश्यन्ते भुजेः स्वस्थातुरेष्वपि ॥
इति वार्तिककारीययुक्तिसिद्धान्तसंग्रहः ।
5 अथ वेदान्तिनां तत्त्वविदां सिद्धान्तसंग्रहः ॥
अनर्थपर्यवसितः दुःखस्य जनकश्च यः ।
व्यापारस्य हि हिंसेति श्रीरामानुजनिर्णयः ॥
सर्वापहारे नाव्याप्तिः नातिव्याप्तिश्चिकित्सने ।
यज्ञे वधोऽवधो यस्मात्पशुर्देवत्वमृच्छति ॥
यत्किंचिदपि कार्यं तु नियोगादेव कुर्वताम् ॥
न प्रत्यवायशङ्काऽस्ति शासनादिव भूभृताम् ॥
श्येनादिवचनं शत्रुहिंसायत्नवतां स्वतः ।
उपायबोधनपरमिति वैषम्यकल्पना ॥
तत्र प्रायश्चित्तकाम्यपश्वालम्भनकर्मणाम् ।
प्रत्यवायापादकत्वप्रसङ्गः श्येनसाम्यतः ॥
अकुर्वन् विहितं कर्म निन्दितं च समाचरन् ।
प्रसजंश्चेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्ती भवेन्नरः ॥
इत्यादिशास्त्राद्विहिताकरणादिनिमित्ततः ।
प्रत्यवायाद्धि भीतोऽसौ प्रायश्चित्तमिहेच्छति ॥

कामी च पुत्रपश्वन्नस्वर्गभूत्यादिसाधने ।
प्रवर्ततेऽतः श्येनादिसाम्यं स्यान्निष्प्रतिक्रियम् ॥
तत्त्वटीकाकृतामुक्तिरत्रैषाऽप्यवधार्यताम् ।
एषौपनिषदानां स्यात् गतिः प्रायेण सम्मता ॥
मुमुक्षुत्वामुमुक्षुत्वदशाभेदेन कर्मिणः ।
कर्मैकं पापपुण्यत्वे साध्यैक्येऽपि समश्नुते ॥
श्येनादेश्चोदितस्यैव द्वैरूप्यं द्विविधश्रुतेः ।
एकस्यैवैकदैवास्ति कालभेदे तु किम्पुनः ॥
श्येनेषुवज्रप्रभृतिष्वपि नानर्थचोदना ।
इष्टस्यारातिभङ्गादेरुपायांशोपदेशतः ॥
घोरोपायान्तरेभ्यश्च लभ्येतात्र निवारणा ।
लघुनिष्कृतिनिस्तार्यं ह्यभिचारं प्रचक्षते ॥
किंचानभिचरन् षट्सु पतेदित्यपि शिष्यते ।
तेन धर्मोपयुक्तत्वमाततायिवधे विदुः ॥
6 वेदो हिंसामयस्तस्मादनुपादेय इत्यपि ।
आपाततस्तु पश्यन्तो बाह्या नार्हन्ति शङ्कितुम् ॥
7 अथ कार्तयुगो धर्मः पुंविशेषव्यवस्थितः ।
नारायणीये विस्पष्टः भारते शान्तिपर्वणि ॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
ऋषीणां चैव संवादं त्रिदशानां च भारत ॥

अजेन यष्टव्यमिति प्राहुर्देवाः द्विजोत्तमान् ।
स चाप्यजश्छाग एव नान्यः पशुरिति स्थितिः ॥
बीजैर्यज्ञेषु यष्टव्यमित्याहुर्मुनयः पुनः ।
अजसंज्ञानि बीजानि छागं नो हन्तुमर्हथ ॥
व्रीह्यादिभिः पुनरजैः त्रिवर्षपरमोषितैः ।
बीजैरजं पिष्टमयं कृत्वा यष्टव्यमित्यपि ॥
नैष धर्मः सतां देवाः यत्र वध्येत वै पशुः ।
अथ ते संविदं कृत्वा विबुधा ऋषयस्तथा ॥
अपृच्छन् सहसाऽभ्येत्य वसुं राजानमन्तिकात् ।
भो राजन् केन यष्टव्यं अजेनाहोस्विदौषधैः ॥
देवानां तु मतं ज्ञात्वा वसुना पक्षसंश्रयात् ।
छागेनानेन यष्टव्यमेवमुक्तं वचस्तदा ॥
कुपितास्ते ततस्सर्वे मुनयस्सूर्यवर्चसः ।
सुरपक्षो गृहीतस्ते यस्मात्तस्माद्दिवः पत ॥
तत एनं समुत्क्षिप्य सहसा विनतासुतः ।
उत्पपात नभस्तूर्णं ततश्चैनममुञ्चत ॥
तस्मिन् मुहूर्ते संजज्ञे राजोपरिचरो वसुः ।
सशरीरो गतश्चैव ब्रह्मलोकान् नृपोत्तमः ॥
इदं कृतयुगं नाम कालः श्रेष्ठः प्रवर्तितः ।
अहिंस्या यज्ञपशवः युगेऽस्मिन्न तदन्यथा ॥

चतुष्पात्सकलो धर्मः भविष्यत्यत्र वै सुराः ।
ततस्त्रेतायुगं नाम त्रयी यत्र भविष्यति ॥
प्रोक्षिता यत्र पशवः वधं प्राप्स्यन्ति वै मखे ।
यत्र पादश्चतुर्थो वै धर्मस्य न भविष्यति ॥
यत्र देवाश्च यज्ञाश्च तपस्सत्यं दमस्तथा ।
अहिंसाधर्मसंयुक्ताः प्रचरेयुस्सुरोत्तमाः ॥
स वो देशस्सेवितव्यः मा वो धर्मः पदा स्पृशेत्।
इत्याह भगवान् साक्षाद्देवान्प्रति हरिः स्वयम् ॥
8 अतीते तु महाकल्पे जातो विद्वान् बृहस्पतिः ।
तस्य शिष्यो बभूवाग्र्यो राजोपरिचरो वसुः ॥
स राजा भावितः पूर्वं दैवेन विधिना वसुः ।
पालयामास पृथिवीं दिवमाखण्डलो यथा ॥
तस्य यज्ञो महानासीत् अश्वमेधो महात्मनः ।
बृहस्पतिरुपाध्यायः तत्र होता बभूव ह ॥
प्रजापतिसुताश्चात्र सदस्याश्चाभवन् त्रयः ।
एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चैव महर्षयः ॥
संभृतास्सर्वसंभाराः तस्मिन् राजन् महाक्रतौ ।
न तत्र पशुघातोऽभूत् राजैवावस्थितोऽभवत् ॥
अहिंस्रश्शुचिरक्षुद्रः निराशीः सर्वसंस्तुतः ।
आरण्यकपदोद्भूता भागास्तत्रोपकल्पिताः ॥

प्रीतस्ततोऽस्य भगवान् देवदेवः पुरातनः ।
साक्षात्तं दर्शयामास सोऽदृश्योऽन्येन केनचित् ॥
स्वयंभागमुपाघ्राय पुरोडाशं गृहीतवान् ।
अदृश्येन कृतो भागः देवेन हरिमेधसा ॥
पशुयज्ञैः कथं हिंस्रैर्मादृशो यष्टुमर्हति ।
अन्तवद्भिरुत प्राज्ञः क्षत्रयज्ञैः पिशाचवत् ॥
शान्तियज्ञरतो दान्तः ब्रह्मयज्ञे स्थितो मुनिः ।
वाङ्मनःकर्मयज्ञश्च भविष्याम्युपगायने ॥
कुर्याद्धृतपशुंसङ्गे कुर्यात्पिष्टपशुं तथा ।
न त्वेव तु वृथा हन्तुं पशुमिच्छेत्कदाचन ॥
9 पुरूरवस आख्याने पुराणे वैष्णवेऽपिच ।
एकोऽग्निरादावभवत् स च त्रेधा प्रवर्तितः ॥
तेन मन्वन्तरे तत्र ततो यज्ञसमुद्भवः ।
इति श्रुतं ततः पूर्वं हिंसा नास्तीति गम्यते ॥
एवंच देशकालादेर्विपर्यासात्तदातदा ।
हिंसाऽहिंसाविभागः स्यात्पुंशक्त्यनुगुणस्त्वसौ ॥
10 अत्र केचित्पुरा हिंसाबहुला जगति स्थिता ।
प्रवृत्तिरथ बुद्धादेरुपदेशादनन्तरम् ॥
अहिंसा प्रथमो धर्मः इति सर्वत्र सुस्थितम् ।
स एव धर्मः प्रागासीदस्माकमिति वैदिकैः ॥

पुराणपुरुषैर्व्यासपराशरमुखैर्बुधैः ।
परिष्कृतो वेदमार्ग इति युक्तया प्रचक्षते ॥
तदिष्टमपिचास्माकं अनादित्वेन जानताम् ।
व्यवहारं प्रपञ्चस्य चक्रवत्परिवर्तितम् ॥
अनादितोऽप्यहिंसायाः धर्मत्वे परिनिष्ठिते ।
बुद्धेनापि हि तत्साक्षात्कर्तुं शक्येत नान्यथा ॥
तस्मादहिंसाधर्मत्वं देशकालानुपस्कृतम् ।
आविर्भावतिरोभावौ देशे काले भविष्यतः ॥
सनातनस्स एवासौ धर्म इत्याहुरादिमाः ।
मन्वाद्याः परमोदाराः तस्मात्सर्वं समञ्जसम् ॥

(48) अदृष्टसामर्थ्यम्.

1 अथात्रावसरात्कर्मसामर्थ्ये किंचिदुच्यते ।
कर्मप्राधान्यवाङ्मात्रान्मूढाः पौरुषशालिनः ॥
अचेष्टमानमासीनं श्रीः कंचिदुपतिष्ठति ।
कर्मी कर्मापि कृत्वाऽन्यो न प्राश्यमधिगच्छति ॥
अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनस्सुखदुःखयोः ।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा श्वभ्रमेववा ॥
कर्मादिनिरपेक्षं च कारणं परमेश्वरः ।
सर्वेषामिति सिद्धान्तमाहुः पाशुपताः परे ॥

शरीरधारणं पुंसां सर्वेषामप्यपेक्षितम् ।
चिरकालं तन्न शक्यं कर्तुं यत्नशतैरपि ॥
नचौदासीन्यमात्रेण तन्निवृत्तिश्च दृश्यते ।
नियतावधिको देहः स्यादारम्भककर्मणा ॥
विवाहो जन्म मरणं जरा चेत्येवमादयः ।
नियता इति शास्त्रेषु स्मरन्त्यपिच कार्मिकाः ॥
2 अत्रायमाशयो ज्ञेयः न्यायाचार्यैः प्रकाशितः ।
चित्राक्षेपपरीहारे भाष्यवार्तिकयोरपि ॥
अनुरुध्यैव तं न्यायं वेदान्ताचार्यसूरिभिः ।
गीतातृतीयतात्पर्यचन्द्रिकायां स्फुटीकृतः ॥
नियतं चाप्यनियतं द्विधा कर्मफलं स्मृतम् ।
आद्यं प्रबलशापादिसंभवं नियतं तु तत् ॥
इतरत्स्यादनियतं देशकालाद्यपेक्षया ।
नतु स्वरूपतो येन निष्फलत्वं प्रसज्यते ॥
यच्चात्रानियतं तत्रावकाशः पुरुषस्य हि ।
यच्चापि दृष्टसामग्रीवैकल्याद्विकलं भवेत् ॥
यच्चाधिकृत्य सुधियां लोकानुग्रहकारिणाम् ।
नीतिमन्त्रौषधप्रायश्चित्तशास्त्रादिदेशना ॥
अन्यथा विजिगीषूणां समृद्धपरिपन्थिनाम् ।
चतुरङ्गादिकं नैव स्वीकार्यं स्यान्महीक्षिताम् ॥

भेषजं नोपभुज्येत विबुधैरातुरैरपि ।
स्वेच्छया करणाभावे शास्त्रादेरप्यनुत्थितिः ॥
तत्सा स्वतन्त्रता पुंसां कर्मकर्तृत्वकारणम् ।
येच्छानुकूलानुष्ठानसामर्थ्येऽन्यानिवार्यता ॥
3 अथ प्राक्प्राक्कर्ममूलज्ञानेच्छादिनियन्त्रितः ।
कथं स्वतन्त्रः पुरुषो नदीवेगहतो यथा ॥
नहीच्छोत्पत्तिमात्रेण पुंसामर्थ्यं विनश्यति ।
प्रायेण विपरीतेच्छामसत्कुर्वन्ति सूरयः ॥
सत्यामप्योदनेच्छायां विषसंपृक्तताधिया ।
तन्निवारणसामर्थ्यं चेतनस्येह दृश्यते ॥
निधिलाभोपायदृष्ट्या नरः काष्ठनिचायकः ।
विनिवारयितुं शक्तः काष्ठसंपादनस्पृहाम् ॥
एवंच प्रत्यवायस्य तथाऽधिकफलस्य वा ।
ज्ञाने सतीच्छान्तरस्य दृश्यते विनिवारणा ॥
पुंसां स्वातन्त्र्योपपत्त्या कर्तृत्वं युज्यते ततः ।
तत्कृत्याकरणाकृत्यकरणेच्छानिवारणे ॥
क्षमोऽपि प्रत्यवायस्यानादरेण विमूढधीः ।
न निवारयतीत्येषोऽपराधो दण्डकारणम् ॥
4 सामान्येनेश्वरः कर्ता ह्यङ्कुराणां जलं यथा ।
विना तेन तृणस्याग्रं न चलेदिति कीर्त्यते ॥

तथा कारयिता चानुमन्ता साक्षीत्यपीष्यते ।
करुणावसरस्तत्र श्रीभाष्योक्तोऽवधार्यताम् ॥
स्वशासनोल्लङ्घनाभिसन्धिविच्छेदमात्रतः ।
अनादिकालोपचितानन्तदुर्विषहागसाम् ॥
अनभ्युपगमद्वारा सुखसंवृद्धये स्वयम् ।
यतते च तथाचोक्तं वसुदेवतनूभुवा ॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥
अथपुण्यापुण्यरूपकर्मशक्तिनिबन्धनाः ।
सर्वा व्यवस्थाः सिध्यन्ति कृतमीशेन तादृशा ॥
पुरुषार्थानुरूपा सा प्रकृतिः परिणंस्यते ।
तथा व्यवस्थया कर्मसंस्कारैरभिसंस्कृता ॥
परिणामविशेषोऽस्ति देशकालव्यवस्थया ।
विषादिदूषितस्यान्नपानादेर्दुःखकारणम् ॥
दृश्यते परिणामश्च सुखहेतुस्तथा भुवि ।
महौषधाप्यायितस्याप्यन्नादेः देशकालयोः ॥
अत्रोच्यतेऽनभिज्ञस्त्वं पुण्यापुण्यस्वरूपयोः ।
पुण्यापुण्यस्वरूपे हि शास्त्रैकाधिगते स्थिते ॥

शास्त्रं चानादिनिधनाच्छिन्नपाठसमागतम् ।
अनाघ्रातप्रमादादिदोषं वेदाभिधं मतम् ॥
तच्चाह कर्मणी पुण्यापुण्ये तस्याखिलेशितुः ।
आराधनं तदन्यच्च कोऽत्र पर्यनुयुज्यताम् ॥
अनुग्रहान्निग्रहाच्च सुखदुःखे हि तत्फले ।
इत्यौपनिषदैकान्तः बादरायणसम्मतः ॥
नच प्रीतिरपूर्णत्वं नच कोपात्सदुःखता ।
फलप्रदित्सारूपत्वादुभयोरपि कर्मणोः ॥
6 ईश्वरेच्छाऽधिकारो वा वासना पुद्गलोऽपि वा ।
अदृष्टं वाऽपि दृष्टं वा न्यायस्त्वेकोऽवधार्यताम् ॥
दृष्टार्थस्यापि सेवादेरायातमपि सत्फलम् ।
उत्पद्यते चिरेणैव प्रतिबन्धेन केनचित् ॥
स्वाभाविकयैव सर्वेषामुत्पत्तिरिति केचन ।
किमदृष्टेन दृष्टेन हेतुना वेति तन्मतम् ॥
निर्निमित्ता नचोत्पत्तिः नच सर्वाप्रमाणता ।
बोधयन्ति प्रमाणानि सर्वाणि सनिमित्तताम् ॥
ईश्वरेच्छाधिकारादौ शब्दलिङ्गादिवर्जनात् ।
व्यभिचाराच्च सेवादेः पश्चादेस्साधनान्तरम् ॥
तच्च चित्रादिकमिति शब्देन त्ववगम्यते ।
तदपि स्यादनियतमिति कौमारिला विदुः ॥

एतद्देहानुभाव्यं यत्तदैहिकफलं मतम् ।
देहान्तरानुभाव्यं तु विदुरामुष्मिकं बुधाः ॥
7 भर्तृमित्रादयस्त्वाहुश्चित्राद्यैहिकसाधनम् ।
क्वचित्फलादर्शनं तु प्रबलप्रतिरोधतः ॥
प्रतिबन्धककर्मापि मतमैहिकसाधनम् ।
निर्निमित्तं फलं तेषां स्यादिहाकृतकर्मणाम् ॥
चित्रादीनां फलं तावत् क्षीणं प्राक्तनजन्मनि ।
नच स्वर्गफलस्येह कश्चिदंशोऽनुवर्तते ॥
नैव ह्यन्यफलं कर्म साधयेन्नः फलान्तरम् ।
गौतमीयेऽपि तच्छेषः चित्रादेश्शेष इष्यते ॥
स्वाभाविकत्वे सिद्धे च कर्मानन्तरभाव्यपि ।
फलं क्रियानिमित्तत्वं न कथंचित्प्रपद्यते ॥
तत्र म्लेच्छादिवत्सर्वे कर्माकृत्वाऽपि वैदिकम् ।
फलं लभन्त इत्येवं नष्टा वेदप्रमाणता ॥
8 अक्षपादीयसिद्धान्ते चित्राद्यमपि चैहिकम् ।
तत्कारिणां फलाभावः वैगुण्यादिति ते विदुः ॥
तेषामपि मते प्राग्वत् वेदानामप्रमाणता ।
फलं स्वाभाविकं यस्मात्स्यादिहाकृतकर्मणाम् ॥
आमुष्मिकं तत्स्वर्गादि वृष्ट्याद्यैहिकमिष्यते ।
पश्चाद्यनियतं ग्राह्यमसति प्रतिबन्धके ॥

अभुक्तेन विरोधे तु प्रबलेन च कर्मणा ।
सर्वं चानियतं ग्राह्यं देशकालाद्यपेक्षया ॥
यच्चान्नादिफलं कर्म पूर्वजन्मन्यनुष्ठितम् ।
तत्तु स्वफलदानाय वृष्ट्याद्यपिच यच्छति ॥
ततश्चाकृतकारीरीकर्मणामपि सिद्धयति ।
वृष्ट्याद्यन्नादिनिष्पत्तिरिति शास्त्रीयपद्धतिः ॥
तस्माददृष्टाधीनत्वं सर्वेषां सुखदुःखयोः ।
नतु स्वाभाविकत्वं स्यादिति वैदिकदर्शनम् ॥
यदा सर्वमदृष्टस्य वशं विहत एव सः ।
स्वभाववादः, भूतानां परिणामोऽपि तद्वशः ॥
अग्निरुष्णो जलं शीतं समस्पर्शस्तथाऽनिलः ।
ऊर्ध्वाधस्तिर्यगित्येवंगतयोऽपिहि तद्वशाः ॥
9 प्रळयेऽपि प्रमाणं तु सर्वोच्छेदात्मके नहि ।
स च युक्तो यथेदानीं भूतानां दृश्यते क्रमात् ॥
तस्मादद्यवदेवात्र सर्गप्रळयकल्पना ।
समस्तक्षयजन्मभ्यां न सिद्धयत्यप्रमाणिका ॥
कर्मान्तरनिरुद्धं हि फलं न स्यात्क्रियान्तरात् ।
सर्वेषां तु फलापेतं न स्थानमुपपद्यते ॥
ईश्वरेच्छा यदीष्येत सैव स्याल्लोककारणम् ।
ईश्वरेच्छावशित्वे हि निष्फला कर्मकल्पना ॥

न चानिमित्तया युक्तमुत्पत्तुं हीश्वरेच्छया ।
यत्तु तस्या निमित्तं स्यात्तद्भूतानां भविष्यति ॥
सन्निवेशादिमत्सर्वं बुद्धिमद्धेतु यद्यपि ।
प्रसिद्धेः, सन्निवेशादेरेककारणता कुतः ॥
सर्गप्रळयविज्ञानं समस्तजगदाश्रयम् ।
स्वशरीराविदां पुंसां नाधिक्येनोपयुज्यते ॥
देहानित्यत्वधीमात्रात् स्वर्गमोक्षार्थगोचरा ।
प्रवृत्तिस्सिद्ध्यति यतः व्यर्था सर्गादिधीस्ततः ॥
यस्मादवश्यंवक्तव्या प्रयोजनवदर्थता ।
स्वाध्यायविध्यधीतानां सर्वोपनिषदां ततः ॥
दैवप्रभावकथनार्थोऽयं सर्गादिरुच्यते ।
प्रधानं पौरुषं येषां तन्निरासकटाक्षतः ॥
सृष्टिकाले दैववशेनैव सर्वा प्रवर्तते ।
सृष्टिस्समस्तपुरुषकाराभावेऽपि केवलम् ॥
लयकाले तु पुरुषकारे सत्यपि सर्वशः ।
तद्दैवोपरमादेवोपरमेत्सकलं जगत् ॥
धर्मानुष्ठान एवातः यतितव्यं कृतात्मभिः ।
इत्येतत्परमेष्टव्यं सृष्टिप्रलयकीर्तनम् ॥
भारतादीतिहासानां धर्मादौ वृत्तिरिष्यते ।
व्यवहारानादिवादिमीमांसकमतं त्विदम् ॥

निर्विशेषविदां सृष्टिकथाफलमिदं मतम् ।
सर्वस्य ब्रह्मकार्यत्वे सर्वं ब्रह्माधितिष्ठति ॥
नेतिनेतिनिषेधेन निषिद्धमखिलं भवेत् ।
सृष्ट्याद्यकथयित्वैव निषेधे केवले कृते ॥
ब्रह्मानध्यस्तवस्तूनां नित्यानां सत्त्वशङ्कया ।
सर्वं ब्रह्मातिरिक्तं न प्रतिषिद्धं भवेदिति ॥
यच्चौपनिषदानां तु सविशेषविदां मतम् ।
निरूपितं प्रागित्थं तु दैवपौरुषनिर्णयः ॥
दैवे पुरुषकारे च कर्मसिद्धिर्व्यवस्थिता ।
पौरुषस्य स्वभावे हि दैवं नैव प्रसिद्ध्यति ॥
प्राग्दैहिकं पौरुषं हि दैवमित्युच्यते बुधैः ।
व्यज्यते तद्बहुफलोदयादप्यल्पयत्नतः ॥
केचिद्दैवात्स्वभावाद्वा कालात्पुरुषकारतः ।
संयोगे केचिदिच्छन्ति फलं कुशलबुद्धयः ॥
यथा ह्येकेन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत् ।
एवं पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्ध्यति ॥

(49) शास्त्रसामर्थ्यम्.

1 यच्चात्र शास्त्रवैयर्थ्यचोद्यं किंचित्समाहितम् ।
तस्य प्रपञ्चो ज्ञातव्यः गीताशास्त्रनिरूपितः ॥

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधा च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥
शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः ॥
इत्यस्यायमभिप्रायः देहोऽधिष्ठानमुच्यते ।
जीवः कर्ताऽथ करणमिन्द्रियं चक्षुरादिकम् ॥
प्राणश्चेष्टा हि विविधा या क्रियाशक्तिरुच्यते ।
ईश्वरो दैवमुद्दिष्टं तत्र न्यायोऽवधार्यताम् ॥
दैवं दिष्टं भागधेयं दैवं कर्म पुराकृतम् ।
सत्येवं व्यवहारेऽपि दैवमत्रेश्वरो मतः ॥
नहि प्रागेव नष्टानां कर्मणामिह हेतुता ।
कर्मजन्यादृष्टरूपसंकल्पादप्यसौ वरम् ॥
सत्यंसत्यं पुनस्सत्यमुद्धृत्य भुजमुच्यते ।
वेदशास्त्रात्परं नास्ति न दैवं केशवात्परम् ॥
स्वाधीनं समतिक्रम्य मातरं पितरं गुरुम् ।
अस्वाधीनं कथं दैवं प्रकारैरभिराध्यते ॥
इत्येवं भारते रामायणे चापि प्रयुज्यते ।
श्रूयतां परमं दैवं दुर्विज्ञेयं मयाऽपिच ॥
नारायणस्तु पुरुषो विश्वरूपो महाद्युतिः ।
सभापर्ववचस्त्वेवं अथ योगविदां वचः ॥

आर्षं छन्दश्च दैवं च मन्त्राणां ब्राह्मणं तथा ।
आत्मानं पूजयेन्नित्यं भूषणाच्छादनादिभिः ॥
स्वदेह एव दैवं स्यात् अन्यद्दैवं न विद्यते ।
दैवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीनं तु दैवतम् ॥
तन्मन्त्रं ब्राह्मणाधीनं तस्माद्विप्रा हि दैवतम् ।
शास्त्रेऽप्यस्मिन् दैवशब्दः प्रयुक्तः पुरुषे यथा ॥
अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
तस्माद्दैवमिह ब्रूमः परमात्मानमीश्वरम् ॥

2 ननु स्वतन्त्रः कर्तेति शिष्यते कर्तृलक्षणम् ।
स कारकप्रयोक्ता स्यात् न प्रयोज्यश्च कारकैः ॥
उच्यतेऽत्रोत्पन्नबुद्धिचिकीर्षाकृतिशालिनः ।
स्यात्कारकप्रयोक्तृत्वं ज्ञानाद्युत्पत्तिरेव तु ॥
श्रुता परात्मायत्तेति तदायत्तैव कर्तृता ।
सिद्धं स्वातन्त्र्यमपिच सामर्थ्ये चानिवार्यता ॥
अथेश्वरो यदि ज्योतिष्टोमादौ संप्रवर्तयेत् ।
तदा किंचिन्न जीवस्य विधेयं चोदनादिभिः ॥
बलिना ह्रियमाणेन न गन्तुमिह शक्यते ।
निरुन्धे परमात्माऽथ न विधेयं प्रसज्यते ॥
प्रबलेन निरुद्धस्य गमनं न विधीयते ।
यदि प्रवर्तयेदीशः निषेधोऽत्र हि निष्फलः ॥

नासौ प्रवर्तयेद्यत्र निषेधो न ह्यपेक्ष्यते ।
चोद्यकाष्ठेयमाखिलास्तिकैकान्तावलम्बिनी ॥
निग्रहानुग्रहाख्यानपूर्वाद्दृष्टप्रचोदितः ।
निग्रहानुग्रहाद्यर्हं इतीदं घटते कथम् ॥
3 अपिचात्र पराधीनास्वपि सर्वप्रवृत्तिषु ।
कृतप्रयत्नापेक्षत्वं परस्य कथमुच्यते ॥
शास्त्रवैयर्थ्यचोद्यस्यावैयर्थ्यादिप्रसङ्गतः ।
परिहारे साध्यहेत्वोः अविशेषः प्रसज्यते ॥
अत्रेदमवधातव्यं यत्तावत्परमेशितुः ।
प्रवृत्तिशक्तकरणकळेबरसमर्पणम् ॥
यच्च सर्वाधारतयाऽवस्थानं भूतलादिवत् ।
स्वरूपाच्चापि संकल्पात् प्रवृत्त्याद्यानुगुण्यतः ॥
कळेबराद्यधिष्ठानशक्तिदानं च यत्पुनः ।
यच्चापि बाह्यविषयपुरस्करणमित्यपि ॥
तत्सर्वं जीवकर्तृत्वानुगुणं नात्र चोदना ।
प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च साधारणमिदं यतः ॥
एतावतैव भगवानुदासीन इतीर्यते ।
प्रवृत्तिकाले भगवान् अनुमन्तेत्युपेयते ॥
सा चानुमन्तृता जीवकर्तृतां न निवारयेत् ।
किंतूत्तभ्नातीति नातः शास्त्रवैयर्थ्यचोदना ॥

नैवानियोज्यताहेतुः कर्त्रन्तरसहायता ।
संभूयकार्येऽप्येकस्य दृश्यते हि नियोज्यता ॥
एवं प्रवृत्तिशक्तस्य चेच्छायामनिवार्यता ।
स्वतन्त्रताऽस्य सिद्धेति कर्तृत्वमपि सुस्थितम् ॥
4 यत्त्वथज्ञानशक्त्यादौ करणे च कळेबरे ।
प्रदानं विषमं यच्चाकृत्यादावनिवारणम् ॥
यदप्यनुमतेर्दानं प्रत्यवायस्य सर्जनम् ।
तदप्यनादिप्राक्कर्म वैषम्याद्विषमं मतम् ॥
अकृत्यकारिणोऽपीशानुग्राह्यास्स्युर्यदीशितुः ।
शास्त्रमाज्ञात्मकं व्यर्थं सोऽपि स्यादव्यवस्थितः ॥
अपुंस्त्वमावहेच्चास्य दण्ड्यानामप्यदण्डने ।
न गुणायावकल्पेत लोके दुष्टस्य शिक्षणम् ॥
यद्यप्यदृष्टवैषम्यात्प्रवृत्तिर्विषमा मता ।
तत्त्वदृष्टं शास्त्रपुरस्काराद्दृष्टादि साधयेत् ॥
तदप्येवं तत्र विधिनिषेधावसरो यथा ।
यतः प्रवृत्तिः शास्त्रोत्थबुद्ध्यादिकमपेक्षते ॥
यज्ञादिकारणं पूर्वमनेन सुकृतं कृतम् ।
इत्येतेनैव नेदानीं यज्ञनिष्पत्तिसंभवः ॥
नापि पापं केवलं वा पापमारभतेऽपितु ।
स्वबुद्ध्यैव निषेधातिवृत्त्या पापस्य कारणम् ॥

ननुचादृष्टमूलत्वे विध्यानर्थक्यमुच्यते ।
शास्त्रं च सार्थकं सर्वैः परैरभ्युपगम्यते ॥
तस्माददृष्टमूलत्वं त्यक्तव्यमिति चोद्यते ।
तन्नैवं लौकिकविधिनिषेधेऽपि प्रसङ्गतः ॥
लोके प्रवृत्तिवैचित्र्यं स्यात्सामग्रीविशेषतः ।
किंवा गामानयेत्यादिनियोगेनेति चिन्त्यताम् ॥
नियोगस्सोऽथ सामग्रीमध्यान्तर्भावमर्हति ।
इतिचेत् वैदिकश्चापि नियोगस्तादृगिष्यताम् ॥
परित्यजाम इतिचेत् नियोगमपि लौकिकम् ।
हन्त संव्यवहारस्यासिद्ध्या व्युत्पत्त्यसंभवः ॥
लौकायतेनापि लीनं जगदान्ध्यं प्रसज्यते ।
तस्माददृष्टं शास्त्रं च नान्योन्यप्रतिबन्धकम् ॥
तस्मादिष्टाऽदृष्टमूलशास्त्रवश्यदशान्वयात् ।
पुनस्तथातथा दृष्टसंपत्तिरुपपद्यते ॥
पुमर्थसाधनत्वेन प्रतीते स्वेच्छया पुमान् ।
प्रवर्ततेति तादर्थ्यात् सावकाशाऽत्र चोदना ॥
इत्येवं शास्त्रवैयर्थ्यचोदनाक्षेपदूषणम् ।
तात्पर्यचन्द्रिकाग्रन्थविस्तृतस्यात्र संग्रहः ॥
एवं शास्त्रं शास्त्रजन्यादृष्टं वा बुद्धिपूर्वकम् ।
प्रवर्तयेदतः शास्त्रवैयर्थ्यं न प्रसज्यते ॥

दैवाधीनं जगत्सर्वमिति तत्त्वविदां वचः ।
मयि सर्वाणि कर्माणीत्युक्तगीतार्थगोचरम् ॥

(50) कर्मवादः.

1 कर्मत्वजातिमत्कर्म प्रत्यक्षं चलनात्मकम् ।
अविभुद्रव्यसंस्थं तत् हेतुर्योगवियोगयोः ॥
वेगस्यापीति सिद्धान्तमाहुर्भाट्टाश्च तार्किकाः ।
न संयोगादिविषयः चलतिप्रत्ययो यतः ॥
सर्वसंयोगधाराऽपि धरा न चलतीति धीः ।
नवा तरङ्गिणीतीरपाषाणश्चलतीति धीः ॥
भूकम्पादौ महोत्पाते ह्यचला चलतीति धीः ।
संयोगो वा विभागो वा न कश्चित्तत्र दृश्यते ॥
2 प्राभाकरास्तु मन्यन्ते कर्म चैतदतीन्द्रियम् ।
सुसूक्ष्मो व्यापार एषः सर्वद्रव्यगतोऽपि च ॥
अनुमेयं हि संयोगाद्विभागाद्वाऽऽर्ककर्मवत् ।
अन्वयव्यतिरेकानुविधानं चक्षुरादिभिः ॥
लिङ्गस्य दर्शने क्षीणं, गमनं यच्च चाक्षुषम् ।
स च संयोग एव स्यात् संयोगस्सर्वसम्मतः ॥
तत्र कौमारिलास्त्वित्थमाक्षेपं संप्रचक्षते ।
गुरुर्गृहीतविषयमनुमानं प्रजल्पति ॥

अनुमानेन कर्मादिसिद्धिमप्यभिवाञ्छति ।
3 क्षणिकास्सर्वसंस्कारा अस्थिराणां कुतः क्रियाः ॥
भूतिर्येषां क्रिया सैव कारकं सैव चोच्यते ।
ततोऽविरलदेशादेरुत्पादः कर्मलक्षणः ॥
संयोगादिस्स एवेति क्षणभङ्गोऽनुपद्रवः ।
इति युक्त्या सौगतास्तु कर्मैवापलपन्ति हि ॥
क्षणवादस्स दूष्यो हि प्रत्यक्षेणैव कर्मणा ।
कर्म चेदनुमेयं स्यात् जिता एव हि सौगताः ॥
संयोगेनान्यथासिद्धिः वक्तुं शक्येत कर्मणः ।
नित्यत्वे सर्वदा जन्म स्यात्संयोगविभागयोः ॥
अनित्यत्वेऽस्य यो हेतुस्तेनैव स्यात्तयोर्जनिः ।
तद्धेतुरेव तद्धेतुरिति न्यायोऽहि लौकिकः ॥
4 अतएवहि काणादाः कर्मणः कर्मसाध्यताम् ।
स्वभाववादभङ्गाय धूत्वाऽऽहुर्गुणसाध्यताम् ॥
आत्मजन्या भवेदिच्छा हीच्छाजन्या भवेत्कृतिः ।
कृतिजन्या भवेच्चेष्टा चेष्टाजन्या भवेत्क्रिया ॥
अदृष्टाधीनतां चाहुः ज्वलनोर्ध्वादिकर्मणाम् ।
एतेन चेतनायत्तं सर्वं कर्मेति साधितम् ॥
कृतेराख्यातवाच्यत्वस्थापनैतन्निबन्धना ।
व्यापारमात्रवादस्तु सांख्यादिमतिमूलकः ॥

अदृष्टं दृष्टसामग्रीं पुरस्कृत्यैव कारकम् ।
इतीरयद्भिरप्यग्नेरूर्ध्वज्वलनमिष्यते ॥
कर्मणः कर्मसाध्यत्वं निषेधत्यपि जैमिनिः ।
अभिक्रामं जुहोतीति वाक्यस्यार्थनिरूपणे ॥
क्रियाकारकनिष्पाद्या कारकं मूर्तमिष्यते ।
कर्म चैतदमूर्तं स्यात् इति न्यायोऽत्र शाबरः ॥
क्रियैव कारकमिति क्षणप्रध्वंसवादिनाम् ।
सिद्धान्तोऽनेन वाक्येन संक्षेपेण कटाक्षितः ॥
कर्मणः कर्मसाध्यत्वं स्वीकृतं श्लोकवार्तिके ।
कर्मणः कर्मसाध्यत्वं नास्मत्पक्षे विरुध्यते ॥
अनात्मसमवेतस्य निमित्तं कर्म हीष्यते ।
इति वाक्याधिकरणपद्यमत्र निशम्यताम् ॥
निषिद्धं समवायित्वं स्वीकृता तु निमित्तता ।
इति रत्नाकरव्याख्या विरोधपरिहारिणी ॥
यद्यपि क्षणवादोऽयमेतेन प्रतिहन्यते ।
स्वभाववादावसरो निमित्तत्वेऽपि दुस्तरः ॥
अत्र वेदान्तिनः केचिन्न्यायतत्त्वानुसारिणः ।
नैयायिकाश्च कतिचिन्न्यायभूषणयायिनः ॥
द्रव्ये गुणे वा विश्रान्तिं कर्मणो ये विजानते ।
तेषामाशयसारोऽयं संक्षेपादवधार्यताम् ॥

प्रत्यक्षं कर्म येऽप्याहुः नूनं तैरपि कर्मजात् ।
संयोगाद्वा विभागाद्वा निपुणं नान्यदीक्ष्यते ॥
चलतिप्रत्ययोऽपि स्यात्तावतैव मनीषिणाम् ।
चलत्यचलदित्याद्या धियोऽवस्थानिबन्धनाः ॥
कर्मादीनां गुणैर्द्रव्यैर्वाऽन्यथासिद्धिसंभवात् ।
द्रव्यं चाद्रव्यमित्येव विभागो मेयसंग्रहः ॥
एतावताऽपि भग्नास्ते भवन्ति क्षणभङ्गिनः ।
कर्मापह्नवसिद्धान्तो दुःस्थ एवेति च स्थितम् ॥
कर्मैकं बुद्धिरप्येका जगत्येकस्सितो गुणः ।
वर्णोऽप्येको गकारादिरिति च श्लोकवार्तिके ॥
न प्रत्यक्षे इति ह्युक्तिश्शाबरी बुद्धिकर्मणी ।
प्रत्यक्षत्वे तयोस्स्याद्धि नित्यतेत्यपि तन्मतम् ॥
शब्दनित्यत्ववादे हि विस्तरेण निरूपितम् ।
उपालभन्ते चात्रेत्थमेतान् नैयायिकाः पुनः ॥
किंनाम शब्दनित्यत्वसमर्थनतृषातुरः ।
जङ्गमं स्थावरं चैव सकलं पातुमिच्छसि ॥
इत्येवं वादसंरम्भे विचित्रा धीमदुक्तयः ।
6 अथ चात्रात्मसंबन्धिक्रियाचिन्ता निशम्यताम् ॥
साक्षाद्यद्यपि संबन्धो नात्मनो यज्ञसाधनैः ।
तथाऽपि लक्षणावृत्त्या शरीरद्वारको भवेत् ॥

प्रत्यक्षत्वं च देहस्थं भाक्तमात्मनि कल्पितम् ।
आत्मनः स्वर्गयानं वा शरीरस्योपचर्यते ॥
जन्मान्तरेऽभ्युपेतेऽपि ज्ञानमात्रात्मवादिनाम् ।
ज्ञानानां क्षणिकत्वाद्धि कर्तृभोक्त्रन्यता भवेत् ॥
निष्क्रियत्वाविभुत्वाभ्यां नच देहान्तराश्रितिः ।
ज्ञानशक्तिस्वभावोऽतो नित्यस्सर्वगतः पुमान् ॥
यजमानत्वमप्यात्मा सक्रियत्वात्प्रपद्यते ।
न परिस्पन्द एवैकः क्रिया नः कणभोजिवत् ॥
नच स्वसमवेतैव कर्तृभिः क्रियते क्रिया ।
क्रिया धात्वर्थमात्रं स्यात् अन्याधारेऽपि कर्तृता ॥
सत्ताज्ञानादिरूपाणां कर्ता तावत्स्वयं पुमान् ।
योऽपि भूतपरिस्पन्दः तत्राधिष्ठानतो भवेत् ॥
तदुद्देशप्रवृत्तेश्च याया देहेन्द्रियैः क्रिया ।
क्रियते पुरुषेणैव सासा सर्वा कृतोच्यते ॥
नैव ह्येषां प्रवृत्तिस्स्यात्पुरुषेणापरिग्रहे ।
अस्वातन्त्र्यादतो नैषां परिस्पन्देऽपि कर्तृता ॥
तत्कर्मोपार्जितैश्चैतैः क्रियमाणेषु कर्मसु ।
कर्तृता यजमानानामृत्विक्परशुकर्मवत् ॥
यथा परिक्रयाम्नानादृत्विग्द्वारा क्रियोच्यते ।
गमनादिविधेस्तद्वत् भूतद्वारत्वमाश्रितम् ॥

नच सर्वत्र तुल्यत्वं स्यात्प्रयोजककर्मणाम् ।
चलनेन ह्यसिं योद्धा प्रयुङ्क्ते छेदनं प्रति ॥
सेनापतिस्तु वाचैव भृत्यानां विनियोजकः ।
राजा सन्निधिमात्रेण विनियुङ्क्ते कदाचन ॥
तस्मादचलतोऽपि स्यात् चलने कर्तृताऽऽत्मनः ।
यथैवाभिद्यमानस्य देवदत्तस्य भेत्तृता ॥
तस्माद्यथाऽऽकृतौ शास्त्रं प्रवृत्तं व्यक्तिमाश्रयेत् ।
तथा पुंसि प्रवृत्तस्य भूतेन्द्रियसमाश्रयः ॥
शक्तिः कार्यानुमेयत्वात् यद्गतैवोपयुज्यते ।
तत्रैव साऽभ्युपेतव्या स्वाश्रयाऽन्याश्रयाऽपिवा ॥
आत्मैव चाश्रयस्तस्य क्रियाऽप्यत्रैव च स्थिता ।
आत्मवादे स्थितं ह्येतत् कर्तृत्वं सर्वकर्मसु ॥
यदि स्वसमवेतैव शक्तिरिष्येत कर्मणाम् ।
तद्विनाशे ततो न स्यात्कर्तृस्था तु न नश्यति ॥
प्रमाणवन्त्यदृष्टानि कल्प्यन्ते सुबहून्यपि ।
अदृष्टशतभागोऽपि न कल्प्यो ह्यप्रमाणकः ॥
कर्मजन्यो हि संस्कारः पुंसो बुद्ध्यादिवद्गुणः ।
तस्य चाफलसंयोगादवस्थितिरुपेयते ॥
स यागदानहोमादिजन्यो धर्मगिरोच्यते ।
ब्रह्महत्यादिजन्यस्तु सोऽधर्म इति कथ्यते ॥

एवं कर्मविचारेण नास्तिक्यं परिहीयते ।
तस्मान्निश्श्रेयसावाप्तिः तत्त्वज्ञानाद्धि सूत्र्यते ॥

(51) जातिवादः.

1 विकल्पविभ्रमो जातिरिति केचित्प्रचक्षते ।
उपाधिभेदभिन्ना सा महासत्तेति केचन ॥
एके सतीमभिन्नां तामाश्रयेभ्यो विजानते ।
अभिन्नामपि तामेतामनुमेयां विदुः परे ॥
अपोहलक्षणां केचित्केचित्सारूप्यलक्षणाम् ।
स्वासाधारणरूपां तामन्ये संस्थानलक्षणाम् ॥
एकार्थकारितामेके विवादा बहवोऽत्र हि ।
संग्रहो वचसां तेषां पूर्वेषामवगम्यताम् ॥
अर्थक्रियासु नित्यस्य ह्यसामर्थ्यं स्फुटं ततः ।
जनकत्वस्य चाभावाद्विषयत्वाद्यसंभवः ॥
इति बुद्धिविरोधेन विकल्पो जातिरुच्यते ।
तथाऽवयविनोऽभावे निराधारा कथं नु सा ।
अन्यत्र वर्तमानस्य ततोऽन्यस्थानजन्मनि ।
तस्मादचलतः स्थानात् वृत्तिरित्यतियुक्तिता ॥
यत्रासौ वर्तते भावः तेन सम्बध्यते न तु ।
तद्देशिनं च व्याप्नोति किमप्येतन्महाद्भुतम् ॥

नायाति न च तत्रासीदस्ति पश्चान्न चांशवत् ।
जहाति पुनराधारमहो व्यसनसंततिः ॥
परतन्त्रैव सर्वत्र स्वात्मानं लब्धुमर्हति ।
अतो वृत्तिविरोधेन विकल्पो नैव संशयः ॥
पिण्डे सामान्यमेकत्र यदि कात्स्न्र्येन वर्तते ।
तत्रैवास्य समाप्तत्वान्न स्यात्पिण्डान्तरे ग्रहः ॥
एकदेशेन वृत्तौ तु गोत्वजातिर्न कुत्रचित् ।
समग्राऽस्तीति, गोबुद्धिः प्रतिपिण्डं कथं भवेत् ॥
पृथक्त्वे व्यक्तितो जातेः दृश्येत पृथगेव सा ।
अभेदे व्यक्तिमात्रं स्यात् द्वेधा चेन्न विरोधतः ॥
जात्याद्यर्थान्तरं यस्मादतद्रूपेऽपि वस्तुनि ।
भवत्यध्यस्य धीः तस्मान्मृगतृष्णादिभिस्समा ॥
तस्माद्यतोयतोऽर्थानां व्यावृत्तिस्तन्निबन्धनाः ।
जातिभेदाः प्रकल्प्यन्ते तद्विशेषावगाहिनः ॥
2 अत्र वैशेषिकादीनामभिप्रायोऽवगम्यताम् ।
प्रत्यक्षबलसिद्धस्य सामान्यस्य कुतर्कतः ॥
न शक्यो निह्नवः कर्तुं प्रत्यक्षं जयि सर्वतः ।
नहि दृष्टेऽनुपपन्नं नामेत्यपिच लोकवाक् ॥
सर्वा सर्वगता जातिरिति तावदुपेयते ।
सर्वत्राग्रहणं तस्याः व्यञ्जकव्यक्त्यसन्निधेः ॥

अभिव्यक्तिस्तु तत्काला यत्कालं व्यक्तिदर्शनम् ।
तस्मात्सकृदभिव्यक्ता नान्यदाऽपि प्रतीयते ॥
व्यक्तिसर्वगतत्वेऽपि सयूथ्यैः कैश्चिदाश्रिते ।
भविष्यत्यद्यजातायां गवि गोधीस्तथा ग्रहात् ॥
जायमानैव हि व्यक्तिः जायते प्रतियोगिनी ।
एक एव हि कालोऽस्याः जातेस्संबन्धजन्मनोः ॥
नच जातेः पुराऽस्तित्वं नच संक्रान्तिरन्यतः ।
किंतु स्वहेतोस्सा व्यक्तिः तादृश्येवोपजायते ॥
वृषः पिशङ्गो गौः कृष्णा सा च नीलतृणादिनी ।
ताभ्यामुत्पादितो वत्सः कथं भवति पाण्डरः ॥
तस्माद्वस्तुस्वभावेऽस्य विदित्वाऽननुयोज्यताम् ।
चोद्यचुञ्चुत्वमुत्सृज्य प्रतिपत्तिर्निरूप्यताम् ॥
केचिन्नैयायिकाः जातिं नेच्छन्ति गुणकर्मणोः ।
द्रव्यजात्यैव हि तयोः जातिव्यवहृतिं विदुः ॥
त्रिषु सत्तां केचिदाहुः सैव नास्तीति केचन ।
मानयोगार्हता सा स्यात् भावत्वं वेति ते विदुः ॥
अनुमानं तु सामान्यापेक्षं सामान्यनिह्नवे ।
नालमित्यसमीक्ष्यैव वृथा कण्ठो विशोष्यते ॥
3 अथ प्रभाकरगुरोस्सिद्धान्तोऽत्र प्रकाश्यते ।
जातिराश्रयतो भिन्ना प्रत्यक्षज्ञानगोचरा ॥

पूर्वाकारावमर्शेन ह्यनुवृत्तिमती तु सा ।
यो नानाव्यक्तिसंबन्धः साऽनुवृत्तिरितीर्यते ॥
तत्सामान्यं विशेषश्च बुद्ध्यपेक्षमिति स्मृतिः ।
इयान्विशेषश्शिष्टांशः वैशेषिकनये स्थितः ॥
4 जातिं व्यक्तिगतां नित्यां व्यक्तितादात्म्यशालिनीम् ।
प्रत्यक्षगम्यां सर्वां तामाहुः कौमारिलाः पुनः ॥
सत्ता पदार्थमात्रे स्यान्महासामान्यमुच्यते ।
द्रव्यत्वब्राह्मणत्वादि सामान्यं स्यादवान्तरम् ॥
महासामान्यमपरे नैवेच्छन्त्यनवस्थितेः ।
पुनस्तेन सहान्येषु सामान्यमतिरास्ति हि ॥
जातिमेवाकृतिं प्राहुः व्यक्तिराक्रियते यया ।
सामान्यं तच्च पिण्डानामेकबुद्धिनिबन्धनम् ॥
सर्ववस्तुषु बुद्धिश्च व्यावृत्त्यनुगमात्मिका ।
जायते द्व्यात्मकत्वेन विना सा च न सिद्ध्यति ॥
नचाप्यन्यतरा भ्रान्तिरुपचारेण गम्यते ।
दृढत्वात्सर्वथा बुद्धेः भ्रान्तिस्तद्भ्रान्तिवादिनाम् ॥
निर्विशेषं न सामान्यं भवेच्छशविषाणवत् ।
सामान्यरहितत्वाच्च विशेषास्तद्वदेवहि ॥
विषेषतो हि जिज्ञासा ज्ञाते सामान्यतो मता ।
सामान्यस्यानुपगमे प्रश्नोत्तरपराहतिः ॥

स्वाभाविकश्च संबन्धो जातिव्यक्त्योर्न हेतुमान् ।
तेनैतस्य प्रसिद्ध्यर्थं नान्यसामान्यमिष्यते ॥
विषयेण हि बुद्धीनां विना नोत्पत्तिरिष्यते ।
विशेषादन्यदिच्छन्ति सामान्यं तेन तद्ध्रुवम् ॥
तस्मात्सास्नादिमत्स्वेव गोत्वं यस्मात्तदात्मकम् ।
तादात्म्यमस्य कस्माच्चेत्स्वभावादिति गम्यताम् ॥
एकानेकत्वमेकस्य तथाऽन्यानन्यता कथम् ।
तत्सामान्यं विशेषश्चेत्येवमादि च दुष्करम् ॥
विरोधस्तावदेकान्ताद्वक्तुमत्र न युज्यते ।
सामान्यानन्यविज्ञाते विशेषे नैकवृत्तिता ॥
सामान्यानन्यवृत्तित्वं विशेषात्मैकभावतः ।
तेन नात्यन्ततो भेदस्स्यात्सामान्यविशेषयोः ॥
या चावयवशो वृत्तिः स्रक्सूत्रादिषु दृश्यते ।
भूतकण्ठगुणादेश्च प्रतिपिण्डं समाप्तितः ॥
तत्रावयवयोगित्वमविभुत्वं च कारणम् ।
आकृतेस्तदभावेन न प्रसक्तमदोद्वयम् ॥
नच द्वैविध्यमेवेति वृत्तेरास्ति नियामकम् ।
त्रैविध्यमपि दृष्टत्वात्संभवेत् द्वे विधे यथा ॥
दीर्घह्रस्वत्ववच्चात्र व्यपेक्षाभेदतो भवेत् ।
अविरोध इति ज्ञात्वा प्रतिपत्तिर्निरूप्यताम् ॥

5 शाब्दिकास्तां विदुस्सत्तां तदुक्तिरवधार्यताम् ।
संबन्धिभेदात्सत्तैव भिद्यमाना गवादिषु ॥
जातिरित्युच्यते तस्यां सर्वे शब्दा व्यवस्थिताः ।
तां प्रातिपदिकार्थं च धात्वर्थं च प्रचक्षते ॥
सा नित्या सा महानात्मा तामाहुस्त्वतलादयः ।
अनेकव्यक्त्यभिव्यङ्ग्या जातिः स्फोट इति स्मृता॥
कैश्चिद्व्यक्तय एवास्याः ध्वनित्वेन प्रकल्पिताः ।
सत्यासत्यौ तु यौ भावौ प्रतिभावं व्यवस्थितौ ॥
सत्यं यत्तत्र सा जातिः असत्या व्यक्तयो मताः ।
तद्ब्रह्म स च शब्दः स्यात् सकलं तदधिष्ठितम् ॥
आकृतिग्रहणा जातिः लिङ्गानां च न सर्वभाक् ।
सकृदाख्याननिर्ग्राह्या गोत्रं च चरणैस्सह ॥
प्रादुर्भावविनाशाभ्यां सत्त्वस्य युगपद्गुणैः ।
असर्वलिङ्गां बह्वर्थां तां जातिं कवयो विदुः ॥
6 अभाषत च संस्थानजातिपक्षं पतञ्जलिः ।
जातिनित्यत्वपक्षोक्तिरन्वारुह्येति नीयताम् ॥
संस्थानजातिसिद्धान्तसारांशोऽत्रावगम्यताम् ।
संस्थानं चाप्यवयवव्यूहस्सास्नादिलक्षणः ॥
जातेस्तु[6] यञ्जकं यत्स्यात् जातितस्तस्य संग्रहे ।
जातिमालाऽनवस्थाऽतः संस्थानं जातिरिष्यते ॥

यद्यप्येकैकसंस्थं तत्संस्थानं गळकम्बळम् ।
स्वभावतः तथाऽप्येतत्सप्रतिद्वन्द्विकं मिथः ॥
प्रामाणिकं स्वरूपं यत् स स्वभाव इतीर्यते ।
तत्तथैव स्वीक्रियते यद्यथैव प्रतीयते ॥
सन्निवेशाः स्वभावेन नियतप्रतियोगिकाः ।
अन्योन्यसादृश्यरूपाः मिथः स्मारकतावशात् ॥
एकस्मृतिसमारूढाः एकबुद्धिनियामकाः ।
सादृश्यसामान्यशब्दावेकार्थाविति निर्णयः ॥
उपाधिसंकरन्यायादवस्थासंकरो मतः ।
भ्रमणस्यन्दनत्वाद्यमेकस्मिन् गमने मतम् ॥
अन्योन्यसप्रतिद्वन्द्वि रूपं सादृश्यमुच्यते ।
तदेवानुगतज्ञप्तिहेतुः जातिर्न चाधिका ॥
कथ्यते यैस्तु सादृश्यं संस्थानादिविलक्षणम् ।
गुरुत्वं जातिगुप्तौ च धृतं तैर्जातिगुप्तिवत् ॥
जातिखण्डनयुक्तीनां नावकाशोऽत्र लभ्यते ।
प्रायः परीक्षकाणामप्येतदेव मनोरमम् ॥
7 तिर्यगूर्ध्वत्वभेदेन द्विविधं त्वार्हता विदुः ।
तुल्या परिणतिर्यत्र प्रतिव्यक्ति प्रदृश्यते ॥
तत्तिर्यग्यद्धि शबलाशाबलेयादिवस्तुषु ।
गोत्वादिकं तथाऽश्वत्वनरत्वामरतादिकम् ॥

पूर्वापरपरीणाममसाधारणमवास्थितम् ।
द्रव्यं तदूर्ध्वताख्यं स्यात् कटकादिषु काञ्चनम् ॥
तथौपनिषदाः प्रायः तार्किकं वाऽथ वैदिकम् ।
पन्थानमाश्रिताः किंचित्किंचिद्भेदं समाश्रिताः ॥
8 अथच ब्राह्मणत्वादिजातिव्यवहृतौ मताः ।
प्राचां ग्रन्थकृतां मार्गाः निशम्यन्तां समाहृताः ॥
अनादाविह संसारे दुर्वारे मकरध्वजे ।
कुले च कामिनीमूले का जातिपरिकल्पना ॥
यन्मे माता प्रलुलुभे विचरन्त्यपतिव्रता ।
तन्मे रेतः पिता वृङ्क्तामित्यप्यस्य निदर्शनम् ॥
अब्राह्मणो ब्राह्मणस्स्यात्प्रवरस्यानुमन्त्रणात् ।
इतिश्रुत्यर्थजिज्ञासा शाबरादिषु विस्तृता ॥
न संस्थानं नापि धातुः न भयाद्यं न चौषधम् ।
न वृत्तिः नापि चाचारः किंतु संकेत एव सः ॥
इत्यादीनि च वाक्यानि जातिविप्लववादिनाम् ।
विश्रुतान्येव सर्वत्र विज्ञेयोऽन्यत्र विस्तरः ॥
9 श्रुतिस्मृतिनिबन्धेषु तद्व्याख्यानेषु यच्छ्रुतम् ।
भाष्यादिषु च यच्चोक्तं तत्सारांशोऽयमुच्यते ॥
जातिनाम्नोऽतिरिक्तस्य स्वीकर्तारस्तु वस्तुनः ।
ब्राह्मणत्वादिकां जातिं नरत्वावान्तरं विदुः ॥

तत्र क्वचिद्ब्राह्मणादिशब्दानां गुणवाचिताम् ।
वृत्तादिवाचितां चापि मन्वते तत्त्वदर्शिनः ॥
नञ्सूत्रेऽतो महाभाष्ये गुणसंदोहवर्तिनः ।
ब्राह्मणाद्या अमी शब्दाः क्वचिदंशेष्वितीरितम् ॥
जात्यनभ्युपगन्तारः व्यवहारस्य गोचरम् ।
विदुश्शुद्धकुलोत्पत्तिं जातिजन्मादिशब्दिताम् ॥
सैव संततिसंतानकुलशब्दादिशब्दिता ।
सर्ववर्णेषु तुल्यास्वित्यादिस्मृतिवचोबलात् ॥
तमश्शूद्रे रजः क्षत्रे ब्राह्मणे सत्त्वमुत्कटम् ।
इत्याश्वमेधिकस्मृत्या सत्त्वाद्यं केचिदभ्यधुः ॥
सन्निवेशसमानत्वेऽप्यारणेयादिवह्निषु ।
क्षीरभेदादिकेऽप्यस्ति शक्तिभेदास्तथाऽत्र हि ॥
परेऽदृष्टविशेषं तमात्मस्थमनुजानते ।
तदभिव्यञ्जिकां शुद्धकुलोत्पत्तिं प्रचक्षते ॥
ब्राह्मणो जायते ह्येष यो यज्ञाज्जायते त्विति ।
ब्राह्मणत्वं कर्मरूपमिति शातपथी श्रुतिः ॥
यथैव दीक्षणीयेष्ट्या जायन्ते ब्राह्मणादयः ।
इति पाद्मे पाञ्चरात्रे तन्निमित्तमनूदितम् ॥
मुखबाहूरुपज्जत्वं पुंसूक्तोक्तं विदुः परे ।
तत्र प्रश्नानुरोधेन तद्रूपणमितीतरे ॥

मनूनां सर्गमकरोन्मुखबाहूरुपादतः ।
एते सावर्ण्यनामानः विष्वक्सेनागमोदिताः ॥
महर्षयस्सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।
इत्यत्र मनवस्तादृक्सावर्ण्या इति भाषितम् ॥
प्रत्यक्षं ब्राह्मणत्वादि सहकारिव्यपेक्षया ।
घृतत्वादिवदित्युक्तं मीमांसातन्त्रवार्तिके ॥
सहकार्यत्रोपदेशः स पारम्परिको मतः ।
समूहलेख्यानि परंपराऽविस्मृतिकारणम् ॥
नहि तत्करणं लोके वेदे वा किंचिदीदृशम् ।
इतिकर्तव्यतासाध्ये यस्य नानुग्रहेऽर्थिता ॥
तथाच संततिस्मृत्याऽनुगृहीतेन चक्षुषा ।
विज्ञायमानं ब्राह्मण्यं प्रत्यक्षत्वं न मुञ्चति ॥
तथाच दृश्यते नानासहकारिव्यपेक्षया ।
चक्षुषो जातिविज्ञानजनकत्वं यथोदितम् ॥
सुवर्णे व्यज्यते रूपात् ताम्रत्वादेरसंशयम् ।
तैलाद्घृतं विलीनं च गन्धेन तु रसेन वा ॥
भस्मप्रच्छादितो वह्निः स्पर्शनेनोपलभ्यते ।
अश्वत्वादौ च दूरस्थे निश्चयो जायते ध्वनेः ॥
संस्थानेन घटत्वादि ब्राह्मणत्वादि योनितः ।
क्वचिदाचारतश्चापि सम्यगाज्ञाऽनुपालितात् ॥

यत्समानवयोवेषपिण्डद्वयविलोकने ।
तत्क्षणादक्षतो भेदो नात्रभातीति भाषितम् ॥
नैतावता विभागस्य प्रत्यक्षत्वं निवर्तते ।
सादृश्यदोषात्तत्र स्याद्विभागस्यानवग्रहः ॥
समानरूपसंस्थानशुक्तिकाकलधौतयोः ।
विवेकस्सहसा नाभादिति कालान्तरेऽपि किम् ॥
विश्वामित्रे च कर्माधिकारमात्रस्य संभवः ।
न विप्रतादेः सांकर्यादिति कौस्तुभकृन्मतम् ॥
यामुनाचार्यहेमाद्रिमाधवप्रमुखा बुधाः ।
पन्थानमनुरुन्धाना अमुमेवेति निर्णयः ॥
11 नाध्यक्षगम्या जातिस्सा किंतु स्मरणलक्षणा ।
इति मेधातिथेः विज्ञानेश्वरस्य च निर्णयः ॥
तथा सेश्वरमीमांसातत्त्वटीकादिकारिणः ।
औपदेशिकसिद्धान्तं स्थापयामासुरूर्जितम् ॥
तदन्वयविशेषेषु संभवो विप्रतादिकम् ।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यथालोकं प्रतीयते ॥
संभवोऽपिच साध्व्याः स्यान्मातुरेवानुभाविकः ।
द्रव्यादीनां धर्मतावदन्येषां त्वौपदेशिकम् ॥
ते सन्ततिविशेषास्स्युः वृद्धा येषु प्रयुञ्जते ।
विप्रादिशब्दं येषां तु गोत्रार्षेयाद्यविस्मृतिः ॥

पक्षे त्वस्मिन् विप्रताद्यं व्यवहारनिबन्धनम् ।
अनादिर्व्यवहारोऽयं वारादिव्यवहारवत् ॥
या चोत्कर्षापकर्षाभ्यां सप्तमे पञ्चमेऽपिवा ।
वर्णान्तरापत्तिरुक्ता पर्यायाच्छुद्धिरेव सा ॥
संभवः तदभिव्यङ्ग्या जातिर्वा विप्रता यदि ।
मुखबाहूरुजातानां मानसानां कथंनु सा ॥
द्रौपद्यगस्त्यवाल्मीकिदृष्टद्युम्नादिधीमताम् ।
पौराणिकानामन्येषां कथं सा व्यवतिष्ठते ॥
तद्योनिजायोनिजादिक्रोडीकरणनिर्मलम् ।
ब्राह्मण्यमभिनिर्वाच्यं तद्धि सत्त्वादिलक्षणम् ॥
सत्त्वादयो गुणा एव स्वभावप्रभवा गुणाः ।
तद्धेतुभूतं प्राचीनं कर्म स्वो भाव उच्यते ॥
प्रजापतेः ऋषीणां च प्रत्यक्षं तत्तु मादृशाम् ।
गोत्रप्रवरसंबन्धपारंपर्योपदेशिकम् ॥
सवर्णान्येन संयोगे सांकर्यं नैव संभवि ।
महर्षिषु प्रमादोऽपि तपोभिरनुपप्लुतः ॥
12 तद्ब्राह्मण्यं द्विधा प्रोक्तं शारीरं मानसं त्विति ।
सत्त्वादिरूपं शारीरं मानसं तु शमादिकम् ॥
शरीरसत्तापर्यन्तं शारीरनियमः स्थितः ।
मानसं सर्वपूज्यं स्यात् मनोवृत्तिनिबन्धनम् ॥

ब्राह्मण्यमासीत्प्रथमं ततः क्षत्रादि वैभवम् ।
इतिच ब्रह्म वेत्यादि बृहदारण्यके श्रुतम् ॥
आदौ कृतयुगे शूद्राद्यभावो भारतादिषु ।
प्रपञ्चितस्सच्चरित्ररक्षायामप्यनूदितः ॥
बीजप्राधान्यतो जातिव्यवस्थाऽऽदावभूत्ततः ।
क्षेत्रप्राधान्यत इति चाधुना ज्ञायते गतिः ॥
ब्राह्मणानां पुनः बीजं क्षत्राणां क्षेत्रमित्यपि ।
मेधातिथेरभिप्रायः ज्ञायते दशमे मनोः ॥
पुराणादिषु चान्येषु त्रिविधा ज्ञायते गतिः ।
सर्वे सर्वानुग्रहाय मुखभेदा इति स्थितिः ॥

(52) असंबद्धवादः.

1 संबन्धस्य च संबन्धे तस्यापीत्यनवस्थितिः ।
ततस्तस्य परित्यागे स्वरूपे पर्यवस्यति ॥
एवं विशेषे सामान्ये कारणे धर्मधर्मिणोः ।
आधारेऽवयवे शक्तौ शेषिण्यङ्गे च संविदि ॥
अनवस्थाप्रसङ्गेन व्यवहारः स्वरूपतः ।
वरमित्याहुरपरे संबन्धोऽत्र कुतः कयोः ॥
2 अथ संबन्धतत्त्वापलापिनामिह कारिका ।
प्रमेयाम्बुजमार्ताण्डोदाहृतैषाऽवधार्यताम् ॥

पारतन्त्र्यं हि संबन्धः सिद्धे का परतन्त्रता ।
तस्मात्सर्वस्य भावस्य संबन्धो नास्ति तत्त्वतः ॥
रूपश्लेषो हि संबन्धः द्वित्वे स च कथं भवेत् ।
तस्मात्प्रकृतिभिन्नानां संबन्धो नास्ति तत्त्वतः ॥
द्वयोरेकाभिसंबन्धात्संबन्धो यदि तद्द्वयोः ।
कस्संबन्धोऽनवस्था च, न संबन्धमतिस्ततः ॥
तौ च भावौ तदन्यश्च सर्वे ते स्वात्मनि स्थिताः ।
इत्यमिश्राः स्वयं भावाः तान्निश्चयति कल्पना ॥
तामेवचानुरुन्धानैः क्रियाकारकवाचिनः ।
भावभेदप्रतीत्यर्थं संयोज्यन्तेऽभिधायकाः ॥
3 कार्यकारणभावाख्यः संबन्धो न भविष्यति ।
तयोरसहभावेन द्विष्ठस्यास्याप्यसंभवात् ॥
क्रमेण भाव एकत्र वर्तमानोऽन्यनिस्स्पृहः ।
तदभावेऽपि तद्भावात् संबन्धो नैकवृत्तिमान् ॥
यद्यपेक्ष्य तयोरेकमन्यत्रासौ प्रवर्तते ।
उपकारी ह्यपेक्ष्यः स्यात् कथं चोपकरोत्यसन्॥
यद्येकार्थाभिसंबन्धात्कार्यकारणता तयोः ।
प्राप्ता द्वित्वाभिसंबन्धात्सव्येतरविषाणयोः ॥
द्विष्ठो हि कश्चित्संबन्धो नातोऽन्यत्तस्य लक्षणम् ।
येन चैतस्य संख्यादेः व्यवस्थाप्येत भिन्नता ॥

भावाभावोपधियोगः कार्यकारणता यदि ।
योगोपाधी न तावेव कार्यकारणताऽत्र किम् ॥

पश्यन्नेकमदृष्टस्य दर्शने तददर्शने ।
अपश्यन् कार्यमन्वेति विनाऽप्याख्यातृभिर्जनैः ॥

दर्शनादर्शने मुक्त्वा कार्यबुद्धेरसंभवात् ।
कार्यादिश्रुतिरप्यत्र लाघवार्थं निवेशिता ॥

तद्भावाभावतः कार्यगतिर्याऽप्यनुवर्ण्यते ।
संकेतविषयाख्या सा सास्नादेर्गोगतिर्यथा ॥

भावे भाविनि तद्भावः भाव एवच भाविता ।
प्रसिद्धे हेतुफलते प्रत्यक्षानुपलम्भतः ॥

एतावन्मात्रतत्त्वार्थाः कार्यकारणगोचराः ।
विकल्पा दर्शयन्त्यर्थान्मिथ्यार्थाः घटितानिव ॥

भिन्ने का घटनाऽभिन्ने कार्यकारणताऽपि का ।
भावे ह्यन्यस्य विश्लिष्टौ श्लिष्टौ स्यातां कथं च तौ ॥

4 संयोगिसमवाय्यादि सर्वमेतेन चिन्तितम् ।
अन्योन्यानुपकाराच्च न संबन्धी च तादृशः ॥

जनने चापि कार्यस्य केनचित्समवायिना ।
समवायि तदा नासौ न ततोऽतिप्रसङ्गतः ॥

तयोरनुपकारेऽपि समवाये परत्र वा ।
संबन्धो यदि विश्वं स्यात्समवायि परस्परम् ॥

संयोगजननेऽप्येतौ नहि संयोगिनौ मतौ ।
कर्मादेर्योगितापत्तौ स्थितिश्च प्रतिवर्णिता ॥
इत्यादिको विस्तरोऽसौ सर्वशून्यत्ववादिनाम् ।
ग्रन्थेषु तूपलभ्येत प्रायस्ते शिथिला इह ॥
एवमादीन् विवादांश्च समादधति केचन ।
तान् शून्याद्वैतसिद्धान्तशुद्धान्तस्तम्भलक्षणान् ॥
अनवस्था द्विधा त्वाद्या सिद्धा स्यात्कारणाश्रया ।
प्रमाणासिद्धा धारेयं न प्रसङ्गमिहार्हति ॥
कल्प्या द्वितीया सैवात्र संसर्गादौ प्रसञ्जिता ।
तत्र स्वपरनिर्वाहः नैरपेक्ष्यमिति द्वयी ॥
गतिरस्ति प्राथमिकया निर्वाहः प्रकृते भवेत् ।
ज्ञातेन ज्ञानजनने नैरपेक्ष्यात्मिका गतिः ॥
इन्द्रियाण्यथ संस्कारः कारणं हि स्वरूपसत् ।
क्वचित्स्वपरनिर्वाहः स्वस्वभावनिबन्धनः ॥
परश्शतपरिक्षोदात्परस्तादपि वादिभिः ।
उपलम्भबले स्थैर्यं तदादावेव गृह्यताम् ॥
अतः कृत्स्नैकदेशादिविकल्पानुपपत्तितः ।
संबन्धतत्त्वापलापः शून्यवादस्य चाङ्कुरः ॥
निरंशत्वादथैकत्वात् न विकल्पोऽत्र तादृशः ।
स च सावयवानेकपदार्थविषयो मतः ॥

समाप्यवृत्तिः व्यासज्यवृत्तिश्चेति द्विधा स्थितिः ।
केवलैकत्रवृत्तिर्या सा समाप्येति कीर्त्यते ॥
सापेक्षेषु त्वनेकेषु वृत्तिः व्यासज्यपूर्विका ।
प्रथमा जातिरूपादेस्संयोगादेरनन्तरा ॥

(53) संबन्धवादः

1 अप्राप्तिपूर्विका प्राप्तिस्संयोग इति कीर्त्यते ।
समवायस्तु निष्पत्तिप्राप्तयोः स्यादैककालिकः ॥
प्रतीतिभेदाद्भेदोऽस्ति देशभेदस्तु नेष्यते ।
तेनात्र कल्प्यते वृत्तिः समवायस्स उच्यते ॥
ये चेह वृत्ती स्रक्सूत्रभूतकण्ठगुणादिषु ।
जात्यादीनामनंशत्वात् ताभ्यां वृत्तिर्विलक्षणा ॥
नैयायिकास्तं प्रत्यक्षमाहुर्यौगास्त्वतीन्द्रियम् ।
निर्विकल्पैकविषयं तं विदुर्भूषणानुगाः ॥
स निर्विकल्पानपेक्षसविकल्पकगोचरः ।
इति सिद्धान्तयन्त्यत्र त्वाचार्या इति च श्रुतम् ॥
कारणे समवायो हि कार्याणां जन्म कथ्यते ।
सत्तायास्समवायो वाऽथवाऽऽद्यक्षणयोगिता ॥
समवायस्य जन्मत्वे विशेषणविशेष्यताम् ।
जनयन् कारकस्तोमः नित्येऽपि सफलो मतः ॥

स च व्योमवदेवैकः नित्यस्सर्वगतोऽपि च ।
तस्यानेकत्वमिच्छन्ति चापरे नव्यतार्किकाः ॥
इति तार्किकसिद्धान्तः तत्र कौमारिलाशयः ।
समवायो हि संबन्धान्तराभावेऽपि योजयेत् ॥
स्वभावादेव तावेव यथा संबन्धिनौ तथा ।
विशिष्टव्यवहारं तमातन्वाते स्वभावतः ॥
द्रव्याद्रव्ये च तादात्म्यात्, समवायेन किं फलम् ।
त्रैकाल्यं यदि नित्यत्वं कालायोगिनि तत्कथम् ॥
यदि कारणशून्यत्वं यद्वा प्रध्वंसशून्यता ।
नित्यत्वं तत्प्रसज्येत प्रध्वंसप्रागभावयोः ॥
उभयान्तविहीनत्वं नित्यत्वं चेन्निरुच्यते ।
नित्ययोरिव सर्वेषां नित्यताऽत्र प्रसज्यते ॥
विशेषणविशेष्यात्मस्वभावान्नियमो यदि ।
अजागलस्तनसमस्समवायः प्रकल्पितः ॥
प्राभाकराः पुनस्तत्र काश्यपं मतमास्थिताः ।
तयोरेकत्वनित्यत्वाविवादोऽस्ति विशेषतः ॥
समवायाख्यसंबन्धानेकानित्यत्वहेतुतः ।
व्यक्त्यैक्यं सितनीलादेः विभुत्वं चोपपाद्यते ॥
नीलो नष्टस्सितो जातः इत्याद्या अपि बुद्धयः ।
संबन्धमूलास्सिद्ध्यन्ति लाघवं च महत्ततः ॥

इदं सर्वाद्वैतवादप्राग्रूपमिति केचन ।
समवायैक्यपक्षेऽपि तथैवेत्यपरे विदुः ॥

2 अथ संयोगसंबन्धः सौगतैर्नाभ्युपेयते ।
प्रत्यासत्तिः प्रतीघातावसानेति हि तन्मतम् ॥

अर्थान्तरस्य हेतुत्वान्नासौ निह्नवमर्हति ।
शब्दरूपस्पर्शहेतुः कश्चिदागन्तुको ह्यसौ ॥

अमृते गरळे तूले चोपले ब्राह्मणे गवि ।
चण्डाले कपिकच्छ्वादौ स्पर्शभेदोऽनुभूयते ॥

संयोगेनान्यथासिद्धिमातिष्ठन्ते विपश्चितः ।
संयोगापह्नवे सर्वो व्यवहारो विरुध्यते ॥

निरन्तरस्थितिः काचित्संयोग इति केचन ।
स्थितिः तद्देशसंयोग एवेत्यन्यैः प्रतीयते ॥

संयोगदेशकालाद्यैः प्रसिद्धैश्च ह्युपाधिभिः ।
परिषद्राशिविपिनयूथसंघातपङ्क्तयः ॥

मण्डलव्यूहसंकीर्णचतुरश्रादिमूर्तयः ।
आबाधितव्यवहृतिविषया निरुपाधिकाः ॥

महत्त्वैकत्वयुक्तत्वप्रमुखा बहवो गुणाः ।
संयुक्तद्रव्यनिष्ठास्तत्संयोगोऽशक्यनिह्नवः ॥

सादृश्यवच्च संयोगः कैश्चिन्मीमांसकैः पुनः ।
अनुयोगिप्रतीयोगिभेदाद्भिन्न इतीष्यते ॥

विभूनां चेदसंयोगः सान्तरत्वं प्रसज्यते ।
अतएवाजसंयोगः शब्दश्रवणयोर्मतः ॥
सर्वाधारत्वसिद्ध्यर्थमीश्वरेऽपीष्यते बुधैः ।
गुणवादे च संयोगविस्तरश्चावधार्यताम् ॥
3 एकार्थसमवायादिस्समवायनिबन्धनः ।
तादात्म्यनामकः भाट्टैः भिन्नाभिन्नत्वलक्षणः ॥
समवायस्य च स्थाने संबन्धः पर्यभाष्यत ।
तादात्म्यलक्षणो भेदाभेदो ज्ञातश्चतुर्विधः ॥
जातिव्यक्तयोस्तु तादात्म्यं स्यात्सामान्यविशेषयोः ।
क्रियाक्रियावतोस्तावत् अवस्थातद्वतोर्मतम् ॥
अंशांशिभावस्तार्तीयः स मतो गुणतद्वतोः ।
कार्यकारणतादात्म्यं अवयव्यादिसंश्रितम् ॥
गोत्वं समुद्रो वृक्षश्च मृच्चोदाहरणं क्रमात् ।
व्यक्तिस्तरङ्गः शाखादिः कुम्भश्च प्रतियोगिनः ॥
4 अभावस्यापि वैशिष्ट्यं संबन्धान्तरमिष्यते ।
कौमारिलैस्तार्किकैस्तु गौरवात्सोऽपलप्यते ॥
5 कार्यकारणभावाख्यस्संबन्धोऽन्यत्र विस्तृतः ।
अन्यथा स्वप्रवृत्त्यादेश्शास्त्रादेरप्यनुत्थितिः ॥
6 वाच्यवाचकसंबन्धनिषेधे लोकबाधनम् ।
विरोधश्च स्ववाक्येषु किं कथं प्रतिपाद्यते ॥

औत्पत्तिकस्सामयिक इति वादोऽत्र भिद्यते ।
प्रथमो वैदिकः पक्षः द्वितीयो यौक्तिको मतः ॥

7 विषयत्वाख्यसंबन्धे बह्वयो विप्रतिपत्तयः ।
संक्षेपतो निदर्श्यन्ते बुधास्संग्रहबुद्धयः ॥

8 स्वच्छा स्वतो धीस्समनन्तरप्रत्ययलक्षणात् ।
साकारा वासनाभेदात् नियतैवोपजायते ॥
वासना साऽनादिभूता वैचित्र्यं तन्निबन्धनम् ।
ज्ञानार्थयोस्तत्तादात्म्यं संसर्गो ग्राह्यलक्षणः ॥
न संभव्यपरः, नोचेत्सर्वसर्वज्ञता भवेत् ।
इति शून्यख्यातिवादियोगाचारव्यवस्थितिः ॥

9 अत्र सौत्रान्तिकाः प्राहुः ज्ञानाकारार्पणक्षमम् ।
हेतुत्वं, केवलं हेतुः चक्षुराद्यपि विद्यते ॥

10 केचित् ज्ञानार्थयोस्तुल्यावाकारावनुजानते ।
समानाकारता तेषां संसर्गस्स्याद्यथोच्यते ॥
अर्थेन घटयत्येनां न हि मुक्त्वाऽर्थरूपताम् ।
तस्मात्प्रमेयाधिगतेः प्रमाणं मेयरूपता ॥
तत्र दोषं विदुश्चेत्थं योगाचारमतानुगाः ।
एकदेशेन सारूप्ये सर्वस्स्यात्सर्ववेदकः ॥
सर्वात्मना तु सारूप्ये ज्ञानमज्ञानतां व्रजेत् ।
नान्योऽनुभाव्यो बुद्ध्याऽस्ति स्वयं सैव प्रकाशते ॥

11 केचित्त्वादर्शसंकाशे ज्ञाने नीलादिवस्तुनः ।
प्रतिबिम्बं तु संबन्धं विदुस्तद्ग्राह्यलक्षणम् ॥
12 ये त्वर्थमपि विज्ञानं निराकारं विदुस्तयोः ।
योगादाकारनिष्पत्तिं चूर्णहारिद्रयोगवत् ॥
एते हि संसर्गधर्माकारवादिन ईरिताः ।
संसृष्टयोश्चोभयोरप्याकारं तं प्रचक्षते ॥
13 केचिदर्थो निराकारस्सदा तद्योगभेदतः ।
ज्ञानं साकारमिति च प्राहुस्संसर्गवादिनः ॥
14 साधारणोऽसावाकारः स्यादर्थज्ञानयोर्यथा ।
लाक्षा स्फटिकमणिमध्यस्था तथेत्येके विदुर्बुधाः ॥
15 पृथगेवाकारवन्तौ ज्ञानार्थावपरैर्बुधैः ।
सादृश्यादविवेकेन त्वाभासेते इतीष्यते ॥
16 व्यवहारानुगुण्यं तद्विषयत्वं विदुः परे ।
कर्तृकर्मक्रियादीनां साधारणमिदं हि तत् ॥
17 ज्ञानात्मकक्रियाजन्यफलभागित्वलक्षणम् ।
कर्मत्वं विषयत्वं तत् प्राकट्यं भाट्टसम्मतम् ॥
आत्मार्थयोः कर्तृकर्मज्ञातृज्ञेयस्वभावयोः ।
मानसप्रत्यक्षवेद्यः व्याप्यव्याप्तृत्वलक्षणः ॥
संबन्धः स्वस्य करणं कल्पयेत् ज्ञानलक्षणम् ।
ज्ञाततैवाथवाऽध्यक्षा कल्पयत्येव कारणम् ॥

अनागतमतीतं च विप्रकृष्टं तथेतरम् ।
विषयीकुरुते बुद्धिः प्राकट्येऽपि समो विधिः ॥
अतीतानागतत्वाभ्यां अद्यापि स्तो हि वस्तुनी ।
अतो ज्ञानस्य संम्बन्धानुपपत्तिर्न विद्यते ॥
असतोरपि सामान्याद्यात्मना वृत्तिसंभवात् ।
प्राकट्याश्रयता भाट्टैरगत्यैवोपपादिता ॥
स्वयंप्रकाशवादेऽपि संबन्धो बोध्यबोधयोः ।
मानसाध्यक्षवेद्यस्स्यात् अन्यथा स न सिद्धयति ॥
तत्र त्रितयभावेन सर्वसाधारणोऽपरः ।
विषयत्वात्मकः कश्चित्पदार्थस्सेद्धुमर्हति ॥
विषयत्वं व्यवहृतिभाक्त्वं त्विति गुरोर्मतम् ।
अतीतादौ दशत्वादिसंख्यावदुपपद्यते ॥
स्वरूपलक्षणः कश्चिदन्यैः विषयतात्मकः ।
नैयायिकैरुपगतः ह्युपलम्भानुरोधतः ॥
पदार्थान्तरमित्याहुः विषयत्वं तु केचन ।
नव्यनैयायिकाः तत्तु सर्वदोषप्रशान्तये ॥
18 ज्ञानार्थयोस्तु संयोगमाहुर्धीद्रव्यवादिनः ।
पर्यायवादिनो ये च ये वा विकृतिवादिनः ॥
एवं निरूपिताः प्रायः विषयत्वाभिधेऽधुना ।
संबन्धे ये विकल्पास्स्युः सर्वदर्शनभूमयः ॥

19 प्रकाश्यता विषयता ग्राह्यतेत्येवमादयः ।
सर्वैर्दार्शनिकैः प्रायः समानार्था इतीष्यते ॥
कौमारिलैः पुनस्तत्र विशेषः कल्प्यते यथा ।
अग्न्यादयो घटादीनां प्रसिद्धा ये प्रकाशकाः ॥
न ते प्रकाश्यरूपा हि प्रकाशस्यानपेक्षणात् ।
ग्राह्यत्वं तु यदा तेषां तदाऽक्षं ग्राहकं मतम् ॥
अक्षग्रहणकाले तु ग्राहिका धीर्भविष्यति ।
इत्युक्तेर्ग्राह्यता भिन्ना प्रकाश्यत्वादिति स्थितम् ॥
ब्रह्माद्वैतविदस्तत्र विपरीतं विदुर्यथा ।
संविदः स्वप्रकाशत्वाद्यद्यपि स्यात्प्रकाश्यता ॥
विषयत्वात्मिका तत्र नेष्यते त्वनुभाव्यता ।
नोचेदननुभूतित्वमनुभूतेः प्रसज्यते ॥
इति प्राहुस्ततो ग्राह्यताया भिन्ना प्रकाश्यता ।
एवं स्वयंप्रकाशत्वं त्रातुं वेद्यत्वनिह्नवः ॥
प्रकाशनिह्नवो भाट्टैः जाड्यं तस्यैव रक्षितुम् ।
स्वप्रकाशास्वप्रकाशधीविवादफलं त्विदम् ॥
20 एवं कर्तृत्वकर्मत्वविरोधस्तन्निबन्धनः ।
कारकज्ञापकानैक्याविवेकात्सकलं त्विदम् ॥
कर्तृकर्मविरोधस्य रहस्यमिदमीरितम् ।
कर्ता स्वतन्त्रः कर्मादिरुपसर्जनमिष्यते ॥

स्वातन्त्र्यं पारतन्त्र्यं च युगपन्न च युज्यते ।
इत्येकमपरं चापि विद्वद्वर्यैर्निरूपितम् ॥
कर्ता सिद्धः कर्म साध्यं कालभेदस्तयोर्मतः ।
एककालत्वमुभयोः विरुद्धमिति निर्णयः ॥
एष कालविरोधः स्यात् पूर्वो भवति दैशिकः ।
क्रियैव कारकं येषां सौगतानामभीप्सितम् ॥
तेषां कालोऽथवा देशः नास्त्येवहि विरोधकृत् ।
तस्माद्विरोधाविरोधविवादो वासनानुगः ॥

21 समवायस्थले कश्चिदपृथक्सिद्धिलक्षणः ।
संबन्धः स्वीकृतः प्राज्ञैः तत्स्वरूपं निशाम्यताम् ॥
सिद्धिर्नाम स्थितिः ज्ञप्तिः उत्पत्तिश्चापि कथ्यते ।
पृथक्स्थित्यादयो यस्य न सन्ति यदपेक्षया ॥
तयोरस्यादपृथक्सिद्धिः संबन्ध इति गम्यते ।
कार्यादिकारणादीनां सा स्यादयुतसिद्धयोः ॥
अविष्वग्भावनाम्नाऽयं संबन्धः पुनरार्हतैः ।
स्वीकृतः सोऽपि देशानां भेदस्यैव निषेधकृत् ॥
कथंचित्तादात्म्यरूपमिति पातञ्जलादिभिः ।
स्वीकृतं वस्तुतस्तत्र फलभेदो न विद्यते ॥

22 अथापृथक्सिद्धिवादतात्पर्यस्येह संग्रहः ।
क्रियते बुद्धिशुद्ध्यर्थं यन्मूलं सर्वदर्शनम् ॥

यच्च वस्तुपरिच्छेदशून्यं ब्रह्माभिधीयते ।
तत्स्यादिदमिदं नेति निर्देशानर्हतात्मकम् ॥
तच्च स्वरूपाभेदात्स्यादपृथक्सिद्धितोऽपिवा ।
जडाजडविभागश्च प्रमाणपरिनिष्ठितः ॥
ततोऽपृथक्सिद्धसत्ताकत्वात्तत्स्यादिति स्थितम् ।
तच्च द्वेधैव घटते न प्रकारान्तरस्थितिः ॥
तत्र चैतत्सत्त्वभिन्नसत्त्वशून्यत्वतोऽथवा ।
यदधीना यस्य सत्ता तत्तदित्येव भण्यते ॥
इति स्मृत्यैतदायत्तसत्ताकत्वाद्भवेदपि ।
तत्राद्यं तु विशेष्याख्यसत्ताशून्यत्वतोऽथच ॥
व्यतिरिक्तत्वरूपस्य विशेषणदळस्य वा ।
अभावात्तत्राद्यपक्षः बाह्याद्वैताभ्युपागतः ॥
अनन्तरस्तु वेदान्ताद्वैताभ्युपगतो मतः ।
विशिष्टाद्वैतसिद्धान्ते तत्सत्तायत्तसत्तया ॥
अपृथक्सिद्धिरुररीकृता तत्र द्वयी गतिः ।
ब्रह्मसत्त्वेनैव सत्त्वं प्रपञ्चस्योपपद्यते ॥
अतिरिक्ता नास्ति सत्ता गुणजातिनयादिति ।
इयमेका रीतिरन्या त्ववधानेन बुद्ध्यताम् ॥
प्रपञ्चे चापि सत्ताऽस्ति प्रमाणपरिनिष्ठिता ।
सा ब्रह्मसत्तायत्ता स्यादित्येकेषां विनिर्णयः ॥

द्विधाऽपि जगतो नास्ति मिथ्यात्वं तुच्छताऽपिवा।
एवं द्वैतादिसिद्धान्ते निर्णीता प्रायशो गतिः ॥

(54) अभाववादः.

1 अथचाभावतत्त्वस्य जिज्ञासाऽत्र प्रवर्तते ।
अभावतत्त्वव्यत्यासाद्विवादाना समुद्भवः ॥
अभावो निस्स्वभावस्स्यान्न कार्यं नापि कारणम्।
तस्मान्नोत्पद्यते नैवोच्छिद्यते नित्य एव सः ॥
नित्येन प्रागभावेन ध्वंसेनापिच तादृशा ।
ग्रस्तं विश्वं निस्स्वभावं तच्छून्यमिति सौगताः ॥
तत्रातिरिक्तमपरे त्वभावं नानुजानते ।
अनुजानन्तोऽपि परे तत्त्वं त्वित्थमूचिरे ॥
2 नास्तीत्याद्यध्यक्षसिद्धो ह्यभावो भूतलादिषु ।
घटादेः, वस्तुभूतोऽसौ नहि निह्नवमर्हति ॥
अभावव्यवहारोऽपि निश्शङ्कगमनादिकः ।
तन्मात्रानुभवेनैव ख्यातो निष्कण्टकाध्वसु ॥
यदा यत्र च दृश्यत्वे सत्यप्यनुपलम्भनम् ।
तदभावव्यवहृतिस्तदानीं संप्रवर्तते ॥
ज्ञेयाभावस्य तु ज्ञानाभावरूपत्वकल्पने ।
अभावाख्यपदार्थोऽङ्गीकृत एव भवेन्ननु ॥

दर्शनादर्शनाभ्यां हि सदसत्त्वविनिर्णयः ।
दर्शनादर्शने एव सदसत्त्वे कथं पुनः ॥
अभावो बुद्ध्यभावश्चेत् बुद्धिस्स्यात्प्रतियोगिनी ।
व्यर्थस्त्वियान् प्रयासस्स्यात् जिता विज्ञानवादिनः
अभाववादिनो यत्स्यादभावज्ञानकारणम् ।
तदेव व्यवहारस्य हेतुस्स्यादिति यो वदेत् ॥
घटादिव्यवहाराणामपि तज्ज्ञानकारणात् ।
संसिद्धेस्सोऽपह्नुवीत ज्ञानमात्रं च चारुवाक् ॥
जगतो मिश्ररूपत्वं स्यादभावो नचेदिह ।
क्षीरे दधि भवेदेवं दध्नि क्षीरं घटे पटः ॥
शशे शृङ्गं पृथिव्यादौ चैतन्यं मूर्तिरात्मनि ।
अप्सु गन्धो रसश्चाग्नौ वाय्वादावपि ते गुणाः ॥
प्रागभावादिभेदेन नाभावो भिद्यते यदि ।
नच स्याद्व्यवहारोऽयं कारणादिविभागतः ॥
नचावस्तुन एवैते भेदाः, तेनास्य वस्तुता ।
मेयो यद्वदभावो हि मानमप्येवमिष्यताम् ॥
स चतुर्विध इत्युक्तः प्रागभावादिभेदतः ।
अपेक्षाभावसामर्थ्याभावाभ्यां षड्विदुः परे ॥
क्षीरे दध्यादि यन्नास्ति प्रागभावस्स उच्यते ।
गवि योऽश्वाद्यभावस्स्यात्सोऽन्योन्याभाव ईर्यते ॥

शिरसोऽवयवा निम्नाः वृद्धिकाठिन्यवर्जिताः ।
शशशृङ्गादिरूपेण सोऽत्यन्ताभाव उच्यते ॥
3 अपेक्षाऽभाव एवासौ यस्स्यात्सामयिको मतः ।
उत्पन्नस्य विनाशो वा तदनुत्पाद एव वा ॥
अभावस्तत्त्वतो,ऽन्ये तु भेदास्त्वौपाधिका इति ।
प्राहुर्जयन्तभट्टाद्याः, नव्यनैयायिकाः पुनः ॥
संसर्गाभावतादात्म्याभावभेदाद्विधा विदुः ।
प्रागभावादिभेदेन प्रथमस्त्रिविधो मतः ॥
अजातो घटसंबन्धः प्रागभावस्सदोच्यते ।
उत्पद्य स विनष्टश्चेत्प्रध्वंसाभावशब्दितः ॥
शशस्य त्वविषाणित्वं विद्यते सार्वकालिकम् ।
सोऽत्यन्ताभाव इत्येवं आद्यस्यैव विधा त्रिधा ॥
अन्यसंबन्धिताऽन्यत्र त्रिष्वप्येषु निषिध्यते ।
संसर्गाभावशब्देन त्रितयं व्यपदिश्यते ॥
अन्यस्मिन्नन्यतादात्म्यनिषेधस्स्यादनन्तरः ।
स चेतरेतराभावस्तादात्म्याभावशब्दितः ॥
यद्यभावोऽधिकरणं धीर्वा कालोऽथवा भवेत् ।
एकस्यानन्तता रूपाद्यभावाग्रहणं तु वा ॥
4 स्थितो नव्यपरिष्कारः, कापिलानां मते पुनः ।
परिणामविशेषाख्यादन्यः कैवल्यलक्षणात् ॥

भूतलादेर्घटाभावो नाम कश्चन नेष्यते ।
परिणामस्वभावा हि भावास्सर्वे प्रतिक्षणम् ॥
द्रव्यात्मना तु सर्वस्य नित्यता बहुसम्मता ।
अतो विरोधप्रवादो ह्यत्यन्तप्रागभावयोः ॥
प्राक्प्रध्वंसाभिधाभावौ नात्यन्ताभावतः परौ ।
आधारेऽपि तयोस्सोऽपि वर्तते न विरुध्यते ॥
यद्वा निराश्रयौ स्यातां यदि भिन्नौ ततो मतौ ।
इति वादीन्द्रसिद्धान्तं तार्किका नानुमन्वते ॥
5 व्यतिरेकोऽतिरेकश्च कैश्चिद्भेदो द्विधेष्यते ।
अन्त्योऽसाधारणो धर्मः धर्मो धर्म्यपि वा परः ॥
जीवो न व्यतिरिक्तोऽपित्वतिरिक्तो महेशितुः ।
इति सिद्धान्तभेदोऽसौ तत्रोदाहरणं मतम् ॥
भेदेतरेतराभावप्रभेदं केचिदास्थिताः ।
भेदो विशेषः व्यक्तिस्स्यात् अन्त्यः सामान्यमुच्यते॥
अपोह एव सामान्यं सौत्रान्तिकविनिश्चितम् ।
स्वलक्षणा विशेषास्स्युः जातिव्यक्ती इमे मते ॥
स्वरूपमेव वस्तूनां परस्परविलक्षणम् ।
नानात्वं तत्सुसंवेद्यं भेद इत्यभिधीयते ॥
पटरूपं घटे नास्ति घटरूपं पटे नहि ।
इति देशान्तराभावः अन्योन्याभाव उच्यते ॥

इति भास्करसिद्धान्तः प्रायस्सौत्रान्तिकानुगः ।
जातिर्भेदश्च संस्थानं त्रयमेतद्विलक्षणम् ॥
इति तार्किकनिष्कर्षोऽनर्थान्तरमिदं त्रयम् ।
इति रामानुजीयानां सिद्धान्तः प्रविविच्यते ॥
केचिद्विकुर्वते भेदं मानमेयाद्यसंभवात् ।
भेदो द्विधा स्यात् सादिश्चानादिश्चेत्यपि तन्मतः ॥
अनित्यमुभयं ध्वंसप्रतियोगीति कीर्त्यते ।
परे प्रतिब्रुवन्त्येतान् स्वप्रवृत्तिविरोधतः ॥
अपोहवादिनस्सर्वोऽप्यभावे पर्यवस्यति ।
भावान्तराभाववादे विपरीता ततो गतिः ॥
कैवल्याभाववादे तु पर्यायेण हि तुच्छता ।
अतिरिक्ताभाववादः कैश्चित्तस्मात्समाश्रितः ॥
कारणत्वमभावस्य भाट्टैः नाभ्युपगम्यते ।
भावो यथा तथाऽभावः कारणं कार्यवन्मतः ॥
प्रतिबन्धो विसामग्री तद्धेतुः प्रतिबन्धकः ।
इत्यभ्युपगमान्नयायविद्भिश्शक्तिर्निरस्यते ॥
प्रभाकरगुरुः प्रायः न्यायसिद्धान्तवर्त्मगः ।
अभावतत्त्वमीमांसा विदुषामपि दुर्गमा ॥
6 अत्र रक्तपटाः प्राहुः प्रमेये सति चिन्तनम् ।
युक्तं नाम प्रमाणस्य तदेवत्वातिदुर्लभम् ॥

अभावो निस्स्वभावस्स्यात् तुच्छं चालीकमुच्यते।
न कार्यं कारणं मेयः मानं वाच्यश्च नेष्यते ॥
जगतो मिश्ररूपत्वं स्यादभावो न चेदिह।
इत्यादि यद्वार्तिकोक्तं तत्राहुरिदमुत्तरम् ॥
भावो भावादिवान्यस्मादभावाशोऽप्यसौ मिथः।
असंकीर्णोऽभ्युपेतव्यः स कथं वा भविष्यति ॥
अन्योन्यमप्यभावानां यद्यसंकीर्णता स्वतः।
भावैः किमपराद्धं वा परतश्चेत्कुतो नु सा ॥
भावेभ्यो यद्युपेयेत भवेदन्योन्यसंश्रयम्।
अभावान्तरजन्या चेत् अनवस्था दुरुत्तरा ॥
नन्वभावप्रतिक्षेपे नञः किं वाच्यमुच्यते।
नैव शब्दानुसारेण वाच्यस्थितिरुपेयते ॥
बौद्धाः खलु वयं लोके सर्वत्र ख्यातकीर्तयः।
विकल्पमात्रशब्दार्थपरिकल्पनपण्डिताः ॥
ननुचानेन मार्गेण यद्यभावो निरस्यते।
एकादशप्रकारैषाऽनुपलब्धिः क्व गच्छतु ॥
सत्यमेकादशविधाऽनुपलब्धिरिहेष्यते।
सा त्वसद्व्यवहारस्य हेतुः नाभावसंविदः ॥
स्वभावहेतावन्तस्स्था एता अनुपलब्धयः।
स चासद्व्यवहारः तद्योग्यताऽत्र विवक्षिता ॥

सैव ह्यनुपलब्धिस्स्यात् एकता हेतुसाध्ययोः ।
नन्वभावानभ्युपगमेऽनुपलब्धिश्च कीदृशी ॥
इयमेषा प्रतीषेधपर्युदस्तान्यशेमुषी ।
वस्त्वन्तरोपलब्धिश्च स्वसंवेद्येति वर्ण्यते ॥
नातोऽन्यानुपलब्धेश्चापेक्षयाऽप्यनवस्थितिः ।
विशेषणीया दृश्यत्वेनैषेत्यपि च कथ्यते ॥
नातोऽसद्व्यवहारस्स्यात् अदृष्टादाविति स्थितम् ।
घटादेः पूर्वदृष्टस्य दृश्यत्वपरिनिश्चयात् ॥
असत्त्वव्यवहारो हि सिद्ध्यत्यनुपलब्धितः ।
एकान्तानुपलब्धेषु विहायःकुसुमादिषु ॥
असत्त्वधीर्न दृश्यत्वयोग्यताऽनवधारणात् ।
न शक्योऽनुपलम्भेन कर्तुं नास्तित्वनिश्चयः ॥
तत्रापित्वपिशाचोऽयं चैत्र इत्येवमादिषु ।
तादात्म्यप्रतिषेधे च दृश्यत्वं नोपयुज्यते ॥
पिशाचेतररूपो हि चैत्रः प्रत्यक्षगोचरः ।
ताद्रूप्यनिश्चये तस्य किंफलं तद्विशेषणम् ॥
इत्यसद्व्यवहारस्य सिद्धेरनुपलब्धितः ।
न भाववदभावाख्यं प्रमेयमवकल्पते ॥
इति सौगतसिद्धान्तं प्रत्यवस्थातुमब्रुवन् ।
विलक्षणं प्रमाणं च प्रमेयं च कुमारिलाः ॥

7 अत्र नैयायिकाः प्राहुर्घटोऽस्तीहेतिबुद्धिवत् ।
इह नास्तीतिबुद्धेरप्यास्ति बोध्यं न वोभयम् ॥
सुखदुःखसमुत्पत्तिरभावे शत्रुमित्रयोः ।
कण्टकाभावमालम्ब्य पदं पथि निधीयते ॥
प्रागुत्पत्तेर्घटाभावं बुद्ध्वा तत्कारणादरः ।
व्याध्यभावपरिच्छेदाद्भैषज्यविनिवर्तनम् ॥
इहाभावप्रतिष्ठानव्यवहारपरंपराम् ।
पश्यन्नभावं को नाम निह्नुवीत सचेतनः ॥
तदुत्पादस्वभावे हि न किंचिन्मुद्गरादिना ।
अतदुत्पादकत्वेऽपि न किंचिन्मुद्गरादिना ॥
मुद्गरोपनिपाताच्च यदुत्पन्नं क्षणान्तरम् ।
घटक्षणस्य किं वृत्तं येन नाभाति पूर्ववत् ॥
नन्वस्याभवनं वृत्तं, स एवार्थोऽयमुच्यते ।
घञा किमपराद्धं वा किं वाऽप्युपकृतं ल्युटा ॥
तस्मादित्थमभावस्य प्रमेयत्वोपपादनात् ।
न ह्यसद्व्यवहाराय कल्पन्तेऽनुपलब्धयः ॥
न स्वभावानुमाने च तदन्तर्भावसम्भवः ।
मेयं पृथगभावाख्यममूषामुपपादितम् ॥
कारणानुपलब्ध्यादेर्बाढमस्त्वनुमानता ।
स्वभावानुपलब्धिस्तु प्रत्यक्षमिति साधितम् ॥

जरत्तार्किकसिद्धान्ते न पदार्थान्तरं त्वसौ ।
अभाव इति विद्वांसः केचिदत्रोल्लिखन्त्यपि ॥
मानं तु तत्र काणादसूत्रे नोददिशच्च तम् ।
द्रव्यादिसमवायान्ताः पदार्था एव कीर्तिताः ॥
8 यैस्तु मीमांसकैस्सद्भिरभावो नाभ्युपेयते ।
प्रमादेनामुना तेषां अनिष्टमिदमुद्भवेत् ॥
नचाप्रतीतिमात्रेण तदभावनिबन्धनाः ।
व्यवहाराः प्रकल्पन्ते मृदन्तरिततोयवत् ॥
खपुष्पस्य पिशाचस्य मृदन्तरितवारिणः ।
नखल्वनुपलभ्यत्वे विशेषः प्रतिभाति नः ॥
सर्वदाऽनुपलम्भो हि कुर्वन्नास्तित्वनिश्चयम् ।
विशेष्यते मृदन्तस्स्थसलिलानुपलब्धितः ॥
आगमाद्युक्तितश्चापि सत्त्वसंभावनां गतः ।
सर्वदाऽनुपलब्धोऽपि न पिशाचः खपुष्पवत् ॥
अनिष्यमाणे चाभावे भावानां प्रतियोगिनि ।
नित्यतैषां प्रसज्येत न ह्येते क्षणिकास्तव ॥
मुद्गरादेश्च किंकार्यं, कपालपटलीति चेत् ।
घटस्तर्ह्यविनष्टत्वात् स्वकार्यं न करोति किम् ॥
तदानीमेव दृष्टस्य स्थिरस्यामुष्य किंकृतम् ।
सर्वेन्द्रियादिसामग्रीसन्निधानेऽप्यदर्शनम् ॥

स्वप्रकाशा च नास्तीतिसंवित्तिर्भवतां मते ।
न निरालम्बना चेयमस्तीति प्रतिपत्तिवत् ॥
विकल्पविषयाश्शब्दा यथा शौद्धोदनेर्गृहे ।
गीयन्ते भवता नैवमिति नञ्वाच्यमुख्यताम् ॥
प्रसिद्धिश्च परित्यक्ता नचाभावः पराकृतः ।
उपेक्षितश्च भाष्यार्थः इत्यहो नयनैपुणम् ॥
अलंच बहुनोक्तेन विमर्दोऽत्र न शोभते ।
महात्मनां प्रमादोऽपि मर्षणीयो हि मादृशैः ॥
इति वार्तिककारीययुक्तिभिः न्यायमञ्जरी ।
तत्प्राभाकरसिद्धान्तपरिहासेन शोभते ॥
9 भावान्तराभाववादः कुमारिलपरिष्कृतः ।
इति प्रत्यक्षमेवैतत् श्रूयतां श्लोकवार्तिकम् ॥
प्रत्यक्षादेरनुत्पत्तिः प्रमाणाभाव उच्यते ।
साऽऽत्मनोऽपरिणामो वा विज्ञानं वाऽन्यवस्तुनि॥
स्वरूपपररूपाभ्यां नित्यं सदसदात्मके ।
वस्तुनि ज्ञायते कैश्चिद्रूपं किंचित्कदाचन ॥
भावाभावात्मकं वस्तु तदेकमिति यद्यपि ।
रूपादिवत्स्वतोऽस्त्येव भेदः नात्यन्तमेकता ॥
तस्माद्यदन्यथा सन्तमन्यथा प्रतिपद्यते ।
तन्निरालम्बनं ज्ञानं अभावालम्बनं च तत् ॥

भावान्तरमभावोऽन्यो न कश्चिदनिरूपणात् ।
भ्रान्तिश्चाभावधीश्चापिचेत्थं सालम्बना मता ॥
इत्यभावपरिच्छेदे निरालम्बननिह्नवे ।
भावान्तराभाववादः कुमारिलमुखोद्गतः ॥
इत्थं प्रमेयभागोऽयं प्रथमस्समगृह्यत ।
लक्ष्मीपुरंश्रीनिवासविपश्चिच्चक्रवर्तिना ॥

श्रीः.

प्रीयतां भगवान् वासुदेवः.

इति श्रीवत्सकुलकलशजलनिधिकौस्तुभायमानश्रीवेङ्कटार्यतनूभवस्य ताताम्बागर्भशुक्तिमुक्ताफलायमानस्य श्रीमत्कस्तूरीरङ्गनाथविद्वन्माणिकरुणाकटाक्षसमासादितसारस्वतसर्वस्वस्य श्रीमद्विरक्तराघवार्यचरणानुगृहीतसकलसम्प्रदायरहस्यस्य श्रीमद्राजाधिराजमहीशूरमहीधुर्यतुर्यश्रीकृष्णराजसार्वभौमपरिपोषितस्य महाविद्वत्पण्डितरत्नाद्यनेकबिरुदालङ्कृतस्य संस्कृतमहापाठशालानिगमान्तप्रधानोपाध्यायस्य श्रीमतो लक्ष्मीपुराभिजनस्य श्रीनिवासाचार्यस्य कृतिषु मानमेयरहस्यश्लोकवार्तिके प्रमेयकाण्डः प्रथमः समाप्तः.

अथ द्वितीयः प्रमाणकाण्डः.

(55) प्रमाणपरीक्षा.

1 अथ प्रमाणवादोऽयं संक्षेपेण निरूप्यते ।
तदधीनास्सर्वसिद्धीराहुस्सर्वेऽपि वादिनः ॥
मानं मेयं मितिर्मातेत्येतदर्थचतुष्टयम् ।
दुर्निरूपं ततश्शून्यमित्याहुर्मध्यमागमाः ॥
बुद्ध्या विविच्यमानायां स्वभावो नावधार्यते ।
अतो निरभिलप्यास्ते निस्स्वभावाश्च दर्शिताः ॥
पदार्थानां स्वतो रूपं न किंचिद्व्यवतिष्ठते ।
यथायथाऽर्थाश्चिन्त्यन्ते विशीर्यन्ते तथातथा ॥
इदं वस्तुबलायातं यद्वदन्ति विपश्चितः ।
यथायथाऽर्थाश्चिन्त्यन्ते भविष्यन्ति तथातथा ॥
कल्पनापोढमभ्रान्तं प्रमाणं निर्विकल्पकम् ।
विकल्पोऽवस्तुनिर्भासादसंवादादुपप्लवः ॥
नान्योऽनुभाव्यो बुद्ध्याऽस्ति तस्या नानुभवोऽपरः ।
ग्राह्यग्राहकवैधुर्यात्स्वयं सैव प्रकाशते ॥
अविभागोऽपि बुद्ध्यात्मा विपर्यासितदर्शनैः ।
ग्राह्यग्राहकसंवित्तिभेदवानिव लक्ष्यते ॥

2 इत्येवमादीन् सिद्धान्तान् वदन्तीति पुरोदितम् ।
तत्र विप्रतिपन्नानां युक्तिर्नयविदामियम् ॥
सर्वथा सदुपायानां वादमार्गः प्रवर्तते ।
माने विप्रतिपन्नानां वादमार्गो निरुध्यते ॥
न सर्वस्याप्रमाणत्वं स्वपक्षस्य स्वतः क्षतेः ।
न सर्वस्य प्रमाणत्वं स्वपक्षस्यान्यतः क्षतेः ॥
प्रमाणस्य प्रमाणेन बाधः स्वव्याहतेर्हतः ।
अप्रमाणेन तद्बाधे साधनं च ततो न किम् ॥
अहं सत्यं वदामीति स्वोक्तिः स्वपररक्षिणी ।
न कदाचिद्वदामीति वादस्तु स्वोक्तिबाधितः ॥
मानस्थापकमानस्य मानसंक्षोभकस्य च ।
गतिरेवमिति प्रेक्ष्य गहनां कुहनां त्यजेत् ॥
अथ वैतण्डिकस्यैषा सर्वसंक्षोभकस्य च ।
इष्टप्रसक्तिरितिचेदनिष्टं तेऽस्ति वा न वा ॥
नास्तिचेन्नैव दूष्योऽन्योऽप्यस्तिचेत्तत्प्रसज्यते ।
इष्टानिष्टाविवेकस्तु तिरश्चामपि दुर्वचः ॥
3 लोके प्रमेयव्यत्यासः प्रमाणव्यत्ययागतः ।
अतः तत्त्वप्रबोधाय प्रवृत्ता मानचिन्तना ॥
प्रत्यक्षितसमस्तार्थैर्योगीन्द्रैरपि लङ्घ्यते ।
प्रमाणप्लवमालम्ब्य तत्त्वविप्लवसागरः ॥

अवकाशोपरोधाय तत्त्वोपप्लवमिच्छताम् ।
अविपर्याससंसिद्ध्यै शोध्यते मानपद्धतिः ॥
सर्वोपजीव्यमध्यक्षं मानं प्रथममिष्यते ।
तन्मूलमनुमानं स्यात् आगमस्तूभयाश्रितः ॥
उपमानादिकं मानं ततस्त्रितयमूलकम् ।
सर्वं त्वनन्यथासिद्धमूलमाश्रित्य वर्तते ॥
मानाधीना मेयसिद्धिः मानं मेयमपीष्यते ।
उपधेयस्य सांकर्येऽप्युपाधेर्न हि संकरः ॥
आत्माश्रयादिदोषस्तु व्यक्तिभेदादपोह्यते ।
इन्द्रियाणां च लिङ्गानां प्रभेदस्सर्वसम्मतः ॥
स्वत एवहि मानानां सिद्धिर्वेष्टा मनीषिभिः ।
धीरस्तीति मतौ शब्दशब्दे लक्षणलक्षणे ॥
इष्टः स्वपरनिर्वाहस्सर्वमित्यादिधीष्वपि ।
पूर्वपूर्वोपदिष्टाद्वा मानसिद्धिर्हि लक्षणात् ॥
ऋषयोऽपि पदार्थानां नान्तं यान्ति पृथक्त्वशः ।
लक्षणेन तु सिद्धानामन्तं यान्ति विपश्चितः ॥
4 व्यापकोऽसाधारणो वा धर्मो लक्षणमुच्यते ।
तदुपस्थापनेनाप्तवाक्यं ह्यपिच लक्षणम् ॥
व्यवहारव्यवस्थैव लक्षणस्य प्रयोजनम् ।
असाधारणधर्मो हि भवेद्व्यावृत्तिलक्षणः ॥

लक्षणादधिके भेदे क्ववाऽतीतत्वसंभवः ।
तस्यैव तत्त्वे किं केन किमर्थं साधनं भवेत् ॥
व्यावृत्तेश्च फलत्वे तु तदेवमवगम्यताम् ।
शरीरं पार्थिवं गन्धवत्त्वात् घटपटादिवत् ॥
शरीरमाप्यं न भवेत् गन्धादित्येवमादिषु ।
शरीरादेः पार्थिवत्वसंशयादेर्विशोधनम् ॥
एवं तदात्मना शङ्काविषयेष्वपि वस्तुषु ।
तल्लक्षणस्य राहित्यात्तदन्यत्वं हि सिद्ध्यति ॥
तस्यापि तेभ्यो वस्तुभ्यो व्यतिरेकः प्रसिद्ध्यति ।
लक्षणादेव तत्सिद्धेः व्यावृत्तिः फलमुच्यते ॥
तस्माद्धर्मः प्रमेयात्मा धर्मिनिष्कर्षमाचरन् ।
लक्षणं, न प्रमाणात्मेत्येष लक्षणनिर्णयः ॥
अतो न मानताऽन्येषां केवलव्यतिरेकिणः ।
ऽयंशोऽवरोपितो भारः तेषां हेतुकभञ्जने ॥
इति न्यायपरीशुद्धिकृतां लक्षणनिर्णयः ।
भावान्तराभाववादां सर्वेषामेष सम्मतः ॥

(56) प्रमाणस्वरूपम्.

1 प्रमाणशब्दव्युत्पत्तिः स्याद्भावे करणेऽपि च ।
प्रमा प्रमाणमित्येके विदुस्तत्करणं परे ॥

तदन्यतरदित्यन्ये यथासंभवमिष्यते ।
करणस्य प्रमाणत्वे प्रमायाः फलता मता ॥
प्रमायास्तु प्रमाणत्वे व्यवहारस्य सेष्यते ।
व्यवहारो ह्युपादानोपेक्षाहानधियो मताः ॥
प्रमाकरणमेवात्र प्रमाणं बहवो विदुः ।
प्रमाविकल्पतश्चैतत्करणं च विकल्प्यते ॥
2 वैभाषिकैः पुनस्त्वर्थाधिगतिः फलमिष्यते ।
प्रमाणमर्थसारूप्यं प्रमागतमिदं यथा ॥
अर्थेन घटयत्येनां नहि मुक्त्वाऽर्थरूपताम् ।
तस्मात्प्रमेयाधिगतेः प्रमाणं मेयरूपता ॥
यथोत्पत्तावपि ज्ञानस्यास्ति प्रापकलक्षणः ।
व्यापारोऽवश्यवक्तव्यः पुमान्येन प्रवर्तितः ॥
अर्थोऽपि स्यात्प्रापितश्च सैषाऽर्थाधिगतिर्मता ।
अर्थसारूप्यात्मकस्य प्रमाणस्य फलं हि सा ॥
3 स्वसंवित्तिफलत्वं तु वदतां मतमुच्यते ।
प्राभाकरास्तु विषयसंवित्तिफलवादिनः ॥
विषयाकार एवास्य प्रमाणं तेन मीयते ।
स्वसंवित्तिः फलं चास्य तद्रूपे ह्यर्थनिश्चयः ॥
इति सौत्रान्तिकमतं योगाचारमतं पुनः ।
यदाभासं प्रमेयं तत् प्रमाणफलते पुनः ॥

4 ग्राहकाकारसंवित्त्योः त्रयं नातः पृथक्कृतम् ।
मतद्वयनिरासांशो वार्तिके त्वित्थमुच्यते ॥
विषयैकत्वमिच्छंस्तु यः प्रमाणं फलं वदेत् ।
साध्यसाधनयोः भेदः लौकिकः तेन बाधितः ॥
स्वाकारश्च स्वसंवित्तिं मुक्त्वा नान्यः प्रतीयते ।
प्रामाण्यं यस्य कल्प्येत स्वसंवित्तिफलं प्रति ॥
स्वसंवित्तिफलत्वं तु तन्निषेधान्न युज्यते ।
प्रमाणमविसंवादि ज्ञानमर्थक्रियास्थितिः ॥
अविसंवादनमिति केचित् बौद्धाः प्रचक्षते ।
इत्यतो विस्तरस्तत्र द्रष्टव्यस्सूक्ष्मदर्शिभिः ॥
5 बौद्धाः प्रमाणफलयोरत्यन्ताभेदवादिनः ।
यौगाः प्रमाणफलयोरत्यन्तं भेदवादिनः ॥
आर्हताद्याः पुनर्भेदाभेदवादिन ईरिताः ।
आत्मनः परिणामोऽयं ज्ञानमित्यभिधीयते ॥
विशेषस्सहजो ह्येष गुण इत्यार्हतं मतम् ।
प्रमाणत्वेन परिणाम्यात्मा फलतयाऽपिच ॥
स्यादन्यथा स्वपरयोः प्रमाणफलविप्लवः ।
विज्ञानं स्वपराभासि प्रमाणं बाधवर्जितम् ॥
प्रत्यक्षं च परोक्षं च द्विधा मेयविनिश्चयात् ।
इति स्याद्वादिसिद्धान्तः शिष्टमन्यत्र विस्तृतम् ॥

6 नैयायिकानां सिद्धान्ते प्रमाणमपि चेश्वरः ।
तत्साधनादाश्रयाच्चाव्यतिरिक्तत्वमिश्रितम् ॥
प्रमाव्याप्तं प्रमाणं स्यात् साधनं त्विन्द्रियादिकम् ।
आश्रयस्त्वात्मवस्तु स्यात् तयोः प्रामाण्यनिर्णयः ॥
मितिस्सम्यक्परिच्छित्तिः तद्वत्ता च प्रमातृता ।
तदयोगव्यवच्छेदः प्रामाण्यं गौतमे मते ॥
7 अथ शाबरसिद्धान्ते प्रमाणमिदमुच्यते ।
या बुद्धिर्जायते पुंसः प्रमाणं सैव कथ्यते ॥
बुद्धिजन्मनि पुंसश्च विकृतिर्यद्यनित्यता ।
अथाविकृतिरात्माऽयं प्रमातेति न युज्यते ॥
इति शाक्यविकल्पस्य भङ्गार्थमिदमुच्यते ।
पुमान् विक्रियते चैवेतीष्यते बुद्धिजन्मना ॥
न तद्विकारमात्रेण वस्तुनो नाशसंभवः ।
कुण्डलादिविकारेऽपि सुवर्णादिपदार्थवत् ॥
उपादानदशाभेदः वस्तुनो जननक्रिया ।
यस्य चानन्तरं सत्ता कार्यस्येत्यवगम्यते ॥
कारणे समवायस्तु कार्यस्यौलूक्यसम्मतः ।
स नित्योऽतीन्द्रियश्चाक्षानधीन इति दूषणम् ॥
व्यापारः कारकाणां हि दृष्टो जन्मातिरेकतः ।
प्रमाणेऽपि तथा मा भूदिति जन्म विवक्ष्यते ॥

बुद्धेर्जन्मैव विषये व्यापार इति कीर्त्यते ।
तदेवच प्रमारूपं तद्वती करणं च धीः ॥
ततश्च जायमाना सा प्रमाणं बुद्धिरिष्यते ।
अतश्च बुद्धिजन्मेति सूत्रयामास जैमिनिः ॥
8 सिद्धान्तस्यास्य विवृतिः कुमारिलमता यथा ।
ज्ञानं नाम क्रिया काचित्पुंसो व्यापारलक्षणा ॥
चितिशक्तेः कार्यभूता विकारः सूक्ष्म इष्यते ।
फलानुमेया तस्याश्च फलं स्यादर्थदृष्टता ॥
तामावरणभङ्गोक्त्योपचरन्ति बुधाः परे ।
धात्वर्थफलशालित्वं कर्मत्वमिति शिक्षिताः ॥
कारकाणां मिथो योगः स्यात्क्रियागर्भ एवहि ।
स्थाल्यादीनि हि सिद्धानि साध्यं धात्वर्थलक्षणम् ॥
पाकमेकं पुरस्कृत्य संसृज्यन्ते यथा मिथः ।
आत्मेन्द्रियमनोवस्तुसन्निकर्षादयस्तथा ॥
कुर्वन्ति कंचिद्व्यापारं सुसूक्ष्मं ज्ञानलक्षणम् ।
इति कौमारिलमते ज्ञानतत्त्वं सुनिश्चितम् ॥
शब्दाधिकरणे चैतच्छ्रूयते श्लोकवार्तिकम् ।
बुद्धीनामपि चैतन्यस्वाभाव्यात्पुरुषस्य नः ॥
नित्यत्वमेकता चेष्टा भेदस्तु विषयाश्रयः ।
व्याख्यात्रा विषयार्थोऽत्र सूक्ष्मः व्यापार ईरितः ॥

9 प्राभाकरमते चापि क्रियैव ज्ञानलक्षणा ।
तस्याः विषयसंवित्तिः फलमभ्युपगम्यते ॥
संवित्तौ फलरूपायां प्रकाशात्मस्वभावतः ।
स्वरूपं भासते ग्राह्यरूपत्वेन घटादिकम् ॥
आत्मा तु ग्राहकत्वेन घटं जानाम्यहं त्विति ।
आकारस्संविदो ज्ञेय एष तन्मतसंग्रहः ॥
10 अथ सांख्यादिसिद्धान्ते प्रमाणपरिशोधनम् ।
अर्थोपलब्धिकरणं प्रमाणमिति तन्मतम् ॥
लक्षणं तद्विवरणं किंचिदत्र प्रदर्श्यते ।
विषयाकारिणी बुद्धिवृत्तिर्ज्ञानमितीर्यते ॥
बुद्धेस्सत्त्वसमुद्रेकोऽध्यवसायस्तु स स्मृतः ।
इदं तावत्प्रमाणं स्यात् प्रबोधोऽनुग्रहः फलम् ॥
अनुग्रहश्च चिच्छक्तेः छायाऽऽपत्त्याऽर्थयोगिता ।
अतः पदार्था भिद्यन्ते बुद्धिज्ञानोपलब्धयः ॥
11 एतन्मतनिराकृत्यै गौतमेन हि सूत्रितम् ।
बुद्ध्यादित्रितयं चैतदनर्थान्तरमित्यपि ॥
अन्तःकरणवृत्तीनां बहिःकरणवृत्तिवत् ।
न ज्ञानताऽन्यथा भूतचैतन्यं स्याद्दुरुद्धरम् ॥
आत्मनो हि गुणः ज्ञानं न क्रियेति हि तन्मतम् ।
आगमश्चाप्यपायश्च स्यातां तस्य निरन्वयौ ॥

12 वैशेषिकमतेऽप्येवमथौपनिषदे मते ।
निर्विशेषविदः प्राहुः सच्चिदानन्दलक्षणा ॥
अनुभूतिः स्वप्रकाशा ब्रह्मात्मा ज्ञानमुच्यते ।
संविदेषा प्रकाशैकस्वरूपा सिद्धयति स्वतः ॥
प्रकाशरूपस्सविता स्वप्रकाशो यथोच्यते ।
निवृत्तगतिरप्यद्रिस्तिष्ठतीति यथोच्यते ॥
तथा स्वयंप्रकाशाऽसावित्युक्तिस्त्वौपचारिकी ।
प्रायेणापोह्वादेन साध्यते निर्विशेषता ॥
परागर्थप्रमेयेषु या फलत्वेन सम्मता ।
संवित्सैव हि सिद्धान्त वेदान्तोक्तिप्रमाणतः ॥
इति वार्तिककारोक्तिस्सिद्धित्रय उदाहृता ।
वृत्तिज्ञानं तु सांख्यादिसिद्धान्तवदपीष्यते ॥
स्वरूपभिन्नं ज्ञानाख्यं द्रव्यमात्माश्रितं सदा ।
प्रभावतः प्रभेवेति विशिष्टाद्वैतिनो विदुः ॥
धर्मभूतं च तत् ज्ञानं परिणामीत्युपेयते ।
यथा सांख्यमते चित्तं, तत्सर्वं धर्मधीर्मता ॥
द्वैतिभिस्तु स्वरूपस्य साक्षित्वात् ज्ञानतेष्यते ।
प्रसाददैन्यप्रमुखावस्था अप्यात्मनो मताः ॥
तथाऽपि तन्नित्यतायाः विरोधो नैव कश्चन ।
यथाऽऽत्मा शाबरो नित्यः प्रायस्सर्वैस्तथेष्यते ॥

तथैव वृत्तिधीवादः सांख्यानामिव सम्मतः ।
सांख्यशाबरसिद्धान्तसमवाय इति स्थितम् ॥
यथार्थत्वं प्रमाणस्य लक्षणं परिकीर्तितम् ।
असतोऽपि भ्रमे भानोपगमात्र यथार्थता ॥

(57) प्रमाणविभागः.

1 प्रत्यक्षमेकं चार्वाकाः प्रमाणं प्रतिपेदिरे ।
अतीन्द्रियपदार्था ये न विद्यन्ते हि तन्मते ॥
तेष्वेवैकेऽनुमानस्याप्यत्रान्तर्भाववादिनः ।
अनुमानप्रमाणादेरप्रामाण्यं परे विदुः ॥
प्रत्यक्षमनुमानं च काणादास्सौगता अपि ।
आगमः पौरुषेयत्वान्न ताभ्यामतिरिच्यते ॥
तत्र पूर्वेऽनुमाने हि शब्दान्तर्भावमूचिरे ।
अप्रामाण्यं परे केचिदन्तर्भावं तु केचन ॥
ते चागमं च सांख्याद्या अपि भूषणयायिनः ।
पूर्वेऽनादिं वेदमाहुः परे त्वीश्वरनिर्मितम् ॥
तानि स्मृतिं च काणादाः केचित् केचिच्च वैदिकाः ।
सोपमानानि तान्याहुः स्मृतिहीनानि गौतमाः ॥
आगमः पौरुषेयोऽपि स्वतन्त्रः समयान्मतः ।
संकेतग्राहकत्वेनोपमानमपि तन्मतम् ॥

तानि सार्थापत्तिकानि प्राहुः प्राभाकराः पुनः ।
अर्थापत्त्याऽतीन्द्रियार्थास्सिद्ध्यन्तीति हि तन्मतम् ॥
सादृश्यस्यातिरिक्तत्वादुपमानं पृथङ्मतम् ।
अभावानभ्युपगमात् षष्ठं मानं न चादृतम् ॥
तान्येवाभावषष्ठानि विदुः कौमारिलाः पुनः ।
मेयानुसारान्मानस्य भिन्नता तैर्विचिन्तिता ॥
संभवैतिह्ययुक्तानि तानि पौराणिका विदुः ।
ऐतिह्येन ह्यनेकेऽर्थाः पौराणिकमते मताः ॥
लिपिः लोकप्रसिद्धिश्च चेष्टा प्रातिभमेवच ।
अन्यैश्चान्यैः स्वतन्त्रैर्हि मानान्तरमितीष्यते ॥
स्वयंसिद्धं च दिव्यं च प्रत्यक्षमनुमाऽऽगमः ।
इति पञ्चविधं केचित्प्रमाणं प्रविविञ्चते ॥
स्पष्टास्पष्टविभेदेन प्रमाणद्वयवादिनः ।
जैनास्त एव प्रत्यक्षपरोक्षद्वयवादिनः ॥
स्मरणप्रत्यभिज्ञानुमानतर्कागमैः परम् ।
पञ्चप्रकारमित्याहुः पूर्वं त्विन्द्रियभेदतः ॥
प्रत्यक्षं च परोक्षं चापरोक्षमिति भेदतः ।
आत्माऽपरोक्षसंसिद्ध इत्यौपनिषदा विदुः ॥
केवलं चानुप्रमाणं चेति द्वेधा विभज्यते ।
प्रमाणमिति सिद्धान्तः जयतीर्थबुधेरितः ॥

प्रमाणप्रक्रियेदानीमियमेषोपलभ्यते ।
पूर्वापरे ह्यनन्तेऽस्मिन् काले कोऽङ्गीकरोति किम्॥
निराकरोति वा कः किं देवो जानाति सर्ववित् ।
2 विभागान्तरसारांशः प्राज्ञैस्त्वित्थं विशोधितः ॥
बहुष्वेकैकमुद्धृत्य तदन्येष्वैकराश्यतः ।
द्वैधक्लृप्तौ घटादावप्येवमेव प्रसज्यते ॥
अनुमाऽननुमानत्वशब्दाशब्दविभागतः ।
प्रत्यक्षत्वापरोक्षत्ववादिनां किं न रोचते ॥
स्पष्टमस्पष्टमिति च जैना यद्द्वैधमूचिरे ।
तत्प्रत्यक्षपरोक्षत्वविभागान्न विशिष्यते ॥
अतो न तावति द्वैधे विवादोऽस्ति हि साधिते ।
परोक्षस्यैकमानत्वं दुर्वचं भेददर्शनात् ॥
3 नन्वध्यक्षेऽपि भेदोऽस्ति बाह्यान्तरविभागतः ।
दिव्यादिव्यतया चक्षुःश्रोत्रादिभिदयाऽपिच ॥
अत्रेन्द्रियानपेक्षं यत् ज्ञानमर्थावभासकम् ।
दिव्यं प्रमाणमित्येतत् प्रमाणज्ञाः प्रचक्षते ॥
परमेश्वरविज्ञानं मुक्तानां च धियस्तथा ।
सञ्जयार्जुनवाल्मीकिप्रभृत्यार्षधियोऽपि तत् ॥
तद्वत्परोक्षस्यैकस्य प्रमाणस्य विभागतः ।
अनुमानागमाद्याख्याः न भवेयुः कुतो भिदाः ॥

अत्रोच्यते श्रुतं दृष्टमेतच्चानुमितं त्विति ।
लोकोक्त्या चोपलम्भेन त्रित्वादि प्रतिपेदिरे ॥
अतस्स्मृत्यनुभूत्याख्याविभागादपि नोचिता ।
प्रमाणद्वित्वमित्युक्तिः भूयसां दृष्टिरिष्यते ॥
4 प्रामाण्यमविसंवाद इति सौगतपद्धतिः ।
प्रमेयाव्यभिचारित्वं प्रामाण्यमिति चार्हताः ॥
प्रामाण्यमर्थताथार्थ्यं विपरीतं विपर्ययः ।
तदर्थस्थमपि ज्ञानसंबद्धमिति वैदिकाः ॥
अर्थनिश्चायकत्वं स्यात्प्रामाण्यमिति तार्किकाः ।
यथार्थविषयत्वं तत्स्यादित्यन्ये विदुर्बुधाः ॥
तद्वद्विशेष्यकत्वेनावच्छिन्ना तत्प्रकारिता ।
इति नव्यविनिष्कर्षः विशेष्यांशः स्वतो मतः ॥
प्रामाण्यमर्थजन्यत्वमप्रामाण्यमनर्थजम् ।
इत्यपि व्यवहारोऽस्ति जयन्तादिमानीषिणाम् ॥
अर्थक्रियाकारिता तन्मतमित्यपरे विदुः ।
प्रवृत्तेर्वा निवृत्तेर्वा स्यात्प्रयोजकता तु तत् ॥
इत्याहुरपरे प्राज्ञाः ते चाधिगतिवादिनः ।
सर्वप्रमाणप्रामाण्यमेतादृगिति केचन ॥
शब्दप्रमाणप्रामाण्यमेतादृक्षमितीतरे ।
एवं विकल्पबीजं तु पुरस्तादवधार्यते ॥

(58) स्वतस्त्वादिविचारः

1 प्रमाणत्वाप्रमाणत्वे स्वतः सांख्यास्समाश्रिताः ।
नैयायिकास्ते परतः सौगताश्चरमं स्वतः ॥
प्रथमं परतः प्राहुर्वेदवादरताः पुनः ।
प्रामाण्यं स्वत एवाहुः परतश्चाप्रमाणताम् ॥
सामान्येन विभागोऽयं क्रमेणाथोपपादनम् ।
द्वयोस्स्वतस्त्वं वक्तृणां सांख्यानामाशयस्त्वयम् ॥
सर्वं सवृत्तिकं चित्तं विदितं साक्षिणा सदा ।
गृहीते एव ते स्यातामेकत्वाद्धर्मधर्मिणोः ॥
अप्रामाण्ये गृहीतेऽपि प्रवृत्तिर्योपलभ्यते ।
मुग्धप्रवृत्तिवत्तत्र सैषा स्याद्वासनावशात् ॥
स्वतोऽसतामसाध्यत्वात् तत्स्वाभाविकमुच्यते ।
ज्ञप्त्युत्पत्त्यविवेकोऽपि सिद्धान्तस्यास्य साधनम् ॥
कार्यकारणभावस्य मीमांसायामयं स्फुटः ।
अथ सौगतसिद्धान्तसारांशोऽत्रोपपाद्यते ॥
2 अप्रामाण्यमवस्तुत्वान्न स्यात्कारणदोषतः ।
वस्तुत्वात्तु गुणैस्तेषां प्रामाण्यमुपजायते ॥
इत्युत्पत्तौ प्रसिद्धं हि परतस्त्वं विपश्चिताम् ।
अथ ज्ञप्तौ सत्त्वमर्थक्रियाकारित्वलक्षणम् ॥
व्याप्तं हि सत्त्वं भावानां क्रमतो यौगपद्यतः ।
नित्येषु तु पदार्थेषु व्यापकानुपलम्भनात् ॥

तद्व्याप्तमपि सत्त्वं हि बलात्तेभ्यो निवर्तते ।
क्षणिकत्वेन तान् भावान् सत्त्वं समवलम्बते ॥
ज्ञानोत्पत्त्यैव तद्धेतोरसामर्थ्यमपोद्यते ।
असमर्थात्समुत्पादो दृश्यते न हि कस्यचित् ॥
समर्थकारणज्ञानादयं प्रामाण्यनिश्चयः ।
इत्यतः परतस्त्वं तत्प्रामाण्यस्येति निर्णयः ॥
द्वितीयज्ञानसंवादादाद्यविज्ञानसंस्थितम् ।
प्रामाण्यं गृह्यत इति विदुः केचन सौगताः ॥
अप्रामाण्यस्य संवादः प्रायशो नैव दृश्यते ।
अप्रामाण्यं स्वत इति सिद्धान्तः तदभीप्सितः ॥
अर्थक्रिया वा संवादः गुणो वा परशब्दितः ।
3 अथ वैदिकसिद्धान्तः संग्रहेण विलिख्यते ॥
घटोऽस्तीत्यत्र विज्ञाने सन् घटो हि प्रतीयते ।
प्रामाण्यमर्थसद्भावः स तु स्वेनैव गृह्यते ॥
प्रज्ञायतेऽतः प्रामाण्यं स्वत इत्युच्यते बुधैः ।
अर्थक्रियाहेतुगुणसंवादैः क्रियते स्थिरम् ॥
अर्थान्यथात्वं नास्तित्वं अप्रामाण्यं तदिष्यते ।
न तत्प्रतीयते भ्रान्तौ बाधज्ञाने प्रतीयते ॥
अप्रामाण्यं परत इत्यतएवाभिधीयते ।
अप्रामाण्यं त्रिधा भिन्नं मिथ्यात्वाज्ञानसंशयैः ॥

वस्तुत्वाद्विविधस्यात्र संभवो दुष्टकारणात् ।
अविज्ञाने तु दोषाणां व्यापारो नैव कल्प्यते ॥
कारणाभावतस्त्वेव तत्सिद्धं सौगतोक्तिवत् ।
स्वतः परत इत्यस्य तत्त्वमित्थं बुधा विदुः ॥
तस्मात्सर्वप्रमाणानां प्रामाण्यं स्वत इष्यते ।
नहि स्वतोऽसती शक्तिः कर्तुमन्येन शक्यते ॥
अपिचेतरसंवादात्पूर्वपूर्वप्रमाणताम् ।
वदन्तो नाधिगच्छेयुः अन्तं युगशतैरपि ॥
सुदूरमपि गत्वा तु प्रामाण्यं यदि कस्यचित् ।
स्वतएवाभिधीयेत को द्वेषः प्रथमं प्रति ॥
अर्थक्रियाचेत्संवादः स्वप्ने सीमन्तिनीं विना ।
नस्याद्धातुविसर्गोऽपि व्यभिचारो महानयम् ॥
अथवाऽऽप्तफलत्वेन किं तत्प्रामाण्यचिन्तया ।
कृतक्षौरस्य नक्षत्रपरीक्षावद्वृथा भवेत् ॥
तत्रापि नाप्रवृत्तस्य प्रामाण्यपरिनिश्चयः ।
एवमेव प्रवृत्तौ तु निश्चितेनापि तेन किम् ॥
तन्निश्चयात्प्रवृत्तौ वा पुनरन्योन्यसंश्रयः ।
तन्निश्चयात्प्रवृत्तिस्स्यात्प्रवृत्तेस्तद्विनिश्चयः ॥
उत्सर्गः ज्ञानसम्यक्त्वं भूयोविषयलक्षणम् ।
अपवादो वैपरीत्यं विषयाल्पत्वलक्षणम् ॥

यत्तत्त्वपक्षपातोऽस्ति स्वभावो हि धियामयम् ।
अनुपप्लवभूतार्थस्वभावस्य विपर्ययैः ॥
न बाधोऽयत्नवत्त्वेऽपि बुद्धेस्तत्पक्षपाततः ।
इत्याहुरपि बाह्याश्च स्यात्प्रमाणं ततः स्वतः ॥
दोषतश्चाप्रमाणत्वे स्वतःप्रामाण्यवादिनाम् ।
गुणज्ञानानवस्थावत् न दोषेषु प्रसज्यते ॥
साक्षाद्विपर्ययज्ञानाल्लब्ध्वेव त्वप्रमाणता ।
पूर्वाबाधेन नोत्पत्तिरुत्तरस्य हि सिद्ध्यति ॥
एवं त्रिचतुरज्ञानजन्मनो नाधिका मतिः ।
प्रार्थ्यते तावतैवैकं स्वतः प्रामाण्यमश्नुते ॥
4 अख्यातिपक्षे सर्वत्र सम्यगग्रहणं भ्रमः ।
न मिथ्याप्रत्ययः कश्चिदस्ति शङ्कानिबन्धनम् ॥
अजातमिथ्याशङ्कश्च न संवादमपेक्षते ।
तस्मान्न कश्चित्परतः प्रामाण्यमधिगच्छति ॥
एवं स्वतः प्रमाणत्वे सिद्धे वेदेऽपि सा गतिः ।
नेदं रजतमित्यत्र बाधार्थस्त्ववगम्यताम् ॥
यदेवेदं तदेवात्र रजतं त्विति नापितु ।
विविक्तं स्यादिदमिदं रजतं रजतं त्विति ॥
5 अत्र नैयायिकाः प्राहुः परतो द्वयवादिनः ।
प्रमाणत्वपरिच्छित्तौ विसंवदति तत्कथम् ॥

अप्रामाण्यगृहीतौ वा तस्मिन् कस्मात्प्रवर्तते ।
अतो ह्ययं स्वत इति पक्षोऽस्मभ्यं न रोचते ॥
प्रयोजनस्य सिद्धत्वात्तत्परीक्षानपेक्षणात् ।
नान्योन्यसंश्रयो नानवस्था वाऽत्र प्रसज्यते ॥
कौमारिलमतेऽप्येवमनवस्था दुरुद्धरा ।
प्रामाण्यं ज्ञाततालिङ्गजन्यज्ञानेन गृह्यते ॥
तत्प्रामाण्यं तादृशेनेत्यनवस्था न किं नु सा ।
स्वयंभानज्ञानवादिप्रभाकरगुरोर्मते ॥
प्रामाण्यस्य स्वतस्त्वं यत्तन्मानान्तरगोचरः ।
तत्प्रामाण्यस्वतस्त्वं चाप्येवं सैषाऽनवास्थितिः ॥
तादृज्ज्ञानानपेक्षायामस्माकं सैव पद्धतिः ।
रागोद्वेगात्पित्तधातुविकाराद्वा विसर्ज्यते ॥
स्वप्ने तु चरमो धातुः न दोषोऽतः प्रसज्यते ।
स्वतःपरत इत्यस्य विवादस्य फलं त्विदम् ॥
वेदस्यापौरुषेयत्वपौरुषेयत्वनिर्णयः ।
6 अत्र वेदान्तसिद्धान्ते विशेषांशोऽवधार्यताम् ॥
कथं पुनरनभ्यासदशायां तस्य संशयः ।
इत्याशङ्का विपश्चिद्भिरेवमत्र समाहिता ॥
विशेषतो गृह्यमाणेष्वपि संशयदर्शनम् ।
अभीक्ष्णं शुक्तिकामोहादन्धीकृतधियां मतम् ॥

यथोपलभ्यमानेऽपि कलधौतेऽस्ति संशयः ।
यथेदं रजतं वाऽथ पूर्ववच्छुक्तिरेव वा ॥
तथाऽत्र गृह्यमाणेऽपि प्रामाण्ये किमियं प्रमा ।
उत पूर्वभ्रमवदप्रमा वेति हि संशयः ॥
अथात्र संदेहसहस्वतोग्रहणतः फलम् ।
किंवा स्यान्निश्चयस्त्वन्याधीन एवेति चेच्छृणु ॥
शक्यं नियन्तुं ग्रहणमिह नास्मदपेक्षया ।
सिद्ध एवानुसर्तव्यः तत्प्रकारः परीक्षकैः ॥
7 सोऽपि स्वतः कथं सिद्ध इति चेदवधार्यताम् ।
अस्ति स्वालम्बनं ज्ञानं प्रकाशयदिति स्फुटम् ॥
ज्ञानान्तरानपेक्षं तत्स्वयमेव प्रकाशते ।
इतितावत्स्वप्रकाशवादिवेदान्तिसम्मतम् ॥
अस्वप्रकाशवादेऽपि व्यवसायो हि गृह्यते ।
प्रागनुव्यवसायेनासंशयात्मैव केवलम् ॥
स्मृत्यप्रामाण्यवादेऽपि स चापूर्वार्थगोचरः ।
अबाधितोऽविपर्यस्तः मतः स्मृतिविलक्षणः ॥
ततो यद्विषयत्वेन व्यवसायः प्रकाशते ।
परस्परपरिक्षोदात्पश्चादपि तथैव सः ॥
यत्तद्विषयतारूपं प्रामाण्यं व्यवतिष्ठते ।
आदावेव गृहीतं तत्स्वतः प्रामाण्यमुच्यते ॥

नन्वेवं संशयत्वाद्यमप्रामाण्यमपि स्वतः ।
शक्यं ग्रहीतुं स्वेनानुव्यवसायेन वेति चेत् ॥
विपर्ययस्वरूपं यत्त्वप्रामाण्यं न तत्तथा ।
यद्गृह्यमाणवैरूप्यं स्वेन स्वग्राहिणाऽथवा ॥
तस्यादौ ग्रहणायोगे न विवादोऽत्र वादिनाम् ।
इममंशमुपादाय स्वतःप्रामाण्यसंभ्रमः ॥

(59) प्रमाविचारः

1 एवमस्य स्वतस्त्वस्य विशेषांशो विचारितः ।
अथ प्रमापदार्थस्य विकल्पोऽयं विमृश्यताम् ॥
ज्ञानं प्रमेति सिद्धान्तस्स्यान्निरालम्बवादिनाम् ।
आत्मख्यातिं विदुः स्वप्ने भ्रमे चापि भिदा ततः॥
अविसंवादिविज्ञानं प्रमेत्याहुरथापरे ।
वैभाषिकादयः, भ्रान्तिर्निरधिष्ठानधीर्मता ॥
2 अन्यथाख्यातिमिच्छन्तस्त्वनिच्छन्तस्स्मृतिं प्रमाम्
नैयायिकादयस्सम्यगनुभूतिं प्रमां विदुः ॥
केचित्तूभयमिच्छन्तः यथार्थां तु धियं प्रमाम् ।
व्यवहारस्यानुगुणं ज्ञानमन्ये प्रमां विदुः ॥
तथाऽऽर्हताः पुनरभिमतानभिमतार्थयोः ।
परिग्रहपरित्यागक्षमं ज्ञानं प्रमां विदुः ॥

यथा बुद्बुदपक्ष्यादौ विसंवादस्त्वपक्रमात् ।
तथा मणिप्रभास्थाने संवादोऽन्यनिबन्धनः ॥
विषय कारतापन्नेन्द्रियवृत्त्यनुपातिनी ।
पुरुषेणोपरक्ता च बुद्धिवृत्तिः प्रमा मता ॥
पातञ्जलैः कापिलैश्च चेतनाशक्त्यनुग्रहः ।
पौरुषेयो बोध इति चिच्छायेत्यपि कीर्त्यते ॥
3 अबाधितानधिगतवस्तुज्ञानं प्रमां विदुः ।
विपरीतख्यातिवादिकौमारिलमतानुगाः ॥
अनिच्छन्तोऽन्यथाख्यातिमानिच्छन्तः स्मृतिं प्रमाम्
अनुभूतिं प्रमामाहुः गुरवोऽख्यातिवादिनः ॥
4 स्वयं प्रकाशते ज्ञानं त्रिपुटीज्ञानवादिनाम् ।
मानसप्रत्यक्षवादः तार्किकैरुररीकृतः ॥
ज्ञानातीन्द्रियवादं तु कौमारिलमतं विदुः ।
अप्रत्यक्षोपलम्भस्य नार्थदृष्टिः प्रसिध्यति ॥
सहोपलम्भनियमादभेदो नीलतद्धियोः ।
इति वादो निराकारि ज्ञानातीन्द्रियवादिभिः ॥
क्षणान्तरविलम्बेन मानसाध्यक्षवादिभिः ।
स्वानुभूतिविरोधेन स्वप्रकाशत्ववादिभिः ॥
विज्ञानवादो निर्धूत इति वेदान्तपद्धतिः ।
तस्मात्सौगतशिक्षार्थं मतिजाड्यमिति स्थितम् ॥

एवं प्रमाप्रमाणानां प्रायः तत्त्वं विचारितम् ।
विशिष्य विस्तरः तत्तत्तैर्थिकैः प्रकटीकृतः ॥

(60) भ्रमविचारः.

1 अथ भ्रान्तिज्ञानतत्त्वं किंचिदत्रावधार्यताम् ।
आत्मख्यातिरसत्ख्यातिः अन्यथाख्यातिरित्यपि॥
अख्यातिस्सदसद्भिन्नख्यातिस्सत्ख्यातिरित्यपि ।
शून्यख्यातिश्च निरधिष्ठानख्यातिरिहाष्टमी ॥
अर्थसंसर्गजाकारख्यातिश्च नवमी मता ।
बाह्याकारार्पिताकारख्यातिस्तु दशमी स्थिता ॥
भ्रान्तिस्थले पक्षभेदाः विद्वद्भिरुररीकृताः ।
तेषां विभागवचनमेतदत्र प्रवर्तते ॥
तत्रार्थशून्यं विज्ञानं योगाचारास्समाश्रिताः ।
आत्मख्यातिं विदुः स्वप्ने ह्यसत्ख्यातिं च जाग्रति॥
2 कल्पिताकारिणी ख्यातिरसत्ख्यातिरितीतरे ।
तत्तु वैभाषिकमतं कल्पनावादिनो हि ते ॥
असतोऽपि भ्रमे भानं केचिद्वेदान्तिनो विदुः ।
विलक्षणाऽन्यथाख्यातिरेषोक्ताऽसत्प्रकारिणी ॥
शून्यख्यातिं विदुस्तत्र मध्यमागमवादिनः ।
योगाचारैः पुनस्तत्र न्याय एष प्रयुज्यते ॥

स्तम्भादिप्रत्ययो मिथ्या प्रत्ययत्वात्तथाहि यः ।
प्रत्ययस्स मृषा दृष्टः स्वप्नादिप्रत्ययो यथा ॥
तत्र प्रत्यक्षबाधोक्तौ शून्यख्यातिं समाश्रिताः ।
तां चाकारयुतां केचित्केचित्स्वच्छां विजानते ॥
3 विकल्पाख्यां वृत्तिमिह शब्दज्ञानानुपातिनीम् ।
वस्तुशून्यां विदुः प्राज्ञाः पातञ्जलमतस्थिताः ॥
एते निर्विषयख्यातिवादिनः बौद्धसोदराः ।
असत्ख्यातिप्रसङ्गश्च ख्यात्यपह्नव इत्यपि ॥
अस्मिन्निर्विषयख्यातिवादे दोषो न कश्चन ।
अख्यातौ वाऽन्यथाख्यातौ विश्रमस्सर्ववादिनाम् ॥
असावन्यासक्तदृष्टिन्यायादिति तदाशयः ।
अन्यासङ्गे दृष्टिरेव नोत्पद्यत इतीतरे ॥
4 एवं निरालम्बवादं शून्यवादं च तादृशम् ।
असत्कर्तुं हि सुधियो भ्रान्तिशिक्षां प्रचक्रिरे ॥
न तत् ज्ञानं नाम किंचित् यत्स्याद्विषयमन्तरा ।
तस्माद्भ्रमेऽपि विषयं शोधयन्ति विपश्चितः ॥
बाह्यार्थवादिनः केचित्सौगताः निरधिष्ठितिम् ।
ख्यातिमिच्छन्ति केशोण्डूटिट्टिभादिमतिर्यथा ॥
इदं रजतमित्यत्र पुरोवर्तिनि वस्तुनि ।
नाध्यस्यते च रजतं किंतु संस्कारलेशतः ॥

रजतं दोषवशतः भाति स्वयमिदंतया ।
ख्यातिस्सा निरधिष्ठाना स्याद्वैभाषिकसम्मता ॥
5 अन्ये त्वाहुर्निराकारौ बुद्धिश्चार्थश्च वस्तुतः ।
तथापि सितरक्तादिराकारो जायते ततः ॥
यथा च रजनीचूर्णसंयोगाद्रागसंभवः ।
स एव बाह्य आकारः गृह्यते बुद्धिशक्तितः ॥
अर्थसंसर्गजाकारख्यातिवादोऽयमीरितः ।
बाह्याकारार्पिताकारख्यातिवादः पुनर्यथा ॥
6 स्वप्रकाशाध्यक्षसिद्धं विज्ञानं क्षणिकं यतः ।
पूर्वापरक्षणस्पर्शितया तत्तु न भासते ॥
नच बाह्यार्थमिथ्यात्वं व्यवहाराव्यवस्थितेः ।
नीलादिसंततौ पीताद्यनुत्पत्तिप्रसङ्गतः ॥
न प्रत्यक्षस्स बाह्योर्थः संप्रयोगनिरोधतः ।
भिन्नकालं कथं ग्राह्यमितिचेद्ग्राह्यतां विदुः ॥
हेतुत्वमेव युक्तिज्ञाः ज्ञानाकारार्पणक्षमम् ।
अतो हेतुत्वमेवात्र ग्राह्यत्वेनोपचर्यते ॥
ज्ञानार्थयोस्समुत्पादे तुल्यसामग्र्यधीनयोः ।
ज्ञानजन्मनि च ज्ञानमुपादानमितीष्यते ॥
अर्थश्च सहकारी स्यात् अर्थोत्पत्तौ विपर्ययः ।
अतो हेत्वर्पिताकारः स्वात्मा प्रत्यक्षगोचरः ॥

तेनानुमीयते बाह्यस्सर्वोऽर्थ इति निर्णयः ।
एतत्सौत्रान्तिकमतं उभयं किंचिदन्तरम् ॥
7 अन्यथाख्यातिवादेऽपि नासद्विषयकल्पना ।
इत्यत्र पद्ययुगळं ज्ञेयं सर्वार्थसिद्धिगम् ॥
इह त्वारोप्यसंसर्गिसंसर्गासत्त्ववर्णनम् ।
नासद्ग्रहणक्लृप्तौ स्यात् प्रमाविषयसाम्यतः ॥
अदुष्टबुद्धौ तत्रैव संसर्गस्सन् विशेषकः ।
अन्यत्रसिद्ध एवासौ दुष्टायां दोषवैभवात् ॥
अन्यथाख्यातिवादेऽत्र विशेषांशोऽवधार्यताम् ।
कैश्चिदालम्बनं भ्रान्तावुक्तं सूर्यमरीचयः ॥
निगूहितनिजाकारास्सलिलाकारधारिणः ।
अन्ये त्वालम्बनं प्राहुः पुरोऽवस्थितधर्मिणः ॥
सादृश्यदर्शनोद्भूतस्मृत्युपस्थापितं पयः ।
अन्यदालम्बनं चान्यत्प्रतिभातीति केचन ॥
आलम्बनं दीधितयः तोयं च प्रतिभासते ।
कर्तुः करणतो भिन्नं विज्ञानजनकं तु यत् ॥
तदालम्बनमित्युक्तं अन्यथाख्यातिवित्तमैः ।
कथंचिदपि विज्ञाने निरालम्बनता हता ॥
8 अख्यातिपक्षे दोषाद्धीः शुक्तेः केवलधर्मिणः ।
धर्मसारूप्यमात्रेण रजतं स्मर्यते तदा ॥

दोषादेशाऽपिच तदा स्मृतित्वेन न गृह्यते ।
रजतं च स्मरामीति तदानीमप्रतीतितः ॥
तस्मात्प्रमुषितामेनां स्मृतिमिच्छन्ति तार्किकाः ।
रजतस्मरणं शुक्तिग्रहणं चास्ति धीद्वयम् ॥
ग्रहणस्मरणे एते विविक्ते अपि तत्तया ।
न गृह्येते इति विवेकाग्रहोऽख्यातिरुच्यते ॥
विवेकेन न गृह्येते स्मरणानुभवौ क्वचित् ।
स्वप्ने तु स्मृतिरेवैका तथात्वेन न गृह्यते ॥
द्विधाकृता क्वचिद्वृत्तिः नेत्रस्य तिमिरादिना ।
नहि ग्रहीतुमैक्येन शक्नोति शिशिरत्विषम् ॥
क्वचिद्रसनसंपृक्ते पित्ते तिक्तत्ववेदनात् ।
परिच्छेत्तुं न शक्नोति माधुर्यं शर्करागतम् ॥
गृह्णाति यत्तु तिक्तत्वं वस्तुतः पित्तवर्ति तत् ।
तथातु न विजानाति निगिरन्नेव शर्कराम् ॥
अख्यातिरेषा सर्वत्र कथंचित्कस्यचिन्मता ।
तदेवंसति सर्वत्र सम्यगग्रहणं भ्रमः ॥
एषोऽग्रहस्त्वभावो वा ख्यात्यन्तरमथापिवा ।
नाद्योऽभावानुपगमान्नान्त्यस्स्यात्ख्यातिरन्यथा ।
तस्मात्सामान्यधर्मस्य ख्यातिस्सत्ख्यातिरे-
अख्यातिवादस्सत्ख्यातिवादश्चार्थान्यते ॥

यथार्थं सर्वमेवेह विज्ञानमिति सिद्धये ।
प्रभाकरगुरोर्भावः नयवीथ्यां प्रकाशितः ॥
आहार्यलक्षणस्तर्कोऽप्येवमेवान्यथाकृतः ।
संशयोऽपि विरुद्धार्थनानाज्ञानमिहेष्यते ॥
डोलासंयोगवत्, वेगो दृढश्चेन्निश्चयो मतः ।
ऊहानध्यवसायौ च परोक्तौ संशयात्मकौ ॥
तदन्यत्वेऽपि निर्वाहस्समानन्यायतो मतः ।
आत्मनः प्रतिसंधिर्यः प्रत्यभिज्ञैव सा मता ॥
तच्चैकमेव विज्ञानं न द्वयं सौगतादिवत् ।
बुद्धिबाधोक्तिरेषा स्यात् अयोग्यं वाक्यमिति, अतः॥
बुद्धिबाधनिषेधोक्त्या नान्यथाख्यातिसंभवः ।
9 विपरीतख्यातिवादिकुमारिलमतं त्विदम् ॥
स्वप्नादिप्रत्यये बाह्यं सर्वथा न हि नेष्यते ।
सर्वत्रालम्बनं ग्राह्यं देशकालान्यथात्मकम् ॥
जन्मन्येकत्र भिन्ने वा तथा कालान्तरेऽपिवा ।
तद्देशो वाऽन्यदेशो वा स्वप्नज्ञानस्य गोचरः ॥
तस्माद्यदन्यथा सन्तमन्यथा प्रतिपद्यते ।
तन्निरालम्बनं ज्ञानमभावालम्भनं तु तत् ॥
8 ७. ...न्तरमभावोऽन्यो न कश्चिदनिरूपणात् ।
धर्मसारू... वस्तु सर्वं सदसद्रूपभेदतः ॥

सत्स्यात्स्वरूपेण पुनरसत्स्यादन्यरूपतः ।
भ्रान्तिरन्यस्य सद्रूपेणान्यद्धि प्रतिपद्यते ॥
अभावधीरप्यन्यस्यासद्रूपेणान्यगोचरा ।
तेनोभयं ज्ञानमित्थमन्यथासन्तमन्यथा ॥
प्रतिपद्यत इत्युक्तिरेवंरीत्योपपद्यते ।
10 सत्ख्यातिवादिनः प्राश्चः भास्करा इति विश्रुतम् ॥
तात्कालिकं सदेवेदं जायते रजतादिकम् ।
भासते बाधकाले तु स्वसामग्र्या विनश्यति ॥
इत्याहुरेष वादस्स्यात्प्रातिभासिकसोदरः ।
11 सत्ख्यातिपक्षे सामान्यधर्मग्रहणलक्षणे ॥
अप्यंशत्रयमस्तीति नावकाशो विवादिनाम् ।
यथार्थं सर्वविज्ञानमिति वेदविदां मतम् ॥
श्रुतिस्मृतिभ्यः सर्वस्य सर्वात्मत्वप्रतीतितः ।
सोमाभावे च पूतीकग्रहणं श्रुतिचोदितम् ॥
सोमावयवसद्भावादिति न्यायविदो विदुः ।
व्रीह्यभावे च नीवारग्रहणं व्रीहिभावतः ॥
तदेव सदृशं तस्य यत्तद्रव्यैकदेशभाक् ।
शुक्त्यदौ रजतादेश्च भावः श्रुत्यैव बोधितः ॥
रूप्यशुक्त्यादिनिर्देशभेदः भूयस्त्वहेतुकः ।
रूप्यादिसदृशश्चायं शुक्त्यादिरुपलभ्यते ॥

अतस्तस्यात्र सद्भावः प्रतीतेरपि निश्चितः ।
कदाचिच्चक्षुरादेस्तु दोषाच्छुक्त्यंशवर्जितः ॥
रजतांशो गृहीतोऽतः रजतार्थी प्रवर्तते ।
दोषहानौ तु शुक्त्यंशे गृहीते न प्रवर्तते ॥
अतो यथार्थं रूप्यादिविज्ञानं शुक्तिकादिषु ।
बाध्यबाधकभावोऽपि भूयस्त्वेनोपपद्यते ॥
शुक्तिभूयस्त्वसाकल्यवैकल्यग्रहरूपतः ।
एवं सर्वस्य सर्वत्वे व्यवहारव्यवस्थितिः ॥
एवं स्वाप्नादिविज्ञानं तत्तत्पुंकर्ममूलकम् ।
स हि कर्ता सृजति च तादृशार्थानिति श्रुतम् ॥
पीतशङ्खालातचक्रद्विचन्द्रमृगतृष्णिकाः ।
लोहितस्फटिकादर्शप्रतिबिम्बादयोऽपिच ॥
यथार्था इति सिद्धान्तः युक्तिभिः प्रकटीकृतः ।
इति सत्ख्यातिसिद्धान्तसंग्रहोऽयं निरूपितः ॥

(61) अनिर्वचनीयवादः.

1 अनिर्वाच्यख्यातिपक्षे सदसद्भिन्नलक्षणात् ।
तात्कालिकात्तु विषयान्निरालम्बननिह्नवः ॥
सत्त्वे न भ्रान्तिबाधौ स्तः नासत्त्वे ख्यातिबाधने।
सदसद्भ्यामनिर्वाच्याऽविद्या विद्यैस्सह भ्रमः ॥

2 प्रातिभासिकवस्तूनामेवमुत्पत्तिरुच्यते ।
दुष्टेन्द्रियस्येदमर्थाकाराऽऽद्यौ वृत्तिरुद्भवेत् ॥
तस्यां वृत्ताविदमवच्छिन्ना चित्प्रतिबिम्बते ।
ततः प्रमात्रभिन्नेऽस्मिन्विषये शुक्तिकात्मनि ॥
याऽविद्या सा हि रजतसंस्कारसचिवा सती ।
काचादिदोषसहिता रजतार्थात्मना तथा ॥
रजताभासात्मना च युगपत्परिणामिनी ।
अविद्यापरिणामोऽयं रजतं प्रातिभासिकम् ॥
चैतन्यापेक्षया तच्च विवर्त इति चोच्यते ।
साक्षिण्यध्यस्तं च ततः वेद्यं केवलसाक्षिणः ॥
चिन्निष्ठमप्यवच्छेदाद्भासते हीदमात्मना ।
यथा ज्ञानमवच्छेदाच्छरीरे भासते तथा ॥
तथा स्वाप्नादयोऽप्यर्थाः तत्तत्कालावसायिनः ।
अनिर्वाच्या इति भ्रान्तिर्न हि निर्विषया क्वचित् ॥
3 अनिर्वाच्यख्यातिपक्षाक्षेपोऽयमवधार्यताम् ।
प्रपञ्चसत्यसिद्धान्तवादिभिः प्रकटीकृतः ॥
अनिर्वाच्यानिर्वचत्वे भवेत्सर्वं निरुक्तिमत् ।
अथाखिलेऽप्यनिर्वाच्ये तत्त्वं स्याद्ब्रह्मतुच्छयोः ॥
अस्तु तत्प्रस्तुतस्यात्र न बाध इति चेत्तदा ।
तुर्यसौगतसिद्धान्तगतान्तःपतनं ध्रुवम् ॥

जाते च सदसद्वाह्ये सदसद्धीः क्रमात्सती ।
स्वच्छायामिव दुर्लङ्घ्यामन्यथाख्यातिमावहेत् ॥
अन्यथाख्यातिरस्तीति परबुद्धिं निषेधता ।
दृष्टा तदन्यथाख्यातिः अन्यथा किं निषिध्यते ॥
असच्चेन्न प्रतीयेतेत्येतल्लोकविसंमतम् ।
प्रतीयमानमेवैतन्मृगतोयमसन्मतम् ॥
प्रपञ्चो यदि बाध्येत सोऽसन्नेव भवेत्सदा ।
बाधायां नहि वैजात्यं कल्प्यं लोकविलक्षणम् ॥
सर्वदैवाप्रतीतं यदसदित्युच्यते यदि ।
कथं भवान् तत्प्रत्येति प्रत्याययति नः कथम् ॥
शून्यं तुच्छमसच्चेति सदेवास्माभिरुच्यते ।
खरे शृङ्गं नरे गोत्वमित्यादेस्तादृशत्वतः ॥
4 असत्यात्सत्यनिष्पत्तिप्रतिपत्ती मते यदि ।
असत्यादप्यधिष्ठानादध्यासः किं न कल्प्यते ॥
अत्र कौमारिलं श्लोकवार्तिकं श्रूयतां पुनः ।
सिद्धिर्नापरमार्थेन परमार्थस्य युज्यते ॥
न दृष्टा शशशृङ्गादेः सम्यग्ज्ञानादिहेतुता ।
बाष्पादिनाऽप्यधूमेन मिथ्यावह्न्यादिबोधनम् ॥
तस्मादसत्यहेतोर्या परमार्थे मतिस्तव ।
साऽप्यसत्या न सत्यं हि सत्याभासेन गम्यते ॥

येऽपि रेखादयो दृष्टा वर्णानां प्रतिपादकाः ।
न ते स्वेनापि रूपेण परमार्थत्ववर्जिताः ॥
वर्णात्मना न सत्याश्चेत् सर्वभावेष्वयं विधिः ।
पदार्थान्तररूपेण न सत्यं किंचिदिष्यते ॥
मणिप्रदीपप्रभयोर्मणिबुद्ध्याऽभिधावतोः ।
मिथ्याज्ञानाविशेषेऽपि विशेषोऽर्थक्रियां प्रति ॥
काव्यप्रकाशसंकेते धर्मकीर्तिवचस्त्विदम् ।
उदाहृतं हि तत्रापि मणेरंशो मणिप्रभा ॥
अंशेन चांशिनो लाभे नासत्यात्प्रतिपत्सती ।
असत्यात्सत्यनिष्पत्तिवादोऽप्यन्यत्र विस्तृतः ॥
5 उपायानां स्वरूपं हि संवृत्यात्मकमेव चेत् ।
संवृत्या यत्स्वरूपं स्यात्तद्वाङ्मात्रनिबन्धनम् ॥
इतोऽपि विस्तरस्तत्र द्रष्टव्यस्सूक्ष्मदर्शिभिः ।
संवृतेरपि यत्तत्त्वं तत्पुरस्ताद्विविच्यते ॥
मर्यादास्थापनार्थं च मानतर्कौ समुत्थितौ ।
सिंहारण्यवदन्योन्यं गुप्तौ तौ स्वान्यसाधकौ ॥
परमर्यादया ब्रूमः परव्याहतिमित्यसत् ।
स्वव्याघातादिभङ्गानां परानङ्गीकृतेरिति ॥
सदसद्व्यतिरेकोऽपि विरुद्धो यदि गृह्यते ।
सदसद्रूपता किं नु प्रतीता तु न गृह्यते ॥

अनुष्णाशीतवत्तुच्छाद्ब्रह्मणश्चातिरेकिता ।
साध्येत ख्यातिबाधादेर्यदि, सिद्धं तदत्र नः ॥
स्वशास्त्रनिर्णये सत्ये सत्यास्स्युर्लोकनिर्णयाः ।
स्वशास्त्रनिर्णयेऽसत्ये सत्यास्स्युर्लोकनिर्णयाः ॥
नच विश्वस्य बाधोऽपि स्वरसादुपजायते ।
अप्रतिष्ठितयुक्त्या तु बाधः सर्वं हि संस्पृशेत् ॥
मिथ्यात्वेन च दृश्यत्वं स्वतस्संबन्धि साधयन् ।
अप्रामाण्यस्वतस्सिद्धिमुद्गिरत्यनया दिशा ॥
अविद्यां विश्वजननीमर्धपञ्चमरूपिणीम् ।
निवृत्तिपञ्चमाकारां कल्पयन्तोऽप्यधःकृताः ॥
एवमाद्यैः वचोभेदैः प्रायः खण्डनखण्डनैः ।
अनिर्वाच्यख्यातिपक्षे प्रतिपक्षान् प्रचक्षते ॥
6 दुर्घटत्वमविद्यायाः भूषणं न तु दूषणम् ।
इत्येकमेव ब्रह्मास्त्रं परैः प्रतिनिधीयते ॥
अविद्यावागुरा सैषा यथा विज्ञानवागुरा ।
वासनावागुरा सर्वं पुरुषो वासनामयः ॥
7 सर्वसत्यत्वसिद्धान्ते भगवान् सर्वशक्तिमान् ।
क्षेत्रज्ञकर्मानुगुणजगन्निर्माणदीक्षितः ॥
तदसाधारणानर्थान् कांश्चित्साधारणानपि ।
सृष्ट्वाऽनुभावयत्येतानिति श्रीभाष्यनिर्णयः ॥

अविद्याशक्तिरेकत्र विष्णुशक्तिः परत्र तु ।
उभयत्रोपपत्तिस्तु समेति विबुधा विदुः ॥
ईश्वरस्य तु माहात्म्यं ज्ञायते चरमे मते ।
व्यवहारदृशाऽन्यैरप्येतदभ्युपगम्यते ॥
उभयोरप्यनुष्ठाने न विशेषोस्ति कश्चन ।
न लोकसंकरो नापि व्यवहारस्य संकरः ॥
अभिप्रायप्रभेदस्तु विचित्रः प्रतिपूरुषम् ।

(62) संवृतिवादः

1 संवृतिर्नाम या तत्त्वं संवृणोति स्वभावतः ।
तिरस्करोति दोषात्मा सा संवृतिपदाभिधा ॥
द्वे सत्ये समुपाश्रित्य बुद्धानां धर्मदेशना ।
लोके संवृतिसत्यं च सत्यं च परमार्थतः ॥
इति बौद्धवचोऽनूद्य प्रवृत्तं श्लोकवार्तिकम् ।
अत्रावधेयं यन्मूलमनिर्वाच्यवचोऽपिच ॥
2 संवृतेर्नतु सत्यत्वं सत्यभेदः कुतो न्वयम् ।
सत्यं चेत्संवृतिः केयं मृषा चेत्सत्यता कथम् ॥
सत्यत्वं नच सामान्यं मृषार्थपरमार्थयोः ।
विरोधान्न हि वृक्षत्वं सामान्यं वृक्षसिंहयोः ॥
तुल्यार्थत्वेऽपि तेनैषां मिथ्यासंवृतिशब्दयोः ।
वञ्चनार्थ उपन्यासः लालावक्त्रासवादिवत् ॥

नास्तिक्यपरिहारार्थं संवृतिः कल्पनेति च ।
कल्पनाऽपि त्वभिन्नस्य नैव निर्वस्तुके भवेत् ॥
तस्माद्यन्नास्ति नास्त्येव यत्त्वस्ति परमार्थतः ।
तत्सत्यमन्यन्मिथ्येति न सत्यद्वयकल्पना ॥
स्वप्नादिभोगवच्चापि योपभोगस्य कल्पना ।
तन्निवृत्त्यर्थमेवेह परमार्थे प्रयत्यते ॥
3 इत्यस्य विवृतिः काचित् एषा सर्वार्थसिद्धितः ।
संगृह्य लिखिता ज्ञेया धीमतां तत्र विस्तरः ॥
अथ संवृतिसत्यत्वं संवृतेस्सत्यतेष्यते ।
यद्वा संवृतिसंबन्धात्सत्यतेत्यभिधीयते ॥
सत्यत्वेन त्वसत्यं वा किं संवृत्याऽवभासते ।
संवृत्यां भ्रमरूपायां तथा वा भानमुच्यते ॥
यद्वा तैमिरिके केशस्तवकभ्रान्तिरीतितः ।
संवृत्याख्ये दोषभेदे किमध्यस्तमितीर्यते ॥
संवृतेस्सत्यतापक्षः वार्तिकेन विशोधितः ।
द्वितीयादिविकल्पानां समाधिरभिधीयते ॥
अथ संवृतिसंबन्धात् स्वभावादन्यजातिमत् ।
अन्यजातीयतां यायादिति दृष्टं नहि क्वचित् ॥
अन्यथाख्यातिरेवेयं स्यात्तृतीयतुरीययोः ।
पञ्चमे संवृतिर्दोष इति नैव प्रसिद्ध्यति ॥

दूरासन्नत्वसादृश्यकाचादिषु हि दोषता ।
व्यावहारिकसत्यत्वमित्यत्राप्येवमूह्यताम् ॥

4 सत्त्वासत्त्वविकल्पोऽपि प्रसङ्गादिह कीर्त्यते ।
व्यक्तीभविष्यति प्रायः निदानं सर्वदर्शने ॥

सत्त्वं प्रमाणसंबन्धः कालसंबन्ध इत्यपि ।
अर्थक्रियाकारिता वा निर्विकारत्वमेव वा ॥

सत्ताश्रयत्वं द्रव्यत्वं महासामान्यमित्यपि ।
व्यवहारार्हता वा स्याद्यद्वा नानास्वभावता ॥

वस्तुत्वं वाऽथ भावत्वं ध्रुवोत्पादविनाशिता ।
एवमादिप्रभेदेन बुधैस्तैस्तैर्निरुच्यते ॥

असत्त्वमपिचैवेत्थं विपश्चिद्भिर्विकल्प्यते ।
असत्तुच्छं निःस्वभावमलीकं शून्यमित्यपि ॥

आरोपितमनिर्वाच्यमध्यस्तं कल्पितं तथा ।
निरुपाख्यं च निष्प्रख्यं विचारासहताऽपिवा ॥

विवर्तं संवृतं मिथ्याऽभावो व्यावृत्तमित्यपि ।
निषिद्धं चेत्येवमाद्यान् शब्दानत्र प्रयुञ्जते ॥

प्रायस्तेषामर्थभेदः कल्प्यते पारिभाषिकः ।
केचित्क्वचित्त्वैक्यदृष्ट्या कुर्युः खण्डनमण्डने ॥

कैश्चिच्च देशकालादिनियतं चोभयं मतम् ।
अतो विधिर्निषेधश्च नास्त्येव निरुपाधिकः ॥

इत्येतेषामभिप्रायः, अतएव परे बुधाः ।
नैरात्म्यं वाऽथ सार्वात्म्यमर्थानामिति जानते ॥
पूर्वां कोटिं माध्यमिकाः पश्चिमामार्हताश्श्रिताः ।
अन्तरा सर्वसिद्धान्ता इति तत्त्वविदो विदुः ॥

(63) प्रत्यभिज्ञावादः.

1 अथ सोऽयं घट इति ज्ञानमेकमुत द्वयम् ।
ग्रहणं स्मरणं चेदं निरन्तरसमुद्भवात् ॥
प्रत्यभिज्ञां विदुः ज्ञानद्वयमित्येव सौगताः ।
तार्किकाः पुनरन्येऽपि प्राहुस्तां ग्रहणात्मिकाम् ॥
परे सांकर्यसोढारस्तामिच्छन्त्युभयात्मिकाम् ।
दर्शनादर्शनाभ्यां च व्यवस्थोपाधिनीतितः ॥
2 सर्वथा प्रत्यभिज्ञानं प्रमाणं सविकल्पकम् ।
करणाकरणादीनां कालभेदाद्युपाधितः ॥
अविरोधान्न बीजादौ शक्यते भेदकल्पना ।
दीपादिष्विव सर्वत्र बाधकादेरसंभवः ॥
अन्यथा देशभेदेन करणाकरणादिभिः ।
एकं जगति नैव स्यात् इति स्यात्सर्वशून्यता ॥
3 तस्माद्विरुद्धसंसृष्टविषयप्रत्यभिज्ञया ।
स्थिरत्वं सर्ववस्तूनां सर्वेषामपि चात्मनाम् ॥

4 संवादो नाम विज्ञानं जात्यन्तरमितीतरे ।
गृहीतविषयं शब्दहेतुकं तद्विदुः परे ॥
शाब्दप्रभेद इत्यन्ये प्राहुरेवं धियामिह ।
विवादा बहवस्सूक्ष्माः विद्वद्भिरुपदर्शिताः ॥
स्मृतिः गृहीतविषया मतिः तात्कालिकी मता ।
प्रज्ञां नवनवोन्मेषशालिनीं प्रतिभां विदुः ॥
अनन्तो बुद्धिभेदोऽयमलंकारादिशास्त्रतः ।
विज्ञेयो ननु बुद्ध्यैव बाह्यान्तरविकल्पना ॥

(64) स्वयंप्रकाशवादः

1 एवं सौगतसिद्धान्तः तत्तत्सिद्धान्तनिष्ठितैः ।
निरस्यते रीतिभेदैः अन्योन्यपरिपन्थिभिः ॥
प्रतिभावादिनो ये स्युः वार्ताक्षौदुम्बरायणाः ।
प्रतिभागोचरश्शब्दः तदर्थश्चेति तन्मतम् ॥
2 अत्र कश्चित्स्वतन्त्रोऽस्ति सिद्धान्तस्सोऽवधार्यताम्
ज्ञानं नाम पदार्थो यस्स नास्त्येवेति तन्मतम् ॥
ज्ञानस्योत्पादिका याऽस्ति सामग्री सर्वसम्मता ।
तयैव सर्वनिर्वाहात्किमन्तर्गडुनाऽमुना ॥
स एव भूतचैतन्यवादिनः परमाशयः ।
अन्यथा तस्य चैतन्यं तस्यापीत्यनवस्थितिः ॥

अतीन्द्रियजडज्ञानवादिनो ये कुमारिलाः ।
दुरुद्धरा वागुरेयं तेषामिति परे विदुः ॥
3 नचोपलभते कश्चिदज्ञातेऽर्थे धियं क्वचित् ।
ज्ञातेऽनुमानाज्जानीत इत्याह शबरस्स्वयम् ॥
4 इदं संवेद्म्यहमिति कर्मकर्तृकरम्बितम् ।
उपलम्भं समाश्रित्य धीराः तस्य स्वभासताम् ॥
अङ्ग्यकार्षुस्सौगताद्या अपि नातोऽनवस्थितिः ।
सर्वं ज्ञानाधीनसिद्धि व्यवहाराय कल्पते ॥
ज्ञानं चापश्यतां सर्वशून्यत्वाद्बिभ्यतां सताम् ।
गतिः स्वयंप्रकाशत्वादृते नान्योपलभ्यते ॥
5 ज्ञानाज्ञानेऽपि विषयव्यवहारं विदुः परे ।
घटोऽयमिति विज्ञाने घटमात्रं हि भासते ॥
अङ्गुल्यग्रं यथाऽऽत्मानं नात्मना स्प्रष्टुमर्हति ।
स्वांशेन ज्ञानमप्येवं नात्मानं ज्ञातुमर्हति ॥
इत्याहुरथचात्रैव केचित्स्वायम्भुवादयः ।
नतु चित्तं स्वप्रकाशं न चित्तान्तरसिद्ध्यपि ॥
सर्वं सवृत्तिकं चित्तं साक्षिवेद्यं सदा स्थितम् ।
सर्वोपपत्तिरेतास्मिन् सिद्धान्त इति मन्वते ॥
तमेव पक्षं प्रायेण तथौपनिषदा अपि ।
आश्रित्य निर्वहन्त्यत्र व्यवहारं हि साक्षिणा ॥

व्यवहारो हि जगति भवत्यालम्बने क्वचित् ।
न तत्सामान्यतो नास्ति कथंता तु परीक्ष्यते ॥
सामान्यतो निश्चिते हि विशेषः स्याद्बुभुत्सितः ।
कृतकक्षणिकानेकं ज्ञानमात्मेति केचन ॥
नित्यस्थिरैकविज्ञानमात्मानमपरे विदुः ।
विधाभेदे विवादोऽयं धर्मी तूभयसम्मतः ॥
धर्मधर्म्यैक्यवादे तु विवादोऽनवकाशभाक् ।
तदर्थमेव तादात्म्यं केचिदिच्छन्ति सूरयः ॥
प्रकाशं विषयत्वं च विभिन्नं ये विदुर्बुधाः ।
संविदः स्वप्रकाशेऽपि वेद्यतां तां न मन्वते ॥
विषयत्वं प्रकाशं च ये त्वनर्थान्तरं विदुः ।
संविदन्तरसंवेद्यामप्याहुस्संविदं तु ताम् ॥
अन्यथा गुरुशिष्यादेः सर्वलौकिकसम्मतः ।
व्यवहारो विलुप्येत प्राज्ञाज्ञाद्यविनिश्चयात् ॥
स्वसत्तयैव प्रकाशमानत्वमनुभूतिता ।
इति संवित्स्वप्रकाशवादिज्ञानत्वनिर्णयः ॥
वर्तमानदशायां स्वसत्तयैवाश्रयं प्रति ।
प्रकाशमानत्वमनुभूतित्वमिति केचन ॥
सत्तयैव स्वविषयसाधनत्वमितीतरे ।
परप्रकाशविज्ञानवादिनैयायिकादयः ॥

6 आत्मनोऽनुभवो नाम स्वरूपं निर्विशेषिणाम् ।
स्वेनैव स्वस्य विषयीकरणे विकृतिर्भवेत् ॥
फलव्याप्यत्वमेवास्य शास्त्रकृद्भिः निराकृतम् ।
ब्रह्मण्यज्ञाननाशार्थं वृत्तिव्याप्यत्वमिष्यते ॥
या चावरणभङ्गावच्छिन्ना वृत्तिः फलं हि सा ।
तद्व्यव्याप्यताऽप्यन्यैराचार्यैर्नोपगम्यते ॥
व्यवहारोपपत्तिर्हि सर्वथा निर्विशेषिणाम् ।
अपेक्षिता ततस्सूक्ष्मचिन्ता विज्ञानचातुरी ॥
7 सविशेषविदां तत्त्वं प्रसङ्गात्किंचिदुच्यते ।
आत्मनोऽनुभवो नाम तस्य स्फुरणमुच्यते ॥
स्फुरतः स्फुरणं धर्मः सैव स्याद्भासमानता ।
व्यवहारानुगुण्यं वा वह्नेरौज्ज्वल्यवत्तु तत् ॥
स नित्य आत्मनो धर्मः न तेन स्याद्विकारिता ।
तथैव चेश्वरात्माऽपि स्वानुभाव्य इतीष्यते ॥
धर्मभूतं ज्ञानमपि सर्वेषामात्मनां सदा ।
विषयव्यक्तिवेलायां स्वयमेवावभासते ॥
नित्यमुक्तेश्वराणां तु सर्वदैव विकासि तत् ।
अनुग्रहेच्छासंकल्पप्रमुखाकारभागपि ॥
न तावता स्वभावस्य विकारश्शङ्क्यते क्वचित् ।
स्वभावोपाधिभेदेन गुणदोषव्यवस्थितिः ॥

अनित्यमपि विज्ञानमीश्वरेऽस्तीति केचन ।
तद्विकारोऽनुग्रहेच्छासंकल्पास्त्विति चाभ्यधुः ॥
औपाधिकागन्तुकेनाकारेणैव विकारिता ।
स्वाभाविको य आकारः धर्मिणो भूषणं तु तत् ॥
तथैव द्वैतसिद्धान्ते धर्मभूतधियः स्थले ।
स्वरूपमेवाभिषिच्य सर्वमित्थं निरूह्यते ॥

(65) स्मृतिः

1 अथ स्मृतिविचारोऽसौ क्रियते विदुषां मुदे ।
स्मृतिरेवहि संस्कारो वासनेत्यपि कीर्त्यते ॥
स्मृतिशक्तौ स्थितस्सर्वः प्रपञ्च इति सुस्थितम् ।
वासनामात्रनिघ्नं चेज्जगत्स्याच्छून्यलक्षणम् ॥
इति हार्दं सौगतानां स्मृत्यप्रामाण्यवादिनाम् ।
2 लोके स्मृत्यैव हि कृताकृतयोः पर्यवेक्षणम् ॥
स्मृत्यैव कवयन्त्यत्र काव्यानि कवयः पुनः ।
स्मृत्यैव किल शब्दादिप्रमाणानां प्रवृत्तयः ॥
स्मृत्यैव हि परब्रह्मसाक्षात्कारादिरिष्यते ।
व्यवहारस्य सर्वस्य स्मृत्यप्रामाण्यवादिनः ॥
अव्यवस्थाप्रसङ्गेन भवन्त्येवाव्यवस्थिताः ।
स्मृतिशक्तिविहीनांस्तु चोन्मत्तानिति जानते ॥

स्मृतिमात्राप्रमाणत्वं न युक्तमिति वीक्ष्यताम् ।
अबाधितस्मृतेर्लोके प्रमाणत्वपरिग्रहात् ॥
बुद्धागमादित्यागे च न हेतुः स्मृतिमूलता ।
विशुद्धस्मृतिमूलेऽपि मानवादौ प्रसङ्गतः ॥
भ्रान्तिं प्रमातो भिन्दन्तः नचाहुः स्मृतिमानताम् ।
स्मृतित्वमेव हि व्यक्तमप्रामाण्यं तु तन्मते ॥
पीतशङ्खभ्रमादौ च न ह्येतदुपपद्यते ।
चक्षुषैव हि शङ्खादेः पीतिमादेश्च तत्र धीः ॥
ततश्च प्रतिपत्तौ वा व्यवहारोदयेऽपिवा ।
तथाभावान्यथात्वाभ्यां प्रमाभ्रान्तिव्यवस्थितिः ॥
तस्मात् स्मृतिर्नाप्रमाणं बाधानर्हार्थदर्शनात् ।
प्रतिभास्मृतिशक्त्यादिशालिनस्स्युः परीक्षकाः ॥
अनुमाने हि गुरवो गृहीतग्राहितां विदुः ।
धारावाहिनि चाध्यक्षे तार्किकास्तां विजानते ॥
सर्वज्ञवादिनां तादृक् द्वितीयं योगजं मतम् ।
अनित्यमीश्वरज्ञानं तादृशं हीशवादिनाम् ॥
अप्रामाण्यं वदन्तोऽपि स्मृतेर्वैशेषिकादयः ।
स्वके शास्त्रे हि याथात्म्याद्विद्याकोटौ पठन्ति ताम् ॥
तदेकदेशिभिरपि प्रामाण्यं स्वीकृतं ततः ।
ऐन्द्रपाणिनिदृष्टानां प्रामाण्यं सर्वसम्मतम् ॥

वागीश्वरादिभिः प्राच्यैरुक्तं मानमनोहरे ।
प्रामाण्यमिति हि न्यायपरिशुद्धावुदीरितम् ॥
3 इति स्मृतीनां प्रामाण्यं विदां वेदविदां मतम् ।
अप्रामाण्यं वदन्तो ये तेषां भावोऽयमुच्यते ॥
स्मृतिर्न बाह्यविषया नष्टेऽर्थे स्मृतिदर्शनात् ।
तस्मान्न प्रत्यभिज्ञाऽपि प्रामाण्यं लब्धुमर्हति ॥
ततः क्षणिकसिद्धान्तः निर्निरोध इतीतरे ।
परे विदुः प्रत्यभिज्ञात्यागिनां लोकबाह्यताम् ॥
शाक्यनिर्ग्रन्थसंसारमोचकानां स्मृतेः पुनः ।
अप्रामाण्यप्रतिष्ठायै स्मृतिमन्ये समत्यजन् ॥
पूर्वमीमांसका एते, तद्वर्त्मैवानुवर्त्यते ।
नैयायिकादिभिरपि गतानुगतिकं जगत् ॥
4 अगृहीतार्थगन्तृत्वं प्रोक्तं प्रामाण्यलक्षणे ।
स्मृतिव्यावृत्तये पूर्वैः दूषितं तत्तु तार्किकैः ॥
न स्मृतेरप्रमाणत्वं गृहीतग्राहिताकृतम् ।
अपित्वनर्थजन्यत्वमित्याहुः किल तार्किकाः ॥
शब्दस्यानुपलब्धेऽर्थे प्रामाण्यं प्राह जैमिनिः ।
सर्वप्रमाणाविषयं तदित्याहुः कुमारिलाः ॥
संप्लवन्ते प्रमाणानि प्रमेयमिह भूरिशः ।
व्यवतिष्ठन्तेऽपि तथा क्वचित्त्विति बुधा विदुः ॥

तस्मात्स्मृतिर्मूलशुद्ध्या प्रमाणमिति निश्चितम् ।
मूलान्तर्भावदृष्ट्या तु पृथक्प्रामाण्यनिह्नवः ॥

(66) प्रतिभावादः

1 जन्मौषधितपोयोगजनितास्सिद्धयस्तथा ।
प्रातिभाद्वा सर्वमिति सिद्धीराह पतञ्जलिः ॥
प्रतिभैव प्रसंख्यानं विवेकख्यातिरुच्यते ।
तदर्थं संयमस्यानुष्ठाने तत्सिद्धिसूचकम् ॥
उदेति प्रातिभं सूर्योदयात्प्रागरुणो यथा ।
तेन तारकसंज्ञेन योगी सर्वं हि पश्यति ॥
योगोत्थशुक्लधर्मानुगृहीताच्चित्तमात्रतः ।
दिव्यान् भोगान्विजानाति योगीति मुनयो विदुः॥
2 एतच्छ्रुत्वैव कतिचिदायासालसबुद्धयः ।
प्रमाणान्तरमिच्छन्ति प्रतिभां तन्निशम्यताम् ॥
ननुच प्रतिभा काचित् यथार्था मानमिष्यताम् ।
बाह्यार्थनैरपेक्ष्येण बाह्यज्ञानक्षमाऽस्तु सा ॥
विशिष्टकालपुरुषाद्यपेक्षोत्कर्षसंभवा ।
इति चेदत्र कथितमभियुक्तैरिदं तु तत् ॥
3 सत्यं कालादिभेदस्तु दुर्विवेचोऽस्मदादिभिः ।
सन्नप्यसौ व्यवहृतौ नोपयोगीत्युपेक्ष्यते ॥

प्रतिभायाः फलं दृष्टं यदा प्रामाण्यनिश्चयः ।
तदाऽन्यतः कृतार्थत्वात् प्रेक्ष्यते न परीक्षकैः ॥
पुण्येषु पुरुषेष्वेषा भूयिष्ठं सत्यदर्शिनी ।
तस्मात्पतञ्जलिः प्राह प्रतिभा चेति तां प्रमाम् ॥
साऽपि प्रागुक्तयोगीन्द्रप्रत्यक्षेऽन्तर्भवत्यसौ ।
इति तस्मान्न प्रमाणमतिरिक्तं तदिष्यते ॥

(67) सर्वज्ञवादः

1 अथ बुद्धागमादीनां धर्मप्रामाण्यशङ्कया ।
सर्वसर्वज्ञविद्वेषि मीमांसकमतं त्विदम् ॥
शाक्यार्हतार्षभेदेन सर्वज्ञास्त्रिविधाश्श्रुताः ।
स्वसार्वज्ञ्याय ते सर्वे निरस्ताः श्लोकवार्तिके ॥
सर्वदा चापि पुरुषाः प्रायेणानृतवादिनः ।
नच पुंवचनं सर्वं सत्यत्वेनावगम्यते ॥
वागिह श्रूयते यस्मात्प्रायादनृतवादिनी ।
यथाऽद्यत्वे न विस्रम्भस्तथाऽतीतार्थकल्पने ॥
इदानीमिव सर्वत्र दृष्टान्नाधिकमिष्यते ।
उपलम्भानुसारेण व्यवस्थासिद्धिरीदृशी ॥
यज्जातीयैः प्रमाणैस्तु यज्जातीयार्थदर्शनम् ।
भवेदिदानीं लोकस्य तथा कालान्तरेऽप्यभूत् ॥

यत्राप्यतिशयो दृष्टः स स्वार्थानतिलङ्घनात् ।
दूरसूक्ष्मादिदृष्टौ स्यान्न रूपे श्रोत्रवृत्तिता ॥
येऽपिचातिशया दृष्टाः प्रज्ञामेधाबलैर्नृणाम् ।
स्तोकस्तोकान्तरत्वेन न त्वतीन्द्रियदर्शनात् ॥
एकेन तु प्रमाणेन सर्वज्ञो येन कल्प्यते ।
नूनं स चक्षुषा सर्वान् रसादीन् प्रतिपद्यते ॥
सर्वज्ञो दृश्यते तावन्नेदानीमस्मदादिभिः ।
निराकरणवच्छक्या नचासीदिति कल्पना ॥
नचागमेन सर्वज्ञः, तदीयेऽन्योन्यसंश्रयात् ।
नरान्तरप्रणीतस्य प्रामाण्यं गम्यते कथम् ॥
अनादेरागमस्यार्थो नच सर्वज्ञ आदिमान् ।
कृत्रिमेण त्वसत्येन स कथं प्रतिपाद्यते ॥
सर्वज्ञसदृशं कंचिद्यदि पश्येम संप्रति ।
उपमानेन सर्वज्ञं जानीमो हि ततः परम् ॥
नचापि स्मृत्यविच्छेदात्सर्वज्ञः परिकल्प्यते ।
विगानाच्छिन्नमूलत्वात् कैश्चिदेव परिग्रहात् ॥
सर्वज्ञोऽसाविति ह्येव तत्काले तु बुभुत्सुभिः ।
तज्ज्ञानज्ञेयविज्ञानरहितैर्गम्यते कथम् ॥
कल्पनीयाश्च सर्वज्ञाः भवेयुर्बहवस्तदा ।
य एव स्यादसर्वज्ञः स सर्वज्ञं न बुद्ध्यते ॥

सुगतो यदि सर्वज्ञः कपिलो नेति का प्रमा ।
तावुभौ यदि सर्वज्ञौ मतिभेदः कथं तयोः ॥
रागादिरहिते बुद्धे निर्व्यापारे व्यवस्थिते ।
देशनाऽन्यप्रणीतैव स्याद्दृते प्रत्यवेक्षणात् ॥
सान्निध्यमात्रतस्तस्य पुंसश्चिन्तामाणेरिव ।
निस्सरन्ति यथाकामं कुड्यादिभ्योऽपि देशनाः ॥
एवमाद्युच्यमानं तु श्रद्दधानस्य शोभते ।
कुड्यादिनिस्सृतत्वाच्च नाश्वासो देशनासु नः ॥
किंनु बुद्धप्रणीतास्स्युः किमु कैश्चिद्दुरात्मभिः ।
अदृश्यैर्विप्रलम्भार्थं पिशाचादिभिरीरिताः ॥
एवमेवार्हतैः ज्ञानमिन्द्रियाद्यनपेक्षिणः ।
सूक्ष्मातीतादिविषयं जीवस्य परिकल्पितम् ॥
नर्ते तदागमात्सिद्ध्येत् नच तेनागमो विना ।
दृष्टान्तोऽपि न तस्यान्यः नृषु कश्चित्प्रवर्तते ॥
किंच नादृष्टपूर्वेऽर्थे क्वचिद्भवति भावना ।
आगमात्तु परिच्छिन्ने धर्मे भावनयाऽपि किम् ॥
अतश्च संप्रदायेऽस्मिन् नैकः पुरुष इष्यते ।
बहवः परतन्त्रास्स्युः सर्वेऽप्यद्यत्ववन्नराः ॥
यथाच लङ्घनाभ्यासोऽवधिं नात्येति कुत्रचित् ।
एवंच भावनाभ्यासः सावधिस्स्यात्स्वभावतः ॥

2 अत्र सर्वज्ञसिद्धान्तवादिनैयायिकादिभिः ।
प्रत्युक्तं विस्तरेणात्र सारांशस्त्वयमुच्यते ॥
परश्शतपरिक्षोदात्परस्तादपि वादिभिः ।
उपलम्भबले स्थेयं तदादावेव गृह्यताम् ॥
वैशेषिकादिभिस्त्वार्षं सिद्धदर्शनमित्यपि ।
अलौकिकं च विज्ञानं किंचिदङ्गीकृतं यथा ॥
विद्याऽविद्याविभेदेन ज्ञानं द्विविधमिष्यते ।
प्रात्यक्षिकी लैङ्गिकी च स्मृतिश्चाप्यार्षलक्षणा ॥
एवं चतुर्विधा विद्या तथाऽविद्या चतुर्विधा ।
विपर्ययस्संशयश्च यश्चाप्यालोचनात्मकः ॥
स्यादनध्यवसायस्सः चतुर्थस्स्वप्नलक्षणः ।
एवं ये ऋषयस्सिद्धाः ते वै सर्वज्ञलक्षणाः ॥
मनःकरणकं ज्ञानं भावनाभ्याससंभवम् ।
भवति ध्यायतां धर्मे कान्तादाविव कामिनाम् ॥
यथाऽनुवाकग्रहणे संस्थाऽभ्यसनकल्पितः ।
स्थिरः करोति संस्कारः पाठस्मृत्यादिपाटवम् ॥
तथैव भावनाभ्यासात् योगिनामपि मानसम् ।
ज्ञाने सकलविज्ञेयसाक्षात्कारे क्षमं भवेत् ॥
अस्मदादेश्च रागादिमलावरणधूसरम् ।
मनो न लभते ज्ञानप्रकर्षपदवीं पराम् ॥

प्रत्यहं भावनाभ्यासक्षपिताशेषकल्मषम् ।
योगिनां तु मनश्शुद्धं कमिवार्थं न पश्यति ॥
तदेवं क्षीणदोषाणां ध्यानावहितचेतसाम् ।
निर्मलं सर्वविषयं ज्ञानं भवति योगिनाम् ॥
अपिचानागतज्ञानं अस्मदादेरपि क्वचित् ।
प्रमाणं प्रातिभं श्वो मे भ्राताऽऽगन्तेति दृश्यते ॥
नानर्थजं न संदिग्धं न बाधविधुरीकृतम् ।
न दुष्टकारणं चेति प्रमाणमिदमिष्यताम् ॥
क्वचिद्बाधकयोगश्चेत् अस्तु तस्याप्रमाणता ।
यत्रापरेद्युरभ्येति भ्राता तत्र किमुच्यताम् ॥
काकतालीयमिति चेत् न प्रमाणं प्रदर्शितम् ।
नवैतत्काकतालीयमिति चाशङ्कितुं क्षमम् ॥
स्वप्नज्ञाने हि संवादोऽदृष्टेन क्वचिदिष्यते ।
एवं प्रकृष्टादृष्टेन किमसाध्यं भविष्यति ॥
न त्वं वेत्सि मदध्यक्षं त्वदध्यक्षं न वेद्म्यहम् ।
अन्याध्यक्षं पुनश्चावां नैव जानीवहे उभौ ॥
योगीन्द्रियागोचरत्वं धर्मे वेत्ति कथं भवान् ।
उभयस्यापरोक्षत्वान्निषेद्धुं न हि शक्यते ॥
त्वया तु यदि सर्वेषां प्रत्यक्षं ज्ञातमीदृशम् ।
तर्हि त्वमेव योगीति योगिनो द्वेक्षि किं वृथा ॥

य एव स्यादसर्वज्ञस्स सर्वज्ञं न बुद्ध्यते ।
इति तद्बोधबोधार्थी तन्निषेधेऽपि न क्षमः ॥
य एव स्यादसर्वज्ञः स सर्वज्ञं न बुद्ध्यते ।
इति ब्रुवाणास्सार्वज्ञ्यं लभन्तां तन्निषेधतः ॥
3 इदं च पद्ययुगळं ज्ञेयं सर्वार्थसिद्धिगम् ।
फलाफलविचारोऽथ क्रियते संग्रहादिह ॥
जायमाने भावनयाऽप्यनया धर्मदर्शने ।
चोदनैवेत्येवकारः शिथिलस्त्विति तार्किकाः ॥
मीमांसकास्तु तां दृष्टिं स्मृतिरित्येव जानते ।
पातञ्जलाः पुनर्योगदृष्टिमन्यां प्रचक्षते ॥
साक्षात्कुर्वन्ति मन्वाद्याः न हि धर्मं स्वरूपतः ।
किंतु वेदैकवेद्यत्वाकारेणेति विनिर्णयात् ॥
न चोदनालक्षणत्वशास्त्रयोनित्वयोरपि ।
विरोधो योगिदृष्ट्येति वेदान्ताचार्यनिर्णयः ॥
किमर्थं तर्हि वेदानां वेदान्तानां च यत्नतः ।
अप्राप्तविषयत्वं यद्भवदीयैस्समर्थ्यते ॥
उच्यतेऽत्रातथाप्राप्तौ साक्षादेवाप्रमाणता ।
तथाप्राप्तौ पुनः प्रेक्षावद्भिरालस्यशालिभिः ॥
मानान्तरमपेक्ष्येत वेदस्य त्याज्यताऽऽपतेत् ।
फलतोऽप्रामाण्यमेतत् इति सिद्धान्तसंग्रहः ॥

4 यदि प्रामाणिको योगी पुराणं च श्रुतिः स्मृतिः ।
तत्र मानं, नानुमानं वर्ततेऽतिप्रसङ्गतः ॥
धर्मादिविषयत्वं तु मनसो यद्विशिष्यते ।
चक्षुरादेस्तथाभावः नेष्यते केन हेतुना ॥
यथौपनिषदस्त्वीशः नानुमानेन सिद्धयति ।
तथा योगी च शास्त्रेण केवलेन प्रसिद्धयतु ॥
कैश्चित्तु चक्षुषाऽनेन ब्रह्मदर्शनमिष्यते ।
योगजेनाचिन्त्यशक्तिधर्मेण सहकारिणा ॥
दिव्येन चक्षुषा कैश्चिद्ब्रह्मदर्शनमिष्यते ।
शब्दादप्यपरोक्षस्य संभवः कैश्चिदुच्यते ॥
अतीतेऽनागतेऽप्यर्थे सूक्ष्मे व्यवहितेऽपिच ।
प्रत्यक्षं योगिनामिष्टं कैश्चिन्मुक्तात्मनामपि ॥
वैशद्यातिशयात्कैश्चित् स्मृतेर्दर्शनरूपता ।
भावनाया महिम्नेष्टा समानाकारता तु सा ॥
जैमिनीयाश्शाबराश्च भाट्टाः प्राभाकरा अपि ।
सर्वज्ञप्रतिषेद्धारः, सौगता आर्हताः तथा ॥
कापिलाद्या दार्शनिकाः सादिसर्वज्ञवादिनः ।
योगास्तार्किकमुख्याश्चानादिसर्वज्ञवादिनः ॥
स्यातामागमसर्वज्ञावनादी च प्रवाहतः ।
बीजाङ्कुरवदित्युक्तं सादिसर्वज्ञवादिभिः ॥

ज्ञानमेव हि सर्वेषां सिद्धान्तानां समाश्रयः ।
तत्रापिच विवादश्चेन्नियन्ता जन्तुरत्र कः ॥
नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥

(68) विज्ञानवादः.

1 अथ विज्ञानवादस्य सारोपन्यासपूर्वकम् ।
संगृह्यते प्रतिक्षेपसारो नयविदां मतः ॥
योगस्य लक्षणं त्वेतत् शमधा च विपश्यना ।
समाधिश्शमधेत्युक्तः सम्यज्ज्ञानं विपश्यना ॥
ताभ्यां द्वाभ्यां बलीवर्दसदृशाभ्यां य ऊह्यते ।
स मार्गो योग इत्युक्तः तेनाचरति यः पुनः ॥
स योगाचार इत्युक्त इति भास्करभाषितम् ।
शमधादिपदं प्रायः पालीभाषेति गम्यते ॥
अविभागोऽपि वित्त्यात्मा विपर्यासितदर्शनैः ।
ग्राह्यग्राहकसंवित्तिभेदवानिव लक्ष्यते ॥
इति योगाचारमतं प्रायः सर्वत्र विश्रुतम् ।
वैशेषिकमतं चापि यौगमित्येव कीर्त्यते ॥
योगाचारविभूत्या यस्तोषयित्वा महेश्वरम् ।
चक्रे वैशेषिकं शास्त्रमिति प्राशस्तभाषितम् ॥

तथाच योगाचाराख्याः केचिद्वैशेषिका अपि ।
प्रथिता इति गम्यन्ते युक्तिमानादिसाम्यतः ॥
2 तद्योगाचारसिद्धान्तयुक्तयः क्रमशोऽधुना ।
निरूप्यन्तेऽत्र संगृह्य विप्रकीर्णाः क्वचित्क्वचित् ॥
नीलपीतादिवस्तूनां ज्ञानाकारत्वकल्पना ।
लघ्व्यर्थाकारपक्षे तु न स्वतो भासते जडः ॥
तद्ग्राहकाकारता च कल्पनीयेति गौरवम् ।
बाह्यान्तरकृतो भेदः परमार्थो न हीष्यते ॥
ग्राहकाद्विच्छिन्नता हि मता ग्राह्यस्य बाह्यता ।
न शरीरापेक्षयाऽतः विच्छेदोऽसिद्ध एव सः ॥
बहिर्वदवभासोऽपि भेदवासनया कृतः ।
परिच्छेदान्तराद्योऽयं भावो बहिरिव स्थितः ॥
ज्ञानस्याभेदिनो भेदप्रतिभासोऽप्युपप्लवः ।
सहोपलम्भनियमादभेदो नीलतद्धियोः ॥
ज्ञानमेवैवमाकारमात्मना प्रथते यतः ।
नाप्रत्यक्षस्य तस्यास्ति प्रमाणान्तरतो गतिः ॥
संवेद्यत्वाच्च नीलादेर्ज्ञानाकारत्वनिश्चयः ।
अर्थान्तरस्य च ग्राह्यलक्षणं न हि युज्यते ॥
ज्ञानं प्रकाशकं लोके ह्यप्रकारस्य वस्तुनः ।
तस्मात् ज्ञानं ग्रहीतव्यं प्रागर्थादिति निश्चितम् ॥

प्रकाशकोऽप्यविदितो दीपादिर्न प्रकाशकः ।
अप्रत्यक्षोपलम्भस्य नार्थदृष्टिः प्रसिध्यति ॥
अविशेषोऽन्यथा स्वीयपरकीयोपलम्भयोः ।
निराकारं च विज्ञानं ग्रहीतुं नैव शक्यते ॥
प्रतिकर्मव्यवस्थाऽपि साकारत्वे प्रकल्पते ।
आकारसहितैवैषा धीः कारकसमुद्भवा ॥
नैवान्यथा स्याद्विषयनियमस्यावधारणा ।
नार्थैरेव विशेषस्तु निराकाराधियां भवेत् ॥
तत्रानुभवमात्रेण ज्ञानस्य सदृशात्मनः ।
भाव्यं तेनात्मना येन प्रतिकर्म विभज्यते ॥
अर्थेन रज्यमानं हि निराकारं निसर्गतः ।
ज्ञानं न खलु पश्यामः लाक्षया स्फटिकं यथा ॥
इत्थं सत्यपि बाह्येऽर्थे ज्ञानस्याकारकल्पना ।
भवेदेवेति तत्रैव संतोषेण स्थितिः वरम् ॥
अर्थाकारो गृहीतश्चेत् ज्ञानेन स्वगतः पुनः ।
ज्ञानान्तरेण ग्राह्यस्स्यात् तदाऽऽकारद्वयग्रहः ॥
एवमेवाभ्युपगमे भवेदेवानवस्थितिः ।
तद्ग्रहस्यानपेक्षायामाद्यस्यैवाग्रहो वरम् ॥
3 अन्योन्यसंसर्गधर्मो नाकार इति साम्प्रतम् ।
अनर्थजस्मृतिस्वप्नबुद्धिष्वाकारदर्शनात् ॥

ज्ञानं स्वच्छं हि चिन्मात्ररूपं चाप्यविलक्षणम् ।
तस्य नीलादिभेदस्तु वासनैकनिबन्धनः ॥
अत एव तुरीये तद्वासनोच्छेदसंभवे ।
सच्चिन्मात्रैकरूपेण विज्ञानमवभासते ॥
4 वासना नाम ताद्रूप्यं बीजपूरसुमादिवत् ।
पूर्वमात्मसरूपेण चोत्तरं जनयेत्सदा ॥
उत्तरं वास्यत इति पूर्वं वासयतीत्यपि ।
व्यवहारः परं सर्वं सर्वात्मकमिति स्थितम् ॥
अपि सर्वं च विज्ञानं सर्वाकारं तथाऽपिच ।
कदाचित्कुत्रचित्काचित् वासनाऽर्थक्रियां क्रियात्॥
यथा परेषां संस्कारः कश्चित्कांचित् स्मृतिं क्रियात्
यथा च शब्दः सर्वार्थः बोधकोऽर्थस्य कस्य चित् ॥
न संवित्तेस्सत्तयैव युक्ता विषयवेदना ।
तस्यास्सर्वत्राविशेषादविशेषप्रसङ्गतः ॥
ग्राह्यलक्षणतादात्म्यात्तत्सरूपयितुं क्षमम् ।
ततश्च ज्ञानवैचित्र्यं समनन्तरसात्कृतम् ॥
5 ग्राह्यलक्षणयोगाच्च ग्राहकान्न विभिद्यते ।
विधान्तरासंभवेन तादात्म्यं ग्राह्यलक्षणम् ॥
ग्राह्यत्वं यदि हेतुत्वं ग्राह्यं स्याच्चक्षुराद्यपि ।
आकारार्पणयोग्यत्वं नीलादौ न हि निश्चितम् ॥

नार्थाकारस्य चारोपः नैव च प्रतिबिम्बनम् ।
नचापि तस्य निष्पत्तिः नापि संसर्गरूपता ॥
नानन्तरप्रत्ययाख्यवासनायोग एववा ।
न मध्यवस्त्वाकारश्च नैवं वादान्तराण्यपि ॥
ग्राह्यत्वं नापि सारूप्यं नापि सान्निध्यलक्षणम् ।
एकदेशेन सारूप्ये सर्वस्स्यात्सर्ववेदकः ॥
सर्वात्मना तु सारूप्ये ज्ञानमज्ञानतां व्रजेत् ।
तादात्म्यमेव ग्राह्यत्वं परिशेषाद्व्यवस्थितम् ॥
6 नीलं संवेदनादेव स्वात्मनो न विभिद्यते ।
संवेद्यते न ह्यनात्मा नीलवित्तौ च पीतवत् ॥
यद्वेद्यते यया बुद्ध्या तत्तया न विभिद्यते ।
यथाऽऽत्मा वेद्यते बुद्ध्या तया नीलादयस्तथा ॥
संयोगात्समवायाद्वाऽप्येकार्थसमवायतः ।
कार्यकारणभावाद्वा व्याप्तिरव्याप्तिदूषिता ॥
परिशेषात्तु तादात्म्यमास्थेयं सर्ववादिभिः ।
तस्माद्विज्ञानमेवार्थः कामदोग्ध्री हि वासना ॥

(69) विज्ञानवादनिरासः.

1 अत्रोच्यते न्यायविदां प्रत्युक्तीनां च संग्रहः ।
न ह्यर्थः कल्प्यते किंतु सन्नेव प्रतिभासते ॥

लघ्वी युक्तिः कल्पनायां न हि क्लृप्ते प्रसर्पति ।
आकारोऽनतिरिक्तश्चेत्समूहालम्बने धियः ॥
ऐक्यं स्यान्नीलपीतादेरतिरिक्तो न संमतः ।
अपोहरूपं नैल्याद्यमितिचेन्नीलपीतते ॥
समाविशेतां नैकत्र विरोधो वा विलीयते ।
ग्राहकाद्विच्छिन्न एव ग्राह्याकारोऽवभासते ॥
इदं नीलमिति ह्येव न त्वहं नीलमित्यपि ।
तदैक्येनावभासोऽस्ति नापि धीः स्वप्रकाशिनी ॥
यदि ज्ञानं स्वप्रकाशं अहं नीलमिति प्रजाः ।
सर्वा अप्यनुसंदध्युः नच मुह्यति कश्चन ॥
उपेयनिह्नवश्शक्यः नोपायेनेह कुत्रचित् ।
रूपप्रकाशकं चक्षुः चक्षुरेव प्रकाशताम् ॥
इत्युक्त्वा न क्वचिद्रूपमपह्नोतुं हि साम्प्रतम् ।
मूर्तो द्रवश्च कठिनः महान् बाह्योऽवगम्यते ॥
स्वच्छं तद्विपरीतं च ज्ञानं भासकमिष्यते ।
अतस्तदैक्यवादोऽसौ नाविवादो विदां मतः ॥
2 उपलम्भोऽर्थदृष्टिः स्यात् न तु तद्दृष्टिरिष्यते ।
अगृहीतं ज्ञानमेव भवेदर्थप्रकाशकम् ॥
किंच प्रदीपवद्धूमवद्वा स्याद्यदि धूमवत् ।
भवेदर्थानुमेयत्वं तदिदं त्वदसंमतम् ॥

आकारद्वयसंवित्तिविरहान्न च दीपवत् ।
घटं दीपं च पश्यामीत्यस्ति द्वितयवेदनम् ॥
न तु ज्ञानेन विज्ञेयं जानामीति द्वयग्रहः ।
उट्टङ्कितोऽसौ दीपादिदृष्टान्तश्चक्षुरादिना ॥
त्रयः प्रकाशकाः दीपधीशब्दाः स्वप्रकाशकाः ।
इत्ययुक्तं तत्र शब्दः समयग्रहपूर्वकम् ॥
अर्थं प्रकाशयत्यात्मग्रहे श्रोत्रमपेक्षते ।
दीपोऽपि चक्षुषा ग्राह्यः ग्राहयत्यर्थमञ्जसा ॥
इयान् विशेषः कुम्भादौ चक्षुरालोकमिच्छति ।
आलोकग्रहणे तेन निरपेक्षमिति स्थितम् ॥
एतावतैव दीपस्य न भवेत्स्वप्रकाशता ।
स्यादन्यथा घटस्यापि बैडालाक्ष्याद्यपेक्षया ॥
तस्मात् ज्ञानं नाम वस्तु परस्यैव प्रकाशकम् ।
दृश्यते न स्वप्रकाशमिति न्यायविदां मतम् ॥
3 या चोपजनिता यस्मात्कर्मकारकतो मतिः ।
तादृग्विषयनैयत्यवती सा व्यवतिष्ठते ॥
अयं च नियमो वस्तुस्वभावैकनिबन्धनः ।
समः पर्यनुयोगोऽयं ज्ञानाकारमतेऽपि ते ॥
अन्वयव्यतिरेकाभ्यामर्थः स्याज्जनको धियाम् ।
अपि प्रवृत्तिर्व्याख्याता ततो नियतगोचरा ॥

नीलपीतादिविषयाः सर्वसाधारणा मताः ।
तेषां विज्ञानरूपत्वेऽसाधारण्यं प्रसज्यते ॥

नर्तकीभ्रूलताक्षेपः न ह्येकः पारमार्थिकः ।
परमाणुसमूहत्वादेकत्वं तस्य कल्पितम् ॥

साधारण्यस्योपपत्तिरित्थं या चोपवर्णिता ।
न्यायवार्तिकतात्पर्यटीकायां सा प्रतीरिता ॥

4 अभेदपक्षे सुदृढसहार्थानुपपत्तितः ।
सहोपलम्भनियमोऽसिद्धः हेतुस्त्वदीरितः ॥

सहधीरेकसामग्रीवेद्यत्वेनेष्यते क्वचित् ।
तावन्मात्रेण चैकत्वे व्यवहारो विरुध्यते ॥

नीलग्रहणवेलायां ग्राहको नैव गम्यते ।
ग्राह्यमात्रावभासोऽयमिदं नीलमिति ग्रहः ॥

न स्मरामि मया कोऽपि गृहीतोऽर्थस्तदेति हि ।
ग्राह्याकारानुपश्लिष्टः ग्राहकोऽप्यवमृश्यते ॥

ग्राह्यग्रहणतादात्म्यं शशशृङ्गाद्यसद्ग्रहे ।
अस्तिचेद्व्याहतिः नो चेत् व्यभिचारस्सुदुस्तरः ॥

किंच सर्वज्ञसंवित्तौ सर्वाकारानुबन्धतः ।
सर्वस्वभावता वा स्यान्निस्स्वभावत्वमेव वा ॥

इत्थं विभक्तज्ञानार्थाकारसंवेदनात्कथम् ।
एकोपलम्भनियमादभेदोक्तिर्न साहसम् ॥

5 ननु चैकत्र नक्षत्रं तारका तिष्य इत्यपि ।
विरुद्धलिङ्गसंसर्गः कथं तस्मादुपप्लवः ॥
परिव्राट्कामुकशुनामेकस्यां प्रमदातनौ ।
कुणपः कामिनी भक्ष्यमिति तिस्रो विकल्पनाः ॥
एकस्यां लिङ्गवचने दाराः इति कथं स्मृते ।
एकता स्त्रीलिङ्गता च कथं षण्णगरीत्यपि ॥
कथंवा ह्रस्वदीर्घादिव्यवहारो मिथो भवेत् ।
तस्माद्विज्ञानभेदेन वासनाभेदहेतुना ॥
विरोधस्सुपरीहार्यः न स्वतन्त्रार्थकल्पना ।
अत्रोच्यते शब्दशास्त्रान्नार्थतत्त्वस्य निह्नवः ॥
लिङ्गसंख्याविपर्यासः शब्दसाधुत्वमूलकः ।
नार्थं भिनत्ति साधुत्वं समयैकनिबन्धनम् ॥
नार्थासंस्पर्शिता चास्य तावता व्यवतिष्ठते ।
यथा संकेतितो लोके तथा शक्नोति भाषितुम् ॥
अपिवा वस्तुताद्रूप्यसदसत्त्वानपेक्षया ।
शब्दप्रयोगसाधुत्वमन्वाख्यायेत केवलम् ॥
संस्त्यानप्रसवस्थानैः यथा पातञ्जले मते ।
लिङ्गत्रयस्य सद्भावः स्यात्सत्त्वादिगुणात्मनः ॥
6 परिव्राट्प्रभृतीनां तु कुणपादिप्रतीतयः ।
अर्थस्यानेकशक्तित्वान्नावहन्त्यर्थशून्यताम् ॥

किं न भक्षयितुं शक्या नारी कौलेयकेन सा ।
किंवा न शमयत्येषा कामिनो मदनज्वरम् ॥
कुणपात्केन रूपेण योगिनः सा विशिष्यते ।
धीत्रयं तु न सर्वेषामभावात्सहकारिणः ॥
या प्रतिप्राणि नियता विविधा सहकारिणी ।
वासना तदपेक्षः स्यात् आत्मलाभो धियां पुनः॥
स्वप्रत्ययानुकारोऽपि बह्वाकारेषु वस्तुषु ।
निर्धारणे भवेद्धेतुः नापूर्वाकारकल्पने ॥
तथैव तदुपेतव्यं यद्यथैवोपलभ्यते ।
न चार्थरूपात् भेदेन धियामस्ति निरूपणम् ॥
तस्माद्देशादिसद्भावनिमित्तैः प्रत्ययैः पृथक् ।
वस्त्वाकाराः प्रतीयेरन् उद्भवाभिभवात्मकाः ॥
हेतुश्चेद्वासनाभेदः विविधप्रतिभोद्भवे ।
तेनैव सर्वनिर्वाहे किमर्थः परिकल्प्यते ॥
न ह्यर्थः कल्प्यते किं तु क्लृप्त एवावभासते ।
बहुरूपस्य चार्थस्य त्वेकरूपत्वभासने ॥
कल्प्यते कारणं किंचिन्नियतं वासनादिकम् ।
भवन्मते वासनायाः ज्ञानरूपत्वमिष्यते ॥
न हि स्वच्छे च विज्ञाने किंचित्कालुष्यकारणम्।
अतिरेके तु पर्यायात्सोर्थ एव विनिश्चितः ॥

पदार्थसमसंख्याकाः स्वीकार्या एव वासनाः ।
नहि गोवासनाभेदादुदेतुं हस्तिधीरलम् ॥
निरन्वयविनाशाच्च न तदंशोऽनुवर्तते ।
यतः कथंचिद्वास्येत पूर्वेण ज्ञानमुत्तरम् ॥
तस्मात्प्रतीतिशरणा पदार्थानां व्यवस्थितिः ।
प्रतीतिनिह्नवे सर्वनिह्नवात्स्वार्थनिह्नवः ॥
7 विषयाणां मिथो भेदो यदि स्याद्बुद्धिभेदतः ।
बुद्धिभेदोऽपि विषयभेदादिति कथं भवेत् ॥
बुद्धयो विषयाश्चैव स्वतएव परस्परम् ।
भिन्नाः किन्त्वर्थभेदोऽयं बुद्धिभिः ज्ञायते स्वयम् ॥
अतः प्रत्यक्षबुद्धेस्सः कारणं विषयात्मना ।
इति स्वीकुर्वते प्राज्ञाः तस्मान्नान्योन्यसंश्रयः ॥
अर्थस्य बुद्धिहेतुत्वमन्वयव्यतिरेकतः ।
सिद्ध्यतीत्यत्र विज्ञेया प्रसिद्धोदाहृतिः पुनः ॥
यदाहि देवदत्तार्थी कश्चिद्गच्छति तद्गृहम् ।
तत्रासन्निहितं चैनं गत्वाऽपि स न पश्यति ॥
क्षणान्तरे स आयान्तं देवदत्तं निरीक्षते ।
तत्र तत्सदसत्त्वेन तथात्वमवगम्यते ॥
8 क्षणभेदश्च सन्तानभेदो ज्ञानान्तरेण चेत् ।
गृहीतश्चागृहीतश्चानिष्टो विज्ञानवादिनः ॥

ज्ञानान्तरेण ज्ञानेषु गृह्यमाणेष्वसंभवि ।
तादात्म्यं तत्र यः पन्थाः सर्वत्रापि स एव नः ॥
यदि त्वनागतातीतज्ञानग्राहिषु चैकता ।
अनागतमतीतं वा स्वयं स्यात्किं ग्रहीष्यति ॥
तर्ह्येकक्षणशेषो वा नित्यैका संविदेव वा ।
स्वीक्रियेत स्वसिद्धान्तोऽप्यर्थायोगान्न सिद्ध्यति ॥
अथ बोधेन तादात्म्ये नृशृङ्गाद्यपि सद्भवेत् ।
किंच बोध्येन तादात्म्ये कुशली मध्यमागमः ॥
मिथोविरुद्धैः युगपत् ज्ञातैः बुद्धेस्तदात्मता ।
कथं स्यात् बोध्यतादात्म्यानुपपत्तिपराहता ॥
अथ बोध्यस्य मिथ्यात्वात्तादात्म्यमुपचर्यते ।
तदा सहोपलम्भादिहेतवः नहि साधकाः ॥
वेदान्ताद्वैतसिद्धान्तेऽप्यभेदो नहि साध्यते ।
भेदो व्यासिद्ध्यत इति भाष्यभामत्युदीरितम् ॥
भेदमात्रापह्नवस्तु त्रय्यन्ताद्वैतवादिनाम् ।
भिद्यमानापह्नवस्तु स्याद्बाह्याद्वैतवादिनाम् ॥
किंचासद्विषया सर्वा बुद्धिर्यद्युपगम्यते ।
ज्ञानमेकं सत्यमिति बुद्धबुद्धिरपीदृशी ॥
तदप्यस्त्वितिचेत्सर्वा धीर्मृषेत्यपि धीर्मृषा ।
तस्मान्निषेधसिद्धान्तः स्वयमेव विहन्यते ॥

9 चिन्तनीयमिदं चात्र परीक्षकविशोधितम् ।
विज्ञानवादसर्वस्वं केवलं सूक्ष्मया दृशा ॥
ज्ञानाकारात्मके लोके बाह्याकारविकल्पना ।
अपरस्सोऽपि विज्ञानाकार एवेति निर्णयः ॥
पञ्चभूतात्मके लोके यद्यद्वस्तूपजायते ।
तावद्भूतात्मकं सर्वं नच किंचिदभौतिकम् ॥
सौवर्णमेरुसंभूतं नादुर्वर्णं कथं भवेत् ।
ज्ञानात्मके प्रपञ्चेऽस्मिन् दुर्लङ्घा ज्ञानवागुरा ॥
इति विज्ञानवादस्य मूलं विज्ञानवासना ।
वासना चेत् ज्ञानशक्तिः ज्ञानमेवावशिष्यते ॥
वासना बाह्यशक्तिश्चेत् बाह्यमेवावशिष्यते ।
यदि चोभयशक्तिस्स्यादुभयं चैव सिद्ध्यति ॥
आन्तरं बाह्यमित्येवं व्यवहारो हि वासना ।
यथैव वासितो जन्तुः तथैव प्रतिपद्यते ॥
विद्या च पूर्वप्रज्ञा च श्रद्धा संस्कारकर्मणी ।
आत्मनो रूपमेतत्स्यात्तथा काममयः पुमान् ॥

70 क्षणभङ्गवादनिरासः.

1 त्यज्यतां दीर्घसंसारकारणं स्थिरताग्रहः ।
गृह्यतां क्षणभङ्गित्वं परवैराग्यकारणम् ॥

प्रत्यभिज्ञाप्रमाणेन वस्तूनां स्थैर्यमिष्यते ।
प्रत्यभिज्ञा नाम केयमिति स्पष्टं निरूप्यताम् ॥
स एवायं घट इति ज्ञानमेकमुत द्वयम् ।
संस्कारमात्रजन्यं यद्विज्ञानं स्मरणं तु तत् ॥
इन्द्रियादिप्रमाणोत्थं ज्ञानं त्वनुभवो मतः ।
प्रत्यभिज्ञा त्विन्द्रियेण जन्यं संस्कारसाह्यतः ॥
अयमेकत्वसिद्धान्तः द्वित्वसिद्धान्त उच्यते ।
ज्ञानद्वयं प्रत्यभिज्ञा स्मरणानुभवात्मकम् ॥
वक्तव्यं कारणं तत्र यद्येकत्वमुपेयते ।
स्मृतौ हेतुर्हि संस्कारोऽनुभवे हेतुरिन्द्रियम् ॥
उभाभ्यां च न सम्भूय तज्ज्ञानमुपजन्यते ।
पृथक्पृथक् स्वकार्यं हि निर्ज्ञातं कौशलं तयोः ॥
स्मृतिः स्मर्तव्यविषया ग्रहणं ग्राह्यगोचरम् ।
न तदैक्यपरामर्शि दृश्यते प्रत्ययान्तरम् ॥
यथा निरन्तरोत्पन्ने घटज्ञानपटस्मृती ।
न तुल्यविषये तद्वदेते अपि भविष्यतः ॥
यद्वा भवतु नामेदं एकमेव हि वेदनम् ।
तथापि कीदृशं वस्तु स्पृशतीति परीक्ष्यताम् ॥
अतीतकालयुक्तं चेत् स्मरणान्न विशिष्यते ।
अनागतविशिष्टं चेत् संकल्पप्रायमेव तत् ॥

वर्तमानैकनिष्ठं चेत् स्थिरत्वं तर्हि सुस्थिरम् ।
कालत्रयपरीतं चेत् विरोधात्तत्तु दुर्लभम् ॥
परस्परपरित्यागव्यवस्थितनिजात्मनाम् ।
एकत्र न समावेशः कथंचिदुपपद्यते ॥
स्मरणप्रत्यभिज्ञानस्वकर्मफलभोक्तृता ।
क्षणिकत्वेऽपि कथिता कार्यकारणभावतः ॥
2 क्षणभङ्गानुमानं च क्षणवादे निरूपितम् ।
तन्निरासांशसारोऽत्र संक्षिप्य प्रतिपाद्यते ॥
अर्थक्रियासमर्थत्वं सत्त्वं यत्तावदुच्यते ।
तदसत्कूटहेमादौ व्यभिचारावधारणात् ॥
किंत्वबाधितसद्बुद्धिगम्यता सत्त्वमिष्यते ।
क्वचिच्च कालदेशादिनिबन्धनमपीष्यते ॥
अर्थक्रियासमर्थस्य तदुत्थं सत्त्वमस्तु वा ।
तदपि व्याप्तिशून्यत्वात् न हेतुर्गन्धवत्त्ववत् ॥
क्षणिकस्यापि भावस्य सत्त्वं नास्त्येव सोऽपिहि ।
क्रमेण युगपद्वापि न कार्यकरणे क्षमः ॥
क्षणिकस्य क्रमः कीदृक् युगपत्करणे पुनः ।
एकवस्त्वात्मकस्यापि रूपभेदः प्रसज्यते ॥
कार्याण्येकेन रूपेण भिन्नानि जनयेत्कथम् ।
रूपभेदविरोधात्तु वस्तुनो नास्तिता भवेत् ॥

देशकालविकल्पेऽपि क्षणस्य क्षुण्णता भवेत् ।
स्थिते हि वस्तुसद्भावे क्षणिकत्वं परीक्ष्यते ॥
3 क्षणिकत्वे पदार्थानां कारणत्वं च दुर्ग्रहम् ।
सर्वथा परनिष्पत्तौ निर्व्यापारो न कारणम् ॥
पूर्वक्षणविनाशे च कल्प्यमाने निरन्वये ।
उत्तरस्यानिमित्तत्वात् उत्पत्तिर्नोपपद्यते ॥
अत्यन्तासन्नसौ तस्मिन् न तावद्व्यापृतिक्षमः ।
स्वयं चाभावदष्टत्वात् कस्मिन् काले करिष्यति ॥
नाशोत्पादसमत्वेऽपि नैरपेक्ष्यात्परस्परम् ।
न कार्यकारणत्वे स्तः तद्व्यापारानवग्रहात् ॥
न ह्यलब्धात्मकं वस्तु पराङ्गत्वाय कल्पते ।
तस्मात्प्राक्कार्यनिष्पत्तेः व्यापारो यत्र दृश्यते ॥
तदेव कारणं तस्य न त्वानन्तर्यमात्रकम् ।
सव्यापारस्य कर्तृत्वे क्षणिकत्वं तु दुर्घटम् ॥
4 सत्त्वादक्षणिकत्वस्य सिद्धेर्हेतुर्विरुध्यते ।
एवं च सत्त्वं व्यावृत्तं क्षणिकेभ्यो विशेषतः ॥
अत एव च कार्याणां युगपन्न समुद्भवः ।
न चापि कृत्वा करणं सामग्री हि न सर्वदा ॥
प्राणिकर्मविपाकोऽपि सामग्र्यन्तर्गतो मतः ।
सर्वत्र सुखदुःखादिहेतोस्समुपपादनात् ॥

समर्थत्वासमर्थत्वविकल्पेऽतिप्रसङ्गतः ।
सामग्र्या एव सामर्थ्यं ततः कार्यस्य दर्शनात् ॥
विनश्वरस्वभावेति यदुक्तं तत्र चिन्त्यताम् ।
जायमानस्वभावत्वे कृतं जननहेतुभिः ॥
नाजायमानभावेऽपि कर्तुं शक्यो नृशृङ्गवत् ।
तस्मात्स्वभावयोगेऽपि व्यवस्था सहकारिभिः ॥
5 स एवायमिति ज्ञानं प्रत्यभिज्ञेति कीर्त्यते ।
यः पूर्वमासीत्कुम्भादिः सोऽस्तीदानीमपीति हि ॥
अतीतकालवानर्थः तद्बुद्धाववभासते ।
भूतः कालो भूततया विषयीक्रियते तया ॥
अतीतस्येन्द्रियज्ञाने कथं विषयतेति चेत् ।
शतमाम्रान् बभक्षेति कथमत्र प्रतीयते ॥
अतीतैकोनशतकरसालफलगोचरा ।
यथा तथाऽतीतकालयोगोऽपि प्रतिभासताम् ॥
प्रतिभाससमारूढः प्रत्यभिज्ञायते यदा ।
तदेन्द्रियार्थसंसर्गाच्चैका धीरुपजायताम् ॥
अथवा प्रत्यभिज्ञानं गन्धवत्कुन्दबुद्धिवत् ।
तच्चैकं मानसं ज्ञानं पूर्वज्ञानविशेषिते ॥
अथ सन्तानमाश्रित्य क्रियते तत्समर्थनम् ।
न, तस्य भिन्नाभिन्नत्वविकल्पानुपपत्तितः ॥

6 सद्यो जातस्य हि शिशोः मुखोल्लासादिहेतुभिः ।
हर्षशोकादियोगश्च भवतीत्यनुमीयते ॥
तस्मान्मुखविकासादेः हर्षादिः तस्य हि स्मृतिः ।
स्मृतेरनुभवो हेतुः स च जन्मान्तरे शिशोः ॥
तस्मात् स्मृतिप्रत्यभिज्ञाप्रामाण्यात् जगतः स्थितिः
न तत्प्रामाण्यसंत्यागी लौकिको नाप्यलौकिकः ॥
सहकारिविशेषस्य सन्निधेरप्यसान्निधेः ।
करणाकरणे स्यातां तौ च कालविभेदतः ॥
कालद्वयविरोधस्तु स्वव्यपेक्षानिबन्धनः ।
अन्यापेक्षौ च तौ पूर्वापरौ संभवतस्सदा ॥
अतत्तामानिदंतां च तत्त्वेदंत्वे निरस्यतः ।
अन्योन्यप्रतिषेधस्तु न ततस्सेद्धुमर्हति ॥
एकस्य भिन्नकालाभ्यां वैशिष्ट्यं विहतं यदि ।
तथा स्याद्भिन्नदेशाभ्यां पुञ्जसिद्धिर्विरुध्यते ॥
पूर्वापरबहुव्यक्तिव्याप्तिग्रहणसंभवा ।
न काचिदपि युक्तिस्स्यात् सर्वक्षणिकवादिनः ॥
न वैजात्यं विना तत्स्यात् न तस्मिन्ननुमा भवेत् ।
विना तेन न तत्सिद्धं नाध्यक्षं निश्चयं विना ॥
7 अत्र केचित् क्षणविदः सत्त्वाख्यं साधनं पुनः ।
नित्यतत्त्वोपदेशेन भवेदागमबाधितम् ॥

तच्च शून्यं तत्त्वमिति मत्वा हेत्वन्तरं विदुः ।
तदेतद्ध्रुवभावित्वं ध्वंसस्य प्राङ्निरूपितम् ॥
ततश्च सर्वभावानां क्षणिकत्वं व्यवस्थितम् ।
तदेतद्ध्रुवभावित्वं विकल्पासहमित्यपि ॥
न्यायसिद्धाञ्जनग्रन्थे विस्तरेण निरूपितम् ।
इति ज्ञानप्रसङ्गेन क्षणभङ्गो निरूपितः ॥
अनिर्वाच्यमनित्यं च क्षणिकं चेति भेदतः ।
विदुः प्रपञ्चं विबुधाः तथाऽन्येऽप्यन्यथा विदुः ॥
सर्वे ते प्रतिषेद्धारः स्थिरतां रागकारिणीम् ।
व्यतिरेकदृशां सर्वमेकस्मिन् पर्यवस्यति ॥
8 बुद्ध्या विविच्यमानायां स्वभावो नावधार्यते ।
अतो निरभिलप्यास्ते निस्स्वभावाश्च दर्शिताः ॥
इति पद्यं गौतमेन न्यायसूत्रे निराकृतम् ।
प्रमाणतोऽर्थोपलब्धेरिति, तद्भाष्यसंग्रहः ॥
बुद्ध्या विवेचनादेव भावयाथात्म्यनिर्णयः ।
यदस्ति च यथा चेति यन्नास्ति च यथा चवा ॥
सर्वं प्रमाणबलतः उपलब्ध्यैव सिद्ध्यति ।
प्रमाणतो योपलब्धिः सा स्याद्बुद्ध्या विवेचनम् ॥
तेनैव सर्वशास्त्राणि सर्वकर्माणि देहिनाम् ।
सर्वे च व्यवहारास्स्युर्व्याप्तास्तत्सर्वसाक्षिकम् ॥

परीक्षमाणो भावांस्तु विद्वान् बुद्ध्याऽध्यवस्यति ।
इदमस्ति तथा चेदं नास्तीति निरुपद्रवम् ॥
सर्वभावास्सस्वभावांस्स्वभिलप्या इति स्थितम्।
एवं क्रमेण प्रायेण सौगताः प्रत्यवस्थिताः ॥

(71) प्रत्यक्षवादः.

1 अथ प्रमाणभेदानां विचारोऽत्र प्रवर्तते ।
प्रत्यक्षस्य च तत्रादौ विकल्पः प्रविभज्यते ॥
अक्षं प्रतिगतं यत्र सा धीः प्रत्यक्षमुच्यते ।
तां हि चक्षुः जनकतासंबन्धेनानुगच्छति ॥
विषयेऽपि प्रतिगतमक्षं तेनेत्थमुच्यते ।
प्रत्यक्षः पुरुषः योषा प्रत्यक्षेति बुधैरिह ॥
इन्द्रिये संनिकर्षे वा तत्संबन्धात्प्रयुज्यते ।
न च युक्तोऽव्ययीभाव इत्याह न्यायमञ्जरी ॥
2 प्रत्यक्षमेवानुभव इति लौकायतं मतम् ।
परोक्षमनुमित्यादिज्ञानं स्मृतिसमुच्चयः ॥
अनुमानं स्मृतिः प्रत्युत्पन्नकारणसंभवा ।
इति प्राभाकराः प्राहुरित्यपि ज्ञायते क्वचित् ॥
परोक्षमेव विज्ञानं तद्धि स्यादानुमानिकम् ।
प्रत्यक्षमेव नास्तीति सौत्रान्तिकमुखा विदुः ॥

प्रत्यक्षं च परोक्षं चानुभवद्वितयं परे ।
वैभाषिकं मतं त्वेतद्वैशेषिकमपि स्मृतम् ॥
प्रत्यक्षं च परोक्षं चापरोक्षमिति च त्रिधा ।
मानं विभज्य स्वात्मानमपरोक्षं विदुः परे ॥
कल्पनापोढमभ्रान्तं प्रत्यक्षं तच्चतुर्विधम् ।
आद्यमिन्द्रियजं तादृङ्मनोजातं द्वितीयकम् ॥
इन्द्रियोत्थं निर्विकल्पं मन इत्युच्यते हि तैः ।
अनन्तरप्रत्ययोऽपि संपूर्वस्स हि कथ्यते ॥
आत्मसंवेदनं चित्तचैत्तानां स्यात्तृतीयकम् ।
भावनाबलजं योगिज्ञानं तुर्यं प्रकीर्तितम् ॥
इति वैभाषिकैकान्तः न्यायबिन्द्वादिषु स्थितः ।
बाह्यमाभ्यन्तरं चेति द्विधा तदिति तार्किकाः ॥
लौकिकं चालौकिकमित्युभयं द्विविधं मतम् ।
लौकिकं षड्विधं ज्ञेयं त्रिविधं स्यादलौकिकम् ॥
3 तत्प्रत्यक्षं निर्विकल्पं सविकल्पमिति द्विधा ।
अलौकिकं स्मृतिर्वाऽनुमानं वा वेदविन्मतम् ॥
मनसा युज्यते ह्यात्माऽर्थेन्द्रियेण मनस्तथा ।
अर्थेन चेन्द्रियं तस्मात्प्रत्यक्षं न्यायविन्मतम् ॥
सामान्यं वा विशेषो वा किंस्यात्प्रत्यक्षगोचरः ।
इत्यत्रापि विकल्पोऽस्ति प्रसङ्गात्किंचिदुच्यते ॥

विशेषमात्रविषयं निर्विकल्पकमेव तत् ।
प्रत्यक्षमिति ते प्राहुः ये वैभाषिकसौगताः ॥
सामान्यविषयं यत्स्यात् तत्परोक्षमितीर्यते ।
अतः प्रमाणद्वितयं प्रमेयमपि च द्विधा ॥
स विशेषो निर्विकल्पविषयः यत्स्वलक्षणम् ।
स्वतः स्वभिन्नात्सर्वस्माद्व्यावृत्तं हि स्वलक्षणम् ॥
एकस्यार्थस्वभावस्य प्रत्यक्षस्य सतः स्वयम् ।
कोऽन्यो न दृष्टो भागस्स्यात् यः प्रमाणैः परीक्ष्यते
यद्यप्यपोहनिर्मुक्ते न वृत्तिश्शब्दलिङ्गयोः ।
युक्ता तथाऽपि बुद्धिस्तु ज्ञातुः वस्त्ववलम्बते ॥
अनादिवासनादोषात् व्यवहारव्यवस्थितिः ।
परीक्षकपरीक्षायामपोहे पर्यवस्यति ॥
सामान्यमात्रविषयं प्राहुस्सन्मात्रवादिनः ।
महासामान्यमेतत्तु द्रव्यं ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥
सविकल्पकमेवैकं प्रत्यक्षं न द्विधा मतम् ।
शब्दानुवेधात्सर्वत्र तादृशं हीति शाब्दिकाः ॥
न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यश्शब्दानुगमादृते ।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन गृह्यते ॥
4 अथ तार्किकसिद्धान्ते तत्स्वरूपपरिष्कृतिः ।
विशेष्यत्वप्रकारत्वसंसर्गत्वाभिधैः त्रिभिः ॥

विषयत्वैर्निरूप्यं यत्तदेव साविकल्पकम् ।
विशिष्टविषयं ज्ञानं सविकल्पकमुच्यते ॥
विशेषणं विकल्पश्च प्रकारश्च समार्थकाः ।
निर्विकल्पकशब्दोऽतो निर्विशेषार्थवाचकः ॥
तुरीया या विषयता तस्या यत्स्यान्निरूपकम् ।
तन्निर्विकल्पकं ह्युक्तं अविशिष्टार्थगोचरम् ॥
व्यवसायात्मकाध्यक्षवादिनो न्यायवेदिनः ।
यः कल्पनाध्यक्षवादः स तु सौगतसम्मतः ॥
तस्माद्य एव वस्त्वात्मा सविकल्पस्य गोचरः ।
स एव निर्विकल्पस्य शब्दोल्लेखविवर्जितः ॥
क्वचिज्जातिः क्वचिद्द्रव्यं क्वचित्कर्म क्वचिद्गुणः ।
यदेव सविकल्पेन निर्विकल्पेन तत्पुरा ॥
गृह्यते नियमेनैवं क्वचिद्दोषाद्भ्रमोदयः ।
तिमिराशुभ्रमणनौयानक्षोभादिसंभवम् ॥
द्विमृगाङ्कालातचक्रचलद्वृक्षादिदर्शनम् ।
जात्यखण्डोपाधिभिन्नं किंचिद्रूपेण भासते ॥
स्वरूपतश्च जात्यादिः प्रकारत्वेन भासते ।
जातिः द्रव्यत्वादिरूपाऽभावत्वादिरनन्तरः ॥
अतीन्द्रियं निर्विकल्पमनुमानेन गृह्यते ।
विशेषणज्ञानपूर्वा प्रसिद्धा हि विशिष्टधीः ॥

न प्रमा न भ्रमश्चेदमित्यप्यस्ति विनिर्णयः ।
प्रकारतादिशून्यं तत् संबन्धानवगाहि च ॥
संबद्धं वर्तमानं च गृह्यते चक्षुरादिना ।
चक्षुराद्यत्कविषयं परतन्त्रं बहिर्मनः ॥
इति मण्डनमिश्रीयं वाक्यं विधिविवेकगम् ।
अत्कशब्दोऽन्तिकपरः संप्रयोगस्सतस्ततः ॥
अत्के चेन्मधु विन्देत किमर्थं यत्नमाचरेत् ।
इति शाबरवाक्येऽपि तच्छब्दः तादृशार्थकः ॥
5 अथ कौमारिलादीनामेष तादात्म्यवादिनाम् ।
सांख्यादीनां च सिद्धान्ते विभागोऽत्र निरूप्यते॥
अस्ति ह्यालोचनं ज्ञानं प्रथमं निर्विकल्पकम् ।
बालमूकादिविज्ञानसदृशं शुद्धवस्तुजम् ॥
संमुग्धं वस्तुमात्रं तु प्राग्गृह्णन्त्यविकल्पितम् ।
तत्सामान्यविशेषाभ्यां कल्पयन्ति मनीषिणः ॥
सामान्यं च विशेषश्च स्वरूपेणावगम्यते ।
नच व्यावृत्त्यनुगतिरूपेणेति विनिर्णयः ॥
ततःपरं पुनर्वस्तु धर्मैर्जात्यादिभिर्यया ।
बुद्ध्याऽवसीयते साऽपि प्रत्यक्षत्वेन संमता ॥
जातिव्यक्त्योरभेदेन ग्रहः प्राथमिके ग्रहे ।
भेदाभेदस्ततास्सिद्धः स च तादात्म्यलक्षणः ॥

तस्माद्यतोयतोऽर्थानां व्यावृत्तिस्तन्निबन्धनाः ।
जातिभेदाः प्रकल्प्यन्ते तद्विशेषावगाहिनः ॥

(72) विकल्पवादः.

1 निर्विकल्पकमेवैकं प्रत्यक्षं, सविकल्पकम् ।
यत्तु तत् स्मृतिरित्याहुः वैभाषिकमुखा बुधाः ॥
सविकल्पकमप्येतत् प्रत्यक्षमिति वैदिकाः ।
प्रत्यक्षवार्तिकश्लोकान् विलिखामि विविक्तये ॥
2 तेनेन्द्रियार्थसंबन्धे विद्यमाने स्मरन्नपि ।
विकल्पयन् स्वधर्मेण वस्तु प्रत्यक्षवान्नरः ॥
नहि प्रविष्टमात्राणामुष्णाद्गर्भगृहादिषु ।
अर्था न प्रतिभान्तीति गृह्यन्ते नेन्द्रियैः पुनः ॥
यथा त्वाभासमात्रेण पूर्वं ज्ञात्वा स्वरूपतः ।
पश्चात्तत्रावबुध्यन्ते तथा जात्यादिधर्मतः ॥
यदि त्वालोच्य संमील्य नेत्रे कश्चिद्विकल्पयेत् ।
न स्यात्प्रत्यक्षता तस्य संबन्धाननुसारतः ॥
वृद्धप्रयोगगम्याश्च शब्दार्थास्सर्व एव नः ।
तेन यत्र प्रयुक्तोऽयं न तस्मादपनीयते ॥
सिद्धानुगममात्रं हि कर्तुं युक्तं परीक्षकैः ।
न सर्वलोकसिद्धस्य लक्षणेन निवर्तनम् ॥

संबद्धं वर्तमानं च गृह्यते चक्षुरादिना ।
सामान्यं वा विशेषो वा ग्राह्यं नात्र विवक्ष्यते ॥
न शब्दाभेदरूपेण बुद्धिरर्थेषु जायते ।
प्राक्शब्दाद्यादृशी बुद्धिः शब्दादपि हि तादृशी ॥
जात्याद्यर्थान्तरं तस्मात्तद्रूपेष्वेव वस्तुषु ।
विकल्प्य जायते बुद्धिरित्याद्यत्रैव विस्तरः ॥
न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः कालानुगमादृते ।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं कालेन जायते ॥
न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यो देशानुगमादृते ।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं देशेन जायते ॥
न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यश्शब्दानुगमादृते ।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन जायते ॥
न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यस्सत्त्वानुगमादृते ।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं सत्त्वेन गृह्यते ॥
चतुर्षु चैषु न्यायेषु द्वयं मीमांसकैर्मतम् ।
अतः कालश्च देशश्च सकलेन्द्रियगोचरः ॥
तृतीयस्तु पुनः प्रायो वैयाकरणसम्मतः ।
निर्विकल्पकविज्ञानस्थापनाय स खण्ड्यते ॥
तुरीयस्तु सदद्वैतवादिसिद्धान्तसंमतः ।
निर्विशेषपरब्रह्मापरोक्षत्वाय संश्रितः ॥

3 प्रभाकरगुरूणां तु विशेषोऽत्रावधार्यताम् ।
पूर्वानुभूतसंस्कारसचिवं सविकल्पकम् ॥
केवलेन्द्रियसंसर्गजनितं निर्विकल्पकम् ।
यदैकमेव वस्तु स्यात् प्रत्यभिज्ञेति सोच्यते ॥
सजातीयं यदा तत्स्यात्सविकल्पकमुच्यते ।
तन्निर्विकल्पं प्रथमपिण्डग्रहणमुच्यते ॥
सविकल्पं द्वितीयादिग्रहणं त्विति निर्णयः ।
अनुवृत्तिर्नाम जातेर्नानाव्यक्तिसमन्वयः ॥
तदतद्गोचरत्वाभ्यां विकल्पेऽस्तित्वनास्तिते ।
निरीहादिस्वन इव निर्विकल्पस्वनो मतः ॥
योगेऽपि निर्विकल्याख्यसमाधिर्योऽनुशिष्यते ।
अर्थमात्रविनिर्भासं स्वरूपविकलं यथा ॥
तत्रापि निर्विशेषार्थग्रहणं नोपदिश्यते ।
किंतु गीर्णस्वस्वरूपा विशिष्टार्थैव सा मतिः ॥
4 परोक्षाणां प्रमाणानां संसर्गांशे प्रमाणता ।
प्रत्यक्षस्य प्रमाणस्य त्रिष्वप्यस्ति प्रमाणता ॥
कालदेशपरिच्छिन्नं प्रत्यक्षमितरत्पुनः ।
सार्वदेशं सार्वकालं तत् त्रिकालादिगोचरम् ॥
शब्दसंसर्गयोग्यार्थप्रतिभासाः विकल्पनाः ।
स्मृतिव्यवहिताः तस्मादनर्थजनिता मताः ॥

इत्येवं कल्पनावादिविशेषैकार्थवादिनः ।
विबुधाः प्रत्यवस्थातुं नानावादान्वितन्वते ॥
शब्दासंस्पर्शवादापनोदायैव हि शाब्दिकाः ।
शब्दस्य ज्ञानमात्रे तु भानमिच्छन्त्यनेकधा ॥
यथा विषयभेदेन प्रतीतिर्भिद्यते तथा ।
उपायभेदात्तद्भेदः सर्वानुभवसाक्षिकः ॥
समवायो हि नाध्यक्षः वैषेषिकमते स्थितः ।
तथापि तन्तुष्वेवायं पट इत्यादिबुद्धिकृत् ॥
तथैव च चिराक्षिप्रदूरासन्नादिबुद्धिकृत् ।
कालदेशविशेषः स्यात् सहकारिनियन्त्रितः ॥
निर्विकल्पकमध्यक्षं सविकल्पकमेव तत् ।
उभयात्मकमित्येतत् विलक्षणमितीतरे ॥
सौगतः प्रथमः पक्षः शाब्दिकस्तदनन्तरः ।
मैमांसकः तृतीयः स्यात् तुर्यो नैयायिकस्स्मृतः ।
सामग्र्यास्तु प्रमाणत्वे प्रमा फलमितीष्यते ।
प्रमायास्तु प्रमाणत्वे फलं हानादिबुद्धयः ॥
प्रमाणसामान्यवादे विस्तरोऽस्य कृतोऽधुना ।
विशेषांशा हि सूच्यन्ते विस्तरः तैर्थिकैः कृतः ॥
5 न कदाचित्क्वचिद्दृष्टं निर्व्यापारं तु कारकम् ।
इन्द्रियाणां कारकत्वात्सन्निकर्षपरिग्रहः ॥

तत्र षोढा सन्निकर्षः लौकिकः परिकीर्तितः ।
ज्ञानसामान्ययोगोत्थभेदेनालौकिकस्त्रिधा ॥
तत्प्रत्यक्षं द्वित्रिचतुस्सन्निकर्षात्प्रवर्तते ।
तत्रात्मसुखरूपादिविषयास्स्युर्यथाक्रमम् ॥
आत्मचित्तेन्द्रियार्थाः स्युः सान्निकर्षस्य चाश्रयाः ।
इति नैयायिकाः प्राहुः अत्र मीमांसकाः पुनः ॥
चतुर्विधः संप्रयोगः द्रव्ये संयोगलक्षणः ।
गुणे संयुक्ततादात्म्यं गुणत्वे तद्वदात्मता ॥
गुणत्वगतसत्तायां तद्वत्तादात्म्यलक्षणः ।
श्रोत्रेण शब्दग्रहणमजसंयोगजं विदुः ॥
त्रिविधस्सांनिकर्षः स्यादिति प्राभाकरा विदुः ।
संयोगस्संयुक्तसमवायश्च तदनन्तरः ॥
समवायस्तृतीयस्स्यात् तर्हि स्यात्सर्वसंग्रहः ।
अलौकिकः सन्निकर्षः न मीमांसकसम्मतः ॥
यच्चालौकिकविज्ञानं स्मरणं वाऽथ लैङ्गिकम् ।
योगस्यानुपगन्तृत्वात् योगी नैवास्ति तन्मते ॥
सर्वज्ञानामभावेन धर्मो वेदैकलक्षणः ।
आभिमुख्यं सन्निकर्ष इति संयोगदूषकाः ॥
यथाकथंचित्संबन्धं विदुस्सर्वेऽपि वादिनः ।
निर्विकल्पस्य विषयविकल्पस्याथ संग्रहः ॥

6 निर्विकल्पस्य विषयं बौद्धाः प्राहुस्स्वलक्षणम् ।
महासामान्यमस्येति सदद्वैतविदो विदुः ॥
वाग्रूपमपरे तत्त्वं प्रमेयं शाब्दिका विदुः ।
केचिद्गुणादिशबलं मन्यन्ते कपिलादयः ॥
केचित्तुच्छकलितं वस्तु विदुः नैयायिकादयः ।
विशिष्टमेव विषयं प्राहुः प्राभाकरादयः ॥
प्रत्यक्षविषयेऽप्येताः चित्रा विप्रतिपत्तयः ।
परोक्षार्थे हि विमतिः प्रत्यक्षेणोपशाम्यति ॥
प्रत्यक्षे हि समुत्पन्ना विमतिः केन वार्यते ।
इदं भाति न भातीति संविद्विप्रतिपत्तिषु ॥
परप्रत्यायने पुंसां शरणं शपथोक्तयः ।
प्रत्यक्षलक्षणं चापि तादृशार्थानुगुण्यतः ॥
7 विकल्प्य कथितं तत्तु संग्रहादिह कथ्यते ।
कल्पनापोढमभ्रान्तं प्रत्यक्षमिति सौगताः ॥
सत्संप्रयोगे पुरुषस्येति जैमिनिलक्षणम् ।
सन्निकृष्टार्थविज्ञानमिति वृत्तिकृतां मतम् ॥
यत्त्विन्द्रियार्थसंबन्धोत्पन्नमव्यभिचारि च ।
तत्प्रत्यक्षमिति प्रोक्तमक्षपादेन लक्षणम् ॥
साक्षात्प्रतीतिः प्रत्यक्षमिति प्राभाकरा विदुः ।
अर्थाकृत्या परिणतेन्द्रियवृत्त्यनुपातिनी ॥

बुद्धिवृत्तिः चितिच्छायामापन्नाऽध्यक्षमिष्यते ।
पातञ्जलैः कापिलैश्च तथा तन्मार्गगामिभिः ॥
प्रत्यक्षलक्षणं प्राहुः स्पष्टतां पुनरार्हताः ।
अस्पष्टमनुमानादि सद्विशेषाप्रकाशनात् ॥
चार्वाकोऽशक्यकरणं मेने मानस्य लक्षणम् ।
तथैव संख्यानियमं तत्रोदाहरणं त्विदम् ॥
वक्राङ्गुलिः प्रविरलाङ्गुलिरेष करस्त्विति ।
जानाति मीलिताक्षोऽपि तमस्यपि पुमानयम् ॥
निशि दीपशिखा दूराद्दृष्टा कुर्यात्प्रभामतिम् ।
अनुवातं दूरगते गन्धे बुद्धिः प्रजायते ॥
शब्दादिविषया बुद्धिः विचित्रा सर्वसम्मता ।
तस्मादनुगमोऽशक्यकरणः हृदयंगमः ॥
सर्वेष्वपि च सिद्धान्तेष्विन्द्रियं क्रियते पुरः ।
ततस्त्वर्थानुगुण्येन परिष्कारो विजृम्भते ॥
8 अथात्र सांख्यप्रत्यक्षे विशेषः श्लोकवार्तिके ।
शब्दनित्यत्वाधिकृतावाक्षिप्तस्सोऽभिधीयते ॥
विषयः प्रथमं स्वीयेन्द्रिये ह्यालोचनात्मकम् ।
स्वाकारं वृत्तिपर्यायं विकारं कुरुते स्वयम् ॥
सा च वृत्तिस्समागत्य देशं तं विषयस्य च ।
प्रकाशं विषयाकारं आधत्ते महदात्मनि ॥

बुद्धावध्यवसायाख्यमेतस्मिन्नाहिते सति ।
तस्यां बुद्धौ च चैतन्यं यदाऽभिव्यज्यते तदा ॥
प्रत्यक्षमिति सिद्धान्तः स च नैवोपपद्यते ।
कथं विकाराधानं स्यात् असंबद्धेन चेन्द्रिये ॥
प्राप्तिस्सर्वगतत्वाच्चेत् तुल्या दूरगतेष्वपि ।
विक्रियाऽविक्रिये तत्र सर्वैस्स्यातां न भेदतः ॥
तदौपनिषदाः प्रायस्सर्वे नैयायिकाध्वगाः ।
तत्रापि सन्निकर्षादिः स्वसामग्रीनिबन्धनः ॥
अदृष्टान्नियमादृष्टनियमे लाघवं मतम् ।
मनोवैभवसिद्धान्ते विपरीतं बलाबलम् ॥
9 अथ चाद्वैतसिद्धान्ते प्रायस्सांख्यमतानुगे ।
प्रत्यक्षविषये किंचिद्विशेषांशोऽत्र सूच्यते ॥
चैतन्यमेव प्रत्यक्षप्रमेति श्रुतिसम्मतम् ।
तदनाद्यपि हृद्वृत्तिविशिष्टं चादिमन्मतम् ॥
संसर्गानवगाह्येतज्ज्ञानं स्यान्निर्विकल्पकम् ।
सोऽयं घटः तत्त्वमसीत्यादिवाक्यादपीष्यते ॥
संसर्गासङ्गिसम्यग्धीहेतुता या गिरामियम् ।
उक्ताऽखण्डार्थता यद्वा तत्प्रातिपदिकार्थता ॥
वृत्त्यवच्छिन्नचैतन्येऽर्थावच्छिन्नचिदेकता ।
ज्ञानस्याध्यक्षत्वमिति नव्यानामिह निर्णयः ॥

चैतन्याभिव्यञ्जकत्वं विषयस्यापरोक्षता ।
अन्तःकरणसंबन्धादस्वच्छे स्वच्छता भवेत् ॥
प्रमात्राभिन्नत्वमिति परेषां तत्र निर्णयः ।
प्रमातृसत्तातिरिक्तसत्ताशून्यत्वलक्षणम् ॥
अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपञ्चकम् ।
आद्यत्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम् ॥

(73) प्रतिबिम्बवादः

1 प्रतिबिम्बविचारोऽस्ति यः पुनश्श्लोकवार्तिके ।
प्रसङ्गात्तस्य सारांशे तज्जिज्ञासुकृते यते ॥
बिम्बान्न प्रतिबिम्बानां भेदः नापि परस्परम् ।
अबाधितप्रत्यभिज्ञा प्रमाणं सार्वलौकिकी ॥
अत्र केन निमित्तेन प्रतिपात्रं पृथक्पृथक् ।
भिन्नानि प्रतिबिम्बानि ज्ञायन्ते युगपत् नरैः ॥
अत्रोच्यते यदा चक्षुः प्रतिस्रोतः प्रवर्तितम् ।
स्वदेश एव गृह्णाति सवितारमनेकधा ॥
ईषन्निमीलितेऽङ्गुल्या यथा चक्षुषि दृश्यते ।
पृथगेकोऽपि भिन्नत्वात् चक्षुर्वृत्तेः तथैव नः ॥
2 ये त्वत्र प्रतिबिम्बानामुत्पत्तिं प्राहुरार्हताः ।
तेषामभिप्राय एषः स्थूलदृष्टिपरिष्कृतः ॥

स एव चेत्प्रतीयेत कस्मान्नोपरि दृश्यते ।
कूपादिषु कुतोऽधस्तात् प्रतिबिम्बेक्षणं भवेत् ॥
प्राङ्मुखो दर्पणं पश्यन् स्याच्चेत्प्रत्यङ्मुखः कथम् ।
तत्र प्रति ब्रुवन्त्यन्ये तेषामेषा परिष्क्रिया ॥
देहप्रदेशे पुंसस्स्यात् चक्षुः ज्ञानस्य कारणम् ।
तेन देहाभिमुख्येन बुद्धयमानोऽवबुद्धयते ॥
अप्सूर्यदर्शिना नित्यं चक्षुः द्वेधा प्रवर्तते ।
एकमूर्ध्वमधस्ताच्च तत्रोर्ध्वांशप्रकाशितम् ॥
शरीरस्यानृजुस्थत्वात् नात्मा सूर्यं प्रपद्यते ।
ऊर्ध्ववृत्त्यर्पितं बिम्बं अवाग्वृत्त्या तु बुद्धयते ॥
ऊर्ध्ववृत्तेस्तदेकत्वात् अवागिव च मन्यते ।
अधस्तादेव तेनार्कः सान्तरालः प्रतीयते ॥
एवं प्राग्भूतया वृत्त्या प्रत्यग्वृत्तिसमर्पितम् ।
बुध्यमानो मुखं भ्रान्त्या प्रत्यगित्यवगच्छति ॥
तेनानुभवसिद्धेन पथा स्यादन्यथा गतिः ।
प्रतिबिम्बेन बिम्बस्यानुमानं क्वचिदभ्यधुः ॥

(74) अनुमानाक्षेपः

1 अथानुमानप्रमाणविकल्पः महती कथा ।
तथाऽपि शक्यसंक्षेपा स्यादित्यत्र प्रयत्यते ॥

विशेषेऽनुगमाभावः सामान्ये सिद्धसाधनम् ।
अनुमाभङ्गपङ्केऽस्मिन् निमग्ना वादिदन्तिनः ॥
विशेषेऽनुगमाभावात्सामान्ये सिद्धसाधनात् ।
तद्वतोऽनुपपन्नत्वादनुमानकथा कुतः ॥
व्याप्तिरेवानुमानस्य जीवातुस्सा च सर्वथा ।
न संभवति संबन्धग्रहस्यानुपपत्तितः ॥
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां नाविनाभावनिश्चयः ।
त्रैकालिकानां वस्तूनामानन्त्यादतिशङ्कनात् ॥
अतएवेहानुमानशब्दः प्रायेण लौकिकैः ।
प्रयुज्यते संशयार्थः परोक्षं संशयात्मकम् ॥
साहचर्ये च संबन्धे विस्रम्भ इति मुग्धता ।
शतकृत्वोऽपि तद्दृष्टौ व्यभिचारस्य संभवात् ॥
देशकालदशाभेदविचित्रात्मसु वस्तुषु ।
अविनाभावनियमः न संभवति कुत्रचित् ॥
2 भवन्नप्यविनाभावः परिच्छेत्तुं न शक्यते ।
जगत्त्रयगताशेषपदार्थालोचनाद्विना ॥
ये तु प्रत्यक्षतो विश्वं प्रपश्यन्ति महाजनाः ।
किं दिव्यचक्षुषामेषां अनुमानप्रयोजनम् ॥
सामान्यद्वारकोऽप्यस्ति नाविनाभावनिश्चयः ।
वास्तवं तु न सामान्यं नाम किंचन विद्यते ॥

बहुकृत्वोऽपि वस्त्वात्मा तथेति परिनिश्चितः ।
देशकालादिभेदेन दृश्यते पुनरन्यथा ॥
भूयो दृष्टौ च धूमोऽग्निसहचारीति गम्यताम् ।
अनग्नौ तु स नास्तीति न भूयोदर्शनाद्गतिः ॥
गत्वागत्वा च तान् देशान् यद्यर्थो नोपलभ्यते ।
ततोऽन्यकारणाभावादसन्नित्यवगम्यते ॥
दर्शनादर्शनाभ्यां हि नियमग्रहणं यदि ।
तदप्यसदनग्नौ हि धूमस्येष्टमदर्शनम् ॥
अनग्निश्च कियान् प्रायो जगत् ज्वलनवर्जितम् ।
तत्र धूमस्य नास्तित्वं नैव पश्यन्त्ययोगिनः ॥
तदेवं नियमाभावात् सति वा ज्ञप्त्यसंभवात् ।
अनुमानप्रमाणत्वदुराशा प्रतिमुच्यताम् ॥
साध्यानुमितिवेलायां नचास्ति नियमग्रहः ।
नियमग्रहकाले च न साध्यमनुमीयते ॥
3 निरुपाधिकसंबन्धो व्याप्तिरित्यभिधीयते ।
साध्येन यस्समं व्याप्तोऽव्यापकः साधनस्य यः ॥
स उपाधिरिति प्रोक्तः तत्र चात्माश्रयो ध्रुवः ।
अतो व्याप्तिपरिष्कारः शतशः क्रियते बुधैः ॥
4 धर्मे सिषाधयिषिते न हेतोः पक्षधर्मता ।
धूमस्य वह्न्यधर्मत्वात्, साध्यं धर्मी यदीष्यते ॥

न हेतोरन्वयस्तत्र व्यतिरेकोऽपि बाधितः ।
द्वये तु साध्ये द्वयमप्यसिद्धं स्यादसंशयम् ॥
विशिष्टस्य तु साध्यत्वे न प्राक्तद्धर्मताग्रहः ।
अतश्च पक्षधर्मत्वं केचिन्नेच्छन्ति सूरयः ॥
ज्ञातव्ये पक्षधर्मत्वे पक्षो धर्म्यभिधीयते ।
व्याप्तिकाले भवेद्धर्मः साध्यसिद्धौ पुनर्द्वयम् ॥
5 अनुमानप्रयोगोऽपि चादौ कर्तुं न शक्यते ।
मिथोविरुद्धाङ्गीकारप्रचुरौ वादिनाविह ॥
शब्दो द्रव्यं वेदविदां गुणो न्यायविदां मतः ।
पञ्चभूतगुणोऽन्येषां परेषां नाभसो गुणः ॥
वृक्षादिशब्दाः स्फोटस्य विवर्त इति शाब्दिकाः ।
गुणद्रव्यविभागं च केचिन्नेच्छन्ति पण्डिताः ॥
एवमेव हि सर्वं च वस्तु तैस्तैर्विकल्प्यते ।
कः पक्षः किंचवा साध्यं को हेतुः द्वयसम्मतः ॥
सर्वत्रान्यतरासिद्धेरनुमानकथा वृथा ।
सामान्येन प्रयोगस्तु केवलं कण्ठशोषकृत् ॥
6 व्यवहारोऽध्यक्षशक्त्या कृतार्थो ह्यानुमानिकः ।
इन्द्रियं धूमसंयुक्तं वह्निं गमयति स्फुटम् ॥
व्याप्तिश्च पक्षधर्मत्वं स्यातां तत्सहकारिणी ।
तथैवोपमितिश्शाब्दी सर्वा प्रत्यक्षमिष्यते ॥

सहकारिसनाथं चेत् विचित्रं करणं भवेत् ।
अनागतादिलिङ्गांशे सयूथ्यकलहोऽस्ति हि ॥
अत एवानुमानानामपश्यन्तः प्रमाणताम् ।
तद्विस्रम्भनिषेधार्थमिदमाहुर्मनीषिणः ॥
हस्तस्पर्शादिनाऽन्धेन विषमे पथि धावता ।
अनुमानप्रधानेन विनिपातो न दुर्लभः ॥
यत्नेनानुमितोऽप्यर्थः कुशलैरनुमातृभिः ।
अभियुक्ततरैरन्यैरन्यथैवोपपाद्यते ॥
7 द्विविधं ह्यनुमानं स्यादिति प्राहुस्सुशिक्षिताः ।
यथोत्पन्नप्रतीत्येवं तथोत्पाद्यप्रतीति च ॥
तत्र धूमानुमानादेः प्रामाण्यमुपगम्यते ।
यतश्च साध्यं बुद्ध्यन्ते पुरुषाः कोमलाशयाः ॥
यत्त्वात्मेश्वरसर्वज्ञपरलोकादिगोचरम् ।
अनुमानं न तस्येष्टं प्रामाण्यं तत्त्वदर्शिभिः ॥
तस्माद्विदुर्वेदविदः धर्मब्रह्मादिगोचरम् ।
अनुमानं नोर्जितं स्यादिति शब्दं विधान्तरम् ॥

(75) अनुमानसमर्थनवादः.

1 अत्रोच्यते न्यायविद्भिर्युक्तिचिन्ताविशारदैः ।
तानेवानुसरद्भिश्च सर्वैर्दार्शनिकैः परैः ॥

अबलाबालगोपालहालिकप्रमुखा अपि ।
बुद्ध्यन्ते नियतादर्थादर्थान्तरमसंशयम् ॥
अनुमानापलापे तु प्रत्यक्षादपि दुर्लभा ।
लोकयात्रेति लोकास्स्युः चित्रिता इव निश्चलाः॥
2 अत्रानुमानप्रामाण्यवादिनां वाक्यसंग्रहः ।
आदौ सौगतसिद्धान्तवचनं त्ववधार्यताम् ॥
अनुमानं ह्यर्थदृक्स्यात् या च लिङ्गात्त्रिलक्षणात् ।
इति दिङ्नागकथितं लक्षणं त्वित्यनूदितम् ॥
कार्यकारणभावाद्वा स्वभावाद्वा नियामकात् ।
अविनाभावनियमोऽदर्शनान्न न दर्शनात् ॥
कार्यकारणभावो हि प्रत्यक्षेणावगम्यते ।
तदुत्पत्त्याख्यसंबन्धादविनाभावनिश्चयः ॥
सहभावित्वमथवा क्रमभावित्वमेववा ।
कार्यकारणभावस्स्यान्नियमो नात्र गर्भितः ॥
यथा धूमज्वलनयोः सुबीजाङ्कुरयोरपि ।
भवेद्यद्यपि चाशङ्का पुरुषस्य विपश्चितः ॥
तदेवाशङ्क्यते लोके यस्य शङ्का न बाधते ।
स्वप्रवृत्त्यादिकं हेतुफलभावनिबन्धनम् ॥
तादात्म्यनिश्चयेनापि क्वचित्तादृशनिश्चयः ।
वृक्षशिंशपयोरेषः सामानाधिकरण्यतः ॥

यत्र चात्यन्तभेदोऽस्ति गवाश्वादौ न तत्र हि ।
सामानाधिकरण्यं, तत् युगपन्न प्रयुज्यते ॥
अत्यन्ताभेदसत्त्वेन घटकुम्भादिवस्तुषु ।
सह प्रयोगो नैवास्ति नात्र तादात्म्यमिष्यते ॥
वृक्षोऽयं शिंशपेत्येवं प्रयोगो धीमतामपि ।
सामानाधिकरण्यं स्यात्तत्र तादात्म्यलक्षणम् ॥
वृक्षत्वं यद्यतिपतेत् शिंशपा कुत्रचित्तदा ।
स्वात्मानमेव संजह्यात् विपक्षे बाधकं न्विदम् ॥
तदुत्पत्तिः तदात्मत्वं अविनाभावबोधकम् ।
तत्कार्यं कारणं चात्मा स्वात्मानं साधयिष्यतः ॥
अनुमानं न प्रमाणमित्येवं चेत्प्रयुज्यते ।
एकाकिनी प्रतिज्ञा हि प्रतिज्ञातं न साधयेत् ॥
यदि च त्वाच्छिरस्कस्य प्रयोगः कस्यचित् तदा ।
स्वोक्तेरेव विरोधस्स्यात् माता वन्ध्या ममेतिवत् ॥
प्रमाणं च तदाभास सजातीयत्वहेतुना ।
ब्रुवन् स्वभावानुमानं स्वीकरोति भवानपि ॥
परकीयः संशयादिः ज्ञायते वचनाद्यदि ।
भवता स्वीकृतं तत्रानुमानं कार्यलिङ्गकम् ॥
तथैवानुपलब्ध्याऽपि कंचिदर्थं निषेधता ।
लिङ्गं ह्यनुपलब्ध्याख्यमगत्या स्वीकृतं भवेत् ॥

अत्रायं संग्रहश्लोकः तदुक्तः परिपठ्यते ।
प्रमाणान्तरसामान्यस्थितेरन्यधियां गतेः ॥
प्रमाणान्तरसद्भावः प्रतिषेधाच्च कस्यचित् ।
प्रतिषेधः स्वभावान्तर्नीतोऽभावे निरूप्यते ॥
कृत्तिकोदयतः क्वापि रोहिण्युदयनिश्चयः ।
तत्कोष्ठगत्यनुविहितान्वयव्यतिरेकतः ॥
3 द्वे सत्ये समुपाश्रित्य बुद्धानां धर्मदेशना ।
लोके संवृतिसत्यं च सत्यं च परमार्थतः ॥
बुद्ध्यारूढेनैव धर्मधर्मिभावे न कल्पितम् ।
अनुमानं नैव बाहिस्सदसत्त्वमपेक्षते ॥
निरुपप्लवभूतार्थस्वभावस्य विपर्ययैः ।
न बाधोऽयत्नवत्त्वेऽपि बुद्धेस्तत्पक्षपाततः ॥
यतश्च सविकल्पस्य प्रत्यक्षत्वं नचेष्यते ।
न तस्मादनुमानादेरुत्पत्तिः परमार्थतः ॥
4 न्यायरत्नाकरकृतामनूक्तिरवधार्यताम् ।
अनुमानं नैवमानमस्माकं परमार्थतः ॥
अवस्तुभूतसामान्यविषयत्वात्तथाऽपि च ।
तत्परंपरया वस्तुप्रभवं मानमिष्यते ॥
वह्निस्वलक्षणाद्धूमस्वलक्षणसमुद्भवः ।
ततश्च धूमप्रत्यक्षं ततो धूमाविकल्पना ॥

अनुमानं ततश्चं स्यात्तद्वस्तुप्रभवं ततः ।
वह्नेस्तु प्रतिबद्धस्य प्रतिलम्भनमुच्यते ॥
यद्वाष्पविषयाद्धूमविकल्पादुपजायते ।
वह्निज्ञानं, तन्न परंपरया प्रतिबध्यते ॥
वह्निनेति, न मानं तत् आभास इति गीयते ।
प्रतिबन्धपदार्थोऽपि सम्यग्व्युत्पादितोऽमतः ॥
व्यवहाराविसंवादान्मानतेन्द्रियलिङ्गयोः ।
आप्तवादाविसंवादाच्छब्दः प्रामाण्यमृच्छति ॥
5 बौद्धाः प्रमेयद्वैविध्यात् प्रमाणं द्विविधं जगुः ।
नान्यः प्रमाणभेदस्य हेतुर्विषयभेदतः ॥
विशेषोऽध्यक्षतो गम्यः सामान्यमनुमानतः ।
नोभयं नोभयग्राह्यं पिष्टं पिष्टं नहीष्यते ॥
अतश्च नोपगच्छन्ति संप्लवं नीतिकोविदाः ।
एकस्मिन् विषयेऽनेकमानवृत्तिर्हि संप्लवः ॥
चोदनालक्षणत्वं च शास्त्रयोनित्वमेव च ।
धर्मस्य ब्रह्मणश्चापि तस्मादेवोपपादितम् ॥
समानविषयत्वे च जायेत सदृशी मतिः ।
नचाध्यक्षधिया साम्यमेति शब्दानुमानधीः ॥
तेजोऽन्यदेव नक्षत्रशशाङ्कशकलादिषु ।
उद्धाटितजगत्कोशमन्यदेव रवेर्महः ॥

अन्यदेवेन्द्रियग्राह्यमन्यत् शब्दादिगोचरम् ।
शब्दात्प्रत्येति भिन्नाक्षः नतु प्रत्यक्षमीक्षते ॥
अन्यथैवाग्निसंसर्गाद्दाहं दग्धोऽनुमन्यते ।
अन्यथा दाहशब्देन दाहार्थः संप्रतीयते ॥
तस्मान्न संप्लवो नापि तृतीयं मानमिष्यते ।
प्रत्यक्षं च परोक्षं च मानं विषयभेदतः ॥
विकल्पाविषये वृत्तिमाहुश्शब्दानुमानयोः ।
तेभ्यः संबन्धसिद्धौ च नानवस्था न संप्लवः ॥
यो वादिप्रतिवादिभ्यां निश्चितस्साधनं तु तत् ।
इत्युक्तवद्भिरप्येतैरसत्यात्सत्यधीर्मता ॥
अनुमानस्येत्थमेभिः प्रामाण्यं परिनिश्चितम् ।
तच्च सांवृतिकं वा सांव्यावहारिकमेववा ॥
6 अथ तार्किकसिद्धान्तसंग्रहोऽप्यत्र लिख्यते ।
व्याप्त्यतीचारशङ्केत्थं प्रत्युक्ता कुसुमाञ्जलौ ॥
शङ्का चेदनुमाऽस्त्येव न चेच्छङ्का ततस्तराम् ।
व्याघातावधिराशङ्का तर्कश्शङ्कावधिर्मतः ॥
अनुमानस्य बाधश्च नाध्यक्षात्किंतु तर्कतः ।
तत्र व्याप्त्यद्युपगमात् स्वव्याघातो दुरुत्तरः ॥
व्याघातो यदि दोषो न को वा दोषः उदीर्यताम् ।
दोषादोषाविवेकश्चेत् प्रकृते दूषणं कथम् ॥

आशङ्का यदि निर्मूला सर्वत्र सुलभा हि सा ।
उत्प्रेक्षेत च यो मोहादज्ञातमपि बाधकम् ॥
स सर्वव्यवहारेषु संशयात्मा क्षयं व्रजेत् ।
इति पद्यं विश्रुतं हि यन्न्यायकणिकोदितम् ॥
व्यभिचारस्याग्रहोऽपि सहचारग्रहस्तथा ।
हेतुर्व्याप्तिग्रहे तर्कः क्वचिच्छङ्कानिवर्तकः ॥
व्याघातो यदि शङ्काऽस्ति नचेच्छङ्का ततस्तराम् ।
व्याघातावधिराशङ्का तर्कश्शङ्काऽवधिः कुतः ॥
इत्थं खण्डनकारेण कुसृष्टिर्येह कीर्तिता ।
सर्वार्थसिद्धौ शङ्कैषा प्रत्युक्ता सूरिभिर्यथा ॥
व्याघातनिर्धुता शङ्का व्याघाते सा कथं भवेत् ।
शब्दवैचित्र्यमात्रेण श्लोकस्तु परिवर्त्यते ॥
भूयोदर्शनतस्तत्र भवेच्छङ्कानिराक्रिया ।
तर्कस्तन्मूलभूतस्योपाधेरेव निवर्तकः ॥
निरुपाधिकसंबन्धो व्याप्तिरित्यत उच्यते ।
प्रायेण पक्ष एवैषोऽपूर्वरीत्याऽप्यनूद्यते ॥
न व्याप्तिर्नियमायोगादिति व्याप्तमिदं न वा ।
व्याप्तं चेत्स्वीकृता व्याप्तिः न व्याप्तं चेन्न दूषणम् ॥
सर्वस्य व्यभिचारित्वे व्यभिचारो न सिद्ध्यति ।
एकस्याव्यभिचारित्वे न सर्वव्यभिचारिता ॥

भूयोदर्शनतस्तावदुदेति मतिरीदृशी ।
नियतोऽयमनेनेति सकलप्राणिसाक्षिका ॥
दोषज्ञाने त्वनुत्पन्ने नाशङ्का निष्प्रमाणका ।
अत्र च प्रक्रियासारः विश्रुतोऽथापि लिख्यते ॥
7 पञ्चलक्षणकाल्लिङ्गात् गृहीतान्नियमे स्मृतेः ।
परोक्षे लिङ्गिनि ज्ञानं अनुमानं प्रचक्षते ॥
व्याप्तिज्ञानं तु करणं फलं ह्यनुमितिर्मता ।
व्यापारस्तु परामर्शः जन्योऽपि जनकोऽपि सः ॥
असाधारणहेतुर्यः करणं तदिहेष्यते ।
व्यापारवत्त्वं तस्येष्टमित्याहुर्नव्यतार्किकाः ॥
प्राचीनाः ज्ञायमानं तु लिङ्गं करणमूचिरे ।
अनागतादिलिङ्गेन न स्यादनुमितिस्तदा ॥
इति नव्या दोषमाहुः समाधिस्तत्रचेरितः ।
अनागतादिलिङ्गेनानागतादेर्भवेद्धि सा ॥
व्याप्यत्वेन ज्ञायमानं हेतुत्वेनाभ्युपेयते ।
न धूलीपटलज्ञानादपि सा नोपपद्यते ॥
व्याप्यस्य पक्षवृत्तित्वधीः परामर्श उच्यते ।
संबन्धग्रहवेलायां प्रथमं लिङ्गदर्शनम् ॥
या पक्षधर्मता सैव द्वितीयं लिङ्गदर्शनम् ।
परामर्शस्तृतीयं स्यात् तेनानुमितिसंभवः ॥

व्याप्तिस्मृतेः पक्षधर्मज्ञानाच्चानुमितिर्भवेत् ।
न विशिष्टपरामर्शादिति प्राभाकरा विदुः ॥
अख्यातिवादभङ्गायान्यथाख्यातिप्रसिद्धये ।
विशिष्टज्ञानजन्यत्वं साध्यते युक्तिवेदिभिः ॥
भेदाग्रहो हि गुरुभिः भ्रमस्थानेऽभिषिच्यते ।
वह्निव्याप्यो धूम एष ह्रद इत्यादिसंविदोः ॥
भेदाग्रहाच्चेदनुमा साऽन्यथाख्यातिरेव हि ।
विशिष्टबुद्धिः हेतुश्चेत् अयोगोलं च वह्निमत् ॥
इत्याद्यनुमितेर्हेतुः धूमधीरन्यथैव सा ।
सेयं चोभयतःपाशा रज्जुरित्यस्ति धीः भ्रमः ॥
सामान्यव्याप्तिसहितपक्षधर्मत्वधीबलात् ।
सामान्ये पक्षनिष्ठत्वं विशेषः किल साध्यते ॥
साध्यस्य संशयः पक्षतेति प्राचीनलक्षणम् ।
साधनेच्छाशून्यसिद्धेरभावो नव्यलक्षणम् ॥
धूमस्य पक्षता कैश्चित्प्राचीनैरुपवर्णिता ।
धूमोऽग्निमान् पाण्डुतादिविलक्षणगुणादिति ॥
जीमूताः वृष्टिमन्तः स्युः औन्नत्यादिगुणात्तथा ।
कुमारिलोऽप्यन्ववादीदित्थं हि श्लोकवार्तिके ॥
तस्माद्धर्मविशिष्टस्य धर्मिणः स्यात्प्रमेयता ।
सा देशस्याग्नियुक्तस्य, धूमस्यान्यैश्च कल्पिता ॥

8 शाक्यास्तु सविकल्पस्य प्रत्यक्षत्वं न मन्वते ।
एतेषामनुमानादेरुत्पत्तिर्नैव सिध्यति ॥
सति भावो न कार्यत्वं किंतु सत्येव भाविता ।
तस्माच्चेदविनाभावः स्यादात्माश्रयणं ध्रुवम् ॥
प्रमातुः शिंशपात्वं तु यस्य प्रत्यक्षगोचरः ।
परोक्षं तस्य वृक्षत्वमिति नातीव लौकिकम् ॥
कार्यकारणभावोऽपि क्षणयोर्नैव संभवी ।
संभवन्नपि दुर्लक्षः तन्न हेतुरसावपि ॥
सोपाधिका चेदाशङ्का स्यादुपाधिविधूननात् ।
निर्धुतैव भवेत्तेनोपाधितत्त्वं विमृश्यताम् ॥

(76) उपाधिवादः

1 साध्येन च समं व्याप्तः साधनाव्यापकश्च यः ।
स उपाधिरिति ह्याहोदयनो न्यायदेशिकः ॥
सिषाधयिषिते शब्दानित्यत्वे हि विशेषणैः ।
घटत्वमश्रावणत्वं सकर्तृत्वं च वार्यते ॥
वह्नौ साध्ये निवार्यन्ते तथैवैतैर्विशेषणैः ।
महानसत्वाद्रव्यत्वतत्सामग्र्य इति क्रमात् ॥
2 साध्यस्य साधनस्यापि व्यापकोऽव्यापकः क्रमात् ।
उपाधिरिति वादीन्द्रः प्राह शंकरकिंकरः ॥

3 उपाधिशब्दप्रवृत्तिनिमित्तमिदमुच्यते ।
अन्यत्र वस्तुनि स्वीयधर्मस्यारोपहेतुता ॥
जपाद्युपाधिः स्फटिकारुण्यबुद्धेर्हि तादृशः ।
दर्पणो मुखमालिन्यबुद्धेश्चोपाधिरिष्यते ॥
तथा स्वधर्मभूतायाः व्याप्तेः बुद्धिं करोति या ।
मैत्रीसुतत्वे हेतौ सा शाकपाकजता मता ॥
निरुपाधिकसंबन्धरूपव्याप्तिपरिग्रहात् ।
उपाधिशब्दाभिधेयापरित्यागेन दूषणे ॥
तात्पर्यं समशब्दस्य प्रयोक्तॄणां प्रतीयते ।
इतरेषां तु तात्पर्यमेतदध्यवसीयते ॥
व्यापकस्य निवृत्त्यैव व्याप्यं हि विनिवर्तते ।
पक्षे साध्यस्य बाधेनोपाधेर्दूषणता मता ॥
व्यर्थस्स्यात्समशब्दस्य प्रयोग इति निर्णयः ।
4 व्यभिचारोन्नायकत्वेनोपाधेर्दूषकात्मता ॥
नव्यनैयायिकैरुक्ता सा किंचिदुपदर्श्यते ।
हेतुस्त्वसौ साध्यव्यापकोपाधिव्यभिचारतः ॥
साध्येन व्यभिचारी स्यात् यदित्थं तत्तथेष्यते ।
एवं सामान्यमुखतः दोषस्योन्नयनं विदुः ॥
5 स उपाधिश्शङ्कितश्च निश्चितश्चेति च द्विधा ।
योग्यं चायोग्यमिति च द्वयं चोभयथा मतम् ॥

योग्यं योग्यानुपलब्धयाऽयोग्यं तर्केण धूयते ।
भूयोदर्शनतश्शक्या दृश्योपाधेः निराक्रिया ॥
अदृश्योपाधिशङ्का तु तर्कैरिति विदुः परे ।
उपाधित्वेन शङ्क्यस्य संबन्धो निरुपाधिकः ॥
अन्यथोपाधिता नास्ति तद्वदन्यत्र गृह्यताम् ।
अप्रयोजकताहेतुरुपाधिरिति निर्णयः ॥
यत्रानुकूलतर्कस्यासंभवस्सोऽप्रयोजकः ।
6 नोपाधिः पक्षतोऽन्यत्वं साधनं च विपक्षतः ॥
बाधनं न सपक्षेभ्यः सर्वानुमितिबाधनात् ।
पक्षाद्भेदः विपक्षाच्च भेदः भेदः सपक्षतः ॥
नोपाधिर्न च हेतुस्स्यात्प्रतिरोधो नचैव हि ।
नोपाधिरिति पद्यस्य फलितार्थस्त्वसौ स्थितः ॥
भूयोदर्शनतो व्याप्तिग्रहो न्यायविदीरितः ।
सकृद्दर्शनतो व्याप्तिग्रहस्स्यादेकदेशिनाम् ॥
7 व्याप्याङ्गीकरणेऽनिष्टव्यापकस्य प्रसञ्जनम् ।
तर्कस्स चोभयविधविषयोपेत इष्यते ॥
प्रामाणिकपरित्यागोऽप्रामाणिकपरिग्रहः ।
एष चात्माश्रयान्योन्याश्रयचक्रकभेदतः ॥
प्रतिबन्द्यनवस्था च तथाऽनिष्टप्रसञ्जनम् ।
इत्येवंभेदतश्चापि प्रोक्तः षड्धा च पञ्चधा ॥

व्याप्तिः तर्काप्रतिहतिः अवसानं विपर्यये ।
अनिष्टाननुकूलत्वे इति तर्काङ्गपञ्चकम् ॥
गौरवं लाघवं चेति तर्कः सार्वत्रिकावुभौ ।
गौरवं कल्पनाधिक्यं लाघवं त्वल्पकल्पना ॥
तर्कशब्दं पुनः केचिदनुमाने प्रयुञ्जते ।
अनुमानविशेषोऽयमिति केचित्प्रचक्षते ॥
सहकार्यनुमानस्य मानस्येति विदुः परे ।
तर्कः पृथक् मानमिति प्राहुर्जैनविपश्चितः ॥
8 व्याघातपर्यवसितं सर्वं दूषणमिष्यते ।
उपलम्भे त्ववसितं सर्वं साधनमुच्यते ॥

(77) लिङ्गविचारः

1 लिङ्गं व्याप्यं च हेतुश्चोपपत्तिर्युक्तिरेवच ।
साधनं स्थापना चेति पर्याय इति निर्णयः ॥
अन्यथाऽनुपपत्त्येकलक्षणं लिङ्गमिष्यते ।
पित्रोश्च ब्राह्मणत्वेन पुत्रब्राह्मणताऽनुमा ॥
सर्वलोकप्रसिद्धा न पक्षधर्ममपेक्षते ।
प्रयोगपरिपाटी तु प्रतिपाद्यानुसारतः ॥
प्रतिज्ञा हेतुरेवेति द्वयस्यैव प्रयोज्यता ।
व्युत्पादनाय मन्दानां दृष्टान्तादेरपीष्यते ॥

2 इत्यार्हतानां सिद्धान्तः ह्यथ वेदान्तिभिः परैः ।
व्याप्तिश्च पक्षधर्मत्वं उभयं लिङ्गलक्षणम् ॥
व्याप्त्यभावे पुनर्व्याप्यत्वासिद्धिरिति निश्चिता ।
पक्षधर्मत्वस्य हानौ स्वरूपासिद्धिरिष्यते ॥
अव्याप्तापक्षधर्मौ द्वौ हेत्वाभासौ समासतः ।
तयोरेव प्रपञ्चेन स्यादासिद्ध्यादिकल्पना ॥
इति न्यायपरीशुद्धिकारसिद्धान्तसंग्रहः ।
व्याप्तिस्तथा समुचितदेशवृत्तित्वमेवच ॥
द्वयं प्रमाणपद्धत्यां लिङ्गरूपं निरूपितम् ।
3 अथ त्रिलक्षणविदामेतद्वात्सीभुवां मतम् ॥
पक्षे सत्त्वं सपक्षे च सत्त्वं चैव विपक्षतः ।
व्यावृत्तत्वमिति त्रीणि लिङ्गरूपाणि ते विदुः ॥
हेत्वाभासा अपि ततस्त्रय एव हि तन्मताः ।
आभासोपि हि सर्वत्र स्वस्वरूपविपर्ययः ॥
4 पञ्चलक्षणकं लिङ्गमाहुर्न्यायविदः पुनः ।
पक्षे सत्त्वं सपक्षे च सत्त्वमेवं विपक्षतः ॥
व्यावृत्तत्वं तथैवासत्प्रतिपक्षत्वमेव च ।
अबाधितत्वमित्येतदत्र लक्षणपञ्चकम् ॥
5 एकैकापायतस्तेषां हेत्वाभासास्तु पञ्चधा ।
अत्रार्हतस्याक्षेपोऽयं देवसूरेर्निशम्यताम् ॥

अज्ञातस्य हि लिङ्गस्य हेतुता न च कस्यचित् ।
प्रसज्यते तार्किकाणां ज्ञातत्वमधिकं ततः ॥
हेतोश्च ज्ञापकत्वेन ज्ञातत्वं यदि लभ्यते ।
विपक्षव्यावृत्तिमात्रादबाधोऽप्यत्र लभ्यते ॥
अन्यथानुपपत्त्येकरूपस्यैतत्प्रपञ्चनम् ।
षड्रूपता तथा पञ्चरूपता वा त्रिरूपता ॥
6 यन्नयायपरिशुद्ध्युक्तमन्यथारूपपञ्चकम् ।
तदप्यत्रावधातव्यं प्राक्रियामात्रभेदतः ॥
असिद्धार्थत्वं च साध्यज्ञापनाय प्रवृत्तता ।
विशिष्यानास्कन्दितता व्याप्तिग्राहकमानतः ॥
संदिह्यमानविषयवत्ता व्यक्तिविभिन्नता ।
पक्षस्थहेतुव्यक्तौ स्यादित्येतद्रूपपञ्चकम् ॥
दृष्टान्तव्यक्तिवृत्तौ तु हेतौ तेषां विपर्ययः ।
सिद्धार्थत्वादिकं रूपपञ्चकं तत्र शाश्वतम् ॥
ततश्च दश रूपाणि सद्धेतोरसतः पुनः ।
न्यूनानीति विदुर्धीराः व्यासाभिरुचयस्तु ते ॥
7 लिङ्गं तु त्रिविधं कार्यस्वभावानुपलब्धयः ।
इति वैभाषिकाः प्राहुरिति सर्वत्र विश्रुतम् ॥
पक्षधर्मस्तदंशेन व्याप्तो हेतुस्त्रिधैव सः ।
अविनाभावनियमात् हेत्वाभासास्ततोऽपरे ॥

हेतुबिन्दुवचस्त्वेतत्कीर्तितं धर्मकीर्तिना ।
स एव भिक्षुः बहुधा कुमारिलहृदिस्थितः ॥
यद्यप्यनुपलब्धिस्सा स्वभावान्तर्निपातिनी ।
तथापि प्रतिषेधस्य साधनात्पृथगुच्यते ॥
सा चैकादशधेत्येके परे षोडशधेति च ।
प्राहुर्विभागवैचित्र्यात् पृथक्कृतिफलं न्विदम् ॥
तथा प्रसङ्गानुमानं तद्विपर्यय इत्यपि ।
विभागोऽस्ति तदर्थं तु वक्तीत्थं किरणावली ॥
तत्स्वभावानुमानं यत् प्रसङ्ग इति कथ्यते ।
व्यापकानुपलब्धिर्या स विपर्यय इष्यते ॥
8 मात्रानिमित्तसंयोगिविरोधिसहचारिभिः ।
स्वस्वामिवध्यघाताद्यैः सांख्यानां सप्तधाऽनुमा ॥
9 अस्येदं कारणं कार्यं संबन्ध्येकार्थयोगिता ।
विरोधि लैङ्गिकमिति चतुर्धा कणभोजिनाम् ॥
10 इति वाचस्पतिः प्राह नैयायिकमते पुनः ।
पूर्ववच्छेषवच्चैव दृष्टं सामान्यतस्त्रिधा ॥
इत्यक्षपादसूत्रोक्तं कार्यं कारणमेवच ।
अकार्यकारणं चेति तस्यार्थः कैश्चिदिष्यते ॥
11 तथैव शाबरे भाष्ये त्वौपवर्षं द्विधेरितम् ।
यथा प्रत्यक्षतोदृष्टसंबन्धं प्रथमं मतम् ॥

परं सामान्यतोदृष्टसंबन्धमिति कीर्तितम् ।
विशेषतोदृष्टमेव प्रत्यक्षत इतीर्यते ॥
सामान्यतोदृष्टमेव स्याद्वैभाषिकसम्मतम् ।
परोक्षमानं सामान्यगोचरन्त्विति तन्मतम् ॥
वैशेषिकादयस्तत्र त्वित्थं व्यवहरन्ति हि ।
दृष्टं चादृष्टमिति च शब्दमात्रप्रभेदतः ॥
12 सामान्यतोदृष्टमेव द्वितीयमिह कथ्यते ।
तदेव परिशेषानुमानं व्याख्यातृसम्मतम् ॥
क्रियादिविषयादृष्टस्वलक्षणमितीतरे ।
दृष्टस्वलक्षणं सर्वमिति केचित् विदुः परे ॥
तेन सामान्यतोदृष्टं दृष्टं चापि विशेषतः ।
इति द्विधाऽनुमानं स्यादितरेषां विपश्चिताम् ॥
सास्नया गोर्हि विज्ञानं दृष्टमित्यभिधीयते ।
अत्यन्तजात्यभेदेऽपिचानुमानं तदिष्यते ॥
अत्यन्तजातिभेदे तु दृष्टं सामान्यतो मतम् ।
यथा प्रवृत्तिस्सफला वणिक्कर्षकभूभुजाम् ॥
तथा वर्णाश्रमवतां दृष्टार्थानभिलाषिणाम् ।
इति प्रशस्तपादेन द्वयमेतदुदाहृतम् ॥
दृष्टं वह्न्यादिकं तत्रादृष्टं कर्मादिकं त्विति ।
अनुमानप्रमेयं च द्विविधं गुरवो विदुः ॥

विशेषविषयं त्वाद्यं परं सामान्यगोचरम् ।
नातीन्द्रियेऽनुमानं स्यादिति कौमारिलं मतम् ॥
प्रत्यक्षदृष्टसंबन्धं ययोरेव विशेषयोः ।
गोमयेन्धनतज्जन्यविशेषादिमतिः कृता ॥
तद्देशस्थेन धूमेन तत्र कालान्तरे पुनः ।
यदाऽग्निर्बुध्यते पुंसा विशेषविषयं तु तत् ॥
संदिह्यमानसद्भाववस्तुबोधात्प्रमाणता ।
विशेषदृष्टमेतच्च लिखितं विन्ध्यवासिना ॥
प्राप्तिसामान्येन यत्र गतिसामान्यधीर्भवेत् ।
आदित्यादौ तत्र दृष्टं सामान्यमिति वार्तिकम् ॥
अर्थापत्त्यैव शक्त्यादेस्सिद्धिमेते विदुर्बुधाः ।
अनुमानेन शक्त्यादेस्सिद्धिं प्राभाकरा विदुः ॥
तेनेश्वराद्यसिद्धौ तु वेदस्यापौरुषेयता ।
निराबाधेति हृदयं कौमारिलमिति स्थितम् ॥
13 सांख्यास्सामान्यतोदृष्टमतीन्द्रियपदं विदुः ।
तेन क्रिया सकरणिकेतीन्द्रियं साधयन्ति ते ॥
अनुमानं पुनस्सामान्यावधारणलक्षणम् ।
यथादेशान्तरप्राप्तेर्गतिमच्चन्द्रतारकम् ॥
प्रत्यक्षं तु विशेषस्य प्राधान्येनावधारणा ।
इति पातञ्जले योगभाष्येऽप्येतद्विवेचितम् ॥

14 नैयायिकानां व्याख्यानमित्थमत्रावधार्यते ।
वह्नयादिकं विशेषेण दृष्टमित्यभिधीयते ॥
रूपाद्रसानुमानं तु दृष्टं सामान्यतो मतम् ।
शृङ्गाद्द्विशफवत्त्वं वा सामान्येनावधार्यते ॥
परिशेषानुमानं वा सामान्यत इतीर्यते ।
अथवाऽतीन्द्रियं वस्तु सामान्यविषयं मतम् ॥
अतीन्द्रियानुमानस्य परिशेषानुमानतः ।
विशेषः कथितः सूक्ष्मः जयन्तेन स उच्यते ॥
इच्छादिकं शरीरादिविलक्षणसमाश्रयम् ।
शरीरादिषु बाधायां कार्यत्वादिति तत्क्रमः ॥
परिशेषानुमानस्य प्रवृत्तिक्रम एष हि ।
इच्छादेर्नाश्रयो देहः प्रसक्तोऽन्योऽपि नाश्रयः ॥
इत्येवं प्रतिषेधेन शिष्यमाणस्तदाश्रयः ।
इत्थं विशेषमालक्ष्य द्विधा व्याख्यत्स पक्षिलः ॥
15 अथौपनिषदानां तु व्याससूत्रावलम्बिनाम् ।
अभिप्रायस्त्वसौ न्यायपरिशुद्धौ प्रकाशितः ॥
विशेषतोदृष्टमेतद्विशेषानुगमे सति ।
भवेत्सामान्यतोदृष्टं सामान्यानुगमे सति ॥
अस्मदध्यक्षयोग्यार्थानुमानं स्याद्विशेषतः ।
तदयोग्यार्थानुमानं आहुस्सामान्यतः बुधाः ॥

तेनेन्दुपरभागादिसिद्धिः शैलापरान्तवत् ।
व्यक्तेरैक्येऽपिवा देशकालावस्थाभिदावशात् ॥
शृङ्गाच्छैलः स्वरात्पुत्रः रोहिणी कृत्तिकोदयात् ।
विशेषतोदृष्टमेतत् परं धूमादिकं भवेत् ॥
एतेऽतीन्द्रियवस्तूनां शास्त्रतस्सिद्धिवादिनः ।
बादरायणसिद्धान्तशास्त्रयोनिनये स्थितः ॥
भवन्तं च भविष्यन्तं भूतं व्यवहितं तथा ।
सूक्ष्मं च विप्रकृष्टं चेत्येवंजातीयकं तथा ॥
वेदो बोधयितुं शक्तः नान्यादित्यस्ति शाबरम् ।
तदयुक्तं ततश्चानुमानं त्रैकाल्यगोचरम् ॥
सर्वार्थविषयं चेति न्यायवित्प्रवरोदितम् ।
विवादोऽयमनादिस्स्यात् उक्तियुक्त्योः परस्परम् ॥
16 स्वार्थं परार्थमिति च द्विविधं हि विभज्यते ।
नैयायिकैः तत्र दोषमिममाहुः परे बुधाः ॥
सर्वाणि चानुमानानि स्वानुसंधानशक्तितः ।
प्रवृत्तानि स्वव्यवहृतिसाधनानीति हि स्थितम् ॥
चेद्विभज्य च वक्तव्यमेवं वक्तुं हि साम्प्रतम् ।
स्वयंसिद्धं चान्यवाक्यपूर्वकं चेति भेदतः ॥
स्वार्थं परार्थमिति हि प्रत्यक्षादावपीष्यताम् ।
दोषज्ञाः सूक्ष्ममतयः श्रोतारो नहि केवलम् ॥

नचापूर्वास्तीर्थकराः न भवन्तीति निर्णयः ।
तथात्वे प्रथमैकान्तपरिशेषः प्रसज्यते ॥

(78) व्याप्तिः.

1 अथ व्याप्तिपदार्थीयविकल्पस्यापि संग्रहः ।
तत्प्रमाणविकल्पोऽपि संग्रहादिह सूच्यते ॥
अविनाभावनियमः व्याप्तिस्सौगतसम्मता ।
सा च साध्यवदन्यस्मिन्नसंबन्धो निरुच्यते ॥
व्यतिरेकस्सुग्रहस्स्याद्दुर्ग्रहो यावदन्वयः ।
अतएवाविनाभाव इत्युक्तिः व्यतिरेकतः ॥
व्यतिरेकव्याप्तिरेवानुमानाङ्गतया मता ।
वैधर्म्यतश्च दृष्टान्तः विपक्षाद्विनिवृत्तये ॥
कार्यकारणभावो वा स्वभावो वाऽत्र गृह्यते ।
व्याप्तिग्रहोपायतया तैर्बौद्धैरिति निर्णयः ॥
2 नैयायिकैस्साहचर्यनियमो व्याप्तिरिष्यते ।
तच्च व्यापकसामानाधिकरण्यमितीर्यते ॥
साहचर्यं चान्वयतः तथैव व्यतिरेकतः ।
द्वेधाऽपि सम्मतं तेन लिङ्गं त्रिविधमुच्यते ॥
साहचर्येऽत्र घटकः संबन्धः बहुधा मतः ।
नौलूक्यवच्चतुर्धैव सांख्यवन्नापि सप्तधा ॥

इयानेव विशेषोऽत्र भावयोर्यादृशी ययोः ।
व्याप्यव्यापकता सैव व्यत्यस्ता तदभावयोः ॥
अग्नेर्भावस्य भूयस्त्वात्तदभावोऽल्पतां व्रजेत् ।
धूमभावस्य चाल्पत्वात् तदभावो महत्तरः ॥
व्यभिचारज्ञानशून्यसहचारस्य दर्शनम् ।
हेतुर्व्याप्तिग्रहे तर्कः क्वचिच्छङ्कानिवर्तकः ॥
यावतीनां साध्यहेतुव्यक्तीनां स्यादलौकिकम् ।
सामान्यलक्षणासत्त्या सहचारस्य दर्शनम् ॥
3 मीमांसकानां सिद्धान्ते व्याप्तितत्त्वमिदं मतम् ।
व्याप्तिर्हि नियमः कश्चित् संबन्धोऽस्ति विलक्षणः
संबन्धो व्याप्तिरिष्टाऽत्र लिङ्गधर्मस्य लिङ्गिना ।
व्याप्यस्य गमकत्वं च व्यापकं गम्यमिष्यते ॥
यो यस्य देशकालाभ्यां समो न्यूनोऽपिवा भवेत् ।
स व्याप्यः व्यापकस्तस्य समो वाऽभ्यधिकोऽपि वा
येन केनापि संबन्धेनैष क्वापि नियम्यते ।
स एव लिङ्गधर्मस्य लिङ्गता समुदाहृता ॥
तथा च नियमाख्यो यस्संबन्धो व्याप्तिलक्षणः ।
तदभावादागमोऽपि प्रमाणं स्याद्विलक्षणम् ॥
व्याप्तिस्सपक्षदृष्टैवानुमानाङ्गतया मता ।
सर्वदेशव्याप्तिरत्र दुर्ग्रहैव विपश्चिताम् ॥

भूयोदर्शनगम्या च व्याप्तिस्सामान्यधर्मयोः ।
क्वाचित्र कृत्तिकारोहिण्याद्ययोर्हि विशेषयोः ॥
कैश्चित् यावद्देशकालव्याप्तिधीरङ्गमिष्यते ।
मानं मृगयमाणाश्च प्रत्यक्षं तत्सकृद्विदुः ॥
बालोऽपि दीपकलिकास्पर्शाद्वेत्ति तथा सकृत् ।
योगिप्रत्यक्षतुल्यं तन्मानसं केचिदब्रुवन् ॥
भूयोदर्शनसंजातसंस्कारसचिवं पुनः ।
प्रत्यक्षं चरमं व्याप्तौ मानं केचित्प्रचक्षते ॥
यत्रयत्र भवेद्धूमः तत्रतत्राग्निरित्यसौ ।
यस्स्यादवगमः स्सोऽयं परोक्षो ह्यानुमानिकः ॥
इति कौमारिलाः प्राहुः नाङ्गं यावन्मतिस्ततः ।
अन्वयो व्यतिरेकश्च यथासंभवमिष्यते ॥
नियम्यत्वानियन्तृत्वे भावयोर्यादृशी मते ।
ते एव विपरीते तु विज्ञेये तदभावयोः ॥
गमकस्यैकदेशस्य व्याप्तिं गम्येन भाषितुम् ।
साध्यसाधर्म्यवैधर्म्यदृष्टान्तः प्रतिपाद्यते ॥
तत्र हेत्वर्थमुद्दिश्य साध्योपादानमिष्यते ।
उद्देश्यो व्याप्यते धर्मः व्यापकश्चोत्तरो मतः ॥
यद्वृत्तयोगः प्राथम्यमित्याद्युद्देश्यलक्षणम् ।
तद्वृत्तमेवकारश्च स्यादुपादेयलक्षणम् ॥

उद्देश्यतावच्छेदकव्यापकत्वं हि भासते ।
विधेयस्येत्येतदेव विवृतं नव्यतार्किकैः ॥
साध्येन साधनस्याथ व्याप्तिमन्ये प्रचक्षते ।
व्याप्तिरावृतिरेषा स्यादथवाऽधिकदेशता ॥
भूमौ प्रतिष्ठितो वह्निः धूमाग्रं व्योम्नयत्रास्थितम् ।
व्याप्नोति कथमित्यत्र प्रत्यवस्थीयते परैः ॥
4 निरुपाधिकसंबन्धो व्याप्तिरित्यपरे विदुः ।
उपाधिस्साधनाव्याप्तिसाध्यव्याप्त्यादिगर्भितः ॥
तत्रोपाधिव्याप्तिवस्तुनिर्णयेऽन्योन्यसंश्रयः ।
तत्रचेत्थं समाधानं परिशुद्धावुदीरितम् ॥
यो यावत्साध्यदेशस्थः न यावद्धेतुदेशगः ।
स उपाधिरिति ज्ञानान्न दोष इति निश्चितम् ॥
5 अन्तर्व्याप्तिः बहिर्व्याप्तिरिति व्याप्तिर्द्विधा मता ।
सिषाधयिषितव्यक्तिव्याप्तिरन्तरितीर्यते ॥
बहिः व्यक्त्यन्तरव्याप्तिरिति ह्यार्हतनिर्णयः ।
पक्षे व्याप्तिर्भवेदन्तः त्वन्यत्र बहिरिष्यते ॥
इति प्रमाणतत्त्वेऽपि विस्तृतं देवसूरिणा ।
विशेषव्याप्तिरन्तः स्यात् बहिस्समान्यतो भवेत् ॥
वृथा विभाग इत्याहुः विबुधा न्यायवेदिनः ।
व्यतिरेकव्याप्तिबुद्ध्याऽप्यन्वयव्याप्तिरेव हि ॥

अवधार्येत सैव स्यादनुमाङ्गमितीतरे ।
इत्थं व्याप्तिविकल्पोऽयं संक्षेपादिह सूचितः ॥
6 अथ साधर्म्यवैधर्म्यविचारे किंचिदुच्यते ।
शाक्या वैधर्म्यवचनं पाक्षिकं नैव सेहिरे ॥
वैधर्म्यमेव वक्तव्यं सर्वदेत्यप्यवादिषुः ।
धूमत्वं नाम सामान्यं न वस्तु परमार्थतः ॥
अस्तु वाऽथापि साधर्म्यं न वक्तुमिह शक्यते ।
अशेषदेशकालेषु दुर्ग्रहः शिखिनोऽन्वयः ॥
विपक्षव्यतिरेकस्तु सुज्ञानः स्याददर्शनात् ।
सुकरं चैकदेशस्थेनैवानग्निष्वदर्शनम् ॥
तस्माद्धूमो ह्यनग्निभ्यो रिच्यमानोऽवबोधकः ।
अनग्निव्यावृत्तिमुखादग्नेरिह विनिश्चयः ॥
अतद्व्यावृत्तिविषयौ लिङ्गशब्दावतो मतौ ।
अत्र प्रत्युक्तिरेषा स्यादपोहश्लोकवार्तिकम् ॥
न चादर्शनमात्रेण ताभ्यां प्रत्यायनं भवेत् ।
सर्वत्रेव ह्यदृष्टत्वात्प्रत्याय्यं नावशिष्यते ॥
अस्य चायमभिप्रायस्संग्रहात्प्रतिपाद्यते ।
विपक्षादर्शनं त्वत्रादर्शनस्वनशब्दितम् ॥
प्रत्यायनं पुनरतद्व्यावृत्तिविषयं मतम् ।
तच्छब्दार्थौ लिङ्गशब्दौ तन्नापोहमतिः क्वचित् ॥

अन्वयस्य सपक्षेऽपि विपक्षवददर्शनात् ।
द्वाभ्यां च व्यावृत्त एषः धूमस्संशायको भवेत् ॥
तथाचापोहरूपार्थो लोके नैव प्रसिद्ध्यति ।
अतोऽन्वयोऽप्यङ्गमिति स्वीकर्तुमुचितं बुधैः ॥
अन्वयस्य क्वचिद्दृष्टौ ह्यतद्व्यावृत्तिनिश्चयः ।
यत्तु सर्वत्रान्वयोऽयं दुर्ग्रहस्स्यादितीरितम् ॥
तत्तुल्यं व्यतिरेकेऽपि नैषोऽदर्शनमात्रतः ।
किन्तु दृश्यादर्शनतः, एकदेशास्थितस्य तु ॥
न कदाचिद्धि सर्वत्र दृश्यादर्शनसंभवः ।
तेन सर्वत्रान्वयेऽथ व्यतिरेके च सर्वतः ॥
अविज्ञातेऽपि बहुशः साहित्यावगमात्पुनः ।
व्यभिचारादर्शनेन सनाथादनुमोदयः ॥
सर्वैरभ्युपगन्तव्यः एवं शब्देऽपि दृश्यताम् ।
तद्वस्तुविषयौ लिङ्गशब्दौ नापोहगोचरौ ॥
अपोहवार्तिकश्लोकभाव एवं निरूपितः ।
7 अन्वयव्यतिरेकी च तथा स्यात्केवलान्वयी ॥
केवलव्यतिरेकी च हेतुः व्याप्तिप्रभेदतः ।
अतस्त्रिधाऽनुमानं स्यादिति न्यायविदां मतम् ॥
कौमारिलाद्याः नेच्छन्ति हेतुं तं व्यतिरेकिणम् ।
तथा वादीन्द्रादयश्च नेच्छन्त्यन्वयिनं पुनः ॥

अन्वयव्यतिरेक्येकहेतुमात्रविदास्ति चेत् ।
तृतीयश्शोभते पन्थाः स च द्वावपि दूषयेत् ॥
नैयायिकास्तु तान्सर्वान् दूषयेयुः महाधियः ।
अत्रायमभिसंधिस्स्यात् केवलव्यतिरेकिणः ॥
निरासे वेदविदुषां न्यायशुद्ध्यादिसूचितः ।
हैतुकास्साधयन्त्यत्र केवलव्यतिरेकिणा ॥
यद्यदिच्छन्ति तत्सर्वं स चादौ भज्यते यदि ।
त्र्यंशोऽवरोपितो भारो भवेद्धैतुकभञ्जने ॥
प्रमाणवादारम्भे च तद्विस्तर उदीरितः ।
साध्याप्रसिद्धिः वैषम्यं व्यर्थतोपनयस्य च ॥
अन्वयेनैव सिद्धिश्च व्यतिरेकिणि दूषणम् ।
तत्स्थाने ह्यभिषिञ्चन्ति पञ्चमीं प्रमितिं तु ते ॥
व्यतिरेकव्याप्तिबुद्ध्या साऽन्यथाऽकारि तार्किकैः ।
यच्चानुकूलतर्के सत्यप्रसिद्धविशेषणः ॥
न दोष इति भाषन्ते तार्किकाः तदसंगतम् ।
तर्को हि नाप्रसिद्धार्थे क्वचित्साधयितुं क्षमः ॥
अतोऽप्रसिद्धतादोषः तर्के सत्यपि दुस्त्यजः ।
केवलव्यतिरेकी च स क्वचिद्भावगोचरः ॥
अभावगोचरश्चेति द्विविधो विबुधैर्मतः ।
गौरिति व्यवहर्तव्य इति स्याद्भावगोचरः ॥

इतरेभ्यो भिद्यत इत्यभावविषयो मतः ।
व्यावृत्तिर्व्यवहारश्च लक्षणस्य प्रयोजनम् ॥
इति व्यवहृतिः प्राचां विदुषां तन्निबन्धना ।
8 केवलान्वयिहेतुश्च सम्मतो न्यायवेदिभिः ॥
अत एवाविनाभावः दुर्ग्रहः तत्र कथ्यते ।
धर्मादयः प्रमेयत्वात् प्रत्यक्षाः कस्यचित्त्विति ॥
उदाहरन्ति न्यायज्ञाः केवलान्वयिनं क्वचित् ।
इदं वाच्यं ज्ञेयतयेत्यपि क्वापि प्रयुज्यते ॥
तद्दूषयति वादीन्द्रः समाधिस्तत्र हि श्रुतः ।
वाच्यत्वं ज्ञायते चैवं ज्ञेयत्वमभिधीयते ॥
विरोधो व्यक्तिभेदेन यथावदुपशाम्यति ।
वाच्यत्वेऽपि च वाच्यत्वं ज्ञेयत्वे ज्ञेयता तथा ॥
व्यक्तिभेदाद्विरोधस्य शान्तिः बीजाङ्कुरादिवत् ।
नात्माश्रयप्रसक्तिर्वा नान्योन्याश्रयताऽपि वा ॥
प्रमेयत्वाभिधेयत्वप्रसङ्गे इति निर्णयः ।
तथापि विफलं त्वेतदिति केचन जानते ॥
इदं प्रयोजनं ज्ञेयं तत्त्वमुक्ताकलापतः ।
यतो वाचो निवर्तन्त इति श्रुत्येकदेशिनाम् ॥
सद्विवर्तविदां मार्गनिरोधः प्रथमं फलम् ।
दुस्साधं क्वचिदप्येवमवाच्यत्वादि चेत्तदा ॥

किं पुनस्सर्ववचसां प्रतिष्ठा यत्र तत्रतु ।
9 महाविद्या नाम कश्चिद्धेतुः वादीन्द्रसम्मतः ॥
स केवलान्वयी यावत्सपक्षेषु स्थितो मतः ।
महाविद्यासूत्रकर्ता यः कुलार्काभिधो बुधः ॥
महाविद्याप्रवीणश्च शिवादित्याभिधो बुधः ।
तस्यास्ति किंचिद्वयाख्यानं महाविद्याविडम्बनम् ॥
तस्य प्रणेता वादीन्द्रः यस्स्याच्छङ्करकिङ्करः ।
विवादाध्यासितं स्वस्वेतरवृत्तित्ववर्जितः ॥
यस्सकर्तृकानिष्ठस्स्यात्तस्याधिकरणं भवेत् ।
प्रमेयत्वात्कलशवत् इत्यादिः केवलान्वयी ॥
एतेन क्षित्यङ्कुरादेस्स्यात्सकर्तृकतेति च ।
तर्कानुकूल्यतस्तत्र बलाबलविनिर्णयः ॥
इति प्राचीनसिद्धान्ताः प्रायस्संगृह्य दर्शिताः ।
वेदान्तसूरिभिर्न्यायपरिशुद्धाविति स्थितम् ॥

(79) अनुमेयवादः

1 न्यायवार्तिकतात्पर्यटीकायां कारिका इमाः ।
दिङ्नागकथिताः वाचस्पतिमिश्रैरुदाहृताः ॥
केचिद्धर्मान्तरं मेयं लिङ्गस्याव्यभिचारतः ।
संबन्धं केचिदिच्छन्ति सिद्धत्वाद्धर्मधर्मिणोः ॥

लिङ्गं धर्मे प्रसिद्धं चेत् किमन्यत्तेन मीयते ।
अथ धर्मिणि तस्यैव किमर्थं नानुमेयता ॥
संबन्धेऽपि द्वयं नास्ति षष्ठी श्रूयेत तद्वति ।
अवाच्योऽनुगृहीतत्वात् न चासौ लिङ्गसंगतः ॥
लिङ्गस्याव्यभिचारस्तु धर्मेणान्यत्र दृश्यते ।
तत्र प्रसिद्धं तद्युक्तं धर्मिणं गमयेदिति ॥
2 मीमांसकानां सिद्धान्ते त्वनुमेयमिदं मतम् ।
इदानीं पर्वते वह्निरस्तीत्यनुमितिः भवेत् ॥
देशकालानुरक्तस्य वह्नेः प्रागप्रसिद्धितः ।
सिद्धसाधनशङ्का तु वारितैवं कुमारिलैः ॥
पर्वतस्याग्निरस्तीति संबन्धोऽस्तीति वा तयोः ।
न हि प्रयुञ्जते धीराः संबन्धोऽतो न साध्यते ॥
तस्माद्धर्मविशिष्टस्य धर्मिणः स्यात् प्रमेयता ।
तत्र धर्मी धूम एव प्राच्यतार्किकसम्मता ॥
3 गुरुभिस्त्वन्यथा तत्र निर्णीतं तत्प्रदर्श्यते ।
व्याप्तिग्रहणवेलायां धूमवत्यखिले स्थले ॥
वह्निमत्ताऽस्तीतिबुद्धेः प्रकृते पर्वते पुनः ।
धूमवत्त्वं ग्रहीतव्यं नच तेजस्विता पुनः ॥
सा हि पूर्वगृहीतैव संस्कारात्स्मर्यते तदा ।
प्रत्युत्पन्ननिदानोत्था संगतिस्त्वनुमा ततः ॥

4 सामान्यव्याप्तिसहितपक्षधर्मत्वधीबलात् ।
सामान्ये पक्षनिष्ठत्वं विशेषः न्यायविन्मतः ॥
अनुमेयं च मत्त्वर्थः नान्यशब्दार्थ इत्यतः ।
संबन्धसाध्यतापक्षाक्षेपास्सर्वे निवारिताः ॥
तस्माल्लोकायिताशङ्काः सर्वा अप्याकुलीकृताः ।
इति नैयायिकैकान्तः विश्रुतस्सर्ववादिनाम् ॥
स एव प्रायशस्सर्वैः स्वीकृतो नव्यसूरिभिः ।
निरूढतर्कसंस्काराः सुधियः प्रथमं यतः ॥
5 यत्सिषाधयिषन्त्यत्र तार्किकाः परमेश्वरम् ।
तत्रानुमाने यत्किंचित्प्रसङ्गादिह कथ्यते ॥
प्राधान्येनानुमानं तु त्रिविधं हीशसाधनम् ।
कार्यलिङ्गकमाद्यं स्यात् द्वितीयं वेदलिङ्गकम् ॥
अदृष्टलिङ्गकं चान्यत् विस्तरः कुसुमाञ्जलौ ।
वेदलिङ्गकमेवोपदेशलिङ्गकमुच्यते ॥
विवादाध्यासितं ह्येतत्कार्यत्वात्स्यात्सकर्तृकम् ।
कादाचित्कत्वतः कार्यं सर्ववित्कर्तृपूर्वकम् ॥
अन्वयव्यतिरेक्याद्यं द्वितीयं व्यतिरेकवत् ।
वेदवाक्यं कर्तृपूर्वं वाक्यत्वाद्भारतादिवत् ॥
वेदस्सर्वज्ञप्रणीतः वेदत्वात् व्यतिरेकयदः ।
अदृष्टं सकलं साक्षात्कर्तृधीमदधिष्ठितम् ॥

अचेतनत्वे च सति कार्यकारित्वतस्त्विति ।
अत्र दोषादोषचिन्ता प्रवृत्ता महती कथा ॥

(80) न्यायवादः.

1 प्रतिज्ञा चापदेशश्च तथैव च निदर्शनम् ।
तथैव चानुसंधानं प्रत्याम्नायश्च पञ्चमः ॥
2 इति प्रशस्तपादोक्तमथ पक्षिलभाषितम् ।
प्रतिज्ञा च तथा हेतुरुदाहरणमित्यपि ॥
तथैवोपनयश्चापि भवेन्निगमनं ततः ।
जिज्ञासा संशयश्चैव शक्यप्राप्तिः प्रयोजनम् ॥
व्युदासस्संशयस्येति दशान्येऽवयवान्विदुः ।
प्रमाणसामर्थ्यबुद्धिः शक्यप्राप्तिरितीर्यते ॥
परे तु पञ्चावयवान् प्रतिज्ञादीन् प्रचक्षते ।
न्यायः परप्रत्ययार्थः वाच्यं यावदपेक्षितम् ॥
पञ्चावयवसंयुक्तमित्याहुरिह केचन ।
अत्रचावयवव्यूहे प्रमाणानि परस्परम् ॥
संभूयसांदिग्धमर्थं साधयन्तीति भाषितम् ।
शब्दः प्रतिज्ञाऽनुमानं हेतुः प्रत्यक्षमेव तत् ॥
उदाहरणमत्रोपमानं चोपनयो मतः ।
सर्वेषामुपसंहारो भवेन्निगमनं पुनः ॥

3 स्वाभिप्रायानुसारेण परः प्रत्याय्यते परैः ।
तत्र स्वप्रातिपत्तिर्हि क्रमेणैवं प्रजायते ॥
प्रथमं पर्वतोऽध्यक्षः कथ्यते स प्रतिज्ञया।
ततो लिङ्गस्योपलब्ध्या हेतुना तन्निवेद्यते ॥
ततो व्याप्तिस्मृतिः साऽपि दृष्टान्तेनाभिधीयते ।
ततः परामर्शसिद्धिः स चोपनयवेदितः ॥
ततश्चानुमितिस्सैषा प्रोक्ता निगमनादिह ।
एवंच पञ्चावयवाः जयन्तेन निगुम्भिताः ॥
4 इति तार्किकसिद्धान्तं प्रायस्सर्वोऽनुमन्यते ।
अथ मीमांसकानां तु मते भेदः प्रदर्श्यते ॥
प्रतिज्ञया निगमनं हेतुनोपनयस्तथा ।
गतार्थ इति कः कुर्यात् पञ्चावयवघोषणाम् ॥
तदेवं पौनरुक्त्येन तथाऽध्याहारदोषतः ।
तर्कबौद्धमते हित्वा वयं त्र्यवयवे स्थिताः ॥
तत्तु पञ्चतयं केचित् द्वयमन्ये वयं त्रयम् ।
उदाहरणपर्यन्तं यद्वोद्राहरणादिकम् ॥
5 तथाचावयवद्वैधवादिभिस्सौगतैरिह ।
यत्सत्तत् क्षणिकं सन्तश्चामी भावा इतीर्यते ॥
तत्रोदाहरणं चोपनयश्चेति द्वयं मतम् ।
सूच्यन्ते नहि पाठ्यन्ते धीमन्तो वादिनः खलु ॥

पक्षस्य वचनं नाम प्रतिज्ञा स च दुर्वचः ।
ज्ञातव्ये पक्षधर्मत्वे पक्षो धर्म्यभिधीयते ॥
व्याप्तिकाले भवेद्धर्मः साध्यसिद्धौ पुनर्द्वयम् ।
तस्मान्नयाये प्रतिज्ञायाः प्रयोगो नेति जानते ॥
सपक्षः स्यात्समानोऽर्थः साध्यधर्मसद्वत्त्वतः ।
सपक्षलक्षणं त्वेतद्दिङ्नागविबुधोदितम् ॥
अनुमेयेऽथ तत्तुल्ये सद्भावः नास्तिताऽसति ।
इत्येवं धर्मकीर्तेश्च सपक्षविषयं वचः ॥
एवं स्थितेऽपि कैश्चित्तु बौद्धैः क्षणिकवादिभिः ।
सपक्षलक्षणं साध्यधर्मवत्त्वमितीरितम् ॥
ततश्च पक्ष एव स्यात्सपक्ष इति तन्मतम् ।
सत्त्वेन क्षणभङ्गानुमाने सर्वसपक्षता ॥
ततश्च पक्षवचनमनपेक्षितमुच्यते ।
तत्तु सर्वैरपि परैः विबुधैः प्रतिषिद्धयते ॥
6 प्रतिज्ञा हेतुरिति च द्वयमेवार्हता विदुः ।
मन्दबुद्धिविवेकाय दृष्टान्ताद्यपि कुत्रचित् ॥
7 नच शक्यं प्रतिज्ञातुं पक्षो नास्तीति केवलम् ।
एतत्प्रतिज्ञावाक्यार्थे पक्षोपगमसंभवात् ॥
तस्य चानभ्युपगमे न हि पक्षो निषिद्धयते ।
न हेतुनिरपेक्षात्मा पक्षो नामास्ति कश्चन ॥

प्रसाधयितुमिष्टो हि हेतुना पक्ष उच्यते ।
हेतुमात्रनिषेधोऽपि न च सर्वत्र शक्यते ॥
स्वप्रवृत्तिविरोधेन न कारकनिषेधनम् ।
ज्ञापकस्य निषेधस्तु व्यवहारविरोधकृत् ॥
न दृष्टान्तनिषेधोऽपि सर्वलोकविसम्मतेः ।
तत्पक्षहेतुदृष्टान्तमर्यादा सुप्रतिष्ठिता ॥
तथा न्यायनिरुक्त्याख्यवादेऽधिकरणात्मकः ।
न्यायो निरूप्यते चैवं नयोऽप्यार्हत उच्यते ॥
8 यो वादिप्रतिवादिभ्यां निश्चितस्साधनं तु तत् ।
इति दिङ्नागोक्तमतः नासत्यात्सत्यधीः क्वचित् ॥
येऽपि रेखादयो दृष्टाः वर्णानां प्रतिपादकाः ।
न ते स्वेनापि रूपेण परमार्थत्ववर्जिताः ॥
वर्णात्मना न सत्याश्चेत्सर्वभावेष्वयं विधिः ।
पदार्थान्तररूपेण न सत्यं किंचिदिष्यते ॥
हेत्वादीनां तु भवतः स्वरूपेणाप्यसत्यता ।
तेन बाष्पादिवत्तेषामुपायत्वं न लेख्यवत् ॥
नन्वसत्यापि बाह्येऽर्थे बुद्ध्यारूढेन सिद्ध्यति ।
वासनाशब्दभेदोत्थविकल्पप्रविभागतः ॥
न्यायविद्भिरिदं चोक्तं धर्मादौ बुद्धिमाश्रिते ।
व्यवहारोऽनुमानादेः कल्प्यते न बहिः स्थिते ॥

अस्तीदं वचनं तेषामिदं तत्र परीक्ष्यताम् ।
भेदोऽसतः कथं हि स्यात् बुद्धिशब्दप्रकल्पनात् ॥
निर्वस्तुके कथंचस्यात्प्रसवो बुद्धिशब्दयोः ।
शब्दभेदोऽपि भवतः तदभावान्न सिद्ध्यति ॥
ननु यद्वन्मया हेतुः नेष्यते दूषणं तथा ।
तेन मे दूषणाभवात् अदुष्टं किं न साधनम् ॥
नेदानीं दूषणं कार्यं साधनाभावतो यदि ।
त्वयैवास्मदभिप्रेता स्वपक्षासिद्धिराश्रिता ॥
एवमादिवचोभेदैः निरालम्बनसाधनम् ।
दूषितं विस्तरेणेदं वीक्ष्यतां श्लोकवार्तिके ॥
असत्यात्सत्यधीयुक्तिं समालम्ब्य हि शाङ्करे ।
शारीरके जगन्मिथ्यावाद एष समर्थितः ॥
नन्वेकत्वैकान्तवादे नानात्वं न प्रसिद्ध्यति ।
प्रत्यक्षादिप्रमाणानि व्याहतानि भवन्ति हि ॥
तथा विधिप्रतीषेधशास्त्राण्यप्यफलानि च ।
मोक्षशास्त्रं तथा शिष्यशासित्रादि विहन्यते ॥
कथंवा सत्यमेकत्वमनृतादवगम्यते ।
अत्रोच्यते प्राकप्रबोधात् सर्वं सत्स्वाप्रवर्त्ततः ॥
सर्वोपपत्तिरेकत्वं त्वसत्यादपि गम्यते ।
यथा शङ्काविषाद्धेतोर्मरणाद्युपजायते ॥

रज्जुसर्पान्मृगजलाद्दंशनस्नानधीरपि ।
सत्याप्रबोधनिर्बाधा फलमप्युपलभ्यते ॥
शुभाशुभस्वप्नदृग्भ्यां सूच्येते साध्वसाधुनी ।
तथा सत्याक्षरज्ञानमस्ति रेखानृताक्षरात् ॥
देहात्मप्रत्ययो यद्वत्प्रमाणत्वेन कल्पितः ।
लौकिकं तद्वदेवेदं प्रमाणं त्वात्मनिश्चयात् ॥
इत्यादिः विस्तरो ज्ञेयः, तत्र श्रीभाष्यकृत्पुनः ।
असत्ये विषयेऽप्यत्र प्राह ज्ञानस्य सत्यताम् ॥
तेन ज्ञानेन सत्येन मता सर्वत्र सत्यधीः ।
सत्यादसत्यधीर्वा स्यान्नासत्यात्सत्यधीः क्वचित् ॥
सर्वस्यास्य विवादस्य निदानं वचनं पुनः ।
अनिर्वाच्यविचारे प्राक् धर्मकीर्तेरुदाहृतम् ॥

(81) हेत्वाभासाः.

1 अनुमेयेन संबद्धं प्रसिद्धं च तदन्विते ।
तदभावे च नास्त्येव तल्लिङ्गमनुमापकम् ॥
विपरीतमतो यत्स्यात् एकेन द्वितयेन वा ।
विरुद्धासिद्धसंदिग्धमलिङ्गं काश्यपोऽब्रवीत् ॥
इति प्रशस्तपादेन प्रोक्तं वैशेषिकं मतम् ।
अथ नैयायिकमते विश्वनाथस्य संग्रहः ॥

2 अनेकान्तो विरुद्धश्चाप्यसिद्धः प्रतिपक्षितः ।
कालात्ययापदिष्टश्च हेत्वाभासास्तु पञ्चधा ॥
आद्यस्साधारणस्तु स्यादसाधारणकोऽपरः ।
तथैवानुपसंहारी त्रिधाऽनैकान्तिको भवेत् ॥
यस्सपक्षे विपक्षे च भवेत्साधारणस्तु सः ।
यस्तूभयस्माद्व्यावृत्तः स चासाधारणो मतः ॥
तथैवानुपसंहारी केवलान्वयिसाध्यकः ।
यस्साध्यवति नैवास्ति स विरुद्ध उदाहृतः ॥
आश्रयासिद्धिराद्या स्यात् स्वरूपासिद्धिरप्यथ ।
व्याप्यत्वासिद्धिरपरा स्यादसिद्धिरतः त्रिधा ॥
विरुद्धयोः परामर्शे हेत्वोस्सत्प्रतिपक्षता ।
साध्यशून्यो यत्र पक्षः त्वसौ बाध उदाहृतः ॥
3 असिद्धिश्च विरुद्धश्चानैकान्तिक इति त्रयः ।
हेत्वाभासा इति प्राहुरार्हता अपि कोविदाः ॥
यस्संदिग्धविपक्षस्स्यात् स त्वनैकान्तिको मतः ।
बाधादिरप्यसिद्ध्यादावन्तर्भावमिहार्हति ॥
प्रमाणानां स्वरूपेण संख्यया विषयेण च ।
फलेन च चतुष्पात्त्वं आभासस्तद्विपर्ययः ॥
4 प्रत्यक्षादिप्रमाणानामाभासस्यापि दर्शनात् ।
हेत्वाभासस्य चैकस्य ग्रहणं चोपलक्षणम् ॥

5 अनुमानाभास एव साध्याभासादिसंभवात् ।
सोऽपि ग्राह्य इति प्राहुरपरे विबुधोत्तमाः ॥
6 समासमाविनाभावावेकत्र स्तो यदा तदा ।
समेन यदि नो व्याप्तस्तयोर्हीनोऽप्रयोजकः ॥
विपक्षे बाधकाभावादुपाधेर्वाऽपि संभवात् ।
हेत्वाभासोऽन्यथासिद्धयन् अप्रयोजक इष्यते ॥
संदिग्धानैकान्तिकस्स्यादप्रयोजक इत्यपि ।
सौगतोक्तिरयुक्ता यदसिद्धेरुपजीव्यता ॥
7 स्वेनैव स्वस्य रोधश्चेत्स्वव्याघातो ननूच्यते ।
स्वस्य सिद्धावसिद्धौ वा विरोधः किं करिष्यति॥
अत्रोच्यते या हि युक्तिः परपक्षापनुत्तये ।
उपात्ता तत्सजातीया स्वपक्षं चेत्प्रतिक्षिपेत् ॥
तादृश्या परपक्षस्य नच दोषः प्रसज्यते ।
स्वपक्ष एव दुष्टस्स्यादिति दूषकतोदिता ॥
दुष्टस्यापिच यद्यस्ति दूषकत्वं तदा भुवि ।
नित्यं स्यात्कलहः मौनं शरणं वाऽथ वादिनाम्॥
8 सर्वं बाधितमेवास्तु वादिनामिति नैव सत् ।
बाधस्य बाधेऽबाधेऽपि सर्वाबाधोऽवतिष्ठते ॥
विचारो वस्तुरूपश्चेत्किं सिद्धयेत्सर्वशून्यता ।
विचारोऽवस्तुरूपश्चेदपि नो सर्वशून्यता ॥

9 मीमांसकानां सिद्धान्ते त्वथाभासो निरूप्यते ।
दोषोऽनुमाने द्विविधः प्रतिज्ञाहेतुभेदतः ॥
त्रिधा प्रतिज्ञादोषस्स्यात् स्ववाग्विहतिलक्षणः ।
वन्ध्या मे जननीत्येवं सर्वं वाक्यं मृषेत्यपि ॥
यावज्जीवमहं मौनी धर्मिधर्मोक्तिरोधतः ।
असिद्धिश्चाप्यनैकान्तिकत्वं बाधकतेति च ॥
हेतुदोषास्त्रिधा ख्यातः पञ्चधाऽसिद्धिरुच्यते ।
स्वरूपासिद्धिसंबन्धासिद्धी च व्यतिरेकतः ॥
असिद्धिराश्रयासिद्धिः व्याप्त्यसिद्धिश्च पञ्चमी ।
शशशृङ्गादिहेतुत्वे स्वरूपासिद्धिरुच्यते ॥
पक्षावृत्तेस्तु हेतुत्वे संबन्धासिद्धिरुच्यते ।
व्यतिरेकासिद्धिरेषा हेतुः पक्षात्मको यदि ॥
आश्रयासिद्धिरत्र स्यान्नचेत्पक्षः प्रसिद्ध्यति ।
भिन्नाधारे साध्यहेत्वोः व्याप्यत्वासिद्धिसंभवः ॥
द्विधाऽनैकान्तिकत्वं स्याद्धेतुदोषोऽप्यनन्तरः ।
आद्यं सव्यभिचारं स्यात् परं सप्रतिसाधनम् ॥
बाधकत्वं विरुद्धत्वं तृतीयो दोष इष्यते ।
10 भाट्टानां संशयोभीष्टः फलं सप्रतिसाधने ॥
गुरूणां तादृशो दोषः नेष्टः वस्तुविरोधतः ।
नहि वस्तु विकल्प्येत न विरुद्धसमुच्चयः ॥

एतेन वस्तुनो नानाकारता भाट्टसम्मता ।
सोऽनेकान्तो वाद इति गुरुभिस्त्वधरीकृतः ॥
अतएवानित्यदोषं प्राहुर्नैयायिका अपि ।
रत्नकोशकृतोऽप्यत्र विदुस्संशयहेतुताम् ॥
असाधारणदोषस्य शाक्यास्संशयहेतुताम् ।
वदन्ति तच्चानुमतं दूषितं च कुमारिलैः ॥
11 विरुद्धाव्यभिचारीति केचिज्जात्यन्तरं विदुः ।
साधारणाविशेषं तं प्राहुः केचन सूरयः ॥
असाधारणमित्यन्ये प्रतिपक्षं परे विदुः ।
यथा परोदितैरेव पक्षहेतुनिदर्शनैः ॥
विरुद्धसाधने तत्र विरुद्धाव्यभिचारिता ।
सर्वसत्प्रतिपक्षाणां विरुद्धाव्यभिचारिताम् ॥
कदाचिदूचुराचार्याः समासरुचयो बुधाः ।
12 पक्षेण व्यभिचारस्य चोदना शाक्यसम्मता ॥
संदिग्धानैकान्तिकता सोच्यते, नान्यसम्मता ।
अनुमानस्य चोच्छित्तिस्तादृग्दोषानुधावने ॥
13 स व्यधीकरणासिद्धः हेतुः पक्षेतरस्थितः ।
इत्याहुरपरे सोऽपि संबन्धासिद्धिमान् भवेत् ॥
14 असाधारण एवायमनध्यवसिताभिधः ।
हेत्वाभासान्तरमिति भूषणन्यायसम्मतः ॥

भासर्वज्ञादयो न्यायसारादाविममाश्रिताः ।
पन्थानामिति विज्ञेयं मानमेयोदयादितः ॥
सर्वोदाहरणं न्यायमञ्जर्यादिषु विश्रुतम् ।
पश्यन्त्वपेक्षावन्तश्चेद्वयं दिङ्मात्रसूचकाः ॥

(82) कथा.

1 एकाधिकरणौ धर्मौ तुल्यकालौ विरोधिनौ ।
पृथक्परिग्रहौ पक्षप्रतिपक्षावुदीरितौ ॥
परस्परविरुद्धार्थवादिनोर्हि विवादिनोः ।
व्यवहारः कथेत्युक्तः सा कथा त्रिविधा मता ॥
वादजल्पवितण्डाभिः तत्स्वरूपं पुनास्त्विदम् ।
वीतरागकथा वादः विजगीषुकथा परः ॥
वितण्डा स्थापनाहीना परपक्षैकदूषणम् ।
प्रतिज्ञा साधनं चैव दूषणं च विनिर्णयः ॥
व्यवहारश्चतुष्पादः लोकवच्चैव निर्णयः ।
सर्वथा सदुपायानां वादमार्गः प्रवर्तते ॥
2 अधिकारोऽनुपायत्वान्न वादे शून्यवादिनः ।
इति सत्यविदः प्राहुः, आद्यो वादस्स खण्डने ॥
यदि शून्यविदं वादानधिकारं वदेत्सुधीः ।
तस्मिन्नेव विवादेनाधिकारं दित्सति स्वयम् ॥

यदि शून्यविदन्यं प्रत्याहानाधिकृतिं सुधीः ।
तस्य चाप्रतिवादित्वात् निग्रहस्थानमेव तत् ॥
अत्रोत्तरं पुनरिदं ते वादानधिकारिणः ।
इत्यन्तेवसतां सोऽयमुपदेशो भवेदिति ॥
कथानधीकारवाचा निष्प्रयोजनतोदिता ।
इति मार्गान्तरं न्यायपरिशुद्धावुदीरितम् ॥
प्रयोजनानुयोगेन वितण्डावादिनिग्रहः ।
वात्स्यायनोदितः सोऽध्वा विद्वद्भिरनुगम्यते ॥
विस्तरश्शतदूषण्यां वेदान्ताचार्यसूरिभिः ।
कृतः कथाऽनधीकारवादे नावमिके पुनः ॥
3 वादेषु नियमा एते कल्प्यन्ते प्रौढिसिद्धये ।
अदन्त्यो वा निरोष्ठ्यो वा लुङ्प्रयोगोऽथवा तथा ॥
यङ्प्रयोगो यक्प्रयोगः इत्यादिश्शब्दगोचरः ।
अनुमानेनैव तथा शब्देनैव तथेति वा ॥
वैदिकेनागमेनैवेत्येवं मानव्यवस्थितिः ।
छलजात्यादयोऽप्येवं निग्रहस्थानलक्षणाः ॥
कक्ष्यादिनियमाश्चापि न्यायशास्त्रे हि विश्रुताः ।
एवंविधा हि निर्बन्धाः वादिनां जयहेतवः ॥
4 अर्थिप्रत्यर्थिनोस्तावन्न द्वयोर्जयसंभवः ।
एकस्य विजयेऽपि स्यात् सफला सत्कथैव सा ॥

यत्र द्वयोर्न विजयः नवा तत्त्वविनिश्चयः ।
कुकथां कथयन्त्येनां असदुक्तिपरंपराम् ॥
तां द्विकक्ष्यादिकामेके षट्कक्ष्यावधिकां विदुः ।
पूर्वत्रासंभवात् सभ्यैः उत्तरत्र निवारणात् ॥
असदप्रतिभादौ तु पक्षैकत्वमपि क्वचित् ।
सभ्येष्वसत्स्वदक्षेष्वप्युपर्युपरि धावति ॥
5 अथ पत्रमुखो वादो विदुषां हृदयंगमः ।
प्रमेयाम्बुजमार्ताण्डोदाहृतः कश्चिदुच्यते ॥
प्रसिद्धावयवं वाक्यं स्वेष्टस्यार्थस्य साधकम् ।
साधुगूढपदप्रायं पत्रमाहुरनाकुलम् ॥
श्वान्तभासितभूताद्यत्र्यन्तात्मतदुभान्तवाक् ।
परान्तद्योतितोद्दीप्तमितितस्वात्मकत्वतः ॥
चित्राद्यदन्तराणीयमारेकान्तात्मकत्वतः ।
यदित्थं न तदित्थं न यथाकिंचिदिति त्रयः ॥
तथाचेदमिति प्रोक्तौ चत्वारोऽवयवा मताः ।
तस्मात्तथेति निर्देशो पञ्च पत्रस्य कस्यचित् ॥
6 छलैश्च निग्रहस्थानैः जातिभिश्चापि साधनम् ।
उपालम्भश्च वादे चेत् स जल्प इति निर्णयः ॥
विद्यायाः पालनार्थं सः न लाभाद्यर्थमिष्यते ।
छलं च त्रिविधं प्रोक्तं तद्वाविंशतिधा पुनः ॥

निग्रहस्थानमुदितं चतुर्विंशतिधा परम् ।
इति न्यायविदः प्राहुः परैर्विविधमिष्यते ॥
7 छलं च प्रायशः विश्वव्यामोहनमिति स्थितम् ।
जातिः स्वव्याघातकत्वादसदुत्तरमुच्यते ॥
परापादितदोषाणामनभ्युपगमेन वा ।
तदुद्धारेण वा दोषं ब्रूयादिति विनिर्णयः ॥
तथैवाप्रतिपत्त्या वाऽथवा विप्रतिपत्तितः ।
प्रतिज्ञादिपरित्यागान्निग्रहस्थानसंभवः ॥
तूष्णींभावो यदा तूष्णींभावो निग्रहकारणम् ।
प्रलपेत्तु यदा तत्र भवेत्प्रलपितं तु तत् ॥
यथायथा चेष्टते सः तथा निग्रहहेतुता ।
अनन्तं निग्रहस्थानं कीर्तितं धर्मकीर्तिना ॥
एवं नानाविधकथाभासतत्त्वावलोकिनाम् ।
सदुत्तरैस्तदुत्थानात् तत्त्वधीजयसंभवः ॥
अन्यथा षण्डचेष्टावद्भवेयुरफलाः कथाः ।
इति प्रख्यापनायात्र कथाभास उदाहृतः ॥
8 वादरूपैवैकधेति कथां तामार्हता विदुः ।
वीतरागकथा वाद इत्यतो विश्रुतो भुवि ॥
विश्रुता वीतरागास्ते नाम्नाऽपि प्रायशो बुधाः ।
पराजयभयाद्वीतरागता यशसेऽपि वा ॥

इति भेदानादरस्स्यादित्याहुर्वादकौतुकाः ।
नियोज्यः पर्यनुयोज्यः न कश्चित्कस्यचिद्भुवि ॥
संभवैतिह्यचेष्टादिप्रमाणानां यथायथम् ।
अनुमानप्रभृतिषु ह्यन्तर्भावो बुधैर्मतः ॥
चेष्टा सामयिकी शब्दव्यवहारानुसारिणी ।
अस्येयं बोधिकेत्येवं भरताद्यागमे स्थिता ॥
एवं लिप्यादिकमपि यथासंभवमर्हति ।
अन्तर्भावं ततस्तत्र न बिकल्पोऽस्ति वादिनाम् ॥
इत्येवमनुमानस्य सारांशः परिकीर्तितः ।
बहुभिर्बहुधा प्राज्ञैः प्रायशो विस्तरः कृतः ॥

(83) उपमानम्

1 वृद्धनैयायिकास्तत्रातिदेशवचनं श्रुतम् ।
संज्ञाप्रतीतिफलकमुपमानं प्रचक्षते ॥
उपायमात्रावगमे शब्दव्यापारविश्रमात् ।
निरपेक्षोपेयबोधतत्परादागमाद्भिदा ॥
यथा परार्थानुमानं नागमः किंतु भिद्यते ।
लिङ्गसामर्थ्यरूपस्योपायस्य प्रतिपादनात् ॥
2 नव्यनैयायिकानां तु सिद्धान्तोऽथ प्रदर्श्यते ।
श्रुतातिदेशवाक्यस्य तथा विपिनगामिनः ॥

ग्रामीणस्य प्रथमतः पश्यतो गवयादिकम् ।
सादृश्यधीर्गवादीनां या स्यात्सा करणं मतम् ॥
वाक्यार्थस्यातिदेशस्य स्मृतिर्व्यापार इष्यते ।
गवयादिपदानां तु शक्तिधीरुपमा फलम् ॥
तस्मादयं स गवयो नामेत्येवंविधा मतिः ।
उपमानैकजन्यैव न प्रमाणान्तरोद्भवा ॥
साधर्म्यादथ वैधर्म्याद्धर्ममात्राच्च तत् त्रिधा ।
गवयो गौरिवेत्यादिवाक्यं साधर्म्यमूलकम् ॥
गवादिवन्न द्विशफः भवेद्वाजीति यद्वचः ।
तद्वैधर्म्यनिदानं स्यात् धर्ममात्रात्पुनर्यथा ॥
दीर्घग्रीवः प्रलम्बोष्ठः कण्टकाशी क्रमेलकः ।
सादृश्यवचनं चैतद्द्वयोस्स्यादुपलक्षणम् ॥
प्रत्यक्षप्रत्यभिज्ञास्स्युः सादृश्यादिधियो यतः ।
गवयेन सदृग्गौरित्येषा नोपमितिस्ततः ॥
प्रसिद्धेन हि सादृश्यमप्रसिद्धस्य गम्यते ।
गवा गवयपिण्डस्य न तु युक्तो विपर्ययः ॥
यत्त्वावगतविज्ञानं प्रत्युत्पन्ननिदानजम् ।
सा संगतिः स संवादः सोऽनुवाद इतीर्यते ॥
सादृश्यस्यानिमित्तत्वान्निमित्तस्याप्रतीतितः ।
समयो दुर्ग्रहः पूर्वं शब्देनानुमयाऽपिवा ॥

प्रायस्सर्वेऽनुमानान्तर्भावमाहुर्यथापुनः ।
एषेव गौस्सेतिबुद्धिरनुमाऽन्योन्यहस्तवत् ॥
यद्वाऽऽप्तवाक्याद्युत्पत्तिश्चिह्नोन्नीतनिमित्ततः ।
3 अथ मीमांसकैकान्तः किंचित्संगृह्यतेऽधुना ॥
दृश्यमानार्थसादृश्यात्स्मर्यमाणार्थगोचरम् ।
असन्निकृष्टसादृश्यज्ञानं मैमांसकं मतम् ॥
गवयस्थितसादृश्यदर्शनं करणं भवेत् ।
फलं गोगतसादृश्यज्ञानमित्यवधार्यते ॥
तस्माद्यत्स्मर्यते तत् स्यात्सादृश्येन विशेषितम् ।
प्रमेयमुपमानस्य सादृश्यं वा तदन्वितम् ॥
प्रत्यक्षेणावबुद्धेऽपि सादृश्ये गवि च स्मृते ।
विशिष्टस्यान्यतोऽसिद्धेरुपमानप्रमाणता ॥
प्रत्यक्षे च यथा देशे स्मर्यमाणे च पावके ।
विशिष्टविषयत्वेन नानुमानाप्रमाणता ॥
तथोपमानप्रामाण्यं विदुषां हृदयङ्गमम् ।
आग्नेयवाक्यं स्वसदृक्सौर्येणोपमितं यदा ॥
तदाचोपस्थिते स्वार्थे तृतीयोंऽशो ह्यपेक्षितः ।
सौर्यभावनया ग्राह्य इत्यस्त्येतत्प्रयोजनम् ॥
तथा प्रतिनिधिद्रव्यसंग्रहोऽपि क्वचिद्भवेत् ।
नचेदमनुमानादिनेति मानं पृथक्ततः ॥

4 उपमानप्रमेयं चेत्संबन्धः स्यात्पदार्थयोः ।
स सामयिक एव स्यात् आरण्यकनरश्रुतः ॥
एवमारण्यकाः केचित् केचिन्नागरकास्तथा ।
केचिद्देशान्तरनरविश्रुताः कतिचित्पुनः ॥
द्वीपान्तरनरप्रोक्ता एवं सर्वे पदात्मकाः ।
शब्दास्स्युरिति संकेतसिद्धान्तः विजयी भवेत् ॥
औत्पत्तिकं तु संबन्धं शब्दस्यार्थेन ये विदुः ।
अर्थापत्तिप्रमाणेन साक्षात्तैस्तद्ग्रहो मतः ॥
प्रत्यक्षं चानुमानं च तदुत्पादे प्रवर्तते ।
अतस्संबन्धविज्ञानं त्रिप्रमाणकमुच्यते ॥
संबन्धाक्षेपशान्त्यन्ते वागेषा श्लोकवार्तिके ।
शब्दवृद्धाभिधेयांश्च प्रत्यक्षेणात्र पश्यति ॥
श्रोतुश्च प्रतिपन्नत्वमनुमानेन चेष्टया ।
अन्यथाऽनुपपत्त्या च बुद्ध्येत् शक्तिं द्वयाश्रिताम् ॥
अर्थापत्त्याऽवबुध्यन्ते संबन्धं त्रिप्रमाणकम् ।
नच सामयिकस्तस्मात्संबन्ध इति निर्णयः ॥
ये तु सामयिकं तं च संबन्धं तार्किका विदुः ।
तेषां व्याकरणादीनि प्रमाणानीति निश्चितम् ॥
अतस्संकेतसंबन्धासिद्ध्यर्थं मार्गशोधनम् ।
तन्मार्गप्रतिरोधाय त्रिप्रमाणकतोदिता ॥

सर्वमेतच्च वेदस्यापौरुषेयत्वसिद्धये ।
तत्पौरुषेयतायै च नदीनां सागरो गतिः ॥

(84) अर्थापत्तिः.

1 प्रमाणषट्कविज्ञातो यत्रार्थो नान्यथा भवेत् ।
अदृष्टं कल्पयेदन्यं साऽर्थापत्तिरुदाहृता ॥
तत्र प्रत्यक्षतो ज्ञाताद्दाहाद्दहनशक्तता ।
तथैवानुमितात्सूर्ये यानात्तच्छक्तिशालिता ॥
तथैवोपमितादर्थात्स्यादर्थान्तरकल्पना ।
इत्याद्यूह्यं बुधैस्तत्र निर्णयांशोऽवगम्यताम् ॥
साधारणप्रमाणानामसाधारणमानतः ।
विरोधादविरुद्धांशे धीरर्थापत्तिरुच्यते ॥
यथा जीवनमानस्य मन्दिराभावमानतः ।
विरोधात्करणीभूतात् बहिर्भावस्य कल्पना ॥
तस्माद्यो विद्यमानस्य गृहाभावोऽवगम्यते ।
स हेतुस्स बहिर्भावमगृहीत्वा न गृह्यते ॥
प्रमेयस्य प्रवेशोऽयं विशेषोस्त्यनुमानतः ।
विलक्षणप्रमाणत्वात् तस्य नास्त्यत्र दोषता ॥
2 तार्किकध्वंसनोपायमेतादृशमजानता ।
गुरुणा कल्पितः कश्चिज्जीवनस्यात्र संशयः ॥

जीवनं किल विज्ञातं वेश्मवर्तितया पुरा ।
तस्माज्जीवनसंदेहः भवेद्वेश्मन्यदर्शनात् ॥
संदिग्धं जीवनं त्वेतत् बाहिर्भावस्य बोधकम् ।
अर्थापत्तेः प्रभावोऽयं यत्सन्दिग्धोऽपि बोधयेत् ॥
एवं जीवनसंदेहे स्यात्संदिग्धविशेषणः ।
हेतुरित्यनुमानत्वनिरासः सुकरो मतः ॥
तत्संदेहव्युदासाय कल्पना या प्रवर्तते ।
संदेहापादकादर्थादर्थापत्तिरसौ मता ॥
दृष्टान्तदृष्टनियमस्मरणे त्वनुमा मता ।
प्रतिघातालोचने स्यादर्थापत्तिर्विलक्षणा ॥
विना कल्पनयाऽर्थेन दृष्टेनानुपपन्नताम् ।
नयता दृष्टमर्थं या साऽर्थापत्तिस्तु कल्पना ॥
3 अर्थापत्तेस्तु नैवेह प्रमाणान्तरतेष्यते ।
व्यतिरेकव्याप्तिबुद्ध्या चरितार्था हि सा यतः ॥
सत्त्वभोजनयोर्व्याप्ये स्यातां जीवनपीनते ।
जीवित्वे च गृहासत्त्वं बाहिस्सत्त्वं प्रसाधयेत् ॥
पीनत्वे च दिवाऽभुक्तिः रात्रिभोजनसाधनम् ।
इति नैयायिकाः प्राहुः इतरेऽपि तदध्वगाः ॥
अनियम्यस्य नायुक्तिः नानियन्तोपपादकः ।
न मानयोर्विरोधोऽस्ति प्रसिद्धे चाप्यसौ समः ॥

इदमौदयनं पद्यं तस्य चार्थोऽयमुच्यते ।
व्याप्यमेवोपपाद्यं स्यात् व्यापकश्चोपपादकः ॥
विरोधे नैव मानं स्यात् अनुमानेऽपि सा भवेत् ।
विस्तरो न्यायकुसुमाञ्जल्यादौ वीक्ष्यतां बुधैः ।
4 यत्र त्वपरिपूर्णस्य वाक्यस्यान्वयसिद्धये ।
शब्दोऽध्याह्रियते तत्र श्रुतार्थापत्तिरिष्यते ॥
पीनो दिवा च नात्तीति सांकाङ्क्षवचनश्रुतेः ।
तदेकदेशविज्ञानं श्रुतार्थापत्तिरुच्यते ॥
तामर्थगोचरां केचिदपरे शब्दगोचराम् ।
कल्पयन्त्यागमाच्चैनामभिन्नां प्रतिजानते ॥
प्रायशश्चानया वेदे व्यवहारः व्यवस्थितः ।
सोऽवैदिकः प्रसज्येत यद्येषा भिद्यते ततः ॥
वह्निसंसर्गतो दाहस्यान्यथाऽनुपपत्तितः ।
क्लृप्तिर्दहनशक्तेस्तु दृष्टार्थापत्तिरुच्यते ॥
प्रमाणग्राहिणीत्वेन दृष्टार्थापत्तितोऽधिका ।
श्रुतार्थापत्तिरेष्टव्या प्रमेयग्राहिणी परा ॥
5 प्राभाकरास्त्विमं भेदं न विवक्षन्ति तद्यथा ।
अर्थं बुद्ध्वा शब्दक्लृप्तिरिति सर्वत्र विश्रुता ॥
केवलं द्वारमित्युक्ते पिधेहीति न कल्प्यते ।
किंतु क्लृप्तिः पिधानस्य तदर्थस्यैव लाघवात् ॥

अतएवच शब्दस्य नाध्याहारमिमे विदुः ।
भाट्टा नैयायिकाश्चापि शब्दाध्याहारवादिनः ॥
पुष्पेभ्य इति शुद्धोक्तौ स्पृह्यर्थो यदि कल्प्यते ।
चतुर्थ्यनुपपत्तिस्स्यात् शब्दस्तदुपपादकः ॥
अर्थाध्याहारपक्षे तु कार्यं वेदार्थ इष्यते ।
स एव धर्मः वेदैकगम्यता न विरोत्स्यते ॥
द्रव्यक्रियागुणादीनां धर्मत्वं ये विदुर्बुधाः ।
अन्यथाऽनुपपत्त्या हि तेषां वेदस्य कल्पना ॥
लौकिकोऽलौकिकश्चेति यथा शब्दो द्विधा मतः ।
लौकिक्यलौकिकी चेति श्रुतार्थापत्तिरप्यसौ ॥

(85) अनुपलब्धिः.

1 प्रत्यक्षादेरनुत्पत्तिः प्रमाणाभाव उच्यते ।
साऽऽत्मनोऽपरिणामो वा विज्ञानं वाऽन्यवस्तुनि॥
तत्र तृतीयपादेनानुपलब्धिर्विवक्षिता ।
तुरीयेन तु पादेनाभावबुद्धिर्विवक्षिता ॥
प्रमायाः करणत्वे तु फलं हानादिबुद्धयः ।
इति न्यायोऽभ्युपेतव्य इति वार्तिककृन्मनः ॥
अथ तस्यैव विवृतिः सम्प्रदायप्रवर्तकैः ।
प्रकाशितो लिख्यतेऽत्र पुनः वैशद्यसिद्धये ॥

2 अथोपलम्भयोग्यत्वे सत्यप्यनुपलम्भनम् ।
अभावाख्यं प्रमाणं स्यात् अभावस्यावबोधकम् ॥
विषयं तदधीनांश्च सन्निकर्षादिकान्विना ।
उपलम्भस्य सामग्रीसंपत्तिरिह योग्यता ॥
सा च ज्ञाततयाऽभावज्ञानस्य सहकारिणी ।
अज्ञातोऽनुपलम्भस्तु सत्तामात्रेण बोधकः ॥
योग्यत्वावगमार्थं हि सूक्ष्मार्थाभाववेदने ।
सूक्ष्मबोधकनेत्रांशुसंपातार्थं प्रयस्यते ॥
योग्यत्वस्य च संदेहे विपर्यासेऽथवा सति ।
अभावेऽपि हि संदेहः भ्रमो वाऽस्त्येव तद्यथा ॥
तमसि भ्रष्टमन्विष्यन् कराभ्यामङ्गुलीयकम् ।
सर्वोर्वीस्पर्शसंदेहात् अभावेऽप्येति संशयम् ॥
तथैव सर्वतोऽस्पर्शे मत्वा सर्वाभिमर्शनम् ।
सत एवाङ्गुलीयस्याप्यभावं बुध्यते भ्रमात् ॥
द्विविधोऽनुपलम्भः स्यात्प्रतियोगिप्रभेदतः ।
प्रमितिश्च स्मृतिश्चेति तत्राद्या प्रतियोगिनी ॥
प्रत्यक्षादिप्रभेदेन प्रमितिः पञ्चधा स्थिता ।
तथैवानुपलम्भोऽपि प्रविभागमिहार्हति ॥
अभावाख्यं तु वस्त्वेव नास्तीत्याह प्रभाकरः ।
हसन्ति चिन्तां तस्यान्तेवसन्तः पुनरीदृशीम् ॥

3 इति मीमांसकाः प्राहुः अत्र नैयायिका जगुः ।
अभावः प्रत्यक्ष इति सर्वानुभवसाक्षिकः ॥
येनेन्द्रियेण या व्यक्तिः गृह्यते तेन तद्गता ।
जातिश्च तदभावश्च गृह्येते इति निर्णयः ॥
विशेषणतया सन्निकर्षेणैष प्रतीयते ।
सा हि स्वरूपसंबन्धः न च ज्ञाननिरूपिता ॥
स्याद्योग्यानुपलब्धिश्च करणे सहकारिणी ।
प्रतियोग्युपलम्भे चाभावो नैवोपलभ्यते ॥
यदि स्यादुपलभ्येतेत्येवं यत्र प्रसज्यते ।
तादृशप्रतियोगित्वं योग्यताऽनुपलब्धिगा ॥
तस्मात्तमसि कुम्भादेरभावो नोपलभ्यते ।
तत्र कुम्भोपलब्धिस्तु प्रसङ्गं नैव चार्हति ॥
तस्मादनुपलब्धिस्तु न मानान्तरमिष्यते ।
अपिचानुपलम्भस्याज्ञातस्य यदि हेतुता ॥
ज्ञानाकरणकत्वेन प्रत्यक्षत्वमिहाक्षतम् ।
यदि ज्ञातस्य हेतुत्वं तत्रापि तदपेक्षया ॥
दुरुद्धराऽनवस्था स्यात् साऽपि चाभावलक्षणा ।
भावान्तराभाववादेऽनुपलब्धिः न विद्यते ॥
स्वरूपेण पुनर्ज्ञाने भावरूपेण वेद्यते ।
प्रतियोगिस्पर्शितायां अभावत्वेन तद्ग्रहः ॥

4 दृश्यसत्ता भवेद्व्याप्या दर्शनं व्यापकं मतम् ।
व्यापकानुपलब्ध्यैव व्याप्याभावोऽवसीयते ॥
लिङ्गेनानुपलब्ध्यैव ह्यभावस्य गतार्थता ।
इति बौद्धाः तन्न युक्तं लिङ्गज्ञानानवस्थितेः ॥
अभिप्रायस्सौगतानां तेषामेषोऽवधार्यताम् ।
यो न्यायमञ्जरीन्यायरत्नाकरविशोधितः ॥
दृश्यं सद्यत्र यत्किंचिद्वस्तु नैवोपलभ्यते ।
नास्ति तद्वस्तु तत्रेति बुद्धिसत्त्वे पुमानिव ॥
न दृश्यते चात्र देशे दृश्योऽपि कलशास्त्विति ।
स्वभावहेतुरनुपलब्धिः स्यात्प्रतिषेधकः ॥
यैवैकज्ञानसंसर्गिवस्त्वन्यतरगोचरा ।
धीस्सैवैकतरस्येष्टाऽनुपलब्ध्यभिधा ततः ॥
उपलब्धेरभावोऽन्यो नोपलब्ध्यतिरेकतः ।
तस्मान्न तस्यानुपलब्ध्यन्तरापेक्षयाऽस्थितिः ॥
योऽसावन्यतरस्योपलम्भः स स्वयमेवहि ।
संवेद्य इत्यपि ततो नैव चात्रानवस्थितिः ॥
नास्तीत्यादिव्यवहृतियोग्यताऽभावशब्दिता ।
तादात्म्यमेव संबन्धः तया तस्या इति स्थिति ॥
बहुधाऽनुपलब्धिर्हि तीर्थकृद्भिर्निरूपिता ।
एकादशविधामेके परे षोडशधा विदुः ॥

व्यापकानुपलब्धिस्तु प्रायशस्सर्वसम्मता ।
व्यापकानुपलब्ध्या हि पक्षे व्याप्यं निवर्त्यते ॥
या व्यापकविरुद्धस्य चोपलब्धिरनन्तरा ।
पृथिवीत्वव्यापकस्य द्रव्यत्वस्य विरोधिनः ॥
गुणत्वस्योपलम्भेन पृथिवीत्वनिषेधधीः ।
तया संपद्यत इति साऽपि सर्वत्र सम्मता ॥
5 अत्र प्रतिब्रुवन्त्येवं कुमारिलमुखा बुधाः ।
अक्षादेवोत्पद्यतेऽसावभावो मानमिष्यते ॥
त्रिरूपलिङ्गजन्यार्थदृक्प्रमाणमितीरयन् ।
कथं तुच्छस्वरूपस्य कारणापेक्षितां वदेत् ॥
अनुमा दुर्निरूपाऽत्र मानमित्यैक्यवादिना ।
तस्मादनुपलम्भोऽस्ति, प्रमाणं वाऽथवा न सः ॥
अक्षापेक्षा तु नाभावग्रहणायोपयुज्यते ।
किंतु दृश्यादर्शनाय भूतलाद्यवबुद्धये ॥
दृश्यादर्शनमक्षं च मिलित्वैवावबोधयेत् ।
अभावेन विशिष्टं तं भावं यद्भूतलादिकम् ॥
नच भिन्नेन्द्रियग्राह्यं किंचिदस्त्यनुरागकृत् ।
नहि लाक्षानुरक्तेऽपि स्फटिके धीस्त्वगादिभिः ॥
इत्यादिवचनं तु स्यात्संबन्धाग्रहगोचरम् ।
प्रकृते तूभयोश्चैव संसर्गोऽभावगोचरः ॥

त्वाचं क्षीरं तस्य रसः संसर्गोऽपि च रासनः ।
तथाच मधुरं क्षीरमिति लोके विशिष्टधीः ॥
शब्दस्तु श्रावणः तस्य चार्थे श्रौत्रो न चान्वयः ।
तस्मान्न चक्षुः शब्दादिराज्ञितस्यावबोधकृत् ॥
6 अत्र नैयायिकानां तु सिद्धान्तोऽयं निरर्गलः ।
सर्वोपाख्याविदुक्तत्वान्नेयमस्तीति वोच्यताम् ॥
अभावश्चाक्षुषज्ञानविषयो वाऽभ्युपेयताम् ।
अभावस्य विचारे तु कृत एतस्य विस्तरः ॥

(86) शब्दाक्षेपः.

1 नन्वत्र प्रथमं शब्दे प्रामाण्यं नावकल्पते ।
प्रामाण्येऽपि पृथग्भावो नास्तीत्यथ परीक्ष्यते ॥
अर्थप्रतीतिजनकं प्रमाणमिति सम्मतम् ।
विकल्पमात्रमूलत्वान्नार्थं शब्दाः स्पृशन्त्यमी ॥
अङ्गुल्यग्रे हस्तियूथशतमित्यादिवाक्यतः ।
एष वन्ध्यासुतो यातीत्यतो वाऽर्थः क इष्यते ॥
लोलाक्षीणां लक्षमभिरमयेद्यः पुमानिह ।
स गन्धर्वपदं प्राप्नोतीति च श्रूयते स्वनः ॥
स्वर्गकामो दर्शपूर्णमासाभ्यां च चरेदिति ।
वाक्यस्यार्थे कथं लोके न स्यात् श्रद्धैव केवलम्॥

अर्थो निरूप्यमाणश्च को वा शब्दस्य शक्यते ।
वक्तुं, न जातिः न व्यक्तिः न तद्वान्नाम कश्चन ॥
संबन्धोऽप्यस्य नार्थेन नित्योऽस्ति समयोऽथवा ।
शक्यः सन्नपि वा बोद्धुं अर्थे कथमतीन्द्रिये ॥
वाक्यार्थोऽपि न निर्णेतुं पार्यते पारमार्थिकः ।
नियोगभावनाभेदसंसर्गादिस्वभावकः ॥
तत्प्रतीत्यभ्युपायश्च किं पदार्थः पदानि वा ।
वाक्यं वा व्यतिरिक्तार्थं स्फोटो वेति न लक्ष्यते ॥
सिद्धायामपि तद्बुद्धौ तस्याः द्राढिमकारणम् ।
नित्यत्वमाप्तोक्तत्वं वा न सम्यगवतिष्ठते ॥
पदे नित्येऽपि वैदिक्यो रचनाः कर्तृपूर्विकाः ।
नित्या वा कृतकत्वेऽपि कृताः केनेति दुर्गमम् ॥
कर्ताऽस्ति स च निर्द्वन्द्वः स चैकः स च सर्ववित्।
स च कारुणिको वेति प्रतिपत्तुं न शक्यते ॥
परस्परविरुद्धाश्च सन्ति भूयांस आगमाः ।
तेषां कस्येश्वरः कर्ता कस्य नेति न गम्यते ॥
वेदे दोषाश्च विद्यन्ते व्याघातः पुनरुक्तता ।
फलस्यानुपलम्भश्च तथा फलविपर्ययः ॥
सिद्धकार्योपदेशाच्च वेदे संशेरते जनाः ।
किमस्य कार्ये प्रामाण्यं सिद्धेऽर्थे वोभयत्र वा ॥

तेन वेदप्रमाणत्वं विषमे पथि वर्तते ।
जीविकोपायबुद्ध्या वा श्रद्धया वाऽभ्युपेयताम् ॥
2 विकल्पयोनयश्शब्दा विकल्पाश्शब्दयोनयः ।
कार्यकारणता तेषां नार्थं शब्दाः स्पृशन्त्यतः ॥
भिक्षुणा जातिमात्रस्य तथा जातिमतोऽपि वा ।
जातिमद्योगस्य चापि वाच्यत्वमिह दूषितम् ॥
एकस्यार्थस्वभावस्य प्रत्यक्षस्य सतः स्वयम् ।
कोऽन्यो न दृष्टो भागः स्याद्यः प्रमाणैः परीक्ष्यते ॥
वस्तुरूपं हि निर्भागं तत् प्रत्यक्षनिवेदितम् ।
अतो बलाल्लिङ्गशब्दौ अपोहविषयौ मतौ ॥
नागोनिवृत्तिर्नाश्वप्तिनिवृत्तिर्वाऽवबुध्यते ।
किंतु वस्तुस्वरूपेण स शब्दार्थोऽवगम्यते ॥
व्यावृत्तेष्वनुवृत्तं तं अपश्यन्तः परीक्षकाः ।
अतद्व्यावृत्तिरूपं तं सुनिष्कृष्य प्रचक्षते ॥
अनादिवासनावेगात् व्यावृत्तिरपि सा पुनः ।
सद्रूपमिव भिन्नं च तत्रतत्रावभासते ॥
3 इति सौगतसिद्धान्तः एष शाब्दिकसौगतः ।
तद्वाक्यार्थात्मना वाक्यं निर्भागं हि विवर्तते ॥
वाक्यार्थो वाक्यतो नार्थान्तरमित्यवधार्यते ।
शब्दस्य न विभागोऽस्ति कुतोऽर्थस्य भविष्यति ॥

विभागैः प्रक्रियामात्रमविद्वान् प्रतिपद्यते ।
शाब्दवैवर्तवादोऽयं वाक्यार्थे ह्यस्य विस्तरः ॥
4 शाक्या वैशेषिकाश्चापि पृथक् शब्दस्य मानताम् ।
नाङ्गीकुर्वन्ति तैरुक्तं वचनं चेदमुच्यते ॥
प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणे सद्दशात्मनः ।
अप्रत्यक्षस्य संबन्धात् अन्यतः प्रतिपत्तितः ॥
अपोद्धृताभिधायी च शब्दः वस्तु न संस्पृशेत् ।
अपोहवाचोयुक्त्या च शून्यता सैव सम्मता ॥
प्रशस्तपादभाष्यानुवादोऽप्येष निशम्यताम् ।
वक्तृप्रामाण्यसापेक्षः श्रुतिस्मृत्यादिलक्षणः ॥
आम्नायोऽप्यनुमानं तद्वचनादिति सूत्रणात् ।
वक्तृज्ञानानुमानेन प्रामाण्यं तस्य सम्मतम् ॥

(87) शब्दप्रामाण्यवादः.

1 अत्रोच्यते वेदविदां सम्प्रदायस्य संग्रहः ।
यदर्थं सकलं शास्त्रं मीमांसाख्यं प्रवर्तितम् ॥
पदार्थानां तु संसर्गमसमीक्ष्य प्रजल्पतः ।
वक्तुरेव प्रमादोऽयं न शब्दोऽत्रापराध्यति ॥
तेनाभिधातृदौरात्म्यकृतेयमयथार्थता ।
प्रत्ययस्येति, शब्दानां नार्थासंस्पर्शिता स्वतः ॥

अनुच्चारितशब्दोऽपि पुरुषो विप्रलम्भकः ।
हस्तसंज्ञाद्युपायेन जनयत्येव विप्लवम् ॥
या तु जात्यादिशब्दार्थपराकरणवर्त्मना ।
अर्थासंस्पर्शिता सैषाऽपोहवादे निराकृता ॥
2 तत्रानुमानमेवेदं बौद्धैर्वैशेषिकैश्श्रितम् ।
भेदस्सांख्यादिभिस्त्विष्टः न सूक्तं भेदकारणम् ॥
पदमभ्यधिकाभावात् स्मारकान्न विशिष्यते ।
यदाधिक्यं भवेत्किंचित् तत्पदस्य न गोचरः ॥
धूमादौ देशकालादिद्वारा त्ववगते सति ।
संबन्धनियमे तेन गमकत्वं प्रतीयते ॥
शब्दस्य गमकत्वं तु प्राग्वृद्धेभ्योऽवगम्यते ।
न संबन्धान्तरं तत्र नचाप्यत्रात्मसंश्रयः ॥
वृद्धेषु पूर्वपूर्वेषु गमकत्वं हि गृह्यते ।
अथोत्तरोत्तरेषां तु गमकत्वग्रहो भवेत् ।
यावन्तो यादृशा येच यदर्थप्रतिपादने ।
वर्णाः प्रज्ञातसामर्थ्याः ते तथैवावबोधकाः ॥
तेषां तु गुणभूतानामर्थप्रत्यायनं प्रति ।
साहित्यमेकवक्तृत्वं क्रमश्चापि विवक्षितः ॥
तस्माद्गमकतैवादावभिधायकता ततः ।
ज्ञायते तन्निमित्तेति संज्ञासंज्ञित्वलक्षणा ॥

प्रसिद्धा हीन्द्रियं लिङ्गं अभिधायकमित्यपि ।
एवमन्येऽपि गमकविशेषाः तत्र चेन्द्रियम् ॥
सत्तामात्रेण गमयत्यर्थं सन्निहितं पुनः ।
यत्तु व्याप्यतया ज्ञायमानं लिङ्गं तदुच्यते ॥
गमकं व्यापकस्यैतत्, यत्त्वेतदभिधायकम् ।
गमकत्वस्यावगमादेव तद्गमयत्यदः ॥
तत्संज्ञापरपर्यायमभिधायकतात्मकम् ।
संबन्धमध्यवस्यन्ति नान्यमित्यवधार्यते ॥
औत्पत्तिकस्स शब्दस्यार्थेनेत्येष हि विश्रुतः ।
यस्त्रिप्रमाणक इति चोपमाने निरूपितः ॥
वाक्यार्थे तु पदार्थेभ्यस्संबन्धानुभवादृते ।
बुद्धिरुत्पद्यते तेन भिन्नाऽसावक्षबुद्धिवत् ॥
संकेतमूलो वेदस्स्याच्चेष्टावद्बोधकत्वतः ।
शब्दत्वाद्वा देवदत्तनिनदादिवदित्यसत् ॥
संकेतयितुरज्ञानात्संप्रदायेऽपि संतते ।
बोधकत्वं ततो नित्यमनुमानं तु बाधितम् ॥
यथा वह्नौ दाहकता यथा बोधकतेन्द्रिये ।
तथा शब्दे गमकता दृष्टा स्वाभाविकी च सा ॥
तस्याश्च ग्रहणं चापि शब्दे लिङ्गवदिष्यते ।
तथाऽपि शब्दो नार्थस्य लिङ्गं भवितुमर्हति ॥

बोध्यबोधकभावोऽत्र संबन्धोऽन्यत्रचापरः ।
व्याप्यव्यापकभावस्स्यात् धीद्वारं तु द्वयोस्समम् ॥
3 तत्राकाङ्क्षादिमद्वाक्यताहृग्वाक्यार्थयोरपि ।
स्वभावाद्यदि संसर्गः नियमो व्याप्तिरेव सः ॥
इति वैशेषिकस्वान्तमेष नैयायिकाशयः ।
संकेतरूपस्संबन्धः संबन्धत्वेन भासते ॥
न साहचर्यरूपेण तेन न व्याप्तिलक्षणः ।
साहचर्यं च संबन्धः संमतो लिङ्गलिङ्गिनोः ॥
शब्दार्थयोश्च समयस्सामग्रीभेदतो भिदा ।
वह्निः क्षुरं मोदकश्चेत्यादिशब्दप्रयोगतः ॥
दाहनं पाटनं च स्यात्पूरणं सहितौ यदि ।
साहचर्यं नैव तस्मात् शब्दो मानान्तरं मतम् ॥
मीमांसकानां सिद्धान्ते नियमो व्याप्तिरुच्यते ।
शक्तिर्बोधकता, तेन नानुमानं प्रसज्यते ॥
संबन्धग्रहणं चापि त्वनन्तैर्न च संभवि ।
अपूर्वोऽपि च वाक्यार्थः कदाचिदनुभूयते ॥
येचान्विताभिधानस्य वादिनः तन्मते पुनः ।
गृहीत एव संबन्ध इति शङ्का भवेदपि ॥
शब्दो मानान्तरं लोकवेदसाधारणं मतम् ।
वर्णराशिः क्रमव्यक्तः पदमित्यभिधीयते ॥

पदानां सन्निधिर्वाक्यं तद्राशिः ग्रन्थ इष्यते ।
इति कौमारिलमतं अथ प्राभाकरं पुनः ॥
4 गुरुर्लौकिकशब्दानामनुमानत्वमिच्छति ।
सर्वशब्दानुमानत्ववादिनः कणभोजिनः ॥
अत्र लौकिकवाक्यानां व्यभिचाराभिमानतः ।
अर्थासंस्पर्शितां शब्दस्याहुः केचित्पुराविदः ॥
5 अत्र प्रतिब्रुवाणानामभिप्रायोऽयमुच्यते ।
विवक्षितार्थविज्ञानमिन्द्रियार्थनिबन्धनम् ॥
तस्य ज्ञानं च वाक्येन लिङ्गभूतेन गम्यते ।
ज्ञात्वैवार्थं ब्रवीतीति य एवमवधारितः ॥
तस्य ज्ञानेन नियतं वाक्यं ज्ञानानुमापकम् ।
ज्ञानं चार्थाविनाभावि तेनार्थेऽपि विनिश्चयः ॥
ततोऽर्थे निश्चिते पश्चात्सोर्थो वाक्येन गम्यते ।
तस्यां दशायां वाक्यस्य तस्य स्यादनुवादता ॥
वाक्यार्थस्यानुमानेन व्यभिचारभये गते ।
अभिधत्ते पुनर्वाक्यमनुवाद इति स्थितम् ॥
6 नान्तरीयकताऽभावाच्छब्दानां वस्तुभिस्सह ।
नार्थसिद्धिस्ततस्ते हि वक्त्रभिप्रायसूचकाः ॥
इति कीर्तिवचोमूलो विचारोऽत्रावधार्यताम् ।
व्यवहाराविसंवादान्मानतेन्द्रियलिङ्गयोः ॥

आप्तवादाविसंवादाच्छब्दः प्रामाण्यमृच्छति ।
पूर्वं वाक्यं लिङ्गभूतं वक्तुर्ज्ञानावधारणे ॥
वक्तृज्ञानप्रसूतं हि वाक्यं तत्कार्यमिष्यते ।
कार्यात्कारणसिद्धिश्च सर्वेषामपि सम्मता ॥
ततश्च पुंवाक्यमात्रं न शास्त्रमभिधीयते ।
नन्वर्थ एव प्रथमं पुंवाक्येनावगम्यते ॥
अन्यथा तु कथं वक्तुः धीर्विशिष्टाऽनुमीयते ।
अर्थेनैव विशेषो हि निराकारतया धियाम् ॥
नचाप्रतीतेनार्थेन विशेषो ह्यवगम्यते ।
अत्र ब्रूते यथार्थत्वशङ्कयाऽर्थो न निश्चितः ॥
अनिश्चितो नहि ज्ञात इति तात्पर्यसंग्रहः ।
वाक्याद्वाक्यार्थानुमानवादिनस्सौगतानुगाः ॥
वैशेषिकाश्च गुरवः वक्तृज्ञानानुमाविदः ।
तत्रापि गुरवो लोकवाक्यमात्रानुमाविदः ॥
अपौरुषेयमेवैकं शास्त्रं वाक्यचयात्मकम् ।
तत्रापि चोदना शास्त्रं नाभिधेति विनिर्णयः ॥
आप्तवादाविसंवादसामान्यादनुमानतः ।
अभिन्नत्वमनूद्येत्थं दूषितं श्लोकवार्तिके ॥
आप्तवादाविसंवादादत्रचेदनुमानता ।
निर्णयस्तावता सिद्ध्येद्बुद्ध्युत्पत्तिर्न तत्कृता ॥

अन्यदेव हि सत्यत्वमाप्तवाक्यत्वहेतुकम् ।
वाक्यार्थश्चान्य एवेति ज्ञातः पूर्वतरं ततः ॥
तत्रचेदाप्तवादेन सत्यत्वमनुमीयते ।
वाक्यार्थप्रत्ययश्चात्र कथं वाऽनुमितिस्त्विति ॥
7 अलंकारविदः प्राहुश्शब्दानां विषयो द्विधा ।
प्रतिपाद्योऽनुमेयश्च प्रथमोऽपि द्विधा मतः ॥
वाच्यो व्यङ्ग्यश्चेति ततः विवक्षालक्षणः परः ।
विवक्षाविषयत्वे तु शब्दानां लिङ्गता मता ॥
व्यङ्ग्यस्वरूपे विषये शाब्दता स ध्वनिर्मतः ।
असौ वादः पूर्वमुक्तवादसंस्कारमूलकः ॥

(88) शब्दप्रमाणपरिकरः.

1 आप्तवाक्यं तु शब्दः स्यादाप्तत्वमिदमुच्यते ।
प्रतारणाद्यप्रयोज्यहिताहितमनीषयोः ॥
प्रयोजकत्वमाप्तत्वं समानं वेदलोकयोः ।
इति कैश्चिन्निरुक्तं स्यात् अन्यैरपरथा यथा ॥
यदनाप्तानुच्चारितं वाक्यं शब्द स्स इष्यते ।
प्रमाणं तल्लोकवेदसाधारणमिति स्थितम् ॥
2 अर्थावबोधकश्शब्द इत्याहुस्स्फोटवादिनः ।
श्रोत्रग्राह्यश्शब्द इति तत्प्रतिद्वन्द्विद्वंष्टितः ॥

3 आप्तवाक्यं शब्द इति प्राहुर्न्यायविशारदाः ।
आप्तो यथार्थवक्तेति पौरुषेयत्वसिद्धये ॥
वेदानां प्रोच्यते, तेन प्रामाण्यं परतो मतम् ।
पदज्ञानं तु करणं द्वारं तत्र पदार्थधीः ॥
शाब्दबोधः फलं तत्र शक्तिधीस्सहकारिणी ।
आसत्तिर्योग्यताऽऽकाङ्क्षा तात्पर्यज्ञानमिष्यते ॥
कारणं, सन्निधानं तु पदस्यासत्तिरुच्यते ।
पदार्थे तत्र तद्वत्ता योग्यता परिकीर्तिता ॥
यत्पदेन विना यस्याननुभावकता भवेत् ।
साऽऽकाङ्क्षा वक्तुरिच्छा तु तात्पर्यं परिकीर्तितम् ॥
इति न्यायविदां मार्गः वैदिकानां पुनस्त्वसौ ।
परस्परापेक्षितत्वमाकाङ्क्षा स्यात्पदार्थयोः ॥
तात्पर्यविषयार्थानां बाधाभावो हि योग्यता ।
पदजन्या पदार्थानामासत्तिः स्यादुपस्थितिः ॥
तत्तदर्थप्रतीतीच्छा तात्पर्यं वक्त्रवस्थिता ।
वेदेऽपीच्छासमाकारः व्यापारोऽभ्युपगम्यते ॥
शरीरवादे प्रागुक्ता तन्त्रवार्तिकपद्धतिः ।
तन्निर्णयाय मीमांसा न्यायनिर्णयलक्षणा ॥
लोके तु वक्तुरिच्छेयं ज्ञेया प्रकरणादिना ।
लौकिकोऽलौकिकश्चेति शब्दोऽतो द्विविधो मतः ॥

4 शब्दार्थयोस्तु संबन्धो वृत्तिस्सा हि चतुर्विधा ।
मुख्या गौणी लाक्षणिकी तात्पर्यं चेति भेदतः ॥
मुख्या वृत्तिश्शक्तिरेषा सा पदार्थान्तरं मता ।
जातावेव हि शक्तिस्स्यात् व्यक्तिधीस्तुल्यावित्तितः॥
आक्षेपाद्वा स चाक्षेपः लक्षणा लिङ्गमेव वा ।
अर्थापत्तिः कुब्जशक्तिरित्येवं हि विकल्प्यते ॥
या स्वरूपसती शाब्दबोधे शक्तिः प्रयोजिका ।
व्यक्तिनिष्ठा कुब्जशक्तिरिति प्राभाकरा विदुः ॥
5 अवस्थानेऽपि चैकत्र मुख्यवृत्तेरसौ पुनः ।
तात्पर्यवृत्तिरन्यत्र दूरे संक्रमतेऽन्यथा ॥
सामान्यतः प्रयोगेऽपि विशेषावगतिः कथम् ।
तात्पर्यवृत्तिरभिधावृत्तेरपि बलीयसी ॥
यत्परस्स हि शब्दार्थ इति तस्माद्विदुर्बुधाः ।
प्रवृत्तिस्सर्वशास्त्राणां यस्मात्तात्पर्यनिर्णये ॥
पदार्थपर्यवसितोऽभिधाव्यापार इष्यते ।
तथापि तात्पर्यवृत्तिरपर्यवसिता मता ॥
अपर्यवसिता वृत्तिर्यत्र तत्रैकवाक्यता ।
सा पर्यवसिता या स्यात्पदे वाक्ये च केवले ॥
गुणसंबन्धतो गौणी लक्षणा शक्ययोगतः ।
तात्पर्यशक्तिः तात्पर्यनिर्णयात्सा बलीयसी ॥

तां लक्षणां केचिदाहुः बोध्यसंबन्धरूपतः ।
असतोऽपि हि शब्दोत्थज्ञानगोचरतेष्यते ॥
तथाऽगृहीतसंबन्धाः पदार्था एव सर्वशः ।
आगमार्थं बोधयन्तः बलीयांसो भवन्ति हि ॥
नियमस्मरणापेक्षाल्लिङ्गात्प्रबल आगमः ।
विशेषतश्च वेदस्य निर्दोषत्वाद्बलिष्ठता ॥
अव्युत्पन्नश्शब्दराशिः स्वस्वरूपं हि बोधयेत् ।
अतश्च देवताशब्दः स्वरूपे पर्यवस्यति ॥
6 अभिधेयेन संबन्धात्सादृश्यात्समवायतः ।
वैपरीत्यात्क्रियायोगाल्लक्षणा पञ्चधा मता ॥
भर्तृमित्रवचस्त्वेतत् अपरैष्षाड्विधा मता ।
जहदादिविभेदेन त्रिविधा नव्यवैदिकैः ॥
7 पदार्थबोधनं शब्दशक्तिजन्यत्वतः पदैः ।
पार्थसारथ्यादिबुधैः अभिधानमितीर्यते ॥
संस्कारोद्बोधनद्वारा पदार्थानां तु बोधनम् ।
तत्स्यात् स्मरणमेवेति चिदानन्दादयो विदुः ॥
पदार्था एव वाक्यार्थं पुनस्संसर्गलक्षणम् ।
बोधयेयुर्लक्षणया तात्पर्यानुपपत्तितः ॥
मीमांसाशास्त्रनिष्णाताः नव्याः प्राहुर्बुधोत्तमाः ।
तस्मान्नानापदार्थानुरक्तो वाक्यार्थ इष्यते ॥

पदार्थमूलो नामूलो नच संकेतमूलकः ।
विस्तरोऽस्य त्वन्विताभिधाने चाभिहितान्वये ॥

(89) शब्दविभागः.

1 ऋलृक्सूत्रे महाभाष्ये शब्दभेदो निरूपितः ।
चतुष्टयी हि शब्दानां प्रवृत्तिरिह जायते ॥
जातिशब्दाः क्रियाशब्दाः गुणशब्दाः तथा परे ।
यदृच्छाशब्दसंज्ञाः स्युः ते च डित्थादयो मताः ॥
ये प्रवृत्तिनिमित्तं तदर्थस्थमनपेक्ष्य च ।
प्रयोक्तृभिप्रायमात्रात्प्रवर्तन्ते हि ते पुनः ॥
शब्दस्वरूपमेवात्र निमित्तमिति निर्णयः ।
अथचालंकारिकोक्तो विभागस्त्वपरो यथा ॥
2 चतुर्धा वाचकश्शब्दः जातिवाचक आदिमः ।
द्वितीयो गुणवाची स्यात् तृतीयः कर्मवाचकः ॥
द्रव्यवाची तुरीयः स्यात् तेषां विवरणं त्विदम् ।
अनुप्राणनहेतुर्यः धर्मः तस्य हि वाचकः ॥
जातिवाचक इत्युक्तः तत्रानुप्राणनं पुनः ।
विशेषतो याऽऽकाङ्क्षा स्यात् शान्तिस्तस्या इतीर्यते
जातिः प्राणप्रदात्रीति चात एवाभिधीयते ।
अर्थस्यानुप्राणितस्य सिद्धधर्मो विशेषणम् ॥

यत्स्यात्तद्वाचकश्शब्दः गुणवाचक उच्यते ।
तादृशो यस्साध्यधर्मः तद्वाची कर्मवाचकः ॥
एतत्त्रितयसंयुक्तं वस्तु द्रव्यमितीर्यते ।
तद्वाचको द्रव्यवाचीत्येवं प्राज्ञैरनूदितम् ॥
जातिस्सामान्यमित्याद्या जातिमात्रस्य वाचकाः।
व्यक्तिस्स्वरूपमित्याद्या व्यक्तिमात्रस्य वाचकाः॥
गोघटाश्वादयो जातिविशिष्टव्यक्तिवाचकाः ।
गुणादिवाचकाश्शब्दाः द्रव्यपर्यन्तबोधकाः ॥
असौत्रोऽपि च मत्वर्थीयादिस्तद्गुणवाचिनः ।
निष्कर्षप्रतिरुद्धायाः शक्तेरुत्तम्भको मतः ॥
वैभवात्क्वचिदायातः भूरिकेवलदर्शनात् ।
नचेत्तेषामसाधुत्वप्रसङ्गो दुर्निवारणः ॥
गुणैकनियतास्तावद्गन्धरूपरसादयः ।
गन्धत्वादिव्यवच्छिन्नगन्धादिगुणवाचिनः ॥
तेषां न द्रव्यपर्यन्ता वृत्तिः क्वचन दृश्यते ।
न गन्धः पद्ममित्यस्ति सामानाधिकरण्यधीः ॥
सामान्यतश्च शब्दानामर्था अपि चतुर्विधाः।
मुख्यो गौणो लाक्षणिकस्तात्पर्यार्थ इति श्रुताः॥
स्याद्वाचको लाक्षणिको व्यञ्जकश्चेति च त्रिधा ।
इतिचाप्यपरैरालंकारिकैः प्रविभज्यते ॥

3 नामाख्यातनिपातोपसर्गभेदैः चतुर्विधम् ।
पदं विभज्यते शास्त्रे सर्वस्मिन् पदवेदिभिः ॥
4 प्रादयो ह्युपसर्गास्स्युः निपाताश्चादयो मताः ।
तिङन्तास्त्वाख्यातसंज्ञाः सुबन्ता नामसंज्ञिताः ॥
उपसर्गा निपाताश्च वाचका द्योतका इति ।
मतद्वयं, वाचकत्वं शक्तिस्स्यात्सामुदायिकी ॥
विशेषणं द्योतकत्वं तच्च शक्त्यपवादनम् ।
सर्वं सर्वार्थशक्तं चेदपवादो ह्यपेक्ष्यते ॥
तदा पदान्तरं तत्स्यात् अन्वाख्यानमनर्थकम् ।
उक्ते विशेषणं, किंचिदुच्यमानविशेषणम् ॥
तेन शक्त्यपवादोऽयं भवेदर्थापवादवत् ।
चादयो वाचकाः प्राद्या द्योतका इति तार्किकाः ॥
सर्वेऽपि द्योतका एवेत्याहुश्शाब्दिककोविदाः ।
मीमांसकास्तु मध्यस्थाः चिन्तनश्रमभीरवः ॥
5 नैयायिकविभागोऽपि किंचिदत्र निरूप्यते ।
प्रकृतिः प्रत्ययश्चेति निपातश्चेति स त्रिधा ॥
निरुक्ता प्रकृतिर्द्वेधा नामधातुविभेदतः ।
यत्प्रातिपदिकं प्रोक्तं तन्नाम्नो नातिरिच्यते ॥
रूढं च लक्षकं चैव योगरूढं च यौगिकम् ।
तच्चतुर्धा परैरूढयोगिकं मन्यतेऽधिकम् ॥

6 अम्बाम्बेति यदा बालश्शिक्षमाणः प्रभाषते ।
अव्यक्तं तद्विदां तेन व्यक्ते भवति निर्णयः ॥
एवं साधौ प्रयोक्तव्ये योऽपभ्रंशः प्रयुज्यते ।
तेन साधुव्यवहितः कश्चिदर्थोऽभिधीयते ॥
नापभाषतवै न म्लेच्छतवै इति यद्यपि ।
निषेधो वर्ततेऽथापि प्रमादो धीमतामपि ॥
कल्पसूत्रस्मृतिग्रन्थमीमांसागृह्यकारिणः ।
शिष्टाः दृष्टाः प्रयुञ्जानाः अपशब्दाननेकशः ॥
शब्दशास्त्रप्रवक्तारस्त्रयोऽपि मुनयः पुनः ।
शास्त्र एव स्खलन्तीति विवृतं तन्त्रवार्तिके ॥
अन्तो नास्त्यपशब्दानामितिहासपुराणयोः ।
मरणान्तो व्याधिरसौ यद्व्याकरणमुच्यते ॥
इति चौशनसाः प्राहुरिति प्राह बृहस्पतिः ।
दुष्टग्रहगृहीतो वा भीतो वा राजदण्डतः ॥
पितृभ्यामभिशप्तो वा कुर्याद्व्याकरणे श्रमम् ।
वृत्तिः सूत्रं तिलाः माषाः कपत्री कोद्रवौदनः ॥
अजडाय प्रदातव्यं जडीकरणमुत्तमम् ।
इत्थं शङ्कासंग्रहोऽथ समाधेरपि संग्रहः ॥
रूपान्तरेण देवास्ते विचरन्ति महीतले ।
ये व्याकरणसंस्कारपवित्रितमुखा नराः ॥

यश्च व्याकुरुते वाचं यश्च मीमांसतेऽध्वरम् ।
तावुभौ पुरुषौ लोके पङ्क्तिपावनपावनौ ॥
वरं हि जातास्तिमयः गभीरे हि जलाशये ।
न मानवाः व्याकरणशुद्धिहीनमुखा भुवि ॥
ऐन्द्रं चान्द्रं च माहेशं दौर्गं कौमारमेवच ।
कालापं चैवाऽऽपिशलं कातन्त्रादिकमुच्यते ॥
अष्टादश पुराणानि चाष्टौ व्याकरणानि च ।
ज्ञात्वा सत्यवतीसूनुश्चक्रे भारतसंहिताम् ॥
7 ननु चाशक्तिजा दोषाः प्रमादजनिताश्च ये ।
परिहर्तुमशक्यत्वान्न निषेध्या इति त्वसत् ॥
प्रमादमेव मा कार्षीः सामर्थ्याय यतस्व च ।
एवमर्थो निषेधोऽयं नाद्रियेतान्यथा ह्यसौ ॥
अन्ये सुखमुखारूढाः न क्लेशेन विवक्षवः ।
शक्ताश्चैवाप्रमत्ताश्च वदेयुरनिवारिताः ॥
अशक्तैर्नाशिताश्चान्ये दाक्षिण्याद्यनुवर्तनात् ।
जानन्तोऽपि प्रयुञ्जीरन् यदि शास्त्रं न वारयेत् ॥
तत्कथं नाम यत्किञ्चित् स्यादपभ्रंशकारणम् ।
दूरात्परिहरेयुस्तदिति यत्नो नियम्यते ॥
रीतिरेषा निषेधेषु चान्येषु परिगृह्यताम् ।
प्रमादश्चाप्यशक्तिश्च न पुरस्क्रियतां बुधैः ॥

आर्याश्च म्लेच्छभाषाभ्यः कल्पयन्तः स्वकं पदम् ।
पदान्तराक्षरोपेतं कल्पयन्ति कदाचन ॥
तस्माद्ये याज्ञिकैर्येषां वैद्यैर्वार्था निरूपिताः ।
तेषां त एव शब्दानामर्थाः मुख्या नचेतरे ॥
8 भेदो नाम पदार्थानामवच्छेदः परस्परम् ।
संसर्गोऽपि पदार्थानामन्योन्येनानुरञ्जनम् ॥
स्वप्राधान्यात्पदार्थानां धर्मावेतावुभावपि ।
धर्मिभेदेन भिद्येते न ह्येकत्वमुपाश्रितम् ॥
अर्थैकत्वादेकवाक्यमित्यत्रेदं विचिन्तितम् ।
भाष्यवार्तिकयोः पूर्वमीमांसायां विलोक्यताम् ॥
9 नाम्नां द्विधैव संबन्धः सर्ववाक्येष्ववस्थितः ।
सामानाधिकरण्येन षष्ठ्या वा प्रतिपाद्यते ॥
सामानाधिकरण्यं च धर्मः शब्दगतः स्थितः ।
तस्य तात्पर्यविषयोऽप्यर्थस्ताच्छब्द्यमश्नुते ॥
सामानाधिकरण्यं तत्तादात्म्यमिति कीर्त्यते ।
विरोधैकान्तसिद्धान्ते तत्स्वरूपैक्यलक्षणम् ॥
तद्धि तावद्धर्मधर्मिजातिव्यक्त्यादिषूच्यते ।
धर्मधर्मिविभेदे तु सर्वथा नैक्यसंभवः ॥
धर्मभेदे तदायत्तो धर्मिभेदः व्यवस्थितः ।
स सिद्धान्तस्सौगतानामिति धीमाद्भिनिश्चितः ॥

तादात्म्यं तु विदुः केचित् ये भेदाभेदलक्षणम् ।
जातिव्यक्त्यादिषु तथा तादात्म्यमुपयन्ति ते ॥
अनेकान्तविदस्ते स्युः भाट्टास्तन्मार्गयायिनः ।
भर्तृप्रपञ्चादयश्च तन्मार्गस्य प्रवर्तकाः ॥
धर्मधर्म्यादिषु भिदावादिभिस्तार्किकैः मतः ।
धर्म्यैक्ये धर्मयोर्भेदः धर्मैक्येऽपि च धर्मिणोः ॥
विशिष्टयोरप्यभेदः तथा शुद्धविशिष्टयोः ।
तत्सिद्धान्ते तु तादात्म्यं वदितुं बहुधोचितम् ॥
सामानाधिकरण्येन चैवं तादात्म्यलक्षणम् ।
ऐक्यं त्रिधा विशुद्धैक्यं विशिष्टैक्यं भिदाऽभिधा ॥
अखण्डरसवस्त्वैक्यं चतुर्धाचोपपादितम् ।
सत्यादिशोधकवचस्स्वतद्व्यावृत्तिमार्गतः ॥
तत्त्वमस्यादिवाक्येषु चान्वयेनोपलक्षणात् ।
सर्वं खल्विदमित्यादौ मिथ्यार्थारोपणेन तु ॥
ज्योतींषि विष्णुरित्यादौ बाधया चोपपादितम् ।
यया कयाऽपि विधया निर्विशेषं सुरक्षितम् ॥
ऐक्याध्यासापवादाश्च विशेषणविशेष्यता ।
सामानाधिकरण्यं च चतुर्धेत्यप्यवादिषुः ॥
विप्रो ब्राह्मण इत्यादौ विशुद्धैक्यं व्यवस्थितम् ।
इदं रजतमित्यादौ अध्यासस्स्याद्विवक्षितः ॥

देह आत्मेत्यादिदेशे त्वपवादः प्रकीर्त्यते ।
नीलमुत्पलमित्यादौ स्याद्विशेषणतेति च ॥
सविशेषब्रह्मविदः तत्त्वत्रयविदश्च ये ।
सर्वत्र तेषां तादात्म्यं विशिष्टाद्वैतलक्षणम् ॥
अविरोधान्तरङ्गत्वजातिभोगाद्यभेदतः ।
एकोक्तिरपृथक्सिद्धेः देशकालदशादिभिः ॥
परिणामविदो ये च भेदाभेदविदोऽपि च ।
अनेकान्तविदां तेषां तत् भेदाभेदलक्षणम् ॥
संप्रदायप्रभेदेन विवक्षाभेदतोऽपिवा ।
वेदान्तिनां भिदा तत्र विश्रुतेत्युपरम्यते ॥
10 चतुर्विधस्तथा भेदः पूर्वस्त्वात्यन्तिको मतः ।
औपाधिको द्वितीयस्स्यात् तृतीयः पारिणामिकः ॥
वैवर्तिकश्चतुर्थस्स्यात् अभेदोऽपि चतुर्विधः ।
अखण्डत्वं च तादात्म्यं वैशिष्ट्यं चौपचारिकम् ॥
अतश्च बाधाद्व्यैक्यात् आत्मत्वादुपचारतः ।
तच्चतुर्धा जगद्ब्रह्मसामानाधिकरण्यगीः ॥
स्वभावाच्च विवर्ताच्च संकल्पात्परिणामतः ।
चतुर्विधं कारणत्वं वादिभिस्तैर्विकल्प्यते ॥
तथा कूटस्थशब्दार्थः चतुर्धा परिदृश्यते ।
कूटस्थो निर्विकारस्स्यात्तथा साधारणोऽपिच ॥

मायाध्यक्षोऽथवा ज्ञेयः राशिवत्स्थित एववा ।
योगवृत्त्यैव कूटस्थपदमेवं विकल्प्यते ॥

(90) वेदवादः.

1 कूटस्थनित्यवर्णानां राशिर्वेदोऽभिधीयते ।
क्रमः प्रवाहानित्यस्स्यादिति मीमांसका विदुः ॥
क्रमावच्छिन्नवर्णौघस्सदा सर्वज्ञबुद्धिगः ।
कूटस्थनित्यं वेदाख्यं तत्त्वं श्रीमध्वसम्मतम् ॥
सृष्टिकाले च वर्णानामुत्पत्तिं प्रलये पुनः ।
विनाशं केचिदिच्छन्ति सैषा कल्पान्तनित्यता ॥
वर्णस्याशुविनाशेऽपि क्रमे स्वातन्त्र्यभङ्गतः ।
वेदनित्यत्ववादस्स्यादिति साधारणी सृतिः ॥
2 अथान्येषां वैदिकानामभिप्रायस्य संग्रहः ।
अयमेषः तत्त्वविद्भिः विनिर्णीतः प्रकाश्यते ॥
वेदो हि नित्योऽभिप्रायः काश्चित्स्यात्पारमेश्वरः ।
श्रुतिस्स्मृतिर्ममैवाज्ञेत्यादि मानं परश्शतम् ॥
तदभिव्यञ्जके वाक्ये वेदशब्दः प्रयुज्यते ।
प्रयुज्यते चाप्यर्थे हि वेदविच्छास्त्रविद्यथा ॥
यज्ञेन वाच इतिच बह्वृचैः पठ्यते श्रुतिः ।
हृदयेनाभ्यनुज्ञात इत्येषा मानवी स्मृतिः ॥

हृदयं वेद इतिच भाष्यं मेधातिथेरिह ।
महतां हृदयं वेद इत्यप्याह कुमारिलः ॥
महत्परिग्रहो ह्येष विशेषो ह्यागमान्तरात् ।
एकस्य प्रतिभानं तु कृतकान्न विशिष्यते ॥
अपिचोदयनाचार्यैः यन्न्यायकुसुमाञ्जलौ ।
उत्पत्तितो वाऽभिव्यक्तितो वाऽभिप्रायतोऽपिवा ॥
अनवच्छिन्नवर्णानां नैरर्थक्यमितीरितम् ।
तत्र नैयायिकमतमुत्पत्तिपदसूचितम् ॥
मीमांसकमतं चाथाभिव्यक्तिरिति कथ्यते ।
अस्वातन्त्र्यं हि रचनाविशेषे हि तदाशयः ॥
अथाभिप्रायत इति तदौपनिषदं मतम् ।
सर्वार्थसिद्धौ वेदान्ताचार्योक्तिरवबुध्यताम् ॥
एतदेवहि वेदस्यापौरुषेयत्वानित्यते ।
प्राक्प्रागुच्चारणाधीनोच्चार्यमाणत्वमेव तत् ॥
नह्येकरूपवाक्यस्य प्रवाहानादितां विना ।
प्रतिपद्यामहे वेदवाक्येष्वन्यामनादिताम् ॥
प्रतिकल्पं चैकरूपाभिसन्धिः परमेश्वरः ।
वाक्यं वदत्येकरूपमिति वेदस्य नित्यता ॥
नैतावताऽऽज्ञारूपत्वं वेदवाक्ये विहन्यते ।
द्योतयत्येव हि विभोरभिप्रायं सनातनम् ॥

अन्यथा करणे शक्तोऽप्येतं नान्यथयत्यसौ ।
धाता यथा पूर्वमिति स्वयमेवोपदिश्यते ॥
अव्यवस्थितशङ्काऽपि दूरेणोत्सार्यते ततः ।
सर्वेभ्यो वत्सलतरं शास्त्रमित्यपि कीर्त्यते ॥
वर्णं पदं वा वाक्यं वा स्फोटं तदतिरेकि वा ।
तत्त्वान्तरं वेति बुधाः जानते ये तु वैदिकाः ॥
प्रमाणानि पुनर्यानि ज्ञायन्ते तत्र भूरिशः ।
सर्वेषामत्र तात्पर्यमिति सामान्यनिर्णयः ॥
3 नित्यत्वादेरसिद्धत्वात्, अभ्युपेत्योच्यतेऽथवा ।
सुतरामप्रमाणत्वं वक्तृप्रामाण्यवर्जनात् ॥
परिग्रहाच्च महतां प्रामाण्यमिह दुर्वचम् ।
ज्ञापकश्चायमप्यर्थः कारके संगतिः कुतः ॥
कोऽयं महाजनो नाम किमाचारः किमास्पदः ।
किंसंख्यः किंसमाचार इति व्याख्यातुमर्हसि ॥
महाजनगृहीतत्वं पित्राद्यनुगमादि च ।
बौद्धाः द्वीपान्तरापेक्षं वदन्त्येव स्वदर्शने ॥
प्रमाणान्तरदृष्टं हि शब्दोऽन्यं प्रापयेत्सदा ।
स्मृतिवच्च स्वयं तस्य प्रामाण्यं नोपपद्यते ॥
नूनं तत्रानुभूतोऽसावित्याप्तोक्तिनिबन्धना ।
बुद्धिस्साक्षाददृष्टेऽपि युक्ताऽर्थे पुरुषोक्तितः ॥

नात्मीयादन्यदीयाद्वा प्रत्यक्षादेर्विना क्वचित् ।
वचसस्सत्यता दृष्टा तथा स्याच्चोदनास्वपि ॥
तेन सत्यपि विज्ञाने प्रतिभादेर्यथैव हि ।
स्वातन्त्र्यान्न प्रमाणत्वं तथा वेदेऽपि दृश्यताम् ॥
स्वर्गयागादिसंबन्धविषया चोदना मृषा ।
प्रत्यक्षाद्यगतार्थत्वात् ईदृग्बुद्धादिवाक्यवत् ॥
यद्वाऽऽप्तेनाप्रणीतत्वात् बालोन्मत्तादिवाक्यवत् ।
व्योमादिवच्च नित्यत्वात्प्रामाण्यस्य निराकृतिः ॥
यदिवा पुरुषाधीनप्रामाण्यास्सर्वचोदनाः ।
स्वतो वा न प्रमाणं स्युः वाक्यत्वात्पुरुषोक्तिवत् ॥
प्रामाण्यं वा नरापेक्षं सर्वशब्देषु गम्यताम् ।
शब्दैस्संबध्यमानत्वात् अप्रामाण्यं यथैव हि ॥
न स्याद्वक्तृगुणानां चेत् वचःप्रामाण्यहेतुता ।
तद्दोषैरप्रमाणत्वं किमित्यस्य भविष्यति ॥
ततश्च पुरुषाभावात्सति वा शुद्ध्यसंभवात् ।
निर्मूलत्वात्प्रमाणत्वं चोदनायां न युज्यते ॥
एवंस्थिते तु वेदस्य सतिवाऽसतिवा नरे ।
प्रामाण्यं दुर्लभमिति शङ्कायामिदमुच्यते ॥
4 स्वतस्सर्वप्रमाणानां प्रामाण्यमिति गम्यताम् ।
नहि स्वतोऽसती शक्तिः कर्तुमन्येन शक्यते ॥

तस्माद्बोधात्मकत्वेन बुद्धेः प्राप्ता प्रमाणता ।
अर्थान्यथात्वहेतूत्थदोषज्ञानादपोद्यते ॥
अप्रामाण्यं त्रिधा भिन्नं मिथ्यात्वाज्ञानसंशयैः ।
वस्तुत्वाद्द्विविधस्यात्र संभवो दुष्टकारणात् ॥
पौरुषेये तु वचने प्रमाणान्तरमूलता ।
तदभावे हि तद्दुष्येत् इतरन्न कदाचन ॥
कर्तृमत्त्वे तु वेदस्य सम्यङ्मिथ्यात्ववादिभिः ।
कर्ता गुणाश्च दोषाश्च महाजनपरिग्रहः ॥
एवमादि विना युक्त्या कल्प्यं, मीमांसकैः पुनः ।
इदानीमिव सर्वत्र दृष्टान्नाधिकमिष्यते ॥
तेन नाप्तोपदेशत्वं न स्यादागमलक्षणम् ।
नाप्तस्य संभवो वेदे, लोके नास्मात्प्रमाणता ॥
स्वतः सर्वप्रमाणत्वं नचेत्स्याद्दोषदर्शनम् ।
तेनैव सर्वाक्षेपाणां निवारणमिति स्थितम् ॥

(91) वेदवैलक्षण्यवादः

1 वेदाद्बुद्धागमस्यायं विशेषस्तन्त्रवार्तिके ।
निरूपितो विस्तरशः तत्संक्षेपोऽवधार्यताम् ॥
यदेव भवतां गोत्रं तदस्माकमपीतिवत् ।
आहुः स्वागमनित्यत्वं परवाक्यानुकारिणः ॥

महाजनगृहीतत्वं पित्राद्यनुगमादि च ।
तेऽपि द्वीपान्तराक्षेपं वदन्त्येव स्वदर्शने ॥
संप्रदायविरुद्धं तद्वचनं ह्यवधार्यते ।
बुद्धोपदिष्टो धर्मोऽयं अनित्यं सर्वसंस्कृतम् ॥
क्षणिकास्सर्वसंस्काराः अस्थिराणां कुतः क्रियाः ।
बुद्धिबोध्यं त्रयादन्यत् संस्कृतं क्षणिकं च तत् ॥
नच शब्दार्थसंबन्धकूटस्थत्वमनिच्छताम् ।
नित्यता व्यवहारस्य निराधाराऽवकल्पते ॥
शब्दादिषु विनश्यत्सु व्यवहारः क्व वर्तताम् ।
2 स्थितैषां धर्मतेत्येतत् अर्थशून्यमतो वचः ॥
एषेत्यपि न निर्देष्टुं शक्या क्षणविनाशिनी ।
किमुत स्थितया साकं एषेत्यस्यैकवाक्यता ॥
तस्मान्नागमनित्यत्वं शब्दानित्यत्ववादिनाम् ।
नच पुंवचनं सर्वं सत्यत्वेनावगम्यते ॥
वागिह श्रूयते यस्मात्प्रायादनृतवादिनी ।
तस्मादपौरुषेयैव नित्या भवति नेतरा ॥
3 यद्धेतुदर्शनं तन्त्रवार्तिके विशदीकृतम् ।
तदेव चाप्युदयनः व्याचख्यौ कुसुमाञ्जलौ ॥
सम्यङ्निरूपिता न्यायपरिशुद्धौ पदव्यसौ ।
तत्संक्षेपोऽप्यत्र किंचित्क्रियते सुधियां कृते ॥

नैव शब्दे स्वतो दोषाः प्रामाण्यपरिपन्थिनः।
सन्ति किन्तु स्वतस्तस्य प्रामाण्यमिति हि स्थितिः॥
वक्तुराशयदोषेण केषुचित्तदपोद्यते ।
अङ्गुल्यग्रे हि मातङ्गयूथमित्येवमादिषु ॥
नित्ये हेतुगुणापेक्षा वेदे नास्तीशबुद्धिवत्।
हेत्वभावान्न दोषश्चेद्वक्त्रभावादिहापि नः ॥
अकारणं यथा ज्ञानं प्रामाण्यमधिगच्छति ।
अकारणं तथा वाक्यं स्वतःप्रमितिकारणम् ॥
यदि हेतुगुणाभावादप्रामाण्यं प्रसज्यते ।
तदीश्वरप्रमायामप्यनिवार्यमिदं भवेत् ॥
अज्ञातकर्तृको वेदो यथा गन्धर्वभाषितम् ।
अप्रामाण्यपदं तद्वत् शङ्का स्यादिति चेन्न तत् ॥
महत्परिग्रहादेवानाप्तकर्तृकता स्वयम् ।
शङ्काकलङ्कसंबन्धं नार्हतीति विदां मतम् ॥
बाह्यागमेऽपि बहुलमहाजनपरिग्रहः ।
परिग्रहविशेषोऽतो महत्स्विह विवक्षितः ॥
विशेषस्तु मतो हेतुदर्शनादर्शनादितः ।
अनन्यगतिकैः स्वैररसिकैः जीविकार्थिभिः ॥
कुहकैर्वञ्चितैश्चात्र प्रसिद्धो हि परिग्रहः ।
प्रतिमाजल्पनं शाखाभङ्गः पाषाणपाटनम् ॥

इत्येताभिः कुत्सिताभिस्सिद्धिभिः वञ्चिताः परे ।
वैपरीत्यं सुप्रसिद्धमिह वैदिकदर्शने ॥
वञ्चनापटुभिः वेदाविद्भिरेते प्रतारिताः ।
इति चेत्, किं वञ्चयन्ति स्वात्मानमपि केवलम् ॥
यैश्च सर्वे पटुप्रज्ञाः लोका जाताः प्रतारिताः ।
प्रतारका इति कथं उन्नीतास्तेऽपि च त्वया ॥
लोकोत्तरपटुप्रज्ञो भवानेव महीतले ।
सर्वप्रतारकैरेतैरपि नैव प्रतार्यसे ॥
अनुष्ठानप्रवाहोऽयं स्यादेवान्धपरंपरा ।
इत्यसत्, तत्प्रमाणादेः बाधादीनामदर्शनात् ॥
धर्मबुद्ध्यैव निरुपाधिक एष परिग्रहः ।
इति त्वदुक्त्यैव सिद्धेः किमस्माभिरिहोच्यताम् ॥
अनादिनिधने चास्मिन् संप्रदाये चलत्यथ ।
प्रक्रियान्तरमाश्रित्य प्रातिच्छन्दप्रवर्तनात् ॥
प्रतारका भवन्तीति श्रुतिस्मृतिविनिश्चितम् ।
युक्तिमच्चैतदित्यत्र संक्षिप्ता दिक्प्रदर्शिता ॥
4 तुल्ययोगक्षेमतया वेदवज्जगतोऽपिच ।
अकर्तृता स्यादिति चेत् न कुलालादिदर्शनात् ॥
नचात्र वर्णनित्यत्वं वेदनित्यत्वकारणम् ।
काव्यादिष्वपि तुल्यत्वात् किंत्वीदृक्क्रमयोगिता ॥

तत्र पुंयत्ननिघ्नत्वमस्ति यद्यपि यः पुनः ।
उच्चारणे स्वातन्त्र्यस्याभावस्साऽपौरुषेयता ॥
वेदतः पौरुषेयत्वशङ्का वेदेन शाम्यति ।
हेत्वन्तरसमुद्भूता हेत्वन्तरनिवारिता ॥
युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः ।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयंभुवा ॥
धर्ममूलं वेदमाहुः ग्रन्थराशिमकृत्रिमम् ।
तद्विदां स्मृतिशीले च साध्वाचारं मनःप्रियम् ॥
यावत्प्रभावाः श्रूयन्ते ऋष्याद्या वेदराशिषु ।
तादृशा एव सृज्यन्ते वेदान् दृष्ट्वा स्वयंभुवा ॥
अनधीत्यैव वेदानामाविर्भावयितृत्वतः ।
तपसा प्राप्य संस्काराच्चत्सूक्तत्वादिसंभवः ॥
तपःप्रभावान्मन्त्राणां ऋषिदर्शनसंस्कृतेः ।
शक्तिराधीयते काचित् यथाऽस्माकमधीतितः ॥
अर्थावबोधकत्वं तु शब्दशक्त्याऽन्यशब्दवत् ।
ऋषिदर्शनतोऽधीतेरपि शक्त्यन्तरोद्भवः ॥
अपूर्वकार्यनिष्पत्तावुपकुर्यादिदं ततः ।
काठकादिसमाख्याया निमित्तं चेदमेववा ॥
प्रकृष्टं वा प्रवचनं तत्सिद्धा वेदनित्यता ।
मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयं च विश्रुतम् ॥

6 हितानुशासनं वाक्यं विधिरत्र विवक्षितः ।
लिङ्वाच्योऽपूर्व इत्यत्र ख्यातो व्युत्पत्त्यसंभवः ॥
विमर्शात्सिद्धिरितिचेत् विमर्शः स्मृतिरेव हि ।
अस्तु वा कार्य एवादौ व्युत्पत्तिः व्यवहारतः ॥
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां शब्दशक्तिर्विविच्यते ।
प्रयुज्यन्ते सिद्धपराः वक्तृभिर्हि कथा यथा ॥
प्रतिष्ठा देशभेदश्च छागादिर्वा घृताञ्जनम् ।
यातनासाधनत्वं च गृह्यते विध्यपेक्षितम् ॥
प्रतीता देबताप्रीतिः अपूर्वमुपकल्प्यताम् ।
लिङो वाच्यतया द्वारं स्वरूपाद्वा किमन्यतः ॥
विग्रहो हविरादानं युगपत्कर्मसान्निधिः ।
प्रीतिः फलप्रदानं च देवतानां न विद्यते ॥
इति वादो भवेदर्धचार्वाकमतिमूलकः ।
अनचिद्देवतापक्षे शाब्दमार्गक्रमस्त्वयम् ॥
किमर्थं किं केन कथं वेति स्याद्धि चतुर्विधा ।
आकाङ्क्षा तत्रचाद्यायाः पूर्तिस्स्वर्गादिना मता॥
देवतां प्रीणयेदित्येतया शाम्यत्यनन्तरा ।
ज्योतिष्टोमेनेति नामधेयात्केनेति शाम्यति ॥
कथमित्यस्य शान्तिस्तु समानैवोभयोरपि ।
विशेषतश्च पुरुषः चोदनाशब्दसूचितः ॥

श्रुतिस्स्मृतिर्ममैवाज्ञा यस्तामुल्लङ्घ्य वर्तते ।
आज्ञाछेदी मम द्रोहीत्येवं भगवतोदितम् ॥
ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः ॥
ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् ।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥
7 श्रुतिमूलतयैवैताः स्मृतयो यान्ति मानताम् ।
श्रुत्यैव निर्णये किंवा स्मृतिभिश्चेति चेन्न तत् ॥
दुर्बोधा वैदिकाश्शब्दाः प्रकीर्णत्वाच्च ये खिलाः ।
तज्ज्ञैस्त एव स्पष्टार्थाः-स्मृतितन्त्रे प्रतिष्ठिताः ॥
इति प्राह मरीच्याख्यः देवलस्य वचः पुनः ।
सत्यप्यस्मिन् धर्मशास्त्रे गृह्यापेक्षां प्रदर्शयेत् ॥
मन्वादयः प्रयोक्तारो धर्मशास्त्रस्य कीर्तिताः ।
तत्प्रयुक्तप्रयोक्तारः गृह्यकारास्तु मन्त्रतः ॥
वेदा अनन्तास्संकीर्णाः विकीर्णाश्च क्वचित्तथा ।
उत्सन्नाश्च कदाचित्स्युः मन्वाद्याः कृत्स्नवेदिनः ॥
8 श्रुतिस्मृतिविरोधे तु विकल्पं केचिदूचिरे ।
भ्रमसंभवतः श्रुत्या स्मृतिबाधं परे विदुः ॥
विरोधे तत्त्वविषये बाध एव विवक्षितः ।
विकल्पासंभवाद्वस्तुष्विति विद्वद्विनिश्चितः ॥

स्मृतिद्वयविरोधे तु व्यवस्था स्यात्परिग्रहात् ।
मन्वादीनां स्मृतिष्वेव केचिच्छ्लोका अपस्मृतिः ॥
इति शाबरसिद्धान्तः कुमारिलमतं त्विदम् ।
बुद्धागमः पाञ्चरात्रागमाद्यास्स्युरपस्मृतिः ॥
इति विज्ञायते तत्र प्रत्युक्तिरियमुच्यते ।
नच क्वचित् स्मृतेर्बाधे सर्वानाश्वाससंभवः ॥
बाधकादर्शनाद्धेतुदोषक्लृप्तेरयोगतः ।
परिग्रहविशेषेण श्रुतिमूलत्वकल्पनात् ॥
विस्रम्भहेतुस्संवादः क्वचिद्बाह्यागमेऽस्त्यपि ।
भूयश्श्रुतिविरोधेन वैदिकैरपरिग्रहः ॥
9 पाञ्चरात्रागमस्त्वेकायनवेदान्तमूलकः ।
श्रुतिमूलमिदं तन्त्रं प्रमाणं कल्पसूत्रवत् ॥
वेदत्वं नात्र संदिग्धं यं वाकोष्विति च स्मृतेः ।
ऋग्वेदपाठे पठितं व्रतमेतत्सुदुश्चरम् ॥
इति सेश्वरमीमांसासंप्रदायस्य संग्रहः ।
असौ नातीव विच्छिन्नोऽनूद्यते च परैरपि ॥
इत्थं हि शतदूषण्यां तृतीये भङ्ग ईर्यते ।
सोऽनुवादो दैवविदः इति माण्डूक्यकारिका ॥
भवेद्वाऽप्यथवाऽन्यद्वा विपश्चिद्भिः विमृश्यताम् ।
विचारस्यावश्यकत्वं न्यायशुद्धौ समर्थितम् ॥

10 ग्रन्थमभ्यस्य मेधावी ज्ञानविज्ञानतत्परः ।
पलालमिव धान्यार्थी त्यजेद्ग्रन्थमशेषतः ॥
इत्येतत्कोशसंत्यागाभिप्रायं नार्थगोचरम् ।
निष्पन्नयोगपुरुषविषयं वा विदुर्बुधाः ॥
शास्त्रज्ञानं बहुक्लेशं बुद्धेश्चलनकारणम् ।
उपदेशाद्धरिं बुध्वा विरमेत्सर्वकर्मसु ॥
इत्येतत्तीव्रसंयोगवतामेवाविपश्चिताम् ।
अलसानामास्तिकानां विस्रम्भायेति निर्णयः ॥

(92) शास्त्रवादः

1 चोदना चोपदेशश्च विध्युद्देशो विधिस्तथा ।
नियोगो वेद आदेशः शास्त्रं चैकार्थवाचिनः ॥
प्रवृत्तिर्वा निवृत्तिर्वा नित्येन कृतकेन वा ।
पुंसां येनोपदिश्येत तच्छास्त्रमभिधीयते ॥
शासनाच्छंसनाच्चैव शास्त्रमित्यभिधीयते ।
पुराणे इतिच प्राह श्रीपराशरमाधवः ॥
2 सूत्रं तु त्रिविधं प्रायः पूर्वाचार्यैर्निरूपितम् ।
उपदेशात्मकं त्वाद्यं व्याख्यानं तदनन्तरम् ॥
उपपादनशास्त्रं स्यात्तृतीयं न्यायपूर्वकम् ।
अथ शब्दानुशासनमथ योगानुशासनम् ॥

इत्याद्यारम्भकं शास्त्रमुपदेशात्मकं मतम् ।
धर्मं व्याख्यास्याम इति तथाऽथो यज्ञमित्यपि ॥
तथाऽथातो दर्शपूर्णमासावित्यादि यत्पुनः ।
एवमाद्यारम्भशास्त्रं भवेद्व्याख्यानलक्षणम् ॥
अथातो धर्मजिज्ञासाऽथातो ब्रह्मेतिपूर्वकम् ।
जिज्ञासाघटितं शास्त्रं न्यायशास्त्रं प्रचक्षते ॥
यथोपदेशं च तथा यथामूलं यथामति ।
बोद्धव्यमिति भेदेन शास्त्रभेदः प्रवर्तते ॥
3 पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः ।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥
याज्ञवल्क्यस्मृतिस्त्वित्थं, तथैव ह्याश्वमेधिके ।
अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः ॥
पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश ।
इतिच श्रूयते, तत्राप्यधिकं राणके यथा ॥
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेति ते त्रयः ।
अर्थशास्त्रं तुरीयं स्यात् विद्या ह्यष्टादश स्मृताः ॥
4 विभजन्ते त्रिधा केचित् मन्त्रब्राह्मणमादिमम् ।
इतिहासपुराणं च द्वितीयं परिकीर्तितम् ॥
धर्मशास्त्रं तृतीयं स्याद्विषयाणां व्यवस्थया ।
यज्ञो मन्त्रब्राह्मणस्य विषयस्सर्वसम्मतः ॥

इतिहासपुराणस्य लोकवृत्तं हि गोचरः ।
धर्मशास्त्रे पुनर्लोकव्यवहारव्यवस्थितिः ॥
अपवर्गपरीक्षायामैकाश्रम्यस्य खण्डने ।
गौतमीयन्याभाष्ये एवं वात्स्यायनोऽब्रवीत् ॥
धर्मशास्त्रं तु सकलं पूर्वभागोपबृंहणम् ।
पुराणं चोपनिषदामिति केचिद्विविञ्चते ॥
पुराणं धर्मशास्त्रं च सर्वं सर्वोपबृंहणम् ।
तत्स्मृत्यनवकाशेति बादरायणनिर्णयः ॥
5 आन्वीक्षकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्च शाश्वती ।
विद्याश्चतस्र एवैता लोकसंस्थितिहेतवः ॥
आन्वीक्षकीत्यात्मविद्या धर्माधर्मौ त्रयीस्थितौ ।
अर्थानर्थौ च वार्तायां दण्डनीतौ नयानयौ ॥
इति कामन्दकी प्राहाथात्मविद्या विचार्यते ।
प्रदीपस्सर्वविद्यानामुपायस्सर्वकर्मणाम् ॥
आश्रयस्सर्वधर्माणां विद्योद्देशे प्रकीर्तिता ।
इत्युक्तयाऽऽन्वीक्षकी विद्यैवात्मविद्येति तन्मतम् ॥
एतमर्थं मनुरपि सप्तमे प्राह तद्यथा ।
त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम् ॥
आन्वीक्षकीं चात्मविद्यां वार्तारम्भांश्च लोकतः ।
सत्यप्येवं मनोर्व्याख्याकाराणां हृदये पुनः ॥

आन्वीक्षकया विभेदेन त्वात्मविद्या प्रतीयते ।
विस्तरस्यानवसराद्विमृशन्तु बुधास्त्विदम् ॥
6 अस्त्यत्र कश्चिद्विशेषः विद्याधीरोदितो यथा ।
विद्यास्थानेषु धर्म्येषु गणितो न्यायविस्तरः ॥
स चाक्षपाद एवेति नियन्तुं नैव शक्यते ।
नच सर्वं सूत्रबद्धं विद्यास्थानमितीष्यते ॥
नचैक एव ह्येकस्य विद्यास्थानस्य सूत्रकृत् ।
नचास्ति राज्ञामाज्ञाऽत्र सूत्रकृद्दषिरित्यपि ॥
सूत्रकृद्यदि सर्वज्ञः ऋषिस्सकल इष्यते ।
वार्तिकादेरनारम्भप्रसङ्गो दुर्निवारणः ॥
धर्मं व्याख्यातुकामस्य षट्पदार्थोपवर्णनम् ।
सागरं गन्तुकामस्य हिमवद्गमनोपमम् ॥
कणान्वा भक्षयेत्कामं माहिषाणि दधीनि वा ।
युक्तियुक्तं तु गृह्णीमः नतु तद्वाक्यगौरवात् ॥
स्मृतिसूत्रप्रवाहोऽयमनादिर्धर्ममण्डले ।
यथालोकं यथावेदं लौकिके वैदिकेऽपि वा ॥
यो वक्ता स परिग्राह्यः प्राक्तनोऽद्यतनोऽपिवा ।
तदर्वाग्भिः तथाऽऽचार्यैः प्रमाणादिविचारणा ॥
प्रणिन्ये बहुधा तैस्तैः यथेष्टं मतमास्थितैः ।
इत्यादिः विस्तरो न्यायपरिशुद्धावुदीक्ष्यताम् ॥

7 उक्तानुक्तद्विरुक्तादिचिन्ता यत्र प्रवर्तते ।
ग्रन्थं तं वार्तिकं प्राहुर्वार्तिकज्ञा मनीषिणः ॥
शास्त्रैकदेशसंबद्धं शास्त्रकार्यान्तरे स्थितम् ।
आहुः प्रकरणं नाम ग्रन्थभेदं विपश्चितः ॥
एवंच सूत्रभाष्यादिग्रन्थानां लक्षणं पुनः ।
सर्वत्र विदितं तस्माद्दिङ्मात्रमिह सूचितम् ॥
संसारमोचकाः शाक्यभिक्षुनिर्ग्रन्थकादयः ।
सम्मता आगमाभासा इति वैदिकनिर्णयः ॥

(93) मीमांसावादः.

1 धर्मे प्रमीयमाणे तु वेदेन करणात्मना ।
इतिकर्तव्यताभागं मीमांसा पूरयिष्यति ॥
मीमांसाशास्त्रसारार्थसंग्रहोऽतो विलिख्यते ।
दृश्यन्ते विबुधाः प्रायः हंसभ्रमरवृत्तयः ॥
मानूबधेत्यादिसूत्रेण जिज्ञासार्थे विवक्षिते ।
मानेस्सनि विचारोऽर्थः मीमांसापदबोधितः ॥
सच लाघवतर्काख्यः वेदवाक्यार्थगोचरः ।
परीक्षाशास्त्रमेवैतन्नानुशासनलक्षणम् ॥
तृतीयसूत्रे स्पष्टार्थपरीष्टिपदयोगतः ।
जिज्ञासापदतत्त्वार्थः व्याख्यात इति गम्यताम् ॥

न्यायवार्तिकतात्पर्यटीकावाक्यं निशम्यताम् ।
मीमांसासंज्ञकस्तर्कस्सर्वो वेदसमुद्भवः ॥
सोऽतो वेदः रुमाप्राप्तकाष्ठादिलवणात्मवत् ।
यः पूजितविचारोऽसौ मीमांसाशब्दितास्त्विति ॥
कालादनादेर्मीमांसा प्रवृत्ता लोकतः पृथक् ।
संजग्राह पुनः न्यायान् तादृशान् जैमिनिर्मुनिः ॥
नह्येकस्तूपसंहर्तुमियतो न्यायसंचयान् ।
समर्थः पुरुषो लोक इत्युक्तं तन्त्रवार्तिके ॥
विचारात्पूर्वमेवात्र प्राप्तमध्ययनं विधेः ।
अतोऽनधीतवेदस्य विचारश्शास्त्रवारितः ॥
2 स्वाध्यायविधिवाक्यार्थः प्रथमं प्रविभज्यते ।
प्रवृत्तं शास्त्रमेतद्धि तादृग्विधिनिबन्धनम् ॥
तदर्थपूर्वपक्षांशसिद्धान्तांशप्रकाशकम् ।
कारिकायुगलं ह्येतत्प्राच्यैर्विलिखितं बुधैः ॥
विनाऽपि विधिना दृष्टलाभान्न हि तदर्थता ।
कल्प्यस्तु विधिसामर्थ्यात् स्वर्गो विश्वजिदादिवत्
लभ्यमाने फले दृष्टे नादृष्टफलकल्पना ।
विधेस्तु नियमार्थत्वान्नानर्थक्यं भविष्यति ॥
तत्रार्थकर्माध्ययनं सम्मतं सक्तुहोमवत् ।
भवेदध्यापनविधिप्रयुक्तं च स्वरूपतः ॥

विधेयं चोपनयनमङ्गमध्यापनस्य च ।
प्रभाकरस्याभिमतमेतदर्थचतुष्टयम् ॥
गुणकर्मात्वध्ययनमवघातादिवन्मतम् ।
नियमोऽत्र विधेयस्स्यात्प्रयुक्तं स्वविधेर्बलात् ॥
स्वस्योपनयनं चाङ्गमेवमर्थचतुष्टयम् ।
कुमारिलस्याभिमतं ज्ञानान्तत्वं समं द्वयोः ॥
तत्रौपनिषदानां तु मतं स्याद्भाट्टसम्मतम् ।
विशेषस्स्यादुभयतो ह्यक्षरग्रहणान्तता ॥
अलौकिकं चाहवनीयादिवद्गुरवो विदुः ।
आचार्यकं भट्टपादा लौकिकं ताद्विजानते ॥
गुरोराचारमाश्रित्य वर्तन्तेऽन्तेनिवासिनः ।
यान्यस्माकमिति श्रुत्या तदेतदभिधीयते ॥
अध्यापयेदिति विधिप्रयुक्तेऽध्ययनक्रमे ।
अष्टवर्षादिनिर्देशात स्पष्टा शूद्रानाधिक्रिया ॥
नियमस्य विधेयत्वेऽप्यधिकारो नियम्यते ।
उपनीतो हि विद्यार्थी विद्या हि पुमपेक्षिणी ॥
अन्यथाऽनुपपन्नो हि विधिस्स्यादग्निविद्ययोः ।
कल्पकः, क्लृप्तनिर्वाहे कल्पना गौरवाऽऽहता ॥
3 चोदनालक्षणः कार्यं धर्मो वेदार्थ इत्यतः ।
वेदार्थः कार्यरूपस्स्यादिति व्याख्या गुरोर्मता ॥

प्रमाणं च स्वरूपं च धर्मस्यादौ निरूप्यते ।
श्रुत्यर्थाभ्यामिति व्याख्या भट्टपादस्य सम्मता ॥
मानाधीना मेयसिद्धिर्मानसिद्धिश्च लक्षणात् ।
तल्लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिरितीर्यते ॥
द्रव्यक्रियागुणादीनां धर्मत्वं स्थापयिष्यते ।
तेषामैन्द्रियकत्वेऽपि न ताद्रूप्येण धर्मता ॥
अतएवातिदेशेऽपि विवादोऽस्त्यर्थकार्ययोः ।
तस्य तत्त्वं चातिदेशपारायणनिरूपितम् ॥
अन्यत्र ह्यन्यदीयस्य देशोऽतीदेश उच्यते ।
अन्यस्मिन्नन्यताऽभावादित्यप्येष निरूपितः ॥
शास्त्रेऽस्मिन् लक्षणपदं प्रमाणाध्याययोर्मतम् ।
चोदनालक्षणः शेषलक्षणं चेति दर्शनात् ॥
किमाद्यपेक्षितैः पूर्णस्समर्थः प्रत्ययो विधौ ।
तेन प्रवर्तकं वाक्यं ग्रन्थेऽस्मिन् चोदनोच्यते ॥
चोदना चोपदेशश्च विध्युद्देशो विधिस्तथा ।
नियोगो वेद आदेशः शास्त्रं चैकार्थवाचिनः ॥
प्रवर्तेऽहमिति ज्ञानं येन शब्देन जन्यते ।
स चोदनोच्यते यद्वा प्रवर्तनफला मतिः ॥
यश्चोदनालक्षणस्स्यात्स धर्म इति योजना ।
धर्मस्वरूपतात्पर्यवचनव्यक्तिलक्षणा ॥

स चोदनालक्षणः स्याद्यो धर्म इति योजना ।
धर्मप्रमाणतात्पर्यवचनव्यक्तिरुच्यते ॥
तादृग्लक्षण एव स्याद्धर्म इत्थंविवक्षया ।
निराकरणमिष्टं स्याद्वेदाप्रामाण्यवादिनाम् ॥
धर्मे तु चोदनैव स्याल्लक्षणं त्रितिकल्पनात् ।
मानान्तरस्य व्यावृत्तिस्तथा बुद्धागमस्य च ॥
चोदनालक्षणो ह्यर्थो धर्म एवेति योजना ।
वेदार्थस्य विचारेऽस्मिन् शास्त्रे धर्मं प्रसञ्जयेत् ॥
4 इत्थं ह्युपोद्घातवादः वृत्तो मुख्यार्थसंग्रहात् ।
वर्तिष्यते तर्कपादवादोद्देशार्थसंग्रहः ॥
नित्ये शब्दार्थसंबन्धे तत्प्रामाण्यव्यवस्थितिः ।
इति शब्दार्थसंबन्धवादे नित्यत्वसाधनम् ॥
भवेद्बुद्धस्मृतिरपि प्रमाणमिति शङ्कया ।
बाधिता स्मृतिमात्रस्य स्मृतिवादे प्रमाणता ॥
सर्वज्ञवादे सार्वज्ञ्यं न कस्यापीति साध्यते ।
धर्मे बुद्धादियोगीन्द्रप्रत्यक्षत्वानिवृत्तये ॥
स्वतः प्रामाण्यवादोऽपि वेदप्रामाण्यसिद्धये ।
प्रामाण्यं कारणगुणसंवादार्थक्रियादिभिः ॥
अनपोदितमेवार्थतथात्वं विषयाश्रितम् ।
तत्स्वतो गृह्यत इति विषयीकरणं हि तत् ॥

अर्थान्यथात्वमितरत् परतस्ताद्धि गृह्यते ।
हेतुदोषादिसंवादबाधकप्रत्ययादितः ॥
निरालम्बनवादो यश्शून्यवादस्य चाङ्कुरः ।
निराकृतो यतो ह्यर्थसद्भावे धर्मचिन्तना ॥
पदस्याथ पदार्थस्य वाक्यवाक्यार्थयोरपि ।
सत्यत्वे धर्मचिन्ताऽतः स्फोटवादो निराकृतः ॥
जातेराकृतिवादे तु पदार्थत्वव्यवस्थितौ ।
अनित्यव्यक्तिसङ्गत्या नाप्रामाण्यप्रसञ्जनम् ॥
अपोहरूपा जातिश्चेत्सा भवेत्तुच्छलक्षणा ।
अतो निराकृतोऽपोहवादो वस्तुत्वसिद्धये ॥
प्रपञ्चः परमाणूनां पुञ्जश्चेत्स्यादतीन्द्रियः ।
सङ्गतिग्रहणासिद्ध्या वनवादो निराकृतः ॥
वेदाप्रामाण्यशङ्का स्यात्संकेतस्सङ्गतिर्यदि ।
तन्निरीश्वरवादोऽतः संबन्धाक्षेपदूषणे ॥
अपरोक्षविरुद्धेति शङ्का चित्रादिचोदना ।
चित्राक्षेपपरीहारे यथावद्विनिवारिता ॥
यज्ञायुध्यादिवत्स्वर्गगमनं त्वसमञ्जसम् ।
इतिशङ्काव्यवच्छित्त्यै चात्मवादोऽवतारितः ॥
स्याद्यदा क्षणिकश्शब्दः न शक्तोऽर्थावधारणे ।
निर्मूला वेदधीस्तस्मादुदिता वेदनित्यता ॥

धर्मसंस्थापनायैव भावनार्थव्यवस्थया ।
प्रतिभावाक्यवाक्यार्थवादाद्या विनिवारिताः ॥
वेदस्यापौरुषेयत्वं स्थापयित्वा परिष्कृता ।
चोदनालक्षणो धर्म इति सिद्धान्तपद्धतिः ॥
वृत्तिकारमतं चापि भाष्ये बहुलमुज्झितम् ।
भाष्यकारमतं चापि वार्तिके प्रायशस्तथा ॥
दूषितं चापि बहुशः प्रभाकरगुरोर्मतम् ।
भट्टपादस्य सिद्धान्ताः राणकेऽपि प्रदूषिताः ॥
राणके मातुलसुतापरिणीत्यादिसाधनम् ।
शास्त्रदीपप्रकाशे तु शङ्करेण प्रदूषितम् ॥
सोमेश्वरो ह्यान्यथयत् यद्वार्तिककृतां मतम् ।
तदुद्दूष्य पुनः सोऽहं प्रकृतिं स्वामथानयम् ॥
इतिबालप्रकाशोक्तिश्शाङ्करी परिदृश्यते ।
तस्माद्युक्तिप्रधानेयं मीमांसेत्यवधार्यताम् ॥
युक्त्यैव ह्यागमस्यापि प्रामाण्यादि प्रसाध्यते ।
युक्तिशास्त्रं न्यायशास्त्रं मानशास्त्रमिदं स्थितम् ॥
सर्वत्र सूत्रकर्तारस्सर्वज्ञाः ऋषयस्त्विति ।
न निर्बन्धो वार्तिकादेरनारम्भप्रसङ्गतः ॥
व्युत्पाद्यन्ते सहस्रं हि न्यायाश्शास्त्रे यथातथम् ।
तन्न्यायानुगृहीतोऽर्थः चोदनालक्षणो मतः ॥

इत्थंसंक्षेपतस्तर्कपादवादार्थसंग्रहः ।
कृतोऽथाध्यायसारांशोद्धारः सम्यक् वितन्यते ॥

(94) अध्यायार्थसंग्रहः

1 धर्मधीर्मानभेदाङ्गप्रयुक्तिक्रमकर्तृभिः ।
सातिदेशविशेषोहबाधतन्त्रप्रसक्तिभिः ॥
अमानस्य निरूप्यत्वायोगात्प्राथम्ययोगिना ।
प्रमाणलक्षणेनात्राभावि द्वादशलक्षणे ॥
वेदार्थभेदाभावे स्यादङ्गत्वादिरयुक्तिमान् ।
शास्त्रार्थभेदचिन्ताऽथ शब्दभेदादिमानतः ॥
सिद्धे भेदे शेषशेषिभावबोधनलक्षणम् ।
श्रुतिलिङ्गादिमानेन प्रवृत्तं शेषलक्षणम् ॥
प्रावर्तिष्टाथ जिज्ञासा शेषाणामेव शेषिभिः ।
प्रयोज्यत्वाय तुर्येऽस्मिन् क्रत्वर्थपुरुषार्थयोः ॥
प्रयुक्तेषु पदार्थेषु श्रुत्यर्थादिप्रमाणतः ।
अनुक्रान्तः पञ्चमे चाव्यवधानात्मकः क्रमः ॥
सक्रमे चापि शास्त्रार्थे स्थापितेऽथ निरूपितः ।
तत्प्रयोक्ता चोपदेशषट्केऽस्मिन् षष्ठलक्षणे ॥
2 अथोपदिष्टे प्रकृतिविचारे विकृतौ पुनः ।
सामान्यतोऽतिदेशोऽत्र सप्तमे स्थापयिष्यते ॥

विशेषतोऽतिदेशोऽथ प्रावर्तिष्टास्य कर्मणः ।
इदं प्रकृतिरित्यादिनिर्णयोऽष्टमलक्षणे ॥
सामसंस्कारमन्त्राणामूहः प्रकृतिगामिनाम् ।
विकृतावन्यथाकृत्वा संबन्धो नवमे मतः ॥
प्रत्याम्नान द्वारलोप पर्युदासनिषेधतः ।
विकृतौ प्राकृताङ्गानां निवृत्तिर्बाधलक्षणे ॥
तन्त्रं त्वनेकोद्देशेनानुष्ठानं सकृदिष्यते ।
अन्यार्थानुष्ठितेनान्यस्योपकारः प्रसञ्जनम् ॥
एकादशद्वादशयोः प्रमेयार्थाविमौ मतौ ।
कालसंख्यामन्त्ररूपनिमित्तफलकर्तृभिः ॥
सकृद्विशेषाग्रहणेऽनुष्ठानं तन्त्रमित्यपि ।
सप्तस्वेकविधेनापि विशेषग्रहणे सति ॥
सकृदेव ह्यनुष्ठानं प्रसङ्ग इति वोच्यते ।
एषोऽतिदेशषट्कार्थः प्रत्यध्यायं निरूपितः ॥

(95) वेदनिरुक्तिवादः

1 मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयमिति स्मृतम् ।
कर्तव्यार्थस्मारकत्वं मन्त्रलक्षणमुच्यते ॥
परप्रत्यायनार्थास्तु मन्त्रा निगदसंज्ञिताः ।
विधायकपदव्यूहः ब्राह्मणं परिकीर्त्यते ॥

हेतुर्निर्वचनं निन्दा प्रशंसा संशयो विधिः ।
परक्रिया पुराकल्पः व्यवधारणकल्पना ॥
उपमानं दशैते तु विधयो ब्राह्मणस्य हि ।
2 इति प्राचां विभागस्स्यादर्वाचामथचोच्यते ।
धर्मः प्रयोजनयुतो ह्यर्थस्स्याद्वेदबोधितः ।
सर्वस्यापिच वेदस्य धर्मे तात्पर्यमिष्यते ॥
विधिर्मन्त्रो नामधेयः निषेधश्च ततःपरः ।
अर्थवाद इति स्पष्टः वेदराशिर्हि पञ्चधा ॥
अज्ञातार्थज्ञापको यो वेदराशिर्विधिर्मतः ।
विध्यर्थवादमन्त्राश्च स्मृत्याचारौ च नाम च ॥
वाक्यशेषश्च सामर्थ्यं धर्ममानमितीरितम् ।
तत्र कर्मोत्पत्तिवाक्यं फलवाक्यं गुणश्रुतिः ॥
फलाय गुणवाक्यं च वाक्यं सगुणकर्मणः ।
फलवद्गुणवाक्यं चेत्येवं वाक्यं हि षड्विधम् ॥
आद्यो धात्वर्थमात्रस्य विधिरित्युच्यते बुधैः ।
अन्योद्देशेन धात्वर्थविधिस्तु स्यादनन्तरः ॥
तथा धात्वर्थमुद्दिश्य तृतीयोऽन्यविधिर्मतः ।
अन्योद्देशेनान्यविधिः चतुर्थ इति गीयते ॥
पञ्चमो गुणसंयुक्तधात्वर्थविधिरुच्यते ।
अन्योद्देशेन षष्ठस्स्याद्विशिष्टविधिरेवचेत् ॥

एवं विधिप्रकारस्स्यात् षड्विधोऽर्थविभेदतः ।
उत्तरोत्तरतः पूर्वंपूर्वं लघ्विवति निर्णयः ॥
विधिश्चतुर्विध इति विभक्तः प्रायशो बुधैः ।
3 उत्पत्तेर्विनियोगस्य तत्प्रयोगाधिकारयोः ॥
कर्मस्वरूपमात्रस्य बोधको विधिरादिमः ।
कर्मस्वरूपनिष्ठा या त्वज्ञातज्ञाप्यतात्मिका ॥
विधेयता स्यात्तच्छालिबोधस्य जनको ह्यसौ ।
अङ्गप्रधानसंबन्धबोधकस्स्यादनन्तरः ॥
प्रयोगप्राशुभावस्य तृतीयो बोधको मतः ।
कर्मजन्यफलस्वाम्यबोधकोऽधिकृतेर्विधिः ॥
एवंविधविभागस्य निदानमवधार्यताम् ।
उत्पत्तिविधिराद्यो यः स द्वितीये विचार्यते ॥
विनियोगविधिस्त्वन्यः यस्तृतीये विचार्यते ।
चतुर्थे पञ्चमे चैव प्रयोगविधिचिन्तनम् ॥
अधिकारविधिस्त्वन्यः यष्षष्ठाध्यायगोचरः ।
एवं प्रमेयत्रैविध्याच्चातुर्विध्यं प्रकल्पितम् ॥
चतुष्टयेऽपि चैकस्मिन् क्वचित्किंचिद्विवक्षितम् ।
एवं द्वयं त्रयं वापि क्वचिच्चापि चतुष्टयम् ॥
प्रवर्तनालक्षणस्य विधेस्त्रेधा विधेयता ।
यागत्वरूपेणाद्या स्यादिष्टहेतुतयाऽपरा ॥

कृतिसाध्यतयाऽन्या स्यादुत्पत्त्यादिविधिस्ततः ।
आकाङ्क्षाक्रमयोगेन त्रयस्ते क्रमयोगिनः ॥
शब्दान्तराभ्याससंख्यानामधेयगुणैस्सह ।
अन्यत्प्रकरणं चेति प्रमाणं कर्मभेदकम् ॥
कालो देशो निमित्तं च फलं संस्कार्यमेवच ।
सहकार्यनुपादेयपञ्चकं प्रक्रियान्तरे ॥
4 परोद्देशप्रवृत्तस्य नरस्य कृतिकारकम् ।
अङ्गं स्याद्द्रव्यजात्यादिस्सिद्धोऽप्यङ्गं ततो भवेत् ॥
इतिकर्तव्यत्वता तु तादृक्पुंकृतिसाध्यता ।
सा द्विधा संनिपत्याराादुपकारकभेदतः ॥
विधीयमानव्रीह्यादिद्रव्याद्युद्दिश्य या क्रिया ।
तत्संनिपत्योपकारकाङ्गं सर्वार्थमेव तत् ॥
अथवाऽङ्गिस्वरूपस्य निष्पादकमितीर्यते ।
द्रव्याद्यनुद्दिश्य यत्स्यात्तदारादुपकारकम् ॥
अदृष्टार्थं फलापूर्वोत्पत्तावेवोपयुज्यते ।
अथवोत्पत्त्यपूर्वीयशक्तिसंपादकं हि तत् ॥
5 कर्म द्विधा ह्यर्थकर्म गुणकर्मेति भेदतः ।
अर्थकर्म भवेदात्मगतापूर्वस्य कारणम् ॥
परं संस्कारजनकं तच्च द्विविधमिष्यते ।
यथोपयुक्तोपयोक्ष्यमाणसंस्कारभेदतः ॥

उपयुक्ताकीर्णकरद्रव्यस्य विहिते स्थले ।
प्रक्षेपः प्रतिपत्तिस्सा ह्युपयुक्तस्य संस्क्रिया ॥
उत्पत्तिराप्तिर्विकृतिस्संस्कृतिश्च परं भवेत् ।
आधानाधीत्यवाघातप्रोक्षणानीत्युदाहृतिः ॥
यत्स्यात्पशुपुरोडाशप्रभृतिष्वंशभेदतः ।
दृष्टार्थं चाप्यदृष्टार्थमाश्रयीत्युच्यते हि तत् ॥
नित्यकाम्यविभेदेन तथा कर्म विभज्यते ।
सर्वस्यैव च काम्यत्वे कामना न भवेद्यदि ॥
सर्वोऽपि वैदिकः पन्थाः भवेद्दत्तजलाञ्जलिः ।
सर्वस्यापि च नित्यत्वे त्वशक्तया स्यादवत्सलः ॥
तत्र नित्यं तु शक्याङ्गं काम्यमुक्ताङ्गकं मतम् ।
नित्यकाम्यस्वरूपैक्ये विनियोगपृथक्त्वतः ॥
फलार्थं क्रियमाणेऽपि नित्यं भवति तन्त्रतः ।
नित्येन काम्यसिद्धिं तु कल्पकाराः प्रचक्षते ॥
पापक्षयफलं नित्यं काम्यं चापि क्वचिद्यदा ।
आरब्धे कामनाहानावुक्ताङ्गाशक्तिसंभवे ॥
प्रत्यवायपरीहारफलं तन्नित्यमित्यपि ।
अपरे प्राहुरनयोर्विशेषस्सूक्ष्म इष्यते ॥
नित्यं सामान्यफलतः काम्यं फलविशेषतः ।
प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते ॥

नैमित्तिकं कर्मभेदं प्रायश्चित्तादिलक्षणम् ।
प्राहुः परे तत्तु कर्म काम्यमेवेति केचन ॥
6 प्रवर्तको नैव लिङ्स्यात् तद्व्यापारोऽपि नेष्यते ।
तदर्थभेदो नाज्ञादिः न कार्यं नेष्टहेतुता ॥
अभिधाभावनैवेष्टा लिङाद्यभिहिता तु या ।
सैव प्रवर्तनाभिख्या प्रेरणेति च गीयते ॥
अर्थात्मा भावना त्वन्या सर्वाख्यातेषु दृश्यते ।
कृतिः प्रयत्नो व्यापार इत्यादिव्यपदेशभाक् ॥
णिजर्थात्तु लिङर्थोऽसौ विलक्षणतया मतः ।
ज्ञापकव्यापार एषः स तु कारकसंश्रितः ॥
प्रवर्तनस्मृतिः प्राप्ते प्रैष इत्यभिधीयते ।
अप्राप्ते प्रेषणं सर्वं विधित्वं प्रतिपद्यते ॥
विधिः प्रवर्तकत्वाख्यस्वरूपानुपपत्तितः ।
स्वर्गं साध्यतया यागं साधनत्वेन बोधयेत् ॥
भवितुर्भवनस्यानुकूलो भावयितुर्भवेत् ।
व्यापारो भावना सैषा शाब्दी चार्थीति भिद्यते ॥
आद्या प्रवर्तनाभिख्या लिङाद्यभिहितोदिता ।
नञस्संव्यवहारे तु बोध्यते सा निवर्तना ॥
पुंप्रवृत्त्यनुकूलात्मा व्यापारः शब्दगोऽग्रिमः ।
पुंनिवृत्त्यनुकूलात्मा व्यापारोऽनन्तरो मतः ॥

प्रवृत्तिस्तु भवेदार्थी भावनाऽऽख्यातबोधिता ।
तदभावो निवृत्तिस्तु नञा योगे तु बुद्धयते ॥
प्रयोजनेच्छाजनितः पुंव्यापारोऽत्र चादिमः ।
अनिष्टद्वेषजनितः तदभावोऽन्तिमो मतः ॥
7 साध्यं च साधनं चेतिकर्तव्यत्वमिति क्रमात् ।
किं केन कथमित्येवमाकांक्षात्रयपूरकम् ॥
शाब्दी प्रवृत्तिलिङ्स्तोत्रैस्त्र्यशा भवति भावना ।
आर्थी तु स्वर्गयागाङ्गैः त्र्यंशेति परिनिष्ठितम् ॥
अङ्गताग्राहकं मानं षड्विधं श्रुतिरादिमम् ।
लिङ्गं वाक्यं प्रकरणं स्थानं सह समाख्यया ॥
निरपेक्षः कण्ठरवः श्रुतिः लिङ्गं समर्थता ।
समभिव्याहृतिर्वाक्यं पदयोश्शेषिशेषयोः ॥
प्रक्रिया ह्युभयाकांक्षा स्थानं सादेश्यमिष्यते ।
समाख्या यौगिकश्शब्दः तेषां भेदान् प्रचक्ष्महे॥
विभक्त्येकाभिधानैकपदभेदात्त्रिधा श्रुतिः ।
शब्दार्थसामर्थ्यभेदाल्लिङ्गं द्विविधमुच्यते ॥
इतिकर्तव्यताकाङ्क्षा द्वेधा प्रकरणं हि तत् ।
करणानुग्राहकं तादितिकर्तव्यतोच्यते ॥
महाप्रकरणं तत्र फलभावनया युतम् ।
अवान्तरप्रकरणमङ्गभावनया युतम् ॥

श्रुत्यादिसमवाये तु पारदौर्बल्यमिष्यते ।
बोधे विलम्बाविलम्बौ बलाबलानियामकौ ॥

8 समग्राङ्गोपदेशोऽस्ति यत्र सा प्रकृतिर्मता ।
चोदकाद्यत्र न प्राप्तिरङ्गानां साऽथवा मता ॥
वैकृतस्य विधेः काचिदाकांक्षा चोदको मतः ।
चोदकादङ्गसंबन्धः प्रकृतौ नास्ति कश्चन ॥
तत्प्रातिद्वान्द्विभूता या विकृतिस्सा निरुच्यताम् ।
उपदेशो वाक्यमित्थं कुर्यादित्येवमादिकम् ॥
अतिदेशास्त्विदं तद्वत्कुर्यादित्येवमादिकम् ।
प्राकृतात्कर्मणो यत्र तत्समानेषु कर्मसु ॥
धर्मप्रदेशो येन स्यात्सोऽतिदेश इति स्थितिः ।
निष्कर्षस्तु प्रकृत्यङ्गसजातीयपदार्थगा ॥
या विकृत्यङ्गता तस्याः ग्राहकं वाक्यमिष्यते ।
अन्तर्नीतोपकारस्य पदार्थस्यैव सा मता ॥
उत्कर्षोऽप्राकरणिकनिवेशोऽत्रावगम्यते ।
अपकर्षोऽप्रकृततः प्रकृते संगमो मतः ॥

9 स्वप्रयोज्यत्वसहितसामानाधिकरण्यतः ।
फलेच्छया विशिष्टा या कृतिस्साऽधिक्रियोच्यते ॥
अधिकारो विधेः पुंसा संबन्धः प्राच्यसम्मतः ।
कर्मण्यैश्वर्यबोधो यः सोऽधिकारोऽधुनेरितः ॥

10 प्रयोगे श्रुत्यर्थपाठस्थानमुख्यप्रवृत्तयः ।
षडेतानि प्रमाणानि पौर्वापर्यात्मानि क्रमे ॥
श्रुतिः क्त्वाथादिशब्दस्स्यादर्थस्तु स्यात्प्रयोजनम् ।
पाठो मन्त्रब्राह्मणयोः स्थानं तादृगुपस्थितिः ॥
प्रधानक्रमतोऽङ्गानां क्रमो मुख्यक्रमो मतः ।
सैषा प्रवृत्तिः प्रथमक्रमतोऽनन्तरक्रमः ॥

11 प्रयोगसमवेतार्थस्मृतिर्भवति मन्त्रतः ।
तस्मात् स्मृतेर्हि नियमः नादृष्टफलकल्पना ॥
तच्छाब्दबोधहेतुत्वे तत्प्रामाण्ये विवक्षिते ।
विनियोजकवाक्येषु मन्त्राणां वेदवर्तिनाम् ॥
पदार्थविधया शाब्दबोधस्य करणत्वतः ।
धर्मे प्रमाणं मन्त्रास्स्युः इति केचित्प्रचक्षते ॥
धर्मानुष्ठानोपयोगिज्ञानहेतुत्वमेव चेत् ।
धर्मे मतं प्रमाणत्वं मन्त्राणामिदमक्षतम् ॥

12 नामधेयो विधेयार्थपरिच्छेदक इष्यते ।
मत्वर्थलक्षणापत्तिः वाक्यभेदभयं तथा ॥
तत्प्रख्यशास्त्रं तेनैव व्यपदेश इति क्रमात् ।
चतुर्विधं निमित्तं स्यादेके पञ्चविधं विदुः ॥
पञ्चमं तूत्पत्तिशिष्टगुणप्राबल्यमुच्यते ।
उद्भिच्चित्राऽग्निहोत्रं च श्येनश्चेति चतुर्विधा ॥

क्रमेणोदाहृतिरियं वैश्वदेवं तु पञ्चमम् ।
तत्प्रख्यशास्त्रान्नामत्वं पञ्चमस्येतरे विदुः ॥
यागेनानेन यक्ष्येऽहं तेन याजय मामिति ।
नाम्ना विनैवमादिर्हि व्यवहारो न सिद्ध्यति ॥
मीमांसाविधिवाक्यार्थज्ञानानुष्ठानलक्षणे ।
त्रिविधे व्यवहारेऽस्मिन् सर्वस्मिन्नाम कारणम् ॥
13 निषेधस्तु भवेद्वाक्यं यत्पूरुषनिवर्तकम् ।
प्रवर्तनारोधिनी तु नञर्थस्स्यान्निवर्तना ॥
तदन्यमात्रसंकोचपरता पर्युदासता ।
तन्मात्रसंकोचपर उपसंहार इष्यते ॥
उभयत्र हि सामान्यं विशेषे पर्यवस्यति ।
व्यापारस्तूपसंहारः विधिप्रत्ययसंश्रितः ॥
धातुनामान्यतरयुग्व्यापारस्त्वपरो मतः ।
उपाध्यसंकरन्यायात्समावेशः द्वयोः क्वचित् ॥
14 स्तुतिनिन्दाऽन्यतरतत्परं वाक्यमिहेष्यते ।
अर्थवाद इति प्राज्ञैः तत्प्रभेदश्चतुर्विधः ॥
स्तुतिर्निन्दा परकृतिः पुराकल्प इति क्रमात् ।
अथ केचिद्विवक्षातश्चान्यथा प्रविविञ्चते ॥
विरोधे गुणवादस्स्यादनुवादोऽवधारिते ।
भूतार्थवादस्तद्धानादर्थवादस्त्रिधेत्यपि ॥

अग्निर्हिमस्येतिवाक्यं मन्त्रत्वेन समर्थितम् ।
अर्थवादेऽनुवादस्य नोदाहरणमर्हति ॥
प्राशस्त्यादिमतिस्त्वर्थवादादेव नियम्यते ।
प्राशस्त्यादिस्ततो धर्मः नियमाद्दृष्टसाधनम् ॥
सोऽर्थवादो धर्मशाब्दबोधे विध्येकवाक्यतः ।
धर्मे प्रमाणमथवा निरुक्तज्ञानकारणम् ॥
यद्विभागे च साकाङ्क्षमेकार्थमविभागतः ।
तदेकवाक्यं द्विविधं पदवाक्यविभेदतः ॥
स्वजन्योपस्थितौ स्वार्थे विषये पदपूर्वकम् ।
स्वजन्यबोधे विषये स्वार्थे स्याद्वाक्यपूर्वकम् ॥
एकानेकार्थभेदेन स भेदः परिभाष्यते ।
सार्थवादोत्पत्तिविधिप्रयोगविधिभेदतः ॥
इत्थं पञ्चविधे वेदे प्रधानार्थानुबन्धिनाम् ।
निरुक्तिसंग्रहो ज्ञेयः सामान्यांशोऽथ लिख्यते ॥

(96) सामान्यनिरुक्तिवादः.

मन्त्रब्राह्मणपर्याप्ताखण्डोपाधिर्हि वेदता ।
मन्त्रत्वं ब्राह्मणत्वं चाखण्डोपाधिरितीष्यते ॥
ऋक्त्वं पादव्यवस्थावन्मन्त्रत्वमिति निर्णयः ।
मन्त्रत्वैकाधिकरणगीतित्वं सामता मता ॥

पुरोनुवाक्या पूर्वार्धे देवतायाः प्रकाशकः ।
मन्त्रो याज्या तूत्तरार्धे देवतायाः प्रकाशकः ॥
प्रगीतमन्त्रसाध्येन्द्रदेवतादिगुणाभिधा ।
स्तोत्रं शस्त्रं त्वप्रगीतमन्त्रसाध्यतथाऽभिधा ॥
स्तोत्रस्य साधनीभूताः ऋचस्स्तोत्रीयसंज्ञिताः ।
स्तोमाः त्रिवृत्त्वादिसंख्याविशेषाः ज्योतिराह्वयाः ॥
2 अङ्गत्वं तु परोद्देश्यकृतिकारकरूपतः ।
विहितत्वं तदन्तःस्थोद्देश्यताकारकत्वयोः ॥
एकस्योपस्थापको यस्स शब्दश्श्रुतिरीर्यते ।
सा द्वितीयादिरूपेति नव्यतर्कपरिष्कृतिः ॥
विधिरत्यन्तमप्राप्तौ नियमः पाक्षिके सति ।
तत्रचान्यत्रच प्राप्तौ परिसंख्येति गीयते ॥
विधिरुक्तोऽथ नियमः पक्षेऽप्राप्तांशपूरकः ।
अन्यव्यावृत्तिफलकः परिसंख्येति कीर्त्यते ॥
प्राप्ताप्राप्तविवेकेन परिसंख्या द्विधेष्यते ।
पञ्चपञ्चनखेत्याद्येमामगृभ्णन्नितीतरा ॥
श्रुतार्थस्य परित्यागादश्रुतार्थस्य कल्पनात् ।
प्राप्तस्य बाधादित्याद्या परिसंख्या त्रिदूषणा ॥
अन्त्यायामश्वरशनाऽङ्गत्वं स्वार्थो विधीयते ।
नेयं त्रिदोषेति केचिदेषाऽपीतीतरे विदुः ॥

3 देवतोद्देशतो द्रव्यत्यागो यागो निरुच्यते ।
दानं स्वस्वत्वमुन्मृद्य परस्वत्वप्रकल्पनम् ॥
प्रक्षेपसहितो यागो होम इत्यभिधीयते ।
यथेष्टविनियोगस्य योग्यत्वं स्वत्वमुच्यते ॥
देवतात्वं त्यज्यमानद्रव्योद्देश्यत्वमिष्यते ।
अथवा विधिवाक्यस्थशब्दत्वसमवृत्तिमान् ॥
अखण्डोपाधिरथवा तच्छब्दप्रतिपाद्यता ।
प्रतिग्रहीतृत्वयोगे सैव स्यात्सम्प्रदानता ॥
अव्यक्तिरुत्पत्तिवाक्ये देवतानभिबोधनम् ।
तथाऽवदीयमानत्वं हविष्ट्वमिति भाष्यते ॥
4 क्रत्वनुष्ठाप्यता यत्र क्रत्वर्थत्वं तदुच्यते ।
फलानुष्ठाप्यता यत्र सोच्यते पुरुषार्थता ॥
फलस्य पुरुषार्थत्वव्यवहारस्तु भक्तितः ।
विधानमप्रवृत्तस्य प्रवर्तनमितीरितम् ॥
उपादानमनुष्ठानमननुष्ठितगोचरम् ।
अनुष्ठानोद्देश्यतया विहितं स्यात्प्रयोजकम् ॥
विधेयत्वेन विहितं प्रयोज्यमिति निर्णयः ।
प्रधानमिह विध्यादिरङ्गं विध्यन्त उच्यते ॥
दक्षिणा नाम तद्द्रव्यं यत्स्यादानतिसाधनम् ।
सा चैकस्मिन् क्रतावेका वशीकरणमानतिः ॥

सामान्यतो निरुक्तीनां संग्रहोऽयं विबुध्यताम् ।
आनन्त्यानवकाशाभ्यां संक्षेपरुचयो बुधाः ॥

(97) दोषनिरुक्तिवादः

1 प्राप्ते कर्मणि नानेको विधातुं शक्यते गुणः ।
अप्राप्ते तु विधीयन्ते बहवोऽप्येकयत्नतः ॥
श्रौतव्यापारनानात्वे शब्दानामतिगौरवम् ।
एकोक्त्यवसितानां तु नार्थाक्षेपो विरुध्यते ॥
वाक्यार्थविधिरन्याय्यः श्रुत्यर्थविधिसंभवे ।
पदान्तरार्थो वाक्यार्थः समानार्थोऽपरो मतः ॥
विधिर्लघ्वर्थविषयः शान्ताकांक्षो भवेद्यदि ।
भारो लाघवतर्काख्यमीमांसाया न युज्यते ॥
करोत्यपरपर्यायभावना त्वेककर्मिका ।
अतस्त्वनेकोद्देश्यत्वे वाक्यभेदः प्रवर्तते ॥
विधेयतोद्देश्यता चाप्येका कृतिनिरूपिता ।
अतो विधेयभेदेऽपि तद्भेदो दुर्निवारणः ॥
वाक्यभेदो वाक्यदोषः पददोषस्तु लक्षणा ।
पदवाक्यसमावेशे गुणे त्वन्याय्यकल्पना ॥
विधेयमात्रं वोद्देश्यमात्रं स्वरसवाहतः ।
समर्पयेदेकपदं स चैकप्रसरो मतः ॥

तद्भङ्गलक्षणः कश्चिद्वाक्यभेदः प्रकीर्त्यते ।
अंशभेदे वाक्यभेदः कश्चिद्गौरवलक्षणः ॥
त्रिकद्वयसमावेशात्कश्चिद्वैरूप्यलक्षणः ।
उद्देश्यत्वानुवाद्यत्वप्रधानत्वत्रिकं क्वचित् ॥
उपादानविधेयत्वगुणत्वत्रितयं क्वचित् ।
मानान्तरेण सिद्धस्य या स्यान्निर्दिश्यमानता ॥
विधेयस्यान्वयित्वेन तदुद्देश्यत्वमुच्यते ।
मानान्तरेण सिद्धस्य पुनश्च श्रूयमाणता ॥
भवेत्तदनुवाद्यत्वं प्रधानत्वं गुणान्वयः ।
पुंसाऽनुष्ठायिमानत्वमुपादेयत्वमिष्यते ॥
अप्राप्तत्वयुता वाक्यवेद्यता स्याद्विधेयता ।
गुणत्वं विहितत्वं स्यादङ्गत्वेन च कर्मणः ॥
यद्वृत्तयोगः प्राथम्यं द्वयमुद्देश्यलक्षणम् ।
तद्वृत्तमेवकारश्च स्यादुपादेयलक्षणम् ॥
येषामाख्यातशब्दानां यदप्याद्युपबन्धनात् ।
विधिशक्तिः प्रणश्येत्तु ते सर्वत्राभिधायकाः ॥
2 विरोधे तुल्यबलयोर्विकल्पः परिगृह्यते ।
गत्यन्तरे च न सति सैषा ह्यगतिका गतिः ॥
प्रामाण्यस्य परित्यागः त्वप्रामाण्यस्य कल्पना ।
त्यक्तमानत्वोपगमोऽत्यक्तप्रामाण्यवर्जनम् ॥

प्रत्येकमेते दोषास्स्युः चत्वारश्शास्त्रयोर्द्वयोः ।
प्रयोगभेदात्तेन स्याद्विकल्पो ह्यष्टदोषभाक् ॥
प्रतिपत्तिरनुष्ठानं अपूर्वं च फलं तथा ।
बाधस्तेषां कोटियुग्मे इति वा दोषचिन्तना ॥
3 अथ प्रमाणयोर्बाध्यबाधकत्वव्यवस्थितिः ।
अनन्यथासिद्धतैव बाधकत्वे प्रयोजिका ॥
अन्यथासिद्धता या तु सा बाध्यत्वप्रयोजिका ।
उभयं सावकाशत्वानवकाशत्वमूलकम् ॥
अन्यथासिद्धता नाम माने विषयसत्यताम् ।
अन्तरेणात्मलाभस्स्यादवकाशो द्विधा मतः ॥
आद्यो द्विचन्द्रादिवत्स्यात् अप्रमाणपदार्हता ।
विषयान्तरलाभोऽन्त्यः भवेत् होमविधाविव ॥
प्राप्तबाधोऽप्राप्तबाध इति स द्विविधो मतः ।
आद्यः प्रमेयापहारः यो दाशमिक इष्यते ॥
अन्त्यो मूलोच्छेदरूपः तार्तीयीकस्स इष्यते ।
साधारणस्य शास्त्रस्य विशेषाविषयादिना ॥
संकोचः क्लृप्तरूपस्य प्राप्तबाधोऽयमुच्यते ।
कल्प्यस्य क्लृप्तशास्त्रेण शैघ्र्यान्मूलनिकृन्तने ॥
फलापहारादप्राप्तबाध एषोऽभिधीयते ।
अथ तस्य प्रपञ्चोऽयं विदितो लोकवेदयोः ॥

बाध्यतेऽनन्यथासिद्धेनान्यथासिद्धतास्पदम् ।
तथा निरवकाशेन सावकाशं विशेषतः ॥
नैमित्तिकेन नित्यं च क्रत्वर्थं पुरुषार्थतः ।
पूर्वं परेणातिदिष्टमुपदिष्टेन बाध्यते ॥
सफलं निष्फलेनापि ह्यदृष्टं चापि दृष्टतः ।
बाध्यते चाप्युपादेयमनुपादेयतावता ॥
श्रौतेन बाध्यते स्मार्तं प्रबलेनापि दुर्बलम् ।
प्रधानेनाङ्गभूतं च लाघवेनापि गौरवम् ॥
अपेक्षितविधानेन विधानमनपेक्षितम् ।
भूयसा चाल्पबाधस्स्यात् रूढ्या योगः प्रबाध्यते ॥
एवमाद्यवगन्तव्यं नास्त्यन्तो विस्तरस्य हि ।
सिद्धानुगममात्रं तु कर्तुं युक्तं परीक्षकैः ॥
एवं दोषनिरुक्तीनां सरणिः स्यात्प्रदर्शिता ।
अथ न्यायनिरुक्तीनां सरणिश्च प्रदर्श्यते ॥

(98) न्यायनिरुक्तिवादः.

1 स्यादेकाङ्गानुवादेन ह्यङ्गयोश्चोद्यमानयोः ।
अन्तराले विधानं यत् स संदंश इतीर्यते ॥
धर्मविप्रतिषेधस्तु यदि स्यादङ्गमुख्ययोः ।
प्रधानानुग्रहो न्याय्यः सोमस्स्यात्तेन पर्वणि ॥

परस्परापेक्षतायामुपक्रमनयान्वयः ।
परस्परानपेक्षत्वे त्वपच्छेदनयान्वयः ॥
भूयोऽनुग्रहनीतिस्तु संख्यावैषम्यगोचरा ।
विरोधाधिकृतिन्यायः प्राबल्यात्परबाधकः ॥
2 दृष्टार्थत्वे संभवति नादृष्टार्थत्वमिष्यते ।
प्रयाजशेषप्रक्षेपः प्रतिपत्तिरतो मता ॥
वाजिनेऽप्यनुनिष्पन्नप्रतिपत्तिरितीष्यते ।
अतोऽध्ययनमन्त्रादेः दृष्टार्थत्वव्यवस्थितिः ॥
वचनेन विरोधे तु न हि न्यायः प्रवर्तते ।
घटं पटयितुं नेष्टेऽप्यागमानां सहस्रकम् ॥
आनर्थक्यप्रतिहतौ विपरीतं बलाबलम् ।
रूपे श्रुतेऽपि दध्नेतिवाक्यं गुणविधिर्मतः ॥
दुर्बलस्य प्रमाणस्य बलवानाश्रयो यदा ।
तदापि विपरीतत्वं शिष्टाकोपे यथोदितम् ॥
अत्यन्तबलवन्तोऽपि पौरजानपदा जनाः ।
दुर्बलैरपि बाध्यन्ते प्रबलैः पार्थिवाश्रितैः ॥
स्वरूपतः प्रकरणे स्थानाच्च बलवत्यपि ।
पूषानुमन्त्रणे लिङ्गसमाश्रितसमाख्यया ॥
बाध्यते हि प्रकरणमुपजीव्यविरोधतः ।
कल्प्योपकारापूर्वाङ्गात्प्राक्प्राकृतसमन्वयः ॥

फलं तस्य च संबन्धः कल्प्यौ विश्वजिति क्रतौ ।
रात्रिसत्रेष्वार्थवादफलसंबन्धकल्पना ॥
प्रसक्तस्य प्रतीषेधे तदन्यत्राप्रसङ्गतः ।
संप्रत्ययाऽशिष्यमाणे परिशेष इतीर्यते ॥
3 सामान्यविधिरस्पष्टस्संह्रियेत विशेषतः ।
स्पष्टस्य तु विशेषेण नोपसंहार इष्यते ॥
शब्दोपात्तविशेषेऽर्थे संकोचश्चेदसौ नयः ।
शब्दोपात्तविशेषान्याविषये यदि विश्रमः ॥
गोबलीवर्दनीतिस्स्यात् वैयर्थ्यविनिवृत्तये ।
तथैवोत्सर्गापवादः विरोधविनिवृत्तये ॥
तद्धितेन चतुर्थ्या वा मन्त्रलिङ्गेन वा पुनः ।
देवतासङ्गतिस्तत्र दुर्बलं तु परंपरम् ॥
इष्टा शीघ्रप्रवृत्तित्वाद्योगाद्रूढिर्बलीयसी ।
अश्वकर्णादिशब्देषु विपरीतं बलाबलम् ॥
पदान्तरं प्रयुक्तं चेद्यौगिकार्थविशेषकम् ।
रूढिशक्तेर्भञ्जकं स्याद्यथा चाग्रसरोरुहम् ॥
सर्वत्र यौगिकैश्शब्दैर्द्रव्यमेवाभिधीयते ।
न हि संबन्धवाचित्वं संभवत्यतिगौरवात् ॥
सर्वाण्येव हि शास्त्राणि स्वप्रदेशान्तरैस्सह ।
एकवाक्यतया युक्तमुपदेशं प्रतन्वते ॥

उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम् ।
अर्थवादोपपत्ती च लिङ्गं तात्पर्यनिर्णये ॥
4 यो नाम वेदतात्पर्यनिर्णयाय विरच्यते ।
न्यायाख्यस्सोऽधिकरणमिति व्यवहृतं बुधैः ॥
विषयो विषयश्चैव विचारो निर्णयस्तथा ।
प्रयोजनं च पञ्चाङ्गं प्राञ्चोऽधिकरणं विदुः ॥
सङ्गतिर्विषयश्चैव संशयोत्थानकारणम् ।
संशयस्य प्रकारश्च तदर्था च विचिन्तना ॥
तस्यां फलफलित्वं च न्यायौ द्वौ पूर्वपक्षयोः ।
निर्णयस्तत्फलं चेति दशाङ्गानीतरे विदुः ॥
वाक्यस्य विषयत्वं तु यत्कोट्योस्संशयीययोः ।
उपस्थापकशब्दाभ्यां घटितं सत् तथैवच ॥
सन्न्यायाधीनतात्पर्यनिर्णयादेककोटिकाम् ।
प्रमितिं जनयेत् वाक्यं तत्त्वमित्यवधार्यते ॥
न्यायत्वं च निरुक्ताङ्गपञ्चकाद्यवबोधकम् ।
वाक्यजातं यथा न्यायवाक्यं शास्त्रान्तरे मतम् ॥
अनन्तराभिधाने या जिज्ञासा स्यात्प्रयोजिका ।
तद्धेतुज्ञानविषयसंबन्धः सङ्गतिर्मता ॥
तां प्रसङ्ग उपोद्घातः हेतुताऽवसरस्तथा ।
निर्वाहकैक्यं कार्यैक्यमिति षोढा विदुः परे ॥

अपवाद उपोद्घातः प्रसङ्गः प्रत्युदाहृतिः ।
दृष्टान्ताक्षेपातिदेशा इति मीमांसका विदुः ॥
पूर्वाधिकृतिसिद्धान्तन्यायं यत्रावलम्बते ।
उत्तराधिक्रियापूर्वपक्षस्तत्रापवादिकी ॥
उपोद्घातः प्रस्तुतार्थस्योपपादकता मतः ।
चिन्तां प्रकृतसिद्ध्यर्थामुपोद्घातं विदुर्बुधाः ॥
उपोद्घातस्य चिन्तेयं यस्मान्निर्वाहिका स्थिता ।
तस्मात्तादर्थ्यतश्चिन्तैवोपोद्घात इतीर्यते ॥
स्मृतस्योक्तार्थसंबन्धादुपेक्षाया अनर्हता ।
प्रसङ्ग इति यत्प्राहुर्यस्मात्सैव हि सङ्गतिः ॥
तस्मादुपोद्घातमुखसङ्गतिभ्यः पृथक्कृतः ।
या सङ्गतिस्स प्रसङ्ग इति निष्कृष्टलक्षणम् ॥
पूर्वाधिकृतिसिद्धान्तन्यायस्याविषयीक्रियाम् ।
आलम्ब्य पूर्वपक्षस्योत्थाने स्यात्प्रत्युदाहृतिः ॥
पूर्वाधिकृतिसिद्धान्तन्यायसाधर्म्यसंश्रयात् ।
उत्तराधिक्रियापूर्वपक्षे दृष्टान्तसङ्गतिः ॥
पूर्वाधिकृतिसिद्धान्तन्यायस्यानुपपन्नताम् ।
शङ्कित्वा पूर्वपक्षस्योत्थाने त्वाक्षेपसंगतिः ॥
कृत्वा यत्राधिकाशङ्कां पूर्वमेवातिदिश्यते ।
संगतिः कथिता सद्भिः काचित्तत्रातिदेशिकी ॥

इत्थं संगतयस्सप्त मीमांसाशास्त्रसम्मताः ।
तत्सामान्यं विशेषाश्च संग्रहेण निरूपिताः ॥
5 अथार्हतानां सिद्धान्ते प्रमाणनयवादिनाम् ।
नयस्वरूपं संक्षेपाद्दिङ्मात्रमुपदर्श्यते ॥
श्रुतप्रमाणविषयविशिष्टैकांशगोचरः ।
अंशान्तरौदासीन्येन परामर्शो नयो मतः ॥
नयेनेतरसिद्धान्ताविरोधं प्रतिपेदिरे ।
इतरांशनिषेधे तु नयाभास उदाहृतः ॥
सकलो विकलश्चेति चादेशो द्विविधस्ततः ।
नायं वस्तु नचावस्तु वस्त्वंशः कथ्यते बुधैः ॥
नासमुद्रस्समुद्रो वा समुद्रांशो यथैव हि ।
तन्मात्रस्य समुद्रत्वे शेषांशस्यासमुद्रता ॥
काला त्मरूप संबन्धाः संसर्गोपक्रिये तथा ।
गुणिदेशा र्थ शब्दाश्चेत्यष्टौ कालादयो मताः ॥
कालादिभिरभेदेन युगपत्प्रतिपादकम् ।
वचस्स्यात्सकलादेशः तदन्यद्विकलात्मकम् ॥
सप्तभङ्गी सम्मतैव प्रमाणनयवाक्ययोः ।
विस्तरस्त्ववगन्तव्यः प्रमाणनयलोकने ॥

(99) वाक्यार्थवादः

1 अथ वाक्यार्थवादोऽयमेष संगृह्यते तथा ।
यदर्थस्सकलश्शब्दः यतो यात्राऽपि लौकिकी ॥

जगत्यामिह याकाचित्प्रवृत्तिः परिदृश्यते ।
व्यापारोऽसौ क्रियारूपः सहि धात्वर्थलक्षणः ॥
क्रियैवोत्पादना भावो भावनेति च पठ्यते ।
चलनात्मा परिस्पन्दः गतिः कर्मेत्यपीर्यते ॥
व्यापारस्स तु वस्तूनां स्वभावादेव जायते ।
रजोगुणस्वभावोऽसौ क्षीरस्येवेति कापिलः ॥
तथात्वे कालदेशादिनियमानुपपत्तितः ।
स्वतन्त्रचेतनेच्छादिमूलस्स्यादिति वैदिकः ॥
अन्यथा सकलं शास्त्रं भवेद्दत्तजलाञ्जलि ।
विधानप्रतिषेधाद्यं लौकिकं चाप्यनर्थकम् ॥
चेतनस्य स्वतन्त्रस्य ज्ञानेच्छादिनिबन्धनः ।
अस्ति ह्याभ्यन्तरः कश्चित्प्रयत्नः कृतिलक्षणः ॥
चेष्टादिलक्षणस्तेन बाह्यो व्यापार इष्यते ।
सर्वा प्रवृत्तिस्तन्मूलेत्येतदध्यक्षसुस्थितम् ॥
बुद्धिजन्या भवेदिच्छा हीच्छाजन्या भवेत्कृतिः ।
कृतिजन्या भवेच्चेष्टा चेष्टाजन्या भवेत्क्रिया ॥
2 रजोगुणस्वभावेन चेत्प्रवृत्तिर्भविष्यति ।
स्तनंधयप्रवृत्तिश्चाप्येवमाद्याऽऽपतिष्यति ॥
ततश्च वीतरागादिजन्मादर्शनलक्षणम् ।
श्रान्तं जन्मान्तरे लिङ्गं अश्रान्तो बाह्यडिण्डिमः॥

पूर्वाभ्यासेन लोके स्युः हर्षशोकभयादयः ।
जातमात्रस्य ते दृष्टाः पूर्वाभ्यासनिबन्धनाः ॥
पद्मादिषु प्रबोधाद्याः विकारा भूतसंश्रयाः ।
शीतोष्णवर्षाकालादिनिमित्ता इति निश्चिताः ॥
अयस्कान्ताभिगमनमयसो यत्प्रदृश्यते ।
अन्यत्र वृत्त्यभावेन तत्स्वभावादिति स्थितम् ॥
प्रवृत्तिस्तार्किकैस्तस्माद्दोषादेवेति सूत्रितम् ।
तथैव लोकानुभवोऽप्यनुकूलोऽवकल्पते ॥
तत्र प्रवर्तकं ज्ञानं वैदिकं वाऽथ लौकिकम् ।
कीदृशं त्विति जिज्ञासा सामान्येन प्रवर्तते ॥
स्वतन्त्रा परतन्त्रेति प्रवृत्तिर्द्विविधा मता ।
आद्या भवतु रागेण विधिनैव त्वनन्तरा ॥
वैधविज्ञानवैमत्यात् विध्यर्थोऽपि विभिद्यते ।
ततो वाक्यार्थविमतिः सर्वं संगृह्यतेऽत्र तत् ॥
फलार्था हि क्रिया लोके पुरुषार्थं फलं मतम् ।
पुरुषश्च क्रियार्थस्स्यात् इत्येवं बद्धशृङ्खले ॥
चक्रेऽत्र कस्य प्राधान्यं कस्य वाक्यार्थतेतिच ।
प्रवर्तकं किमत्रस्यात् इति संशेरते बुधाः ॥
3 लिङ्गादिश्शब्द एवेति जरन्मीमांसका विदुः ।
तद्व्यापारात्मिका शब्दभावनेति कुमारिलाः ॥

तदर्थस्तु नियोगोऽस्तीत्याहुः टीकाकृतः पुनः ।
तदर्थः कार्य इत्याहुरन्ये प्राभाकरास्तु ते ॥
इष्टसाधनता याऽस्ति धात्वर्थे सेति मण्डनः ।
पुंसां नेष्टाऽभ्युपायत्वात्क्रियास्वन्यः प्रवर्तकः ॥
प्रवृत्तिहेतुं धर्मं चेत्येषा विधिविवेकवाक् ।
फलं स्वर्गादिरेवेति नैयायिकशिरोमणिः ॥
यमर्थमधिकृत्यात्र पुरुषः संप्रवर्तते ।
तत्प्रयोजनमित्थं हि सूत्रयामास गौतमः ॥
प्रवर्तिका क्रियैवेति प्रायश्शाब्दिकसम्मता ।
क्रियैव वाक्यार्थ इति मुनिरप्याह बादरिः ॥
इष्टस्य कृत्यधीनात्मलाभलक्षणकार्यता ।
प्रवर्तिकेति वेदान्तवादिनो न्यायवेदिनः ॥
आप्तस्य हितकामस्य नियोगं केचिदूचिरे ।
यतश्श्रुतिस्स्मृतिरपि नियोगस्सर्वशासितुः ॥
आप्ताभिप्रायमाचार्याः प्राहुश्चोदयनादयः ।
वेदस्य पौरुषेयत्वे मानं चापि विधिं विदुः ॥
अज्ञातज्ञापनं वाऽथवाऽप्रवृत्तप्रवर्तनम् ।
अथाप्राप्तक्रियाकर्तृसंबन्ध इति कल्पनाः ॥
उद्योगमपरे प्राहुरात्मनस्स्पन्दलक्षणम् ।
तत्तन्मतानुरोधेन विध्यर्थोऽत्र विभज्यते ॥

वाक्यज्ञाने हि वाक्यार्थविज्ञानमवकल्पते।
ततः प्रस्तूयते वाक्यचिन्ता प्राग्यविचिन्तिता ॥

(100) वाक्यवादः.

1 अथात्र वैयाकरणसम्प्रदायस्य संग्रहः।
एष वाक्यपदीयाख्यग्रन्थसारः प्रकाश्यते ॥
अखण्डं वाक्यमित्येके सखण्डमिति चापरे।
संघातवर्तिनी जातिः एकोऽनवयवः स्वनः ॥
तथा बुद्ध्यनुसंहारोऽखण्डं त्रेधा विकल्प्यते।
क्रमस्संघात आख्यातशब्द आद्यपदं तथा ॥
पृथक्सर्वपदं चेति सखण्डं पञ्चधा मतम्।
अष्टौ वाक्यविकल्पास्ते शाब्दिकाचार्यसम्मताः ॥
2 स्फोटवादोऽखण्डपक्षः स्फोटश्शब्दः ध्वनिः पुनः।
तद्गुणः दीपरुचिवत् स्वरव्यञ्जनलक्षणः ॥
बाह्य आभ्यन्तरश्चेति स स्फोटो द्विविधो मतः।
जातिव्यक्तिप्रभेदेन बाह्यो द्विविध इष्यते ॥
संघातवर्तिनी जातिः बाह्यः प्रथम ईरितः।
एकोऽनवयवश्शब्दः द्वितीयो व्यक्तिलक्षणः ॥
यदन्तश्शब्दतत्त्वं तु नादैरेकं प्रकाशितम्।
स स्यादाभ्यन्तरः स्फोटः तदर्थोऽप्ययंस्ति चान्तरः ॥

अर्थभागैस्तथैतेषां आन्तरोऽर्थः प्रकाश्यते ।
एकस्यैवात्मनो भेदौ शब्दार्थावपृथक्स्थितौ ॥
अतः प्रसिद्धरूपेण कालिदासेन कीर्तितम् ।
वागर्थाविव संपृक्तौ इति मङ्गलदैवतम् ॥
यश्च बुद्ध्यनुसंहारः स निरालम्बसोदरः ।
अखण्डपक्षे व्याख्यातं त्रिविधं वाक्यलक्षम् ॥
3 सखण्डे क्रमसंघाताविति यल्लक्षणद्वयम् ।
तत्सङ्गतं ह्यभिहितान्वयपक्षसमीक्षया ॥
त्रीणीतराण्यन्विताभिधानपक्षकटाक्षतः ।
वाक्यमेकतिङित्यादि वाक्यलक्षणवार्तिकम् ॥
अर्थैकत्वादेकवाक्यमिति सूत्रं च जैमिनेः ।
संघातपक्ष एवान्तर्भवितुं सम्यगर्हति ॥
भेदोवाऽप्यथ संसर्गो वाक्यार्थ इति चिन्तना ।
अर्थैकत्वादितिन्याये कृता भाष्ये च वार्तिके ॥
एवं वाक्यविकल्पेन वाक्यार्थोऽपि विकल्प्यते ।
तयोरपि च संबन्धः तदधीनो विकल्प्यते ॥
4 तत्रचाखण्डपक्षे तु लक्षणेष्वपिच त्रिषु ।
प्रतिभा वाक्यार्थ इति तत्स्वरूपं निशम्यताम् ॥
विच्छेदग्रहणेऽर्थानां प्रतिभाऽन्यैव जायते ।
वाक्यार्थ इति तामाहुः पदार्थैरुपपादिताम् ॥

उपश्लेषमिवार्थानामाकरोत्यविचारिता ।
सार्वरूप्यमिवापन्ना विषयत्वेन वर्तते ॥
प्रमाणत्वेन तां लोकस्सर्वस्समुपगच्छति ।
व्यवहाराः प्रवर्तन्ते तिरश्चामपि तद्वशात् ॥
स्वरवृत्तिं विकुरुते मधौ पुंस्कोकिलः कथम् ।
जन्त्वादयः कुलायादेः करणे शिक्षिताः कथम् ॥
आहारप्रीतिविद्वेषप्लवनादिक्रियासु कः ।
जात्यन्वयप्रसिद्धासु प्रयोक्ता मृगपक्षिणाम् ॥
5 सखण्डपक्षे वाक्यार्थः क्रमसंघातपक्षयोः ।
संसर्ग इति, संघातपक्षेऽप्यस्ति मतान्तरम् ॥
पदार्थ एव विश्रान्तः विशेषे वाक्यगोचरः ।
आख्यातशब्दपक्षे तु क्रिया वाक्यार्थ इष्यते ॥
प्रतिभा यत्प्रभूतार्था यामनुष्ठानमाश्रितम् ।
फलं प्रसूयेत यतः सा क्रिया वाक्यगोचरः ॥
संसृष्ट एव वाक्यार्थः तुर्यपञ्चमकल्पयोः ।
अभिधेयः पदार्थस्स्यात् वाक्यार्थस्तु प्रयोजनम् ॥
इत्युक्तः फलवाक्यार्थवादस्साधारणो मतः ।
लक्षणानां च सर्वेषां वाक्यार्थाष्षडिमे मताः ॥
प्रतिभाचैव संसर्गः पदार्थश्च विशेषतः ।
पदार्थ एव संसृष्टः क्रिया चाथ प्रयोजनम् ॥

अत्रान्विताभिधानं स्यात् क्रियासंसृष्टपक्षयोः ।
चतुर्ष्वप्यवशिष्टेषु पक्षेष्वभिहितान्वयः ॥
प्रतिभायां त्वेकरसा प्रतिपत्तिरुदेत्यतः ।
न तत्र काचिच्चर्चाऽस्ति मतयोरुभयोरपि ॥
ये मीमांसकवाक्यार्थविकल्पा भावनादयः ।
तेऽप्यत्रान्तर्भवन्तीति न स्यादधिककल्पना ॥
क्रियैव भावना तत्र प्रकृतिप्रत्ययार्थयोः ।
विवादः केवलं वैयाकरणानां तु तैस्सह ॥
नियोगाद्यास्तु वाक्यार्थाः लिङादियुतवाक्यगाः ।
न सर्ववाक्यविषया इति तेष्विह नादरः ॥
अनादितत्तद्वाक्यार्थविकल्पोत्थैरुपप्लवैः ।
बहीरूपतयाऽध्यस्तैः क्रमवद्भिरिवाक्रमैः ॥
पदार्थैश्चित्रित इव विकल्पोल्लेखलक्षणः ।
आकारो बाहिरध्यस्तः निरंशश्शाक्यसम्मतः ॥
वाक्यार्थो यः प्रायशोऽसौ प्रतिभायास्सहोदरः ।
अथातो वाक्यवाक्यार्थसंसर्गस्य विकल्पना ॥
6 तत्रानवयवे स्फोटे तदर्थे प्रतिभात्मके ।
वाक्येऽप्यथच वाक्यार्थे संबन्धोऽध्यासलक्षणः ॥
एके तादात्म्यमिच्छन्ति परे परिणतिं विदुः ।
तद्बिम्बप्रतिबिम्बत्वं वेति कैश्चिद्विकल्प्यते ॥

अवशिष्टेषु पक्षेषु वाच्यवाचकतात्मिका ।
मीमांसकानां दृष्ट्या तु संबन्धो योग्यता मता ॥
शाक्यदृष्ट्या तु शब्दार्थे बौद्धे विज्ञानवादतः ।
कार्यकारणभावाख्यस्संबन्ध इति निश्चितः ॥
बाह्यार्थे त्वथ वाक्यार्थे स च संकेतलक्षणः ।
इति तार्किकसिद्धान्त इति रीतिश्चतुष्टयी ॥
पदानि कल्पितानीति टीकाकारमतं स्मृतम् ।
वाक्यं तु कल्पितमिति पदकारमतं श्रुतम् ॥
अभेदपूर्वका भेदाः कल्पिता वाक्यवादिभिः ।
भेदपूर्वानभेदांस्तु मन्यन्ते पददर्शिनः ॥
7 शब्दवित्संप्रदायेऽस्मिन् वाक्यं प्रायेण शोधितम् ।
अर्थवित्संप्रदायोऽपि तथा किंचिद्विचार्यते ॥
क्रियावाक्यार्थपक्षश्च बादर्याचार्यसम्मतः ।
शेषलक्ष्माधिकरणे जैमिनीये निरूपितः ॥
पदार्थाः किल वाक्यार्थभावमायान्ति संहताः ।
अपेक्षानुगुणान्योन्यव्यतिषङ्गविशेषतः ॥
साध्यं निष्पद्यमानत्वात् प्रधानमवगम्यते ।
तस्मात्तदेव वाक्यार्थः क्रियातो नापरं च तत् ॥
यजेत दद्याज्जुहुयात् अधीयीतेति बोधितः ।
क्रियां साध्यतया वेत्ति तां च लोकोऽनुतिष्ठति ॥

क्रियैव तावत्कार्यात्मा प्रेरणात्मा फलार्थिता ।
प्रतीयते ततोऽन्यस्तु नियोगो नोभयात्मकः ॥
कुर्यादित्येवमादिभ्यः क्रियादिव्यतिरेकिणः ।
नार्थान्तरस्य संवित्तिः कस्यचित्प्रेरणात्मनः ॥
स चोदनामतिक्रामेत् यः क्रियां नानुतिष्ठति ।
यश्शब्दपरतन्त्रस्स्यात् शब्दप्रामाण्यवाद्यसौ ॥
फलाभिसन्धिहीनोऽपि कर्मसंस्कारसंस्कृतः ।
परिपक्वकषायस्स्यात् स्तोकस्तोकक्रमादसौ ॥
प्रपञ्चप्रविलापेन चोत्तमाधिक्रियायुतः ।
ज्ञातास्वादस्तमेवासौ पुमर्थं प्राप्तुमिच्छति ॥
विस्तरस्तु मतस्यास्य ज्ञेयो विधिविवेकतः ।
प्रायेणैते निष्प्रपञ्चनियोगन्यायवादिनः ॥

(101) भावनावाक्यार्थः.

1 वाक्यार्थभावनापक्षसारांशोऽथावधार्यताम् ।
भाव्यनिष्ठो भावकस्य व्यापारो भावना मता ॥
सा शब्दभावनाऽथार्थभावनेत्यपिच द्विधा ।
विभज्य व्यवहारस्य विषयीक्रियते बुधैः ॥
पुंप्रवृत्त्यनुकूलात्मा व्यापारश्शब्दभावना ।
प्रवर्तना प्रेरणा सा नियोग इति कीर्त्यते ॥

क्रियानुकूलः पुरुषव्यापारो ह्यर्थभावना ।
कृतिः प्रयत्न इत्यादिपर्यायपदशब्दिता ॥
लोकेऽस्मिन्नभिधाशब्दः शब्दव्यापारबोधकः ।
अतोऽभिधाभावनेति तामाहुश्शब्दभावनाम् ॥
भावना या तु पुरुषैरिष्टोपायतयाऽर्थ्यते ।
पुंव्यापारात्मिका सैषा कीर्त्यते चार्थभावना ॥
भूतिर्येषां क्रिया सैव कारकं सैव चोच्यते ।
तत्सिद्धान्तकटाक्षेण भाव्येत्यादिपरिष्कृतिः ॥
सैव वाक्यस्यार्थ इति कुमारिलविनिर्णयः ।
वेदाद्गुरुनियोगाद्वा शासनाद्वा महीभुजाम् ॥
न सचेताः क्रियां कांचित् अनुतिष्ठति निष्फलाम् ।
वस्तुतस्तु फलं तस्मात्प्रधानमवगम्यते ॥
सएव वाक्यार्थ इति वक्तुं युक्तं च यद्यपि ।
तथाऽपि काम्यमानत्वात् सिद्धं तन्नावगम्यते ॥
साध्यमानत्वपक्षे तु साक्षात्तत्सिद्ध्यवेदनात् ।
व्यापार एव तन्निष्ठः वाक्यवेद्य इतीष्यताम् ॥
अत एवहि वाक्यार्थं भावनां प्रतिजानते ।
यथोचितफलाढ्यां च त्रयसंबन्धबन्धुराम् ॥
आस्तां विधिपदं तावद्वर्तमानापदेशिनः ।
शब्दाद्यजत इत्यादेः भावना न न गम्यते ॥

2 क्रियाविशेष एवायं व्यापारो ज्ञातुरात्मनः ।
स्पन्दात्मकबहिर्भूतक्रियाक्षणविलक्षणः ॥

3 पुरुषस्य प्रयत्नो वा भावनेत्यभिधीयते ।
औदासीन्यदशाऽपायं पुमान् येन प्रपद्यते ॥
स यत्नो यागदानादिक्रियानिर्वृत्तिकारणम् ।
तस्य तद्व्यतिरेकत्वं प्रायस्सर्वोऽनुमन्यते ॥
नचायमात्मधर्मोऽपि न विभुत्वादिवन्मतः ।
साध्यरूपाभिसंबन्धात् धत्ते विषयतां विधेः ॥

4 अन्ये धात्वर्थसामान्यं भावनामभ्युपागमन् ।
यागदानाद्यनुस्यूतं रूपं गोत्वादिजातिवत् ॥
धात्वर्थव्यतिरेकेण यद्यप्येषा न लभ्यते ।
तथाऽपि सर्वसामान्यरूपेणान्या प्रतीयते ॥
सा धातोः प्रत्ययाद्वाऽपि भावनाऽवगता सती ।
अपेक्षतेंऽशात्रितयं किं केन कथमित्यदः ॥
सिद्धसाध्यस्वभावाभ्यां धात्वर्थो द्विविधस्तयोः ।
अन्योत्पादानुकूलात्मा भावना साध्यरूपिणी ॥
सिद्धभावस्तु यस्तस्याः स घञादिनिबन्धनः ।
इत्याहुरपरे प्राज्ञाः भावनातत्त्ववेदिनः ॥
भावनैवाहि वाक्यार्थः सर्वत्राख्यातवत्तया ।
अनेकगुणजात्यादिकारकार्थानुरञ्जिता ॥

एकयैवहि बुद्ध्याऽसौ गृह्यते चित्ररूपया ।
पदार्थाहितसंस्काराचित्रापिण्डप्रसूतया ॥
पदात्प्रभृति या चैषा प्रज्ञा ज्ञातुर्विजृम्भते ।
पुष्पिता सा पदार्थेषु वाक्यार्थेषु फलिष्यति ॥
अभिधाभावनामाहुरन्यामेव लिङादयः ।
अर्थात्मा भावना त्वन्या सर्वाख्यातेषु दृश्यते ॥
प्रयत्नव्यतिरिक्तार्थभावना तु न शक्यते ।
वक्तुमाख्यातवाच्येति सिद्धान्तः राणकेरितः ॥
कार्यत्वान्तःप्रविष्टा या कृतिस्सैवहि भावना ।
स्वर्गादेर्भवितुर्भावयित्री स्याद्भावकाश्रिता ॥
तेन व्यापारसामान्यं पुंव्यापारनिबन्धनम् ।
इति सिद्ध्या स स्वभाववादो लौकायतो हतः ॥
विधेर्लक्षणमेतावदप्रवृत्तप्रवर्तनम् ।
अतिप्रसङ्गदोषेण नाज्ञातज्ञापनं विधिः ॥
णिजर्थात्तु लिङर्थोऽसौ प्रेरणाऽस्ति विलक्षणा ।
ज्ञापकव्यापार एष स तु कारकसंश्रितः ॥
प्रवर्तनस्मृतिः प्राप्ते प्रैष इत्यभिधीयते ।
अप्राप्ते प्रेषणं सर्वं विधित्वं प्रतिपद्यते ॥
विधिः प्रवर्तकत्वाख्यस्वरूस्योपपत्तये ।
स्वर्गं साध्यतया यागं साधनत्वेन बोधयेत् ॥

अथापि शाब्दी शक्तिस्सा प्रधानमिति गम्यते ।
अतस्त्विष्टोपायतैषा धात्वर्थस्येति सूरयः ॥
वाक्यार्थाधिकृतावस्य विस्तरः श्लोकवार्तिके ।
शाब्दबोधक्रमस्त्वेष खण्डदेवादिशोधितः ॥
6 यजेतेत्यत्रचाख्यातं लिङ्त्वेनाख्याति भावनाम् ।
अभिधाख्यां तथैवार्थीमाख्यातत्वेन बोधयेत् ॥
उभे अंशत्रययुते इति विश्रुतमेव तत् ।
विशिष्टशाब्दीप्रयोज्या तादृश्यार्थीति गम्यते ॥
प्रयोज्यत्वं स्वविषयज्ञानजन्याऽनुमा तु या ।
तत्प्रयोज्यत्वमनुमा त्वेतादृश्यत्र गम्यताम् ॥
यागो मदिष्टहेतुस्स्यात् इत्याकारा तया पुनः ।
पुमान् प्रवर्तत इति प्रयोज्यत्वं निरूपितम् ॥
यागस्य चेष्टहेतुत्वमेव प्राशस्त्यलक्षणम् ।
स शब्दभावनांशस्सन् एवमत्रोपयुज्यते ॥

(102) नियोगवाक्यार्थः.

1 नियोगवाक्यार्थवादिटीकाकारमतं पुनः ।
प्रदर्श्यतेऽथ यच्छिष्याः कार्यवाक्यार्थवादिनः ॥
कर्ता संख्या तथाचार्थभावना शब्दभावना ।
तस्याः कृतिः तदाख्यानं चेत्येतदतिदुर्भरम् ॥

तस्मान्नियोग एकोऽर्थः कालत्रयविवर्जितः ।
नियुक्तोऽस्मीत्यनुभवात् प्रेरणात्माऽथ तद्धिया ॥
आत्माकूतविशेषो यः आत्मधर्मस्स जायते ।
भौतिकस्पन्दहेतुस्सः न मानान्तरगोचरः ॥
औदासीन्यप्रच्युतिर्वा योद्योग इति कीर्त्यते ।
आद्या प्रवृत्तिराकूतं चिकीर्षेत्यादिनामभाक् ॥
शब्दस्यैव लिङादेर्यैः बुधैः प्रेरकतेष्यते ।
तेऽत्यन्तभीरवस्तस्मिन् संगतिग्रहणालसाः ॥
2 कार्यत्वावगतिस्त्वार्थी शाब्दी प्रेरकतामतिः ।
तस्मात्प्रेरक एवासौ प्रधानमिति निर्णयः ॥
अन्ये तु शाब्दं कार्यत्वं नियोगस्येति मन्वते ।
प्रेरकत्वं त्वार्थमिति नातस्स्याच्छब्दगौरवम् ॥
3 अनुबन्धद्वयं तस्य विषयश्चाधिकार्यपि ।
नियोगः कस्य कुत्रेति तदाकाङ्क्षे इमे उभे ॥
विषयः फलहेतुश्चेत्फलकामोऽधिकार्यतः ।
फलं पुंबुद्धिमूलं तत् न शास्त्रीयमिति स्थितिः ॥
यावज्जीवं सुखं जीवेदित्यादीच्छानिवारकम् ।
यावज्जीवं चाग्निहोत्रं कर्तव्यमिति शासनम् ॥
न दैन्यमीदृशं सोढुं स्वतन्त्रं शास्त्रमर्हति ।
यत्प्रवर्तयितुं पुंसः न शक्नोति फलं विना ॥

4 नित्याधिकारे तत्कर्म वेदोऽसौ शुचिजीविनः ।
विधत्तेऽतोऽफलमपि कार्यमित्येव कुर्वते ॥
विहिताकरणायत्तप्रत्यवायापनुत्तये ।
कर्तव्यमिति सिद्धान्तः भाट्टैः पर्यायतः कृतः ॥
तदेकदेशिनां पण्डापूर्वमिष्टं फलात्मकम् ।
स्वतएव पुमर्थत्वं तस्य पण्डत्वमिष्यते ॥
5 कामाधिकारे तु नियोज्यान्यथाऽनुपपत्तितः ।
फलक्लृप्तिः तत्प्रवृत्तिस्तस्माल्लिप्सार्थलक्षणा ॥
अतएवाधर्मतेति श्येनादेरिति निर्णयः ।
अर्थशब्दः प्रयुक्तोऽतः तादृशानर्थवारकः ॥
नित्येतिकर्तव्यतांशे शास्त्रमेव प्रवर्तकम् ।
अतोऽग्नीषोमीयहिंसा नाधर्म इति ते विदुः ॥
6 प्रतिषेधाधिकारेऽपि प्रत्यवायो न कल्प्यते ।
निषेध्यविषयादेव लब्धत्वादधिकारिणः ॥
तत्रास्मिन् कल्प्यमानेऽपि नरकादिफलोदये ।
अवैधत्वं प्रसज्येत न ह्याकाङ्क्षेदृशी विधेः ॥
विधेरपेक्षे द्वे एव नियोज्यविषयौ प्रति ।
तत्पूरणेन तृप्तस्तु न वाञ्छति ततोऽधिकम् ॥
नियोज्यस्तावदेतावान् क्रुद्धोऽरिहननोद्यतः ।
विषयस्तन्निवृत्तिस्स्यान्नियोगोऽतोऽत्र पुष्कलः ॥

कथं नरो निवर्तेत प्रत्यवायभयाद्विना ।
मा निवर्तिष्ट, विधिना तावदुक्तं निवर्तनम् ॥
प्रवृद्धतररागान्धः प्रत्यवायेऽपि कल्पिते ।
न निवर्तत इत्येवं किं विधेरप्रमाणता ॥
फलं भवतु मा वा भूत् पुरुषोऽपि प्रवर्तताम् ।
मा प्रवर्तिष्ट वा शास्त्रं नियुङ्क्ते त्वधिकारिणम् ॥
7 कामप्रध्वंससिद्धान्ते सर्वं नैमित्तिकं मतम् ।
स्वर्गादिकामनानां तु निमित्तत्वमुपाश्रितम् ॥
स्त्रीकामो निष्कृतिं कुर्यादित्यादिषु निमित्तता ।
प्रतीयते नतु खलु फलसाधनता क्वचित् ॥
न पारलौकिकस्स्वर्गः किन्त्वैहिकसुखं सुखम् ।
धनधान्यादिऋद्धिश्चेत्पुंसामिच्छा सुखे भवेत् ॥
यागेन तद्व्यये जाते कामः प्रध्वंसते स्वयम् ।
अतएव क्षत्रियाणां विश्वजिद्यागशासनम् ॥
तत्रापि स्वर्गक्लृप्तिस्तु जैमिनेर्दैन्यलक्षणा ।
तथैव रात्रिसत्रेऽपि वेदो हि प्रभुसम्मितः ॥
प्रत्यवायपरीहारोऽप्यत्र कार्पण्यलक्षणः ।
शंय्वन्ताधिक्रियान्यायो नैतत्सिद्धान्तसम्मतः ॥
नित्यं नैमित्तिकं कर्म कर्तव्यमिति वैदिकः ।
पन्थाः पुराणोऽयमत्र गीता भगवता स्वयम् ॥

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
स कालेनेह महता योगो नष्टः पुरातनः ॥
कर्मण्येवाधिकारस्ते कुरु कर्मैव तत्पुनः ।
यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ॥
अन्यत्र विस्तरस्तस्य द्रष्टव्योऽस्माभिरीरितः ।
अत्रापिच पुरः स्पष्टः फलकाण्डे भविष्यति ॥

(103) कार्यवाक्यार्थः.

1 प्रभाकरगुरूणान्तु कार्यवाक्यार्थवादिनाम् ।
वाक्यार्थसंग्रहस्सोऽयं विविक्तप्रतिपत्तये ॥
आस्तां तावत्क्रिया लोके गमनागमनादिका ।
अन्ततस्तनपानादितृप्तिकारिण्यपि क्रिया ॥
सा यावन्मम कार्येयमिति नैवावधार्यते ।
तावत्कदाऽपि लोकेत्र प्रवृत्तिर्न भविष्यति ॥
पुंसां नेष्टाभ्युपायत्वात्क्रियास्वन्यः प्रवर्तकः ।
प्रवृत्तिहेतुं धर्मं च प्रवदन्ति प्रवर्तनाम् ॥
कर्तुरिष्टाभ्युपाये हि कर्तव्यमिति लोकधीः ।
विपरीतं त्वकर्तव्यमिति तद्विषये मतिः ॥
इत्याहुर्मण्डनाचार्याः गुरुभिस्तन्नचेष्यते ।
कार्यता कृतिसाध्यत्वं फलसाधनता पुनः ॥

कारणत्वं फलोत्पादे भिद्येते ते परस्परम् ।
किंच स्वयं क्लेशरूपं कर्म यत्कार्यतां व्रजेत् ॥
फलसाधनता तत्र कारणं तेन कार्यता ।
तद्भावभाविनी नित्यं तदात्मेव प्रतीयते ॥
2 कार्ये मानान्तरावेद्ये क्रियादिव्यतिरेकिणि ।
व्यवहारत एवाहुः व्युत्पत्तिं प्रेरकात्मनि ॥
शब्दान्तराणि स्वार्थेषु व्युत्पद्यन्ते यथैव हि ।
आवापोद्वापभेदेन तथा कार्ये लिङादयः ॥
कार्यमेव हि कर्तॄणां ज्यायस्समकनीयसाम् ।
भेदात्प्रैषामन्त्रणाध्येषणादिव्यपदेशभाक् ॥
कृतिसाध्यं प्रधानं यत्तत्कार्यमभिधीयते ।
तच्च मानान्तरेणापि वेद्यमोदनपाकवत् ॥
एवं कार्यात्मकेऽप्यर्थे व्युत्पद्यन्ते लिङादयः ।
तदन्वितेषु स्वार्थेषु तथा शब्दान्तराण्यपि ॥
3 यागानुष्ठानतः कार्यमात्मानं लब्धुमर्हति ।
नच कर्त्रा विना तस्यानुष्ठानमुपपद्यते ॥
न विना चाधिकारेण कर्तुर्लाभः क्वचिन्मतः ।
नियोज्यमन्तरा क्वापि नाधिकारः प्रसिद्ध्यति॥
नकदाऽप्यविशिष्टोऽत्र नियोज्यो ह्यवकल्पते ।
एवं विशेषणतया स्वर्गस्तत्रावकल्पते ॥

कर्तृत्वमधिकारित्वं नियोज्यत्वमिति स्थितम् ।
अवस्थात्रितयं तत्रानुष्ठातृत्वं हि कर्तृता ॥
अधिकारः स्वकीयत्वबुद्धिमत्त्वं हि कर्मणि ।
कार्ये स्वकीयत्वबुद्धिमत्ता तु स्यान्नियोज्यता ॥
4 संप्रधार्यमिदं त्वत्र तत्कार्यं किं क्रियात्मकम् ।
उत तद्व्यतिरेकीति, तत्र लोकानुसारतः ॥
लिङादिस्तत्र कार्यं चेत्क्रियामेवावबोधयेत् ।
समन्वयो नियोज्येन तदानीं नावकल्पते ॥
नियोज्यस्य च कार्यं यत्स्वकीयत्वेन बुद्ध्यते ।
स्वर्गादिः कामयोगाच्च साध्यत्वेनैव गम्यते ॥
क्रिया हि क्षणिकत्वेन न कालान्तरभाविनः ।
स्वर्गादेस्साध्यमानस्य न क्षमा जननं प्रति ॥
इष्टस्याजनिका सा च नियोज्येन फलार्थिना ।
कार्यत्वेन न संबन्धमर्हति क्षणभङ्गिनी ॥
तस्मान्नियोज्यसंबन्धसमर्थं विधिवाचिभिः ।
कार्यं कालान्तरस्थायि क्रियातो भिन्नमुच्यते ॥
क्रियादिभिन्नं यत्कार्यं वेद्यं मानान्तरैर्न तत् ।
अतो मानान्तरापूर्वमपूर्वमिति गीयते ॥
5 कार्यत्वेन नियोज्यं च स्वात्मनि प्रेरयन्नसौ ।
नियोग इति मीमांसानिष्णातैरभिधीयते ॥

6 कार्यस्यैव प्रधानत्वाद्वाक्यार्थत्वं च युज्यते ।
वाक्यं तदेव हि प्राह नियोज्यविषयान्वितम् ॥
आत्मसिद्ध्यनुकूलस्य नियोज्यस्य प्रसिद्धये ।
कुर्वत्स्वर्गादिकमपि प्रधानं कार्यमेव नः ॥
अतः पुरुषकारश्च दैवं च फलसाधनम् ।
मुख्यं दैवमपूर्वं स्यात् सहकारि तु पौरुषम् ॥
एवं नित्याधिकारादौ जीवनाद्येऽवधारिते ।
आत्मीयकार्यावगमात्प्रवृत्तिरुपपद्यते ॥
फलं फलतया नान्वीयते किंत्वधिकारिणः ।
विशेषणतयैवेति प्राभाकरविनिश्चयः ॥
एवं कामाधिकारार्थपर्यालोचनयोत्थिता ।
व्युत्पत्तिस्सर्ववाक्यार्थप्रतिपत्तौ निबन्धनम् ॥
तस्माल्लोकानुसारेण व्युत्पत्तिः कार्यमात्रके ।
तस्य त्वपूर्वरूपत्वं वेदवाक्यविमर्शजम् ॥
7 ननु लोकविरुद्धत्वं पक्षेऽस्मिन्नपि दृश्यते ।
सर्वदैव यतो लोके क्रियाकार्यं प्रतीयते ॥
यदि स्यातां विरोधस्स्यात् क्रियाकार्यत्वगोचरौ ।
प्रतिपत्तिप्रयोगौ तौ कार्येऽपूर्वेऽपि लौकिके ॥
प्रमाणान्तरगम्यं हि लोकश्शब्दैर्विवक्षति ।
क्रियाकार्यत्व एवातः प्रयोगो लक्षणान्वितः ॥

अभिधेयं लिङादीनामपूर्वं कार्यमेव तत् ।
अपूर्वेण क्रियाकार्यं नित्यं संबद्धमित्यतः ॥
लिङादयः क्रियाकार्ये बुधैर्लाक्षणिका मताः ।
तत्रान्विताभिधावादे सर्वं लाक्षणिकं मतम् ॥
लक्षणानभिविज्ञानं मुख्यार्थानवधारणात् ।
येतु मुख्यार्थकुशलाः तेषां लाक्षणिकत्वधीः ॥
तस्मान्मानान्तरावेद्यं कार्यमर्थान्तरान्वितम् ।
वेदार्थ इति सिद्धान्तः प्रभाकरगुरोर्मतः ॥
वाक्यार्थमातृकायां च श्रीभाष्येऽपिच विस्तरः ।
शाब्दबोधक्रमस्त्वेषः कार्यवाक्यार्थवादिनाम् ॥
8 यजेतेति पदात्कार्यप्रधानं यागगोचरम् ।
स्यात्कार्यं यागविषयमिति बोधस्स चादिमः ॥
ततश्च यागविषयं कार्यं स्यात्स्वर्गसाधनम् ।
इत्यर्थाध्याहारविद्भिः द्वितीयो बोध इष्यते ॥
स्वर्गकामपदश्रुत्या स्वर्गकामनियोज्यकम् ।
प्रागुक्तद्विदळं कार्यमिति स स्यात्तृतीयकः ॥
ततश्च स्वर्गकामीयकृतिसाध्यमिति क्रमात् ।
प्रागुक्तत्रिदळं कार्यमिति बोधस्तुरीयकः ॥
नापूर्वे स्वर्गहेतुत्वं यागे तेन विना भवेत् ।
इति चानुपपत्तेस्तु प्रतिसन्धानसंभवे ॥

स्वर्गकामकृतेस्साध्यः स्वर्गकामनियोज्यकः ।
स्वर्गस्य साधनं याग इति बोधस्तु पञ्चमः ॥
यदप्यनुपपत्तेस्तु प्रतिसन्धानमुच्यते ।
तदुपादानमित्युक्तं धीरौपादानिकी ह्यसौ ॥
विध्याक्षेप उपादानं श्रुतार्थापत्तितः पृथक् ।
सा स्यादभिहितापर्यवसानाऽश्रुतकल्पना ॥
अभिधानानवसितिः उपादानमितीर्यते ।
तेनौपादानिकी त्युक्ता फलसाधनतामतिः ॥
इति प्राभाकरमतं वादारम्भसमर्थने ।
वादावळावन्ववादीदनन्तार्यबुधोत्तमः ॥

(104) निषेधवाक्यार्थः.

1 नञर्थस्य विचारेऽपि किंचिदत्र प्रकाश्यते ।
त्रिविधा हि नञो वृत्तिः कुमारिलमुखेरिता ॥
पर्युदासः तथाऽभावः प्रतिषेधस्तथेति च ।
पर्युदासस्स विज्ञेयः यत्रोत्तरपदेन नञ् ॥
प्रसज्यप्रतिषेधोऽसौ क्रियया सह यत्र नञ् ।
इति कैश्चिन्निरुक्तं हि तत्रार्थः फलितस्त्वसौ ॥
अन्योन्याभावबोधे तु पर्युदास इतीर्यते ।
अत्यन्ताभावबोधे तु प्रसज्यप्रतिषेधवाक् ॥

नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं तथाचाब्राह्मणं नय ।
इत्यादावीक्षणाद्विप्रात् अन्यद्वस्त्ववगम्यते ॥
ईक्षणव्यतिरिक्ता हि क्रिया तत्राप्यपेक्षिता ।
प्रत्यासत्तेर्न संकल्पमतिक्रम्यावगम्यते ॥
तथैव क्षत्रियाद्यर्थः पर्युदस्तः प्रतीयते ।
नामधात्वर्थयोगी च नञतोऽन्यार्थगोचरः ॥
2 लिङाद्यन्याख्यातयोगे चाभावार्थः प्रतीयते ।
तत्र चाज्ञातसंदिग्धविपरीतार्थवारणम् ॥
अस्तिनास्तीतिसंदेहे पाक्षिकास्तित्वबोधनम् ।
निवर्त्यते नञा यद्वा नास्तितैवोच्यते सती ॥
निवर्ततेऽस्तिताबुद्धिः मृगतृष्णादिबुद्धिवत् ।
अज्ञानादिनिवृत्तिश्च दृष्टा मानान्तरेऽपि हि ॥
3 विधिना युज्यते यत्र न हन्यान्न पिबेदिति ।
नात्राभावार्थता यस्मात्प्राप्तं हि प्रतिषिध्यते ॥
रागादिना यदि प्राप्तं पानं च हननं च वा ।
कथं वा कथ्यते तत्राभावो भावानिवर्तितः ॥
यदि नानुष्ठास्यतेऽत्र प्राप्तिर्नैव प्रसिध्यति ।
तस्मादत्र निषेधार्थतत्त्वमेतान्निरूपितम् ॥
सच केशेषु पुरुषं गृहीत्वा विनिवर्तयन् ।
चिकीर्षिताच्च व्यापारात् अभावं स्थापयत्यपि ॥

अन्यथैव प्रवर्तन्ते भावाभावधियोऽपराः ।
व्यवस्थितबहिर्वस्तु परिच्छेदफलात्मिकाः ॥
अन्यथाऽनागतोत्पाद्यभावप्रेरणवारिका ।
अन्तस्संकल्पमूलात्मा वृत्तिर्विधिनिषेधयोः ॥
एतदुक्तं भवत्यत्र न्यायरत्नाकरोदितम् ।
यथा विधिर्विधेयस्य चेष्टहेतुत्वसिद्धये ॥
प्रमाणीभूय संकल्पं पुंसोऽनुष्ठानगोचरम् ।
जनयित्वा तेन पुंसा व्यापारं कारयन् स्वयम् ॥
तत्र कारकहेतुस्स्यात् निषेधोऽपि तथैव हि ।
निषिद्धस्यानिष्टहेतुभावे मानं भवन् ततः ॥
अननुष्ठानसंकल्पं वैराग्याज्जनयन् पुनः ।
तदभावव्यवस्थां च करोतीति सुनिश्चितम् ॥
तथाच यदि रागादिप्राप्तं विध्यर्थलक्षणम् ।
कर्तव्यत्वं लिङाऽनूद्य नञा तस्य निषेधनम् ॥
यदिवाऽत्र नञर्थस्य वर्जनस्य विधेयता ।
लिङाऽवबोधः द्वेधाऽपि व्यापारेऽनर्थहेतुताम् ॥
कल्पयन् अननुष्ठानसंकल्पजननात्परम् ।
निवारणं स्यादित्येतन्निषेधस्य निरूपणम् ॥
4 इयत्प्रयासहेतुश्च वक्ष्यमाणो विनिश्चितः ।
अवस्तुत्वादभावस्य न नृशृङ्गं नियुज्यते ॥

नोपादेयं नैव हेयं न कार्यं नापि कारणम् ।
को विधिः को निषेधोऽत्र प्रख्योपाख्याविवर्जिते॥
न कलञ्जं भक्षयेदित्येवमादिरपार्थकः ।
नियोग इति हि प्राहुरभावावस्तुवादिनः ॥
विहितस्याननुष्ठानान्निन्दितस्य च सेवनात् ।
अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति ॥
इत्यादिस्मृतिवाक्यार्थभङ्ग्यो भाष्यकृतामपि ।
अभावावस्तुसिद्धान्तमूलदोषनिबन्धनाः ॥
अभावः कारणं कार्यं वस्तु येषां विपश्चिताम् ।
तेषां पुनः नवीनानां प्रयासो नैव कश्चन ॥
यस्याभावोऽधिकरणं यस्य भावान्तरं च वा ।
सर्वं तद्विषयं ज्ञेयं न विचारोऽत्र कश्चन ॥
अत्र राणककारेण प्रोक्तं भङ्ग्यन्तरं त्विदम् ।
स्वकाले यदकुर्वन् तत् करोत्यन्यदचेतनः ॥
प्रत्यवायोऽस्य तेनैव नाभावेन स जन्यते ।
इत्युक्तं तदपि प्रोक्ताभावतत्त्वविकल्पना ॥

(105) प्रयोजनवाक्यार्थः

1 अथ नैयायिकमते फलमेव प्रवर्तकम् ।
सम्मतं तत्र सारांशसंग्रहोऽप्यवधार्यताम् ॥

रागादेव प्रवृत्तिश्चेज्जन्मान्तराविनिश्चयः ।
रागिणामेव जन्मेति वीतरागेति सूत्रितम् ॥
यदि रागान्न प्रवृत्तिः स्वभावः कुशली भवेत् ।
शास्त्रं निराधिकारि स्यात् इति नैयायिकाशयः ।
सुखे दुःखनिवृत्तौ वा पुंसां भवति कामना ।
न पुनः व्योमपुष्पादि कश्चित्कामयते नरः ॥
भयं नाशङ्कते यस्मात्फलं वापि समीहितम् ।
तथाविधस्य राज्ञोऽपि नाज्ञाऽनुष्ठीयते जनैः ॥
वर्तमानापदेशेऽपि फलं यत्रावगम्यते ।
तत्र प्रवर्तते लोकः लिङादिष्वश्रुतेष्वपि ॥
2 रहस्यं पुनरत्रेदं मीमांसकहृदि स्थितम् ।
इष्टसाधनताबुद्ध्या प्रवर्तेत नरो यदि ॥
रागात्साङ्गे प्रवृत्तिः स्यात् निषिद्ध्येत तदा वधः
विधिनैव प्रवृत्तिश्चेत् वधो वैधो भवेदिति ॥
शास्त्रमूला प्रवृत्तिश्चेददोषाऽभ्युपगम्यते ।
शास्त्रोत्थरागमूलाऽपि तादृक्स्यादिति तार्किकाः
3 भवत्यारोग्यसंपत्तिर्भुञ्जानस्य हरीतकीम् ।
तत्कामो भक्षयेच्चेति को विशेषः प्रवर्तने ॥
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यदेवमनुमन्यते ।
प्रेरकत्वं फलस्यैव न नियोगात्मनः पुनः ॥

4 नियोगादथ निष्पत्तिः फलस्येत्यभिधीयते ।
फलं प्रत्यङ्गभूतत्वादवाक्यार्थत्वमापतेत् ॥
प्रेरणावगमादेव प्रवृत्तिर्यदि सिद्धयति ।
स्वर्गकामपदं तत्स्यादधिकारिविशेषणम् ॥
यो हि येन विना लोके न सिद्धयेत्स तमाक्षिपेत् ।
नियोज्यमात्राक्षेपे स्यान्नियोगो न फलात्मकः ॥
ननुच स्वर्गकामोऽत्र नियोज्यः नान्यथा भवेत् ।
यदि स्वर्गस्य संपत्तिं नाधिगच्छेत्स्वकर्मणः ॥
नरेच्छामात्रमेवेदं, न शब्दस्त्विययति क्षमः ।
नियोज्यः स्वर्गकामो हि भवेज्जीवनवानिव ॥
विधेरेष स्वभावश्चेदायुष्मन् साधु बुध्यसे ।
भाट्टैः किमपराद्धं ते नित्येऽपि फलवादिभिः ॥
अधिकार्यनुपादेयविशेषणविशेषितः ।
जीवन्वा स्वर्गकामो वा समानः काम्यनित्ययोः ॥
विधिवीर्यस्वभावस्तु क्रिमेरपि तथाविधः ।
सप्रत्ययप्रेरकतां विधिर्नोपैति निष्फलः ॥
प्रत्यवायपरीहारो वोपात्तदुरितक्षयः ।
फलं नित्ये, ऽप्यन्यथा स्यादर्थानर्थाविवेकिता ॥
5 प्रतिषेधाधिकारेऽपि विधिवृत्तपरीक्षया ;
एवं नरकपातादिफलयोगो न दुर्वचः ॥

करणांशेऽपि लिप्सातः प्रवृत्तिर्यद्युपेयते ।
इतिकर्तव्यतांशे तु शास्त्रादिति न युक्तिमत् ॥
नहि तत्करणं शुद्धं स्वफलायोपकल्पते ।
सेतिकर्तव्यताकं हि करणं करणं विदुः ॥
उभयत्रापि लिप्सातः सतिचैवं प्रवर्तने ।
अग्नीषोमीयहिंसादेः स्यादेव श्येनतुल्यता ॥
तदुत्सर्गापवादाख्यन्यायस्यैव विमर्शनात् ।
न हिंस्यादिति सामान्यागोचरत्वावधारणा ॥
6 यस्त्वाह प्रेरकत्वं चेत्फलं दर्शयतो विधेः ।
प्रत्यक्षादिसमानत्वात् स्वातन्त्र्यं तस्य हीयते ॥
स वाच्यः फलशून्यत्वे सुतरामस्वतन्त्रता ।
यद्रिक्तमर्थं मूढोऽपि न कश्चिदनुतिष्ठति ॥
फलस्यैवेष्यमाणस्य पश्यन् प्रेरकतामतः ।
यमर्थमधिकृत्येति सूत्रं व्यधित सूत्रकृत् ॥
7 गुणप्रधानानियमात् मिथस्संसृष्टलक्षणः ।
पदार्थ एव वाक्यार्थः स्यात्प्रयोक्तृविवक्षया ॥
क्वचित्साक्षात्पदोपात्तं क्वचित्प्रकरणागतम् ।
क्वचिदालोचनागम्यं फलं सर्वत्र गम्यते ॥
तस्मात्फलस्य साध्यत्वात् सर्वत्र तदवर्जनात् ।
क्रियादीनां च तादर्थ्यात् तस्य वाक्यार्थतेष्यते ।

8 प्रतिभा खलु विज्ञानं तच्च शब्देन जन्यते ।
नतु शब्दस्य विषयः रूपधीरिव चक्षुषः ॥
9 सुखं हि जगतामेव काम्यं धर्मेण जायते ।
अधर्मजन्यं दुःखं स्यात् प्रतिकूलं सचेतसाम् ॥
चिकीर्षा कृतिसाध्यत्वप्रकारेच्छा तु या भवेत् ।
तद्धेतुः कृतिसाध्येष्टसाधनत्वमतिर्भवेत् ॥
बलवद्विष्टहेतुत्वमतिस्स्यात्प्रतिबन्धिका ।
तदहेतुत्वबुद्धेस्तु हेतुत्वं कस्यचिन्मते ॥
चिकीर्षा कृतिसाध्येष्टसाधनत्वमतिस्तथा ।
उपादानस्य चाध्यक्षं प्रवृत्तौ जनकं भवेत् ॥
एवं प्रवृत्तिजननात् विधेरपि तदर्थता ।
नित्येऽपि ब्रह्मलोकादेस्संप्राप्तिरवधार्यते ॥
आप्ताभिप्रायमाचार्याः विध्यर्थं लाघवाद्विदुः ।
वेदस्य पौरुषेयत्वे मानं चापि विधिं विदुः ॥
इति नैयायिकमतसारांशो विशदीकृतः ।
अथ वेदान्तसिद्धान्ते विशेषः प्रतिपाद्यते ॥

(106) आप्ताभिप्रायवाक्यार्थः

1 इष्टस्य कृत्यधीनात्मलाभलक्षणकार्यता ।
लिङर्थ इति वेदार्थसंग्रहे भाष्यकृद्वचः ॥

प्राभाकरा ये विख्यातास्ते वाच्यापूर्ववादिनः ।
कौमारिलाः पुनः कल्प्यापूर्ववादिन ईरिताः ॥
अतिरिक्तार्थवाच्यत्वकल्पनायामपीष्यते ।
श्रुतैव देवताप्रीतिः नापूर्वं क्वचिदश्रुतम् ॥
इष्टसाधनतां प्राहुर्लिङर्थं मण्डनादयः ।
अयं त्विष्टाभ्युपायोऽतः कार्यमित्यध्यवस्यति ॥
कार्यत्वमिष्टोपायत्वादन्तरङ्गमितीतरे ।
लघीयसी साध्यताऽतः देवताप्रीत्यपेक्षया ॥
तत्रैव शब्दशक्तिः स्यादिति श्रीभाष्यकृन्मतम् ।
आप्तस्य हितकामस्य नियोगोऽपि तदादृतः ॥
श्रीपूर्णप्रज्ञसिद्धान्तोऽप्येवमेव प्रतीयते ।
अनुव्याख्यानवाक्यं तु तदीयमवधार्यताम् ॥
कार्यता च न काचित्स्यादिष्टसाधनतां विना ।
कार्यं साधनमिष्टस्य भगवानिष्टदेवता ॥
इति तस्माद्देवता तु येषां स्यान्निरनुग्रहा ।
क्लिश्नन्ति ते वै प्रायेण नान्य इत्यत्र निर्णयः ।
2 अत्र श्रीभाष्यकारीयापूर्वसिद्धान्तखण्डनम् ।
संगृह्यतेऽथ विशदबोधाय विदुषामपि ॥
आचार्यकाधिकारार्थाऽधीतिस्स्यादिति संशये ।
अर्थज्ञानाधिकारार्थोऽथातो धर्मेत्यसूत्रयत ॥

विधिस्स्वाध्याय इत्यादिः यावत्स्वाध्यायगोचरः ।
अथेत्यानन्तर्यमपि यावत्तत्प्रतियोगिकम् ॥
अत इत्यर्थपरता यावद्वेदावलम्बिनी ।
जिज्ञास्यताऽपि कृत्स्नस्य वेदार्थस्येति गम्यते ॥
अभिधा चोदना चेति श्रुतिरेषा द्विधा मता ।
आद्या सिद्धपरा ज्ञेया द्वितीया कार्यतत्परा ॥
अव्युत्पत्त्यनपूर्वत्वाप्रयोजननिबन्धनम् ।
अप्रामाण्यं विदुस्सिद्धे विबुधा ह्यभिधाश्रुतेः ॥
चोदनाश्रुतिरेवैषा व्युत्पत्त्यादिपरिष्कृता ।
प्रमाणं स्यात्ततश्चाद्या लिङ्गेऽन्तर्भावमर्हति ॥
चोदनालक्षणः कार्यं धर्मो वेदार्थ इत्यतः ।
वेदार्थः कार्यरूपस्स्यादिति व्याख्या गुरोर्मता ॥
ततश्चोपनिषद्व्याख्याशास्त्रं नारम्भमर्हति ।
यस्मादुपनिषच्छब्दः सिद्धवस्त्वेकगोचरः ॥
अत्रोच्यते ब्रह्मविद्भिः ब्रह्माप्यानन्दलक्षणम् ।
शास्त्रेणैवावसेयं च व्युत्पन्नं चाप्तवाकयतः ॥
तस्मात्साध्यपरा यद्वत्तथा सिद्धपराऽपिच ।
श्रुतिः प्रमाणं तेनार्धजरतीयं न युक्तिमत् ॥
इति सिद्धान्तानुरोधात्कार्यतत्त्वमनूद्यते ।
प्राक्छ्लोकैस्सप्तभिः पश्चात् सप्तभिस्तन्निरस्यते ॥

लोके हि सिद्धवस्तूनां ये शब्दाः प्रतिपादकाः ।
पश्चात्तनास्ते संदृष्टाः प्रतिपाद्यात् तथा यदा ॥
श्रुतिः सिद्धपरा चेत्स्यात् प्रतिपाद्यादनन्तरा ।
ततश्चापौरुषेयत्वं नित्यत्वं च न निर्वहेत् ॥
कृतिसाध्यं प्रधानं यत्तत्कार्यमिति गीयते ।
प्रामाण्यमपि वेदस्य तत्र व्युत्पत्तिसंभवात् ॥
आत्मसिद्ध्यनुकूलस्य नियोज्यस्य प्रसिद्धये ।
कुर्वत्स्वर्गादिकमपि प्रधानं कार्यमेव नः ॥
कृतिसाध्यत्वमिष्टत्वं कृत्युद्देश्यत्वमेवच ।
कार्यस्य त्रय आकारा इत्याहुः कार्यवादिनः ॥
साधारणौ द्वावाकारौ भावार्थफलयोरिति ।
तृतीयोऽसौ नियोगस्य त्वसाधारण इष्यते ॥
कार्यं हि तच्च प्रथममनन्यार्थं प्रतीयते ।
ततश्चान्यार्थता युक्ता भृत्येष्टप्रदभूपवत् ॥
3 स च किं कृतिकर्मत्वं किंवा प्रेरकता मता ।
अनुकूलत्वमथवा शेषित्वमथवा मतम् ॥
प्रयोजनत्वमथवा प्राधान्यमथवा कृतेः ।
अथवा सुखरूपत्वं पुरुषार्थत्वमेववा ॥
नाद्यत्रयं कृत्यधीनसिद्धता वेष्टताऽपिवा ।
फलभावार्थयोरेव तदेतत्पर्यवस्यति ॥

शेषित्वं दुर्निरूपं स्यात् पञ्चमं पूर्ववद्भवेत् ।
षष्ठं त्वसंभवग्रस्तं सप्तमं लोकदूषितम् ॥
अष्टमं निष्प्रमाणं स्यात् अपूर्वं दुर्वचं ततः ।
कर्तृव्यापारसाध्यत्वमात्रं धात्वर्थसंगतम् ॥
लिङादेर्वाच्यमित्याहुरनुशासनवेदिनः ।
एवं वाच्यापूर्ववादो यथाऽन्येषां न संमतः ॥
तथा कल्प्यापूर्ववादः सेश्वरैरधरीकृतः ।
इति श्रीभाष्यकारीयापूर्ववादार्थसंग्रहः ॥
4 अथान्विताभिधानाभिहितान्वयविवादयोः ।
आद्यः प्राभाकराभीष्टः ह्यन्त्यः कौमारिलादृतः ॥
आदौ पदानि श्रूयन्ते ततो व्युत्पत्तिमार्गतः ।
परस्परानान्विता ये पदार्थाः स्मारयन्ति तान् ॥
आकाङ्क्षादिपरामर्शः स्मृतेष्वर्थेषु जायते ।
न्यायप्रवृत्तिस्तत्रैव स्वात्मानं लब्धुमर्हति ॥
वचनव्यक्तिभेदाभिव्यक्तिस्संपाद्यते तया ।
सम्यङ्न्यायानुग्रहेण तैर्वाक्यार्थोऽभिधीयते ॥
नानापदार्थसहितप्रधानैकार्थलक्षणः ।
पदजातं श्रुतं सर्वं स्मारितानन्वितार्थकम् ॥
न्यायसंपादितव्यक्ति पश्चाद्वाक्यार्थबोधकम् ।
अन्वितार्थाभिधायित्वे पदानां शिक्षिते सति ॥

विशिष्टा वक्तृधीर्ज्ञातुं शक्यते नान्यथा पुनः ।
एषोऽन्विताभिधानस्य प्रकारः गुरुसम्मतः ॥
अथ भट्टस्याभिमतः प्रोच्यतेऽभिहितान्वयः ।
पदैरेवाभिधीयन्ते पदार्थाः ते पृथक्पृथक् ॥
विशेषव्यक्त्यभावात्तत्स्मारकान्न विशिष्यते ।
योग्यत्वेन परामृष्टाः तेऽर्था अभिहिताः पुनः ॥
विशेषसंसर्गरूपं वाक्यार्थं बोधयन्ति तम् ।
पदमभ्यधिकाभावात् स्मारकान्न विशिष्यते ॥
यदाधिक्यं भवेत्किंचित् तत्पदस्य न गोचरः ।
न पदव्यापृतिस्तत्र चार्थैरेवार्थसिद्धितः ॥
यथा कविभिरालोच्यमाना अर्थाः परस्परम् ।
अन्विताः केवलं लोकोत्तरवाक्यस्य हेतवः ॥
अत एव हि वाक्यार्थमेते लाक्षणिकं विदुः ।
यस्मादभिहितैरर्थैः संबन्धात्सोऽवगम्यते ॥
नाकृतिः प्रथमं ज्ञाता व्यक्तिः पश्चात्प्रतीयते ।
किं तु प्रतीयते जातिः व्यक्त्यैव सहिता यथा ॥
तथाऽन्वयोऽप्यधिगतस्त्वन्वितस्यावबोधकः ।
इत्यन्विताभिधाय्येष शब्द इत्युच्यते परैः ॥
क्लृप्तमन्वितसामर्थ्यं पदार्थानां स्वभावतः ।
एकवाक्यतया तत्र कल्प्यं नियममात्रकम् ॥

पदार्थेष्वभिधावृत्तिः पदानां पर्यवस्यति ।
तात्पर्यवृत्तिर्वाक्यार्थे स तस्माच्चोदनाश्रयः ॥
6 शब्दैकलभ्यतारागादेवान्येऽन्वितवादिनः ।
तात्पर्येणान्यथासिद्ध्या परेऽभिहितवादिनः ॥
वाक्यं प्रमाणान्तरं स्यात्पदसान्निधिलक्षणम् ।
तद्विलक्षणसामर्थ्यं मतमिन्द्रियलिङ्गवत् ॥
तथा कार्यार्थसिद्धार्थव्युत्पत्त्येकान्तभेदतः ।
अन्विताभिहितेत्यादिमतभेदः व्यवस्थितः ॥
पदज्ञानं तु करणं द्वारमर्थस्मृतिस्ततः ।
फलं संसर्गबोधस्स्यात् इति नैयायिका विदुः ॥
तत्रान्वयोऽनधिगतः वाक्यवेद्यो यतस्ततः ।
ते त्वन्वयाभिधानस्य वादिनः परमार्थतः ॥
निर्विशेषब्रह्मवादे ह्यन्वितस्यान्वयस्य वा ।
भेदगर्भत्वतः शब्दः न तादृग्ब्रह्मबोधकः ॥
सविशेषब्रह्मवादे प्रधानार्थाविरोधतः ।
नैकत्र निर्भरस्तस्माद्व्यवहारो यथायथम् ॥
अन्वीयमानवस्तूनामभिधानं परेऽब्रुवन् ।
अन्येऽभिधीयमानानामर्थानामन्वयं जगुः ॥
अत्रापि केचिन्मन्यन्ते सामान्येनान्विताभिधा ।
विशेषतश्चाभिहितान्वय इत्यपि कल्पनाम् ॥

अतस्सामान्यतो ज्ञातः पदान्तरबलात्पुनः ।
भवेद्विशेषविज्ञातः तेन स्यादन्वितोक्तिता ॥
इत्यप्याहुर्बुधाः केचित् सर्वथाऽन्वयबोधनम् ।
फलं सर्वत्राविशिष्टमित्याहुश्चिन्तनालसाः ॥
मीमांसकस्य सिद्धान्तः तथा नैयायिकस्य वा ।
प्रदर्शितः परिष्कृत्य प्रायो वेदान्तवादिभिः ॥
एष वाक्यार्थवादोऽत्र देवताप्रीतये कृतः ।
सर्वत्र देवताप्रीतिः कर्तव्येति हि निर्णयः ॥
लक्ष्मीपुरं श्रीनिवासविपश्चिच्चक्रवर्तिना ।
एवं प्रमाणभागोऽयं द्वितीयस्समगृह्यत ॥

श्रीः.

प्रीयतां भगवान् वासुदेवः.

इति श्रीवत्सकुलकलशजलनिधिकौस्तुभायमानश्रीवेङ्कटार्यतनूभवस्य तातताम्बागर्भशुक्तिमुक्ताफलायमानस्य श्रीमत्कस्तूरीरङ्गनाथविद्वन्माणिकरुणाकटाक्षसमासादितसारस्वतसर्वस्वस्य श्रीमद्विरक्तराघवार्यचरणानुगृहीतसकलसम्प्रदायरहस्यस्य श्रीमद्राजाधिराजमहीशूरमहीधुर्यतुर्यश्रीकृष्णराजसार्वभौमपरिपोषितस्य महाविद्वत्पण्डितरत्नाद्यनेकबिरुदालङ्कृतस्य संस्कृतमहापाठशालानिगमान्तप्रधानोपाध्यायस्य श्रीमतो लक्ष्मीपुराभिजनस्य श्रीनिवासाचार्यस्य कृतिषु मानमेयरहस्यश्लोकवार्तिके प्रमाणकाण्डः द्वितीयः समाप्तः.

अथ तृतीयः प्रयोजनकाण्डः.

(107) त्रिवर्गवादः.

1 प्रयोजनविचारोऽथ तृतीयोऽयं विलिख्यते ।
व्यापारस्य हि सर्वस्य विश्रमोऽस्ति प्रयोजने ॥
धर्मार्थावुच्यते श्रेयः कामार्थौ धर्म एवच ।
अर्थ एवेह वा श्रेयः त्रिवर्ग इति तु स्थितिः ॥
इति प्राह मनुस्तस्य वचनस्यायमाशयः ॥
श्रेयःपदं पुमर्थस्य वाचकं सर्वसम्मतम् ॥
अर्थ एव पुमर्थस्स्यादित्येकेषामिहाशयः ।
अर्थ एवहि धर्मस्य कामस्यास्तीह साधनम् ॥
काम एव पुमर्थस्स्यादिति केषांचिदाशयः ।
धर्म एव श्रेय इति रौति वै बादरायणः ॥
ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष नच कश्चिच्छृणोति मे ।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते ॥
अर्थकामौ श्रेय इति चापरेषामिहाशयः ।
अर्थकामौ हि जगति प्रथितं सुखसाधनम् ॥
अर्थधर्मौ श्रेय इति चाचार्या मन्वतेऽपरे ।
कामो हि धर्मार्थाभ्यां स्यादिति तेषामिहाशयः॥

परस्पराविरुद्धस्तु त्रिवर्गश्श्रेय इष्यते ।
पुरुषार्थतयेत्यत्र मनोः स्मर्तुः विनिर्णयः ॥
मुमुक्षूणां पुनः श्रेयः मोक्ष एवेतिचेरितम् ।
षष्ठाध्याये, ततः पक्षाः विबुधैस्सप्त निश्चिताः ॥
तमसो लक्षणं कामः रजसस्त्वर्थ उच्यते ।
सत्त्वस्य लक्षणं धर्मः श्रैष्ठ्यमेषां यथोत्तरम् ॥
एवं प्राचां विवादेऽपिचाधुना ते चतुर्विधाः ।
पुरुषार्थाः चतुर्वर्गः इति पीठप्रकल्पना ॥
2 धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्चेति चतुर्विधः ।
पुरुषार्थो विभक्तोऽस्ति यथा स्मृतिपुराणयोः ॥
धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ ।
यदत्रास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित् ॥
अत्राद्येऽर्धे चतुर्भिश्चैरधर्माद्यास्समुच्चिताः ।
मिथस्समुच्चयश्चेति व्याख्यातं तन्त्रवार्तिके ॥
अर्थं प्रोवाच चाणक्यः कामं वात्स्यायनोऽब्रवीत्
धर्मं तु जैमिनिः प्राह मोक्षं वै बादरायणः ॥
एतेऽधुना तीर्थकराः पुमर्थानामिति श्रुताः ।
समुच्चयविदस्सर्वेऽप्यधिकारिविभेदतः ॥
पुरुषैरर्थ्यमानत्वात्पुरुषार्थ इतीर्यते ।
स तु स्यात्सुखमेवात्र तच्चतुर्धा विभज्यते ॥

शारीरं मानसं चेति द्विधा तत्सुखमिष्यते ।
अर्थकामौ तु शारीरं धर्ममोक्षौ तु मानसम् ॥
3 पुमवस्थाक्रमेणैव पुरुषार्थक्रमोऽप्यसौ ।
निर्देशव्युत्क्रमे चापि हेतुरग्रेऽवगम्यते ॥
उत्पत्तितस्त्विन्द्रियार्थसन्निकर्षनिबन्धनम् ।
यत्तदर्थसुखं ज्ञेयमथ कामो निरुच्यते ॥
वयोऽवस्थाविशेषेण सहवासादिनाऽपिवा ।
पुंस्त्वाद्यभिव्यक्तिभवं अवस्थैकनिबन्धनम् ॥
तथा विद्यासंस्कृतेन मनसा धर्मलक्षणम् ।
सुखं ह्यनुबुभूषन्ति नियोगसुखवादिनः ॥
फलान्तराहेतुरपि स्वरूपे कार्यबुद्धितः ।
स्वयंप्रयोजनं नित्यमित्यप्यत्रेतरे विदुः ॥
प्रत्यवायपरीहारबुद्ध्या कर्तव्यमेव तत् ।
इत्याहुरपरे प्राज्ञाः स धर्मस्सुखमर्थ्यते ॥
अतएवहि यज्ञस्य त्रैविध्यपरिशोधने ।
अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ॥
यष्टव्यमेवेति मनस्समाधाय स सात्त्विकः ।
इत्यस्य पुरुषार्थत्वं गीतं भगवता स्वयम् ॥
ख्यातेर्लाभस्य पूजायाः मानसी सुखता यथा ।
तथा धर्मस्य सुखता शास्त्रदृष्टिभिरीक्ष्यते ॥

मोक्षस्य पुरुषार्थत्वे विक्रान्तं सर्वसूरिभिः ।
तत्सर्वमुत्तरत्रैव सम्यक्स्पष्टीभविष्यति ॥
एवं चतुर्विधसुखावस्थाप्राधान्यलिप्सया ।
चातुराश्रम्यसंस्थाऽपि प्रायेणात्रानुरुध्यते ॥
मोक्षाश्रमस्स्यात्संन्यासः धर्मो वैखानसाश्रमः ।
कामो गृहस्थाश्रमस्स्यात् अर्थार्थी ब्रह्मचार्यसौ ॥
एतद्दृष्ट्यैव वर्णानां विभागोऽपि समञ्जसः ।
ब्राह्मणस्त्विह संन्यासी ऋषिः क्षत्रिय उच्यते ॥
गृहस्थोऽपि भवेद्वैश्यः शूद्रश्शुश्रूषुरुच्यते ।
तथा कालविभागोऽपि कृतं ब्राह्मण्यलक्षणम् ॥
क्षात्रं त्रेता समाख्याता द्वापरः वैश्यता मता ।
शूद्रः कलिरितिप्रोक्तः स्फष्टं रामायणोत्तरे ॥
अपराजितपृच्छायां वचश्चाप्यवधार्यताम् ।
ऋग्वेदादिविभागेन कृतादियुगभेदतः ॥
विप्रादिवर्णभेदेन चतुर्वक्त्रः चतुर्भुजः ।
हेमाद्रीये कालखण्डे परिशिष्टे ह्युदाहृतम् ॥
चतुर्णामपि चैतेषां परस्परसमागमः ।
विशिष्टेनानुकूल्येन प्रपञ्चस्थितये मतः ॥
4 चातुराश्रम्यसिद्धान्ते त्वैकाश्रम्यं समाश्रिताः ।
जैमिनीयास्ततस्सोऽयं बाधपक्ष इतीर्यते ॥

अधिकारानुरोधेन बादरायणयोगिनः ।
विकल्पमिच्छया प्राहुः पक्षो वैकल्पिकस्तु सः ॥
समुच्चयं ह्याश्रमाणां मन्वाद्यास्स्मृतिकारिणः ।
प्राहुस्समुच्चयस्तेषां पक्ष इत्यवधार्यते ॥
तद्वद्धर्मार्थकामादिपुरुषार्थचतुष्टये ।
अर्थो लौकायतः प्रोक्तः कामश्शाक्तस्त्वनन्तरः ॥
जरन्मीमांसकाभीष्टः मोक्षस्सौगतसम्मतः ।
अधिकारानुरोधेन विकल्पं केचिदूचिरे ॥
समुच्चयस्स्वीकृतोऽस्ति स्पष्टं स्मृतिपुराणयोः ।
परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ ॥
धर्मं चाप्यसुखोदर्कं लोकविक्रुष्टमेवच ।
असाधुभ्योऽर्थमादाय साधुभ्यस्संप्रयच्छति ॥
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ।
इति मन्वादिवचनात्कलितावर्थकामयोः ॥
आद्यन्तयोः धर्ममोक्षाविति शास्त्ररहःस्थितिः ।
अर्थशास्त्रे स्तेयशास्त्रे चार्थतत्त्वं प्रपाञ्चितम् ॥
5 अथ कामरहस्यं तु किंचिदत्र प्रकाश्यते ।
रागो द्वेषो मोह एते यान्तिचेदुत्कटां स्थितिम् ॥
कामः क्रोधो लोभ इति व्याह्रियन्ते क्रमादमी ।
कामस्येच्छासंज्ञकस्यावस्थाभेदा इमे मताः ॥

देवासुरमनुष्याणां रूपमेतद्विभाजकम् ।
त्रिविधं नरकस्यैतद्वारं नाशनमात्मनः ॥
कामः क्रोधस्तथा लोभः तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ।
इत्येवं गीतया सैषा श्रुतिस्मृत्यादुपबृंहिता ॥
बृहदारण्यकान्तस्स्था प्राजापत्यास्त्रया इति ।
असुरांश्च मनुष्यांश्च देवांश्चापि प्रजापतिः ॥
उपादिशाद्धि ददद-दयध्वं दत्त दाम्यत ।
श्रुतिस्मृत्योरयं भावः तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥

(108) मोक्षोपोद्घातः.

1 अथ मोक्षपदार्थस्य तत्त्वं संगृह्यतेऽधुना ।
यदर्थं सकलं शास्त्रं जगत्यां संप्रवर्तते ॥
दुःखाभावस्सुखमिति व्यवहारस्य गोचरः ।
किंचित्सुखं नाम वस्तु नास्तीत्येव हि सौगताः॥
न सुखादिप्रमेयं वा मनो वाऽस्तीन्द्रियान्तरम् ।
अनिषेधादुपात्तं चेत् अन्येन्द्रियमतं वृथा ॥
दुःखाभावस्सुखमिति जरत्तार्किकसम्मतः ।
इत्यानन्दगिरिः प्राह स्पष्टं संबन्धवार्तिके ॥
2 सुखाभावो दुःखमिति व्यवहारस्य गोचरः ।
दुःखं वस्त्वन्तरं नास्तीत्याहुर्लौकायताः पुनः ॥

यावज्जीवं सुखं जीवेत् सुखभाजः प्रजास्स्मृताः ।
आत्मा सुखे नियोक्तव्य इत्यादिवचसां चयात् ॥

3 सुषुप्त्याद्युपलम्भेन सर्वे दार्शनिकाः परे ।
तृतीयामसुखादुःखावस्थामभ्युपयन्ति ते ॥
रागद्वेषविहीना या दशोपेक्षात्मिका यथा ।
यथाऽनुष्णाशीतता वा यथाऽनिर्वचनीयता ॥
प्रत्यक्षाच्च परोक्षाच्चापरोक्षोऽन्यो यथेष्यते ।
कृतिज्ञप्त्योरन्तराळे व्यक्तिरन्या यथोच्यते ॥
तादात्म्यं च यथा भेदाभेदयोर्मध्यलक्षणम् ।
पतितात्पतितव्याच्च वर्तमानाध्वता यथा ॥
संचितागामिनोर्मध्ये प्रारब्धं वा यथेष्यते ।
तथाऽन्तरालावस्थानं प्राय इच्छन्ति सूरयः ॥
मिथस्संश्रयधीबाधमध्यावस्थोपलम्भनैः ।
न स्यात्परस्पराभावमात्रता सुखदुःखयोः ॥

4 अभ्यास एव सर्वत्र सुखादीनां नियामकः ।
कालदेशदशाभिन्नस्वभावात्स व्यवस्थितः ॥
नहि वस्तु स्वभावेन पुरुषार्थत्वमश्नुते ।
तथात्वे सर्वदा सर्वं सर्वेषां स्याद्व्यवस्थया ॥
सुखाय वा स्याद्दुःखाय नचैवं त्वव्यवस्थया ।
सुखदुःखव्यवस्थेयं दुर्निरूपा हि धीमताम् ॥

तथाचोक्तं पुराणेऽपि पराशरमहर्षिणा ।
मनःप्रीतिकरः स्वर्गः नरकस्तद्विपर्ययः ॥
वस्त्वेकमेव दुःखाय सुखायेर्ष्यागमाय च ।
कोपाय च ततस्तस्माद्वस्तु वस्त्वात्मकं कुतः ॥
तदेव प्रीतये भूत्वा पुनर्दुःखाय जायते ।
तदेव कोपाय ततः प्रसादाय च जायते ॥
तस्माद्दुःखात्मकं नास्ति नच किंचित्सुखात्मकम् ।
संस्कारात्मा वासनैव सुखदुःखव्यवस्थितिः ॥
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ।
तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तत्तस्मात्तस्य रोचते ॥
पशुहिंसादिसंबन्धे यज्ञे तुष्यन्ति हि द्विजाः ।
तेभ्य एव हि यज्ञेभ्यः शाक्याः क्रुध्यन्ति पीडिताः॥
अग्नेश्शीतेन तोयस्य तृषा भक्तस्य च क्षुधा ।
क्रियते सुखकर्तृत्वं तद्विलोमस्य चेतरैः ॥
क्षुत्तृष्णोपशमं तद्वत् शीताद्युपशमं सुखम् ।
मन्यते बालबुद्धित्वात् दुःखमेव हि तत्पुनः ॥
अत्यन्तास्तिमिताङ्गानां व्यायामेन सुखैषिणाम् ।
भ्रान्तिज्ञानावृताक्षाणां प्रहारोऽपि सुखायते ॥
तथा सौगतगाथाऽपि गीयते सार्वलौकिकी ।
परिव्राट्कामुकशुनामेकस्यां प्रमदातनौ ॥

कुणपः कामिनी भक्ष्यमिति तिस्रो विकल्पनाः ।
अथौपनिषदानां च श्रुता माण्डूक्यकारिका ॥
यं भावं दर्शयेद्यस्य तं भावं स तु पश्यति ।
तं चावति स भूत्वाऽसौ तद्ग्रहस्समुपैति तम् ॥
एवं सर्वमिदं दुःखं इति भावयतोऽनिशम् ।
सर्वोपपत्तिस्थानेषु निर्वेदोऽस्य प्रवर्तते ॥
निर्विण्णस्य च वैराग्यं विरक्तस्य च देहिनः ।
क्लेशकर्मप्रहाणादिद्वारो निश्श्रेयसोदयः ॥
त्यागेन वाऽथ भोगेन वैराग्यमिति संशये ।
न कर्मणा न प्रजया त्यागेनैकेत्यनुश्रवात् ॥
त्यागेनैवेति सिद्धान्तः निगमान्तविदां मतः ।
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ॥
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ।
इति मन्वादयोऽप्येतं पन्थानं समुपाश्रिताः ॥
भोगेनैवेति सिद्धान्तः सांख्यानामवगम्यते ।
भोगं कृत्वैव पुरुषस्यापवर्गं करोत्यपि ॥
प्रधानमिति सिद्धान्तः सांख्यशास्त्रेऽवगम्यते ।
जहात्येनां भुक्तभोगामित्यपि श्रूयते श्रुतिः ।
ऋणापाकरणश्रुत्याऽप्येष पन्थाः प्ररोच्यते ।
ऐकाश्रम्यविधानं च जैमिनेरिह युज्यते ॥

कथं चिदपि वैराग्यमन्तरङ्गं विमुक्तये ।
इति बोधयितुं शिष्यान् प्राचां तत्र न विस्तरः ॥
6 अल्पत्वास्थैर्यचिन्तायां सर्वं दुःखमयं जगत् ।
पूर्णत्वस्थैर्यबुद्धौ तु सर्वं सुखमयं जगत् ॥
अतोऽभिमानानुगुणा सुखदुःखव्यवस्थितिः ।
सोऽभिमानः कर्ममूल इति लोकायतेतरे ॥
कर्मापिचेश्वरायत्तमिति सेश्वरपद्धतिः ।
कर्मानपेक्षेशवादे शैवीच्छा तन्नियामिका ॥
7 सुखदुःखव्यवस्थानुगुणा शास्त्रसमुत्थितिः ।
दुःखं मा भूत्सुखं भूयादिति सर्वस्समीहते ॥
यदा लोको भिन्नरुचिर्भिन्नसंस्कारसंस्कृतः ।
विचित्रो लौकिकेऽप्यर्थे किमुवाच्यमलौकिके ॥
तस्मान्मोक्षविकल्पोऽयं तत्साधनाविकल्पना ।
तत्तच्छास्त्रविकल्पो वा नाश्चर्यमिह धीमताम् ॥

(109) मोक्षविकल्पः.

1 पापसत्त्वे दुःखसत्त्वं तत्सत्त्वे मुक्तिसत्यता ।
तत्सत्त्वे हेतुचिन्ता स्यात् सर्वं श्रद्धानिबन्धनम् ॥
तथाऽप्यात्यन्तिको दुःखध्वंसश्चेन्मोक्ष इष्यते ।
देहविच्छेदमात्रेण विमोक्षश्चारुवाङ्मतः ॥

महानन्दो यदा मोक्षः शरीरान्याविनिर्णयात् ।
सहस्रकामिनीलाभं कामशास्त्रविदो विदुः ॥
तत्रापिच सहस्रेति सहस्रवणमुच्यते ।
सहस्रुतिर्मोक्ष इति रतिरत्नप्रदीपिका ॥
शून्याद्वैतं माध्यमिकमतस्थैः मोक्ष इष्यते ।
स चोपलम्भोपशमः प्रपञ्चोपशमश्शिवः ॥
दुःखं स्वलक्षणं शून्यं क्षणिकं सकलं ततः ।
यः प्रतीत्यसमुत्पादः शून्यतां तां प्रचक्षते ॥
शून्यादीनां भावनया वासनानां परिक्षयात् ।
धीसंततिः निर्वृणोति निर्वातस्थप्रदीपवत् ॥
वासनात्यन्तविच्छेदं योगाचाराः प्रचक्षते ।
ततो विशुद्धविज्ञानसत्सन्तानमहोदयः ॥
समस्तालीकविषयज्ञानसंतानसंहृतिः ।
प्रज्ञाकरोदिता सौत्रान्तिकसिद्धान्तसम्मता ॥
यतोऽसत्ख्यातिसिद्धान्तः सौत्रान्तिकपरिष्कृतः ।
केचिद्विषयसंसर्गवैधुर्यमनुजानते ॥
वैभाषिकमते मोक्षस्स स्यादिति विनिर्णयः ।
मतेष्वेषु त्रिषु मता केवला बुद्धिसंततिः ॥
एकतापत्तिमिच्छन्ति सन्ततीनां धियां परे ।
शुद्धज्ञानोदयः कैश्चित् चरमज्ञानमिष्यते ॥

नित्योर्ध्वगमनं मुक्तिरिति ह्यार्हतपद्धतिः ।
अर्हद्देहानुप्रवेशः तदीयैः कैश्चिदिष्यते ॥
साधारणश्शरीरोऽसौ सर्वलोकोपरिस्थितः ।
निरावरणता कैश्चिदलोकाकाश इष्यते ॥
सर्वलोकाकाशमूर्ध्नि सोऽलोकाकाश इष्यते ।
वियातानुभवः कैश्चिद्वैयात्यं च प्रगल्भता ॥
स्वातन्त्र्यं शिवसारूप्यं शिवसाम्यमथापि वा ।
चिच्छक्तिपरिशेषश्च भेदाः पाशुपता इमे ॥
2 ज्योतिष्टोमाग्निहोत्रादिसाध्यो यस्स्वर्गलक्षणः ।
मोक्षस्स एवेति मतं जरन्मीमांसकादृतम् ॥
चित्तेन स्वात्मसौख्यानुभूतिं भाट्टैकदेशिनः ।
केचित्स्वात्मन्यवस्थानमभावापत्तिलक्षणम् ॥
परमात्मप्राप्त्यवस्था पुनरावृत्तिवर्जिता ।
मुक्तिर्निश्श्रेयसमिति निर्णीतं तन्त्रवार्तिके ॥
प्रभाकरगुरूणां तु दृषत्तुल्य इतीरितम् ।
बोद्धा विषयसंवित्तौ ग्राहकत्वेन भासते ॥
मोक्षे प्रकाशरूपोऽसावात्मेत्येके प्रचक्षते ।
नेष्येत पुरुषैस्स्वापादविशिष्टोऽन्यथा तदा ॥
केवलात्मानन्दभोगः कापिलैः कैश्चिदिष्यते ।
कैश्चित्स्वसंवित्तिशून्या कैवल्यावस्थितिर्मता ॥

एवमेवानुजानन्ति पातञ्जलमतानुगाः ।
प्रकाशात्मविदो न स्वप्रकाशात्मविदस्तु ते ॥
सर्ववैशेषिकगुणोच्छेदः काणभुजो मतः ।
एवमेवानुजानन्ति केचिद्गौतमदर्शनाः ॥
तथा नित्यसुखव्यक्तिं विदुर्भूषणयायिनः ।
अथौपनिषदैः प्रायः ब्राह्माविर्भाव उच्यते ॥
स्वाभाविकं तु ये भेदाभेदमिच्छान्ति वैदिकाः ।
भर्तृप्रपञ्चादयस्तैस्सन्मात्रब्रह्मता मता ॥
औपाधिकं तु ये भेदमभेदं निरुपाधिकम् ।
इच्छान्ति भास्करास्तेषां सत्योपाधिविनाशतः ॥
सर्वातिशयितानन्दस्वात्मसंवेदिनः प्रभोः ।
सर्ववेत्तुस्सर्वशक्तेः ब्रह्मणो भाव इष्यते ॥
आविद्यकं तु ये भेदमभेदं पारमार्थिकम् ।
अहुर्मायाविदस्तेषां पन्थाऽशांकरसंमतः ॥
निर्विशेषब्रह्मभावापत्तिर्मोक्षस्तु तन्मते ।
ब्रह्माद्वैतवदेवेदं शब्दाद्वैतविदां मतम् ॥
ते विशुद्धाद्वैतिनस्स्युः विशिष्टाद्वैतिभिः पुनः ।
परिपूर्णपरब्रह्मानुभवो मोक्ष इष्यते ॥
तद्भोगे परमं साम्यमाहू रामानुजादयः ।
स्वस्वयोग्यस्वस्वरूपानन्दाभिव्यक्तिलक्षणा ॥

मुक्तिरित्युच्यते पूर्णप्रज्ञैः विष्णोः प्रसादतः ।
प्रायेणैतेषु पक्षेषु संकीर्णा इतरेऽखिलाः ॥
3 जीवस्वरूपप्रध्वंसवादिनो ये विचक्षणाः ।
मुक्तिमात्यन्तिकीं सर्वक्लेशेभ्यस्ते विदुस्ततः ॥
तत्रादिमास्तु क्षणिकविज्ञानात्मविदो बुधाः ।
देहान्तात्मविदो ये तु बार्हस्पत्या हि ते मताः ॥
पौराणिकैकदेशीयाः ये कल्पान्तात्मवादिनः ।
येऽप्यौपनिषदाः केचित् मोक्षान्तात्माभिधायिनः ॥
तत्रच ब्रह्मदत्तीयाः जीवोत्पत्त्यादिवादिनः ।
ब्रह्मैवोपादानमेषां जीवानामिति तन्मतम् ॥
भर्तृप्रपञ्चादयोऽन्ये ब्रह्मावस्थात्मवादिनः ।
तत्र केचिदभिव्यक्तिवादिनः शक्तिवेदिनः ॥
विकारा ब्रह्मणः जीवा इति केश्चिदुपेयते ।
उत्पत्तिरप्यभिव्यक्तिः विकृतिर्वाऽप्यवस्थितिः ॥
परिणामस्ततस्सर्वे ख्याता वैनाशिका इति ।
सर्वेऽप्याश्रयनाशेन क्लेशप्रध्वंसवादिनः ॥
वैकासिकाः परे सर्वे प्रायो वैयासिका इमे ।
परिच्छेदकनाशेन ह्यपरिच्छेदवादिनः ॥
4 एवं मोक्षविकल्पेन द्विविधा ज्ञायते गतिः ।
स्वरूपोच्छित्तिरूपैकोपाध्युच्छित्तिरनन्तरा ॥

उपाध्युच्छित्तिपक्षेऽपि विभागो मुख्यतस्त्वसौ ।
स्वसंवेदनराहित्यसाहित्याभ्यां द्विधा मतः ॥
स्वस्वरूपोच्छित्तिपक्षसंविद्राहितपक्षयोः ।
विशेषः फलतो नैव वक्तुं शक्यमितीतरे ॥
सुखसंवित्त्यभिव्यक्तिं कैवल्येऽप्यनुजानते ।
श्रुतिन्यायानुरोधेन तात्पर्यं पर्यवस्यति ॥
अतस्स्वतन्त्रः श्रौतोऽन्यः पक्षो नास्तीति यौक्तिकाः
तस्मान्मध्यस्थचिन्तायां सम्प्रदायः परा गतिः ॥
संस्कारः सुदृढस्सोऽयं पारंपर्यव्यवस्थितः ।
संप्रदायः यतः श्रद्धाविद्याकर्ममयः पुमान् ॥
5 येयं सुषुप्त्यवस्थैषा सर्वचेतनसाक्षिता ।
तामुदाहरणं मुक्तेस्सर्वे दार्शनिका विदुः ॥
बृहदारण्यके याज्ञवल्क्यो जनकभूपतेः ।
मोक्षोपलक्षणामेतामाह षष्ठप्रपाठके ॥
भाष्येऽपि पाक्षिले सैषा दशैवानूदिता तथा ।
यथा सुप्तस्य च स्वप्नादर्शने क्लेशसंक्षयः ॥
तथाऽपवर्गे रागानुबन्धो विच्छिद्यते तराम् ।
तस्यामपि दशायां ये विकल्पास्तान्निबोधत ॥
आत्मप्रध्वंसवादा ये तेषां निर्वाणलक्षणा ।
मुक्तिरात्यन्तिकी सैषा या महासुप्तिरुच्यते ॥

आत्मनित्यत्ववादा ये तेषां कैवल्यलक्षणा ।
मुक्तिरेतादृगेवेष्टा सुखदुःखविवर्जिता ॥
एतां च केचिदत्यन्तसुखरूपां विजानते ।
केचिदल्पसुखां केचिदभावालम्बनां विदुः ॥
केचिन्मोहमयीं प्राहुरात्मनोऽस्फुरणात्मिकाम् ।
दृष्टान्तेऽपि विवादश्चेत्कथं दार्ष्टान्तिकास्थितिः ॥
6 यैषाऽऽनन्दस्य मीमांसा मानुषानन्दपूर्विका ।
विकासरूपा सा सर्वलोककामाप्तिलक्षणा ॥
एते वैकासिकाः ख्याताः प्रायो वैनाशिकाः परे ।
ते निवृत्तिपराकाष्ठानिष्ठा इति विनिर्णयः ॥
ये प्रवृत्तिपराकाष्ठानिष्ठास्ते उभये समाः ।
भावाभावस्वभावस्य फलयोराविशेषतः ॥
या संकोचनिवृत्तिस्स विकास इति गीयते ।
यैवावृतिनिवृत्तिस्स प्रकाश इति कथ्यते ॥
सर्वदा गमनं यच्च सर्वदा स्थितिरेव सा ।
सर्वत्र गमनं यच्च सर्वत्र व्याप्तिरेव सा ॥
पराप्रकाश्यता यैव सैव स्यात्स्वप्रकाशता ।
अस्तमेतैव सविता चोदेता कस्यचिद्भवेत् ॥
तथा सर्वपरित्यागस्सर्वसंग्रहणात्मकः ।
सर्वत्र रागस्सर्वत्र वैराग्यं चोभयं समम् ॥

सर्वज्ञता सर्वशक्तिः जडता तुच्छताऽपिवा ।
तथैव सर्वतोमुक्तिस्सर्वप्राप्तिरितीर्यते ॥
अपोहदृष्टयः केचित्केचिदन्वयदृष्टयः ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषः यो यच्छ्रद्धस्स एव सः ॥
नैरात्म्यमेव सार्वात्म्यं इति तत्त्वविदो विदुः ।
एष कश्चित्सर्वसमरसभावाविनिर्णयः ॥

(110) मुक्तात्मविकल्पः.

1 आत्मनः खलु वै मोक्षोऽथात्मचिन्ता प्रवर्तते ।
आत्मतत्त्वानुसारेण मोक्षतत्त्वं विभिद्यते ॥
तथाच लोकायतिकाः परलोकापवादिनः ।
चैतन्यखचितात्कायान्नात्माऽन्योऽस्तीति मन्वते॥
2 अथो तथागताः प्राहुः किं पुंसा कल्पितेन वा ।
ज्ञानमात्रेण सर्वोऽपि व्यवहारोऽवकल्पते ॥
ज्ञानस्यैव प्रभेदोऽयमिच्छाद्वेषसुखादिकः ।
न वस्त्वन्तरमित्येवं न ततोऽन्यप्रकल्पनम् ॥
गुणत्वमपि नास्त्यस्य यतोऽधिष्ठानकल्पना ।
न गुणव्यतिरिक्तश्च गुणी नामास्ति कश्चन ॥
तद्विज्ञानस्कन्ध एषः क्षणिकश्च ध्रुवान्तकः ।
कर्तृभोक्तृप्रत्यभिज्ञाव्यवस्था वासनानुगा ॥

ज्ञानसंततिरुच्छिन्ना शून्यताऽद्वयलक्षणा ।
मुक्तात्मेति विदुः केचित् परे तां शुद्धलक्षणाम् ॥
3 केवलं चापि कूटस्थं पुरुषं कापिला विदुः ।
चैतन्यं चेतनश्चासावभेदो धर्मधर्मिणोः ॥
न कर्तृताभोक्तृताद्याश्चितस्स्वाभाविका गुणाः ।
असंसर्गाग्रहाद्बुद्धिवृत्तयोऽध्यासगोचराः ॥
परेतु सांख्याः पुरुषे भोक्तृतामनुजानते ।
चिद्रूपेण विकारोऽसौ स्यात्सजातीयलक्षणः ॥
यस्मिन् विक्रियमाणेऽपि तदेवेदमिति प्रमा ।
न विहन्येत तन्नित्यं निर्विकारं च मन्वते ॥
4 चैतन्यदृक्क्रियारूपं तदस्त्यात्मनि सर्वदा ।
तत्सर्वतोमुखं मुक्ताविति पाशुपता विदुः ॥
5 वैशेषिकादयः ज्ञातृकर्तृभोक्तृत्वलक्षणान् ।
गुणानागन्तुकानात्मन्युपयन्तोऽपि नित्यताम् ॥
विभुत्वं निर्विकारत्वमिच्छन्त्युच्छित्त्यसंभवात् ।
न प्रकाशात्मतां नापि स्वप्रकाशात्मतां विदुः ॥
6 कौमारिलादिसिद्धान्ते कर्ता भोक्ता मतः पुमान् ।
ज्ञानशक्तिस्वभावश्च नित्यः सर्वगतः स्वतः ॥
नानित्यशब्दवाच्यत्वमात्मनो विनिवार्यते ।
विक्रियामात्रवाचित्वे न ह्युच्छेदोऽस्य तावता ॥

स्यातामत्यन्तनाशेऽस्य कृतनाशाकृतागमौ ।
न त्ववस्थान्तरप्राप्तौ लोके बाल्युवादिवत् ॥
विक्रियात्मस्वभावोऽपि व्यावृत्त्यनुगमात्मकः ।
पुरुषोऽभ्युपगन्तव्यः कुण्डलादिषु सर्पवत् ॥
सर्वावाप्तिसमर्थश्च प्रकृत्याऽऽत्मा सदेष्यते ।
कश्चित्तु प्रतिबन्धोऽस्य कर्मभिस्सोऽपनीयते ॥
7 विशुद्धाद्वैतिनोऽविद्यावशात्सर्वस्य संगतेः ।
विद्यया तन्निवृत्तेश्च कौटस्थ्यं प्रतिपेदिरे ॥
ज्ञातृज्ञानज्ञेयभेददर्शनं दोषबन्धनम् ।
दोषहानौ सदद्वैतं आनन्दमजरामरम् ॥
8 विशिष्टाद्वैतिनो धर्मभूतज्ञानगतं विदुः ।
विकारजातमात्मानं निर्विकारं प्रचक्षते ॥
तदेवं चित्स्वभावस्य पुंसः स्वाभाविकी चितिः ।
तत्तत्पदार्थसंसर्गात्तत्तद्वित्तित्वमश्नुते ॥
स विकारः कर्ममूलः तस्मादौपाधिकस्तु सः ।
स्वाभाविको मोक्षदशाविकासः न स दुष्यति ॥
ज्ञानात्मको ज्ञानधर्मा शेषतैकरसः पुमान् ।
निरञ्जनस्तु परमं साधर्म्यमुपगच्छति ॥
9 विशुद्धद्वैतिनः कर्तृभोक्तृत्वप्रमुखान् गुणान् ।
रूपगन्धरसस्पर्शप्रभृतींश्चात्मनो विदुः ॥

सर्वे स्वरूपभूतास्स्युः ते यावद्द्रव्यभाविनः ।
अन्तःकरणधर्मांश्च ज्ञानादीन् सांख्यरीतितः ॥
विदुस्स्वरूपातिरिक्तान् सुखादीन् साक्षिगोचरान्
सर्वेऽप्यौपाधिकाः कर्मनाशे नश्यन्ति केवलम् ॥
सांशोऽपि सविकारोऽपि साकारोऽपि परस्परम्
विलक्षणोऽपि जीवात्मा नित्य एवेति निर्णयः ॥
10 द्रव्यात्मा निर्विकारस्स्यात् पर्यायात्मा विकार्यपि
नातो विरोध इत्याहुर्भेदाभेदविशारदाः ॥
सत्योपाध्युपधानेन कर्तृभोक्त्रादिलक्षणः ।
पुरुषो भास्करमते निर्विकारः स्वतः पुमान् ॥
11 स्याद्वादिनो विकारित्वं सांशत्वं द्रव्यतां तथा ।
पर्यायत्वं च मूर्तत्वं परिच्छिन्नत्वमेवच ॥
अनादित्वमनन्तत्वं आत्मरूपं प्रचक्षते ।
आनन्दरूपं सार्वज्ञ्यं स्वातन्त्र्यं सदनुग्रहम् ॥
12 अविद्ययोपाधिना वा शक्त्या धर्मेण वा पुनः ।
स्याद्वादाद्वा वासनया विरोधाभावसंग्रहः ॥
13 चतुर्विधाः पुरा प्रोक्ताः ह्यात्मानित्यत्ववादिनः ।
चतुर्ष्वपि मतेष्वेतान् क्रमाद्दोषान् विदुः परे ॥
आद्ये मते त्वैहिकार्थप्रवृत्तिर्दुर्घटा भवेत् ।
देहान्तत्वे विश्ववृत्तिर्धर्म्ये पथि न सिद्ध्यति ॥

आकल्पस्थायिपक्षे तु मोक्षशास्त्रं हि निष्फलम् ।
आमोक्षस्थायितायां तु मोक्षस्य न पुमर्थता ॥
तस्माच्चतुर्विधैरेष पुरुषार्थैर्यथायथम् ।
समन्वयं प्राप्तुमर्हः स्वीकर्तव्य इति स्थितम् ॥
मद्विनाशात्फलं न स्यात् मत्तोऽन्यस्याथवा भवेत् ।
इति नैव प्रवृत्तिस्स्यात् आत्मानश्चेद्विनाशिनः ॥
निरस्ताखिलदुःखोऽहमनन्तानन्दभाक्स्वराट् ।
भवेयमिति मोक्षार्थी श्रवणादौ प्रवर्तते ॥
अहमर्थविनाशश्चेन्मोक्ष इत्यध्यवस्यति ।
अपसर्पेदसौ मोक्षकथाप्रस्तावगन्धतः ॥
मयि नष्टेऽपि मत्तोऽन्यस्स्तम्भः कुम्भश्च तिष्ठति ।
इति स्वस्य शिरश्छेदः पुरुषार्थो न कस्यचित् ॥
ननुचात्महनो लोके पुरुषास्सन्ति चेन्न ते ।
विवेकिनः किन्तु मूढाः क्रोधान्धहृदया इति ॥
आत्मानो यद्यनित्यास्स्युः कृतहानाकृतागमौ ।
स्यातामिति मतं तेषामात्मनित्यत्ववादिनाम् ॥
स्योदन्यथा पापपुण्यविप्लवश्शास्त्रविप्लवः ।
प्रपञ्चविप्लवस्तस्मात्सर्वेषामात्मनित्यता ॥
सर्वथा साधनीयेति सर्वशास्त्रार्थसंग्रहः ।
इदमेव ह्यास्तिकत्वं नास्तिकत्वं विपर्ययः ॥

(111) कर्मनिवृत्तिवादः.

1 मुक्तिर्हि कर्मणो मोक्षः कर्मतत्त्वं विबुद्ध्यताम् ।
पुण्यं पापमिति द्वेधा लोके कर्म हि विश्रुतम् ॥
पुण्यं विहितजन्यं स्यात् पापं तु प्रतिषिद्धजम् ।
सुखस्य साधनं पुण्यं पापं दुःखस्य साधनम् ॥
इति सामान्यतस्सिद्धं तद्विकल्पोऽवधार्यताम् ।
शाबरा ब्रुवते धर्मं कर्म यागादिलक्षणम् ॥
अपूर्वं कर्मनिर्वर्त्यं वृद्धमीमांसका विदुः ।
प्राभाकरास्तु वाक्यार्थं नियोगं तत्प्रचक्षते ॥
स भावनाविशेषस्स्यादात्मस्थ इति निर्णयः ।
कौमारिलास्तु संस्कारं धर्माधर्मौ पुमाश्रितम् ॥
बुद्धिवृत्तिविशेषो यः तं धर्मं कापिला विदुः ।
धर्मत्वेन व्यपदिशन्त्यार्हताः पुण्यपुद्गलान् ॥
आराध्यदेवताप्रीतिं बादरायणवर्त्मगाः ।
आचक्षते धर्मगिरा सौगताश्चित्तवासनाम् ॥
2 इत्थं तत्त्वे विनिर्ज्ञाते धर्माधर्मपदार्थयोः ।
तन्निवृत्तौ विवादोऽयं प्रवृत्तस्त्ववगम्यताम् ॥
नन्वात्मदर्शनं मोक्षहेतुस्स्यादित्यसाम्प्रतम् ।
अनादित्वादनन्तत्वात्कर्मणां संततात्मनाम् ॥
अथ दोषक्षयान्मा भूदुत्तरः कर्मसंग्रहः ।
कथं फलमदत्त्वैव प्रक्तनं कर्म शाम्यति ॥

कर्मक्षयो हि विज्ञानादित्येतच्चाप्रमाणकम् ।
तथाऽल्पफलदानं च राजपुत्रापराधवत् ॥
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ।
इत्यादीनि वचांस्यत्र प्रमाणमुपलभ्यते ॥
3 तत्र ये त्वात्मनो नाशं स्वरूपेण विदुर्बुधाः ।
तेषामाश्रयनाशेनाशेषबन्धपरिक्षयः ॥
बन्धश्चित्तगतो येषामात्मा कूटस्थलक्षणः ।
तेषां तु कापिलादीनां चित्तनाशेन मोक्षणम् ॥
दृग्दृश्यभाव एव स्यात्संयोगः पुंप्रधानयोः ।
भोगापवर्गार्थतायां कृतायां तन्न दृश्यते ॥
आविद्यकं कर्म येषामविद्यावादिनां मतम् ।
स्वप्नप्रबोधन्यायेन विद्यायां तत्परिक्षयः ॥
तां विद्यां केचिदिच्छन्ति विबुधा भावनामयीम् ।
साक्षात्कारवतीं केचित् केचिच्चिन्तामयीं बुधाः ॥
केचित् श्रुतिमयीं केचिदाहुर्वाक्यार्थधीमयीम् ।
एवं बहुविधा वादाः मायामभ्युपगच्छताम् ॥
4 कणादमुनिसिद्धान्ते मार्गद्वयमिदं पुनः ।
प्रशस्तपाददेवेन सूचितं भाष्यसागरे ॥
केषांचिद्योगिनां शान्तिसंतोषस्सुखलक्षणः ।
दुःखात्मकं तपश्चैव पुण्यपापफलं त्विति ॥

सौभर्यादिनयाद्वाऽपि नानादेहपरिग्रहात् ।
सर्वं कर्मानुभूयान्ते मुक्तास्स्युरिति केचन ॥
नित्यं नैमित्तिकं कर्म कर्तव्यं ज्ञानिनामपि ।
अनुष्ठानायासमाहुः फलं प्राक्कर्मणां परे ॥
5 नित्यं नैमित्तिकं कर्म प्राक्तनं कर्म नाशयेत् ।
प्रायश्चित्तनयाच्चेति बृहट्टीकाकृतां मतम् ॥
नित्यनैमित्तिकैरेव कुर्वाणो दुरितक्षयम् ।
ज्ञानं च विमलीकुर्वन्नभ्यासेन च पाचयेत् ॥
अभ्यासाच्च क्वचित् ज्ञानात्कैवल्यं लभते नरः ।
धर्मेणापनुदेत्पापं प्रायश्चित्तेन वा सुधीः ॥
इत्यादीनि वचांस्यत्र प्रमाणानि परश्शतम् ।
प्रतिपद्य विनिर्णीतः मुक्त्यै कर्मपरिक्षयः ॥
6 तत्र ज्ञातात्मतत्त्वानां भोगात्पूर्वक्रियाक्षये ।
उत्तरप्रचयाभावात् विदुर्मुक्तिं कुमारिलाः ॥
मोक्षार्थी न प्रवर्तेत तत्र काम्यनिषिद्धयोः ।
नित्यनैमित्तिके कुर्यात्प्रत्यवायजिघांसया ॥
7 सर्वाणि पूर्वकर्माणि संभूयैकं शरीरिणाम् ।
शरीरमारभन्तेऽतः प्रारब्धान्नास्ति संचितम् ॥
स चैकभविकः पक्षः पातञ्जलमताद्दृतः ।
तं नाद्रियन्ते बहवः कर्मशेषवचश्शतैः ॥

8 ज्ञानाग्निना कर्मनाशः वासुदेवस्य सम्मतः ।
नानुयोगस्यावकाशः पुमर्थे शास्त्रलक्षणे ॥
ज्ञानाग्निस्सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ॥
9 मिथ्याज्ञानं च दोषाश्च कर्मणस्सहकारिणः ।
तद्वैकल्येन सन्त्येव न फलन्तीति गौतमाः ॥
10 समाराध्योऽपराध्यो वा भगवान् सर्वकर्मणाम् ।
तस्मिन् प्रसन्ने किं साध्यं न भवेदिति सेश्वराः ॥
अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥
11 एवमाद्यं सुप्रसिद्धमथ वैयासिके मते ।
माहात्म्यं ब्रह्मविद्यायाः फलाध्याये प्रदर्शितम् ॥
अश्लेषश्च विनाशश्च स्यातामुत्तरपूर्वयोः ।
तत्र पूर्वे अनारब्धकार्ये एवेति निर्णयः ॥
भोगेनैव क्षेपणीये प्रारब्धे कर्मणी इति ।
यत् श्रूयते शत्रुमित्रोपायनं कर्मणोरिदम् ॥
समानविषयं ज्ञेयं तदश्लेषविनाशयोः ।
कालभेदस्त्वेतदीयावस्थाभेदनिबन्धनः ॥
अनुग्रहो निग्रहो वा क्रमादेव हि लौकिकः ।
वर्धते क्षीयते तद्वदीश्वरीयोऽप्यलौकिकः ॥

(112) कर्मज्ञानसंबन्धः.

1 एवं कर्मनिवृत्तौ च विकल्पे परिनिष्ठिते ।
ये संबन्धविकल्पास्स्युस्त एते ज्ञानकर्मणोः ॥
कर्मैव केवलं काम्यं केषांचिन्मोक्षसाधनम् ।
कैश्चित्तु नित्यं कर्मैव मोक्षसाधनमिष्यते ॥
स चैकभविकः पक्षः कामकर्म हि जन्मनः ।
कारणं, तदभावे तु मुच्यते हेत्वभावतः ॥
केषां चिन्नित्यमेवैतत् कर्म पापविनाशकम् ।
पापक्षयादेव मुक्तिः अभावो मोक्षकारणम् ॥
कापिलाः ज्ञानमेवैकं मोक्षसाधनमभ्यधुः ।
ज्ञानं कर्म च केषांचिद्धेतुस्समसमुच्चितम् ॥
अनिष्टस्य निवृत्तिश्च तथेष्टप्राप्तिरित्यपि ।
यदि स्यात् द्विदळो मोक्षः द्वितयं साधनं भवेत् ।
तच्च कर्म ज्ञानमिति क्रमात्साधनमिष्यते ।
इति भेदाभेदवादियादवप्रमुखा विदुः ॥
बृहट्टीकाकृतश्चेति राणके प्रतिपादितम् ।
उपवर्षादयोऽप्येवमितिचाद्वैतिनो विदुः ॥
यद्यनिष्टनिवृत्तिर्वा तथेष्टप्राप्तिरेव वा ।
मोक्षस्यैकप्रकारत्वे साधनं तादृशं भवेत् ॥
मोक्षो निरवधिः प्रीतिः स स्वर्ग इति ये विदुः
जरन्मीमांसकास्तेषां साधनं कर्म केवलम् ॥

अज्ञानादिह संसारं ज्ञानान्मोक्षं च ये विदुः ।
सर्वे ज्ञानैकसाध्यं तं मोक्षमाहुर्मनीषिणः ॥
तेषामनिष्टमज्ञानं तन्निवृत्तिरभीप्सिता ।
मोक्षः स्वतस्सिद्ध एव साध्यश्चेन्नश्यति ध्रुवम् ॥
परीक्ष्यलोकानित्यादिवेदान्ते प्रतिपादितम् ।
यामिमां पुष्पितां वाचमित्याद्यायां स्मृतावपि ॥
2 ज्ञानस्य चाङ्गं कर्मेति कर्मणोऽङ्गं च धीरिति ।
तत्रापि च विशेषांशः एषोऽयमवधार्यताम् ॥
कर्म ज्ञानं द्वयं चापि स्यादारात्सन्निपत्य च ।
क्रमादङ्गमिति प्राहोदयनः किरणावलौ ॥
ज्ञानाङ्गकं च कर्मैव केषांचित् मोक्षसाधनम् ।
क्रत्वङ्गकर्तृसंस्कारो ज्ञानमित्यपरं मतम् ॥
कर्माधिकारसिद्ध्यर्थं शरीरान्यस्थिरात्मनः ।
विज्ञानमिति केषांचिन्मतं ज्ञानाङ्गवादिनाम् ॥
भविष्यद्देहसंबन्धी वाक्यादात्मा न चेन्मितः ।
मानान्तराच्च कः कुर्याददृष्टार्थाः क्रियास्सुधीः ॥
वेदोषरास्स्युर्वेदान्ता इति केचित्प्रचक्षते ।
ते पुनर्निगमान्तानामुपच्छन्दनवादिनः ॥
शेषत्वादिति सूत्रेण सर्वमेतद्विवक्षितम् ।
कर्माङ्गकं ज्ञानमेव मोक्षहेतुं विदुः परे ॥

तत्राराादुपकाराङ्गं भास्करादिमतं विदुः ।
सन्निपत्योपकाराङ्गं प्राहू रामानुजादयः ॥
आरादेवोपकुर्वन्ति क्रियाश्चित्तविशुद्धितः ।
इति सौरेश्वरं वाक्यं श्रुतं संबन्धवार्तिके ॥
कर्मणां कामविलयद्वारा धीशेषतोदिता ।
स कामध्वंससिद्धान्तः प्रायः कापिलसंमतः ॥
प्रपञ्चविलयद्वारा धीशेषत्वं विदुः परे ।
काण्डद्वयाविरोधाय नानामार्गविकल्पना ॥
3 तमेतमिति शास्त्रेण वेदनाकामनार्थता ।
कर्मणामिति भामत्याचार्यसिद्धान्तपद्धतिः ॥
अथ स्याद्वेदनेच्छायां यज्ञानुष्ठानमिष्यते ।
अनुष्ठानाद्वेदनेच्छेत्यन्योन्याश्रयतेति चेत् ॥
इच्छा हि द्विविधा काचिद्विषयौन्मुख्यलक्षणा ।
उत्कटा रुचिरन्या स्यात् बुभुक्षादिषु दृश्यते ॥
अन्नद्वेषात्कृशो लोके तदौन्मुख्याच्चिकित्सने ।
प्रवर्ततेऽथ तद्रुच्या भोजनेऽपि प्रवर्तते ॥
येऽप्यत्र वेदनार्थत्वमाहुर्विवरणानुगाः ।
तैर्ज्ञानकामनान्तैव कर्मानुष्ठितिरिष्यते ॥
इयान्विशेषस्त्वनयोः संग्रहीतृनिरूपितः ।
विद्योत्पत्तेरानियमनियमाविति हि क्रमात् ॥

आद्यो विविदिषार्थस्स्यात् संस्कारार्थोऽपरो मतः।
स एव सन्निपत्योपकाराङ्गमिति कीर्त्यते ॥
सर्वज्ञात्ममुनिः कर्म काम्यमित्यपि मन्यते ।
नित्यमेवेति बहवः काम्यविद्वेषिणो हि ते ॥
विशिष्टाद्वैतसिद्धान्ते सिद्धान्ते द्वैतिनामपि ।
भास्कराणामपि तथा भेदाभेदविदामपि ॥
जरन्मायाविदां ध्याननियोगविदुषामपि ।
आप्रयाणं चाहरहः कर्मकर्तव्यतेष्यते ॥
तदेतत्सन्निपत्योपकाराङ्गे पर्यवस्यति ।
तत्त्वं करणनिष्पत्तिसाधनत्वात्मकं यतः ॥
तत्र भास्करसिद्धान्ते कर्मारादुपकारकम् ।
निष्पन्नं करणं यत्तु तस्य स्यात्सहकार्यदः ॥
फलोत्पत्ताविति ततश्चादृष्टद्वारकं तु तत् ।
तत्समुच्चयपक्षस्तु बृहट्टीकाकृता मतः ॥
तथा यादवभाष्येऽपि साध्यद्विदळशालिनि ।
नैयायिकादिसिद्धान्तोऽप्येतं पन्थानमाश्रितः ॥
परिज्ञानाद्भवेन्मुक्तिरेतदालस्यलक्षणम् ।
इत्यादिवचनं तत्त्वचिन्तामण्यादिषु स्फुटम् ॥
4 जरन्मायाविदश्चापि द्विविधाः परिकीर्तिताः ।
भर्तृप्रपञ्चादयः स्युस्ते प्राय इति निर्णयः ॥

एके ध्याननियोगस्य वादिनस्तत्र कीर्तिताः ।
निष्प्रपञ्चीकृतेरेव नियोगमपरे विदुः ॥
वेदान्तवाक्यं न परिनिष्पन्नब्रह्मगोचरम् ।
तथापि सिद्ध्यति ब्रह्म तद्ध्यानविधिशक्तितः ॥
तत्र ध्याननियोगेन तत्साक्षात्कारमार्गतः ।
अद्वितीयब्रह्मभावरूपो मोक्षः फलिष्यति ॥
5 निष्प्रपञ्चनियोगस्य वादिनामयमाशयः ।
यद्यप्युपनिषद्वाक्यं कार्यवस्त्वेकगोचरम् ॥
निष्प्रपञ्चं ब्रह्मवस्तु विशिष्टं साध्यमेव तत् ।
प्रपञ्चविलयद्वारा कार्यताऽस्योपपद्यते ॥
न दृष्टेरित्यादिवाक्यं विधिस्तत्र निदर्श्यते ।
निष्प्रपञ्चं ब्रह्म कुर्यात्सप्रपञ्चतया मतम् ॥
सर्वं नियोगनिष्पत्तिपर्यन्तं कर्मलक्षणम् ।
तत्रारादुपकाराङ्गं स्वीकुर्वन्तीति च स्थितम् ॥
6 सर्वः कर्मविधिः कैश्चित्स्वतन्त्रैर्ब्रह्मवादिभिः ।
आत्मविज्ञानाधिकारप्रयोजन इतीरितः ॥
तेषामाशयसारोऽयं ग्राह्यो विधिविवेकतः ।
स्वभावतस्तु पुरुषाः रागाद्याविष्टमानसाः ॥
विषयोपार्जने सक्ताः दृष्टोपायफलैः सदा ।
व्याक्षिप्तमानसा नालमात्मानमिह वेदितुम् ॥

उपदिष्ट मपिप्राज्ञैः परिभावयितुं कुतः ।
तस्मात्कर्मोपदेशाद्यैरनुशिष्टोऽष्टवर्षकः ॥
कर्मपद्धतिनिर्बद्धः स्वाभाविकपथाच्च्युतः ।
उपादिष्टं चात्मतत्त्वं ग्रहीतुं ध्यातुमर्हति ॥
तस्मात्कर्मविधिस्सर्वः प्रलोभः परमार्थतः ।
आत्मविज्ञानाधिकारसिद्ध्यर्थ इति निर्णयः ॥
एष प्रच्छन्नचार्वाकमतसारांश इत्यपि ।
प्रदूषितः ब्रह्मकर्मवेदिभिः क्रान्तदर्शिभिः ॥
7 कामप्रध्वंससिद्धान्तः यः पूर्वोत्तरकाण्डयोः ।
विरोधपरिहाराय जरन्मायाविदां मतः ॥
निमित्तवादे प्राचीने प्रायशः पर्यवस्यति ।
फलसंयोगवादे तु काम एवाभिवर्धते ॥
स्वर्गकामो यजेतेति निमित्तं कामना मता ;
परस्वकामुकः प्रायश्चित्तं कुर्याद्यथा तथा ॥
धनधान्यसमृद्धिस्तु यदा पुंसां भविष्यति ।
तदा सुखेच्छा भवति तच्छान्त्यै यागशासनम् ॥
यागे च सर्वद्रव्याणि व्ययितानि भवन्ति हि ।
अतएव त्रिवर्षान्नैर्यष्टव्यामिति शिष्यते ॥
यस्य त्रैवार्षिकं भक्तं पर्याप्तं भृत्यतृप्तये ।
अधिकं वापि विद्येत स सोमं पातुमर्हति ॥

त्रैवार्षिकाधिकान्नो यः स हि सोमं पिबेद्द्विजः ।
योऽनाहिताग्निश्शतगुः अयज्वा च सहस्रगुः ॥
तयोरपि कुटुम्बाभ्यामाहरेदविचारयन् ।
मानवं याज्ञवल्कीयं दृश्यते हि वचस्त्विदम् ॥
निमित्तपरता चैषा श्रुतिस्वारस्यशालिनी ।
फलतत्परतायां तु कामना स्वरसा भवेत् ॥
8 द्रष्टव्योऽस्य न्यायरत्नमालायां विस्तरः कृतः ।
निमित्तवादिनः सर्वं कर्म नैमित्तिकं विदुः ॥
केचित्तु सकलं कर्म विदुः काम्यमितीरितम् ।
नित्यमेवेत्याहुरेके निषिद्धमपरे विदुः ॥
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं निषिद्धं चेति कर्म तत्
चतुर्धा व्यभजन् धीराः जैमिनिप्रमुखाः परे ॥
मोक्षार्थी न प्रवर्तेत तत्र काम्यनिषिद्धयोः ।
नित्यनैमित्तिके कुर्यात्प्रत्यवायजिघांसया ॥
इति कौमारिलाः प्राहुः काम्यमेकेऽनुजानते ।
निषिद्धवर्जितं सर्वं फलसङ्गविवर्जितम् ॥
चित्तस्य शुद्ध्यर्थमिष्टं शुद्धौ त्याज्यं विदुस्ततः ।
जातायां वेदनेच्छायामधिकारो निवर्तते ॥
अधिकारिविभेदेन वेदप्रामाण्यरक्षणम् ।
कूटकार्षापणन्यायात् कैश्चित् तन्नानुमन्यते ॥

(113) मोक्षसाधनम्.

1 लोकायतमते देहविच्छेदे मोक्षलक्षणे ।
स्वभावस्साधनं यस्मात्ते ह्याकस्मिकताविदः ॥
आत्मानं पूजयेन्नित्यं भूषणाच्छादनादिभिः ।
स्वदेह एव दैवं स्यादन्यद्दैवं न विद्यते ॥
देवादिपदवाच्यास्स्युः प्रतिमा मृच्छिलामयाः ।
अतएवहि देवास्स्युरमरा निर्जरा अपि ॥
अस्वप्ना नित्यतृप्ताश्च नाश्नन्ति न पिबन्त्यपि ।
अपुत्राश्चाप्यनिमिषाः त्रिदशा अपि विश्रुताः ॥
देवालयः स्थानमपि सदा सुमनसश्च ते ।
महान् चतुर्भुजादिस्स्याद्विग्रहः परमेश्वरः ॥
तथैव लौकिको राजा परमेश्वर उच्यते ।
तस्यानुवर्तनं कार्यं उत्तमां भूतिमिच्छता ॥
अरोगदृढगात्रत्वं सुखस्योत्तमकारणम् ।
एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ॥
इति चार्वाकसिद्धान्तः प्रत्यक्षस्सार्वलौकिकः ।
अथार्हतानां सिद्धान्ते मोक्षसाधनसंग्रहः ॥
2 सम्यग्दर्शनचारित्रश्रद्धानं मोक्षसाधनम् ।
इत्यर्हदुक्तिसंक्षेपपरमागमसंग्रहः ॥
यथाऽवस्थिततत्त्वानां संक्षेपाद्विस्तरेण वा ।
योऽवबोधस्तमत्राहुः सम्यज्ज्ञानं मनीषिणः ॥

सर्वथाऽवद्ययोगानां त्यागश्चारित्रमुच्यते ।
कीर्तितं तदहिंसादिव्रतभेदेन पञ्चधा ॥
रुचिर्जिनोक्ततत्त्वेषु सम्यक्श्रद्धानमुच्यते ।
जीवात्मानस्तु सहजचिद्रूपपरिणामिनः ॥
स्वरूपस्फुरणं सर्वेऽप्यजाड्यं प्रायशो विदुः ।
परिणामि भवेत् ज्योतिः पौरुषं विषयांस्पृशत् ॥
रूपादिज्ञानरूपेण स चास्रव इतीर्यते ।
आस्रवस्य निरोधो यः संवरो गुप्तिलक्षणः ॥
आस्रवस्रोतसो द्वारं संवृणोतीति संवरः ।
आस्रवो भवहेतुस्स्यात् संवरो मोक्षकारणम् ॥
लुञ्छिताः पिञ्छिकाहस्ताः पाणिपात्रा दिगम्बराः ।
श्वेताम्बराः क्षमाशीलाः निस्सङ्गाः भैक्षभोजिनः ॥
एवंरूपाः कायशोषनिरता जैनसाधवः ।
अद्यापि न निवर्तन्ते त्वलोकाकाशमागताः ॥
ज्ञानं तपःप्रधानं स्यादेतेषां मोक्षसाधनम् ।
प्रायेण भौतिको बन्धः तपसैव हि शुद्ध्यति ॥
3 तथा माहेश्वरे तन्त्रे मोक्षमार्गो निरूपितः ।
चतुर्विधा हि ते सिद्धचर्यामार्गानुसारिणः ॥
यथा कापालिकाः कालामुखाः पाशुपतास्तथा ।
शैवास्तत्रच कापालं मतमेवं प्रचक्षते ॥

मुद्रिकाषट्कविज्ञानात् पुनस्तस्यैव धारणात् ।
अपवर्गफलप्राप्तिर्न ब्रह्मावगमादिति ॥
मुद्रिकाषट्कतत्त्वज्ञः परमुद्राविशारदः ।
भगासनस्थमात्मानं ध्यात्वा निर्वाणमृच्छति ॥
कर्णिकां रुचकं चैव कुण्डलं च शिखामणिम् ।
भस्म यज्ञोपवीतं च मुद्राषट्कं प्रचक्षते ॥
कपालमथ खट्वाङ्गमुपमुद्रे प्रकीर्तिते ।
आभिर्मुद्रितदेहस्तु न भूय इह जायते ॥
4 गीतशास्त्रं मोक्षहेतुरित्यप्याहुर्मुनीश्वराः ।
याज्ञवल्क्यादयस्तत्र वचनं त्ववधार्यताम् ॥
अनन्यविषयं कृत्वा मनोबुद्धिस्मृतीन्द्रियम् ।
ध्येय आत्मा स्थितो योऽसौ हृदये दीपवत्प्रभुः ॥
यथाविधानेन पठन् सामगानमविच्युतम् ।
सावधानस्तदभ्यासात्परं ब्रह्माधिगच्छति ॥
अपरान्तकमुल्लोप्यं मद्रकं प्रकरीं तथा ।
औवेणुकं सरोबिन्दुमुत्तरं गीतकानि च ॥
ऋग्गाथा पाणिका दक्षविहिता ब्रह्मगीतिका ।
गेयमेतत्तदभ्यासकरणान्मोक्षसंज्ञितम् ॥
वीणावादनतत्त्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः ।
कालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गं नियच्छति ॥

गीतज्ञो यदि योगेन नाप्नोति परमं पदम्।
रुद्रस्यानुचरो भूत्वा तेनैव सह मोदते ॥
इमं सिद्धान्तमालम्ब्य नृत्तगीतैरलंकृतम् ।
इति पाराशरं वाक्यं व्याख्यातं माधवैर्यथा ॥
मुमुक्षवो हि यक्षाद्याः नृत्तगीतादिभिः पुनः ।
ईश्वरं भजमानाश्च यत्र तिष्ठन्ति चाश्रमे ॥
इत्यतो गीतशास्त्रं हि चित्तैकाग्र्यं च साधयत् ।
अनायासेन मोक्षस्य मार्ग इत्यृषयो विदुः ॥
अथ सौगतसिद्धान्ते मोक्षसाधनमुच्यते ।
आत्मनो नित्यतायां तु नैवास्थायाः परिक्षयः ॥
दुःखं स्वलक्षणं शून्यं सकलं क्षणिकं जगत् ।
एवं भावयतः तत्त्वसाक्षात्कारोदयः स्वयम् ॥
अनुकूलं चानुगतं सत्यं स्थिरमिति भ्रमाः ।
निरुक्तभावनानाश्याः भवबन्धस्य हेतवः ॥
सोऽयं विमलविज्ञानमहोदय इतीर्यते ।
रागादिज्ञानसंतानवासनोच्छेदसंभवा ॥
तदवान्तरभेदाश्च मोक्षतत्त्वे निरूपिताः ।
मोक्षभेदानुगुण्येन तत्साधनाविकल्पना ॥
कृत्तिः कमण्डलुः मौण्ड्यं चीरं पूर्वाह्णभोजनम् ।
सङ्घो रक्ताम्बरत्वं च शिश्रिये बौद्धभिक्षुभिः ॥

अज्ञानादिह संसारः ज्ञानादेव परिक्षयः ।
प्रधानसाधनं मोक्षे ज्ञानमेते प्रचक्षते ॥
तत्तु साक्षात्काररूपमित्यत्र न विकल्पना ।
बन्धस्य कारणं यस्मात्साक्षात्कारात्मको भ्रमः ॥
6 तत्सत्त्वपुरुषान्यत्वख्यातिस्स्यादिति कापिलाः ।
ईश्वरप्रणिधानं वा तत्तु पातञ्जला विदुः ॥
स तत्त्वनिर्णय इति गम्भीरन्यायवेदिनः ।
ईश्वरोपासनं वा स्यात्सादृश्यादिति केचन ॥
तत्त्वदृष्टिर्मुक्तिहेतुस्स्यान्निरीश्वरवादिनाम् ।
तत्त्वधीमूलकोपास्तिः स्वतन्त्रेश्वरवादिनाम् ॥
7 अविद्यया तु संसारो विद्यया मोक्षसंभवः ।
इति सामान्यतस्सिद्धेऽप्यत्र सूक्ष्मं विदुर्विदः ॥
तत्त्वनिर्णयमात्रेण नाविद्या विनिवर्तते ।
अविद्येश्वरस्याज्ञामतिवर्त्य प्रवर्तनात् ॥
तन्निग्रहोपशान्त्यर्थं तदुपासनमिष्यते ।
तस्यैव साधनं तत्त्वनिर्णयो न तु मुक्तये ॥
8 सामान्यतस्तत्करणविकल्पोऽत्र विविच्यते ।
प्रसंख्यानं विदुः केचित्प्रत्ययाभ्यासलक्षणम् ॥
तच्च ध्यानं भावना सा सैवोपास्तिः ध्रुवा स्मृतिः।
प्रसंख्यानेन सहितं मन एवेति के चन ॥

वाक्यमेवापरोक्षस्य करणं केचिदब्रुवन् ।
तत्र ध्यानापूर्वयुक्तं वाक्यं केचन मन्वते ॥
ध्यानयुक्तं वाक्यमेव नापूर्वमिति केचन ।
विषयस्यापरोक्षत्वात्ताद्दग्वाद इतीतरे ॥
भावनायाः प्रकर्षेण परे ध्यानं तु तादृशम् ।
वैशद्यातिशयात्साक्षात्कारवाग्गोचरं विदुः ॥
अन्ये तु तद्दिव्यदृष्टिलाभात्साक्षात्कृतिं विदुः ।
श्रवणं मननं ध्यानमथ दर्शनमेववा ॥
अधिकारानुरोधेन विकल्प इति यादवाः ।
अतश्श्रुतिमयी चिन्तामयी वा भावनामयी ॥
साक्षात्कारवती चेति प्रतिपत्तिर्विकल्पिता ।
कथेयं महती सर्वशास्त्रेष्वस्यास्ति विस्तरः ॥
१ मोक्षस्य साधनं सर्वसम्मतं तत्त्वदर्शनम् ।
तत्तत्त्वदर्शनं यावदात्मभावीति ये विदुः ॥
ते सन्तु ये तु तस्यापि ज्ञानस्योपशमं विदुः ।
तेषां मतविकल्पोऽयं संक्षेपादवधार्यताम् ॥
यथाच कातको रेणुः यथा दग्धायसोदकम् ।
यथावा दग्धदहनः त्रिवृत्पानं यथाऽपिवा ॥
यथाच कनकारूढं रजतं कल्मषापहम् ।
स्वयं निवर्तते तद्वत् ज्ञानशान्तिं विदुर्बुधाः ॥

अन्ये तु ब्रह्मविज्ञानमज्ञानस्य निवर्तकम् ।
उपादानविनाशेन प्रपञ्चोऽपि विनश्यति ॥
ब्रह्मज्ञानं तदन्तःस्थं तत एव विनश्यति ।
साक्षात्पारंपर्यतो वा मिथ्यात्वं ज्ञानबाध्यता ॥
वेदान्तवाक्यजनितं नियमादृष्टसंयुतम् ।
ब्रह्मज्ञानं तदज्ञाननिवर्तकमितीतरे ॥
अन्यैस्तु तत्त्वमस्यादिवाक्यजात्मैक्यशेमुषी ।
बाधते भेदविषयं मूलाज्ञानमितीर्यते ॥
प्रकाशनाश्यं ह्यज्ञानं जडरूपान्न नश्यति ।
इतीतरे तदारूढचैतन्यान्नाशमभ्यधुः ॥
तृणादेर्भासिकाऽप्येषा सूर्यदीप्तिः तृणं दहेत् ।
सूर्यकान्तमुपारुह्य तन्न्यायं योजयन्त्यपि ॥
10 जातेऽपि ब्रह्मविज्ञाने प्रतिभासोऽनुवर्तते ।
अविद्योपादानलेशात् जीवन्मुक्तिस्ततः स्मृता ॥
तत्र लेशपदार्थस्तु बुधैरेवं विकल्प्यते ।
विक्षेपशक्तेरंशोऽयमिति केचित्प्रचक्षते ॥
अविद्यासंस्कार इति परे लशुनगन्धवत् ।
दग्धवस्त्रनयान्मूलाविद्यैवेत्यपरे विदुः ॥
सर्वज्ञात्ममुनिर्जीवन्मुक्तिपक्षं निषेधति ।
स्याच्चेज्जीवन्मुक्तिशास्त्रं अर्थवादो भवेदपि ॥

श्रवणादिविधेरेवेत्याशयं वर्णयत्यसौ ।
अथाविद्यानिवृत्त्यंशे विकल्पोऽप्यवधार्यताम् ॥
11 अविद्याया निवृत्तिस्तु ब्रह्मेति ब्रह्मसिद्धिकृत् ।
आनन्दबोधाचार्यास्तु ब्रह्मान्येति प्रचक्षते ॥
न सन्नासन्न सदसन्नानिर्वाच्यश्च तत्क्षयः ।
यक्षानुरूपो बलिरित्याचार्याः प्रत्यपीपदन् ॥
न सती साऽद्वैतहानेः नासती ख्यातिसंभवात् ।
विरोधान्नोभयात्मेयं नानिर्वाच्याऽनवस्थितेः ॥
उक्तप्रकारोत्तीर्णेयं अवस्था पञ्चमी मता ।
चतुष्कोटिविनिर्मुक्तशून्यतत्त्वविलक्षणा ॥
अविद्यां विश्वजननीमर्धपञ्चमरूपिणीम् ।
निवृत्तिपञ्चमाकारां कल्पयन्ति विपश्चितः ॥
अद्वैतविद्याचार्यास्तु साऽनिर्वाच्येति मन्वते ।
सच भावविकारोऽन्यः क्षणिकः नानुवर्तते ॥
प्रथमक्षणसंबन्धो यथोत्पत्तिः तथैव सा ।
चरमक्षणसंबन्धः क्षणिकः नानुवर्तते ॥
12 जीवैक्यपक्षे मुक्तिस्तु शुद्धब्रह्मैकरूपता ।
अनेकजीववादेऽपि प्रतिबिम्बो यदीश्वरः ॥
मुक्तस्य शुद्धचैतन्यरूपैवावस्थातिर्मता ।
ईश्वरो यदि बिम्बात्मा प्रतिबिम्बः पुमान्यदि ॥

उभयानुगतं शुद्धचैतन्यमिति सिद्ध्यति ।
तदा यावत्सर्वमुक्ति चितिमात्राविरोधि यत् ॥
बद्धान्तराज्ञानकृतमैश्वर्यं निरवग्रहम् ।
गुणाष्टकं च निरतिशयानन्दप्रकाशनम् ॥
तैर्युक्ता निस्सन्धिबन्धेश्वरतापत्तिलक्षणा ।
मुक्तिस्संपद्यत इति सूत्रभाष्यादिसम्मता ॥
सैषा विशुद्धचिन्मात्रभावेऽन्ते पर्यवस्यति ।
इत्यद्वैतमते सूक्ष्मविचारोऽन्यत्र विस्तृतः ॥

(114) भक्तिः.

1 विशिष्टाद्वैतसिद्धान्ते नारायणकटाक्षतः ।
विनश्यत्यखिलं कर्माविद्यानिग्रहलक्षणम् ॥
वेदनं ध्यानविश्रान्तं ध्यानं श्रान्तं ध्रुवास्मृतौ ।
सा च दृष्टित्वमभ्येति दृष्टिः भक्तित्वमृच्छति ॥
स्मृतिसन्ततिधारेयं ध्यानमित्यभिधीयते ;
विजातीयप्रत्ययाव्यवहिता सा ध्रुवा स्मृतिः ॥
तैलादिधारावदविच्छिन्ना सन्ततिरेव सा ।
सा दर्शनसमाकारा दृष्टिरित्यभिधीयते ॥
वैशद्यातिशयश्चैषः भवेदाकारशब्दितः ।
एवंरीत्युपचारस्य निदानं स्यादिदं यथा ॥

शास्त्रैकसमधीगम्यं ब्रह्मौपनिषदं मतम् ।
अतश्च शास्त्रयोनीति संरम्भेण निरूपितम् ॥
तदन्तःकरणाध्यक्षवेद्यत्वे हि विरुध्यते ।
भावनाबलजाध्यक्षवेद्यत्वेऽपि तथैव हि ॥
अतः प्रत्यक्षशब्दस्स्यात्समानाकारगोचरः ।
वृक्षेवृक्षे च पश्यामीत्यादिभूरिप्रयोगतः ॥
2 सा स्मर्यमाणस्यात्यर्थप्रियत्वेन स्वयं तथा ।
अत्यर्थप्रीतिरूपत्वमापन्ना भक्तिरुच्यते ॥
भज इत्येष धातुर्वै सेवायां परिकीर्तितः ।
तस्मात्सेवा बुधैः प्रोक्ता भक्तिशब्देन भूयसा ॥
इति बोधायनवचः प्रस्पष्टं समुदाहृतम् ।
प्रकाशिकादीपिकयोः श्रीसुदर्शनसूरिभिः ॥
प्रीतिरूपमनुध्यानं भक्तिरित्यभिधीयते ।
भक्तिस्सेवोपास्तिरिति यास्कोऽपि निरघण्टयत् ॥
परभक्तिः परं ज्ञानं परमा भक्तिरित्यपि ।
पर्वक्रमेणोपचितं विज्ञानं मुक्तिसाधनम् ॥
साक्षात्कृतस्यानुभवाभिनिवेशस्तु सा परा ।
या फलस्याव्यवहितपूर्वावस्थेति कीर्त्यते ॥
तत्संबन्धाद्भक्तिशब्दः स्तुत्यादावुपचारतः ।
साऽनेकधा सद्दहरभूमाविद्यादिभेदतः ॥

अविशिष्टफलत्वेन विकल्पश्च व्यवस्थितः ।
प्रपत्तिरपि च ब्रह्मविद्यैवेदि पुरः स्थितम् ॥
यैवैषा परभक्तिस्स्यात्तदेव परमं सुखम् ।
उपायश्च स एवायमीशानिग्रहशान्तये ॥
ज्ञानस्यैव विकारोऽयमिच्छाद्वेषसुखादिकः ।
अनुकूलतया वेद्यं सर्वं सुखमितीष्यते ॥
कार्यं नियोगश्चापूर्वं धर्मो वेदार्थ इत्यपि ।
यद्वचः सकलं प्राह कृष्णं धर्मं सनातनम् ॥
देवताभक्तितो मुक्तिर्न तत्त्वज्ञानसंपदा ।
इति वामनकाव्यालंकारसूत्रेऽप्यनूदितम् ॥
ज्ञानमार्गो भक्तिमार्गः विभिन्नः मोक्षसाधनम् ।
इति सिद्धान्तयोरैक्यं विशिष्टाद्वैतसम्मतम् ॥
3 मोक्षप्रभेदं कैवल्यं केचिदिच्छन्ति सूरयः ।
तत्र स्वात्मानन्दलाभः पुनरावृत्तिवर्जितः ॥
केश्चित्तु कैवल्यभोग्यः स्वात्मा ब्रह्मापृथक्स्थितः।
विशेषणतया भानमात्रं ब्रह्मण इष्यते ॥
केषांचित्स्वात्मसंतोषः कैवल्यमिति निर्णयः ।
पुनरावृत्तिरस्यास्ति स्थितिः प्रकृतिमण्डले ॥
परिपूर्णपरब्रह्मानुभवे मोक्षलक्षणे ।
प्रभेदं केचिदिच्छन्ति तत्तत्त्वमवधार्यताम् ॥

परब्रह्मोपासनया ये मुक्तास्ते तु केवलम् ।
परिपूर्णपरब्रह्मानुभवैकपरायणाः ॥
कैङ्कर्यलिप्सया ये तु मुक्तास्ते किङ्कराः पुनः ।
परार्थस्वार्थभेदेन द्विविधाः परिनिष्ठिताः ॥
एवं मोक्षे विधाभेदं केचिन्नेच्छन्ति सूरयः ।
कैवल्यनिष्ठया मुक्ताः न मुक्ता इति तैर्मताः ॥
स्वरूपतो मुक्तभेदं द्वैतसिद्धान्तिनो विदुः ।
आनन्दतारतम्येन मुक्तिभेदो व्यवस्थितः ॥
नित्यमुक्तो नित्यबद्धः आर्हतैर्नोपगम्यते ।
आद्यो विशिष्टाद्वैतेष्टः द्वितीयो द्वैतसम्मतः ॥
4 अथ वृत्तिकृतां मार्गं पाञ्चरात्रमतानुगम् ।
समाश्रयन् बुधा एते तत्त्वमवधार्यताम् ॥
द्वापरान्ते वासुदेवः भगवान् स हरिस्स्वयम् ।
अवातरदिति प्रायः सर्वैरभ्युपगम्यते ॥
तस्य संकर्षणो नाम भ्राताऽऽसीदिति च श्रुतम् ।
प्रद्युम्नस्तनयः पौत्रोऽनिरुद्ध इति च श्रुतः ॥
सैषा परंपरा पाञ्चरात्रशास्त्रप्रवर्तिका ।
एते हि सात्त्वताः प्रोक्ताः शास्त्रं चापिहि सात्त्वतम्
5 सत्त्वच्छब्दो हि भगवच्छब्दवद्विष्णुतत्परः ।
अणूप्रत्ययश्च भक्तार्थः ते भागवतसात्त्वताः ॥

एवंहि श्रीयामुनेयागमप्रामाण्यनिर्णयः ।
वैश्यात्तु जायते व्रात्यात् मैत्रस्सात्त्वत एवच ॥
पञ्चमस्सात्त्वतो नाम विष्णोरायतनानि सः ।
पूजयेदाज्ञया राज्ञां स तु भागवतः स्मृतः ॥
इत्यादिवचनैर्हीनजातिशङ्का न युज्यते ।
मा भूदाचार्यशब्दत्वाद्ब्राह्मणस्य निकृष्टता ॥
विष्णुपूजादिसंबन्धाज्जात्यन्तरभवा अपि ।
प्रसिद्धास्सात्त्वताश्चेति तथा भागवता इति ॥
6 एवं शास्त्रं संप्रदायं कर्तारं विषयं तथा ।
आचष्ट भगवान् व्यासः भारते शान्तिपर्वणि ॥
सांख्यस्य वक्ता कपिल इत्यारभ्य हि पठ्यते ।
पञ्चरात्रस्य कृत्स्नस्य वक्ता नारायणः स्वयम् ॥
वेदान्तेषु यथा सारं संगृह्य भगवान् हरिः ।
भक्तानुकम्पया विद्वान् संचिक्षेप यथासुखम् ॥
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्च कृतलक्षणैः ।
अर्चनीयश्च सेव्यश्च पूजनीयश्च माधवः ॥
सात्त्वतं विधिमास्थाय गीतस्संकर्षणेन यः ।
द्वापरस्य युगस्याऽन्ते ह्यादौ कलियुगस्य च ॥
नारदेन तु संप्राप्तस्सरहस्यः ससंग्रहः ।
एष धर्मो जगन्नाथात् साक्षान्नारायणान्नृप ॥

एवमेष महान् धर्मः स ते पूर्वं नृपोत्तम ।
कथितो हरिगीतासु समासविधिकल्पितः ॥
नूनमेकान्तिधर्मोऽयं श्रेष्ठो नारायणप्रियः ।
सहोपनिषदान् वेदान् ये विप्रास्सम्यगास्थिताः ॥
पठन्ति विधिमास्थाय ये चापि यतिधर्मिणः ।
तेभ्यो विशिष्टां जानामि गतिमेकान्तिनां नृणाम्॥
समुपोढेष्वनीकेषु कुरुपाण्डवयोर्मृधे ।
अर्जुने विमनस्के च गीता भगवता स्वयम् ॥
आगतिश्च गतिश्चैव पूर्वं ते कथितं मया ।
गहनो ह्येष धर्मो वै दुर्विज्ञेयोऽकृतात्मभिः ॥
7 एवमेकं सांख्ययोगं वेदारण्यकमेवच ।
परस्पराङ्गान्येतानि पञ्चरात्रं तु कथ्यते ॥
इत्यादीनि प्रमाणानि प्रसिद्धानि विपश्चिताम् ।
तत्र चान्तिमपद्येन शास्त्रसारार्थ उद्धृतः ॥
तस्यायमर्थश्श्रीभाष्ये तर्कपादे निरूपितः ।
पञ्चविंशतितत्त्वानि सांख्योक्तानीति विश्रुतम् ।
योगोक्तश्चापि साष्टाङ्गयोगस्संयमलक्षणः ।
वेदोदितं च कर्मापि यागहोमादिलक्षणम् ॥
आरण्यकं परं ब्रह्म प्रतिपादयति स्फुटम् ।
परस्पराङ्गता तावत् तत्त्वं ब्रह्मात्मकं स्वतः ॥

ब्रह्मोपासनरूपश्च योगः कर्मापि कृत्स्नशः ।
तदाराधनरूपं चेत्येतदत्राभिधीयते ॥
तत्पञ्चरात्रे प्रख्याते शास्त्रेऽस्मिन्विशदीकृतम् ।
इति नारायणेनैव स्वयं हि कथितं त्विति ॥
8 एवमेतच्छास्त्रतत्त्वं संग्रहादिह सूचितम् ।
तच्छास्त्रमनुरुद्ध्यैव कर्मब्रह्मात्मनोरपि ॥
शास्त्रयोस्संधिरुदितस्सांकर्ये चात्र मन्यमे ।
प्रतिपाद्यमिदं तत्र पूर्वाचार्यनिरूपितम् ॥
स्वरूपमादौ तद्भेदस्तदुपासनपूर्वकम् ।
फलं च देवताकाण्डे देवतानां तु कथ्यते ।
ततश्च संहितं शास्त्रमेतद्विंशतिलक्षणम् ।
इति वृत्तिकृतां वाक्यमेतत्तात्पर्यगर्भितम् ॥
एतेन कर्ममीमांसासिद्धान्ते जडविश्रुतः ।
निर्दैववादो निस्संविद्दैववादोऽप्यपाकृतः ॥
तं च संकर्षकाण्डं तु काशकृत्स्नविनिर्मितम् ।
प्राहुः केचिद्बुधास्त्वन्ये विदुः जैमिनिनिर्मितम् ॥
समाख्ययोल्लिखन्त्यन्ये संकर्षणविनिर्मितम् ।
सर्वथा पाञ्चरात्रस्य सिद्धान्तमनुवर्तते ॥
स्पन्दप्रदीपिका नाम भट्टोत्पलविनिर्मिता ।
तत्र चोदाहृतं ग्रन्थजातमेतन्निशम्यताम् ॥

पाञ्चरात्रश्रुतिः पाञ्चरात्रोपनिषदोऽपिच ।
संकर्षणस्य सूत्राणीत्यादिकं विविधं तु तत् ॥
तत्सूत्रस्थं वाक्यमेकमिदं तावदुदाहृतम् ।
येनेदं दृश्यते विश्वं द्रष्टा सर्वस्य यस्सदा ॥
दृश्यश्चराचरत्वे यः स विस्णुरिति गीयते ।
एतेन विष्णुपारम्यसिद्धान्तोऽयमिति स्थितम् ॥
तत्सूत्रमनुसृत्यैव काशकृत्स्नेन वाऽथवा ।
कृतं जैमिनिना सूत्रं देवताकाण्ड इष्यते ॥
पूर्णप्रज्ञैरनुव्याख्याप्रबन्धे देवकाण्डगः ।
द्वितीयलक्षणश्शेषप्रणीत इति भाषितम् ॥
स एष संकर्षकाण्डः मीमांसाभाष्यकर्तृभिः ।
आचार्यशबरैः पूर्वाचार्यैश्च समुदाहृतः ॥
अन्ते हरौ स विष्णुश्च तं ब्रह्मेति च सूत्रणात् ।
अथातो ब्रह्मजिज्ञासा चेति शास्त्रं सुसङ्गतम् ॥
9 तत्र शारीरकं शास्त्रं बादरायणनिर्मितम् ।
स बादरायणो व्यास इत्याहुर्बहवो बुधाः ॥
श्रीमद्रामानुजाचार्यः बादरायणनिस्वनम् ।
भाष्ये स्वे सूत्रकृत्त्वेन व्यासत्वेनाप्यभाषत ॥
तथा श्रीयामुनाचार्यस्सिद्धित्रयनिबन्धने ।
उपक्रमे प्राह सूत्रं बादरायणनिर्मितम् ॥

श्रीशाङ्करे भास्करेऽपि चान्त्यसूत्रावतारणे ।
सूत्रकर्तेति विस्पष्टो भगवान् बादरायणः ॥
स्मरन्ति चेत्यादिसूत्रे व्यासादय इतीरणात् ।
कृष्णद्वैपायनो नासाविति भङ्ग्याऽत्र सूच्यते ॥
स्मृतेश्चेत्यादिसूत्रेषु गीतावचनलेखनात् ।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चेति गीतायामपि दर्शनात् ॥
परस्परगृहीतिस्तु विरोधायेति दृष्टितः ।
ब्रह्मसूत्रपदं वेदमौळिवाक्यपरं कृतम् ॥
इत्युल्लिखन्ति कतिचित् न तत्तु विदुषां मतम् ।
कृष्णद्वैपायनस्सूत्रकर्ता भारतकृच्च सः ॥
द्वीपे बदरिकामिश्रे बादरायणमच्युतम् ।
पराशरात्सत्यवती लेभे पुत्रं परंतपम् ॥
तस्यैव सूत्रकर्तृत्वं पूर्णप्रज्ञैरुदाहृतात् ।
स्कान्दवाक्यादपि स्पष्टं निर्णयन्ति यथा पुनः ॥
अवतीर्णो महायोगी सत्यवत्यां पराशरात् ।
उत्सन्नान् भगवान् वेदान् उज्जहार हरिस्स्वयम् ॥
चतुर्धा व्यभजत्तांश्च चतुर्विंशतिधा पुनः ।
शतधा चैकधा चैव तथैवच सहस्रधा ॥
कृष्णो द्वादशधा चैव पुनस्तस्यार्थवित्तये ।
चकार ब्रह्मसूत्राणि येषां सूत्रत्वमञ्जसा ॥

श्रुतप्रकाशिकातत्त्वटीकयोरप्युदाहृतम् ।
वचस्त्विदं तथा वाचस्पतिवाक्यं निशम्यताम् ॥
ब्रह्मसूत्रकृते वेदव्यासायापरवेधसे ।
ज्ञानशक्त्यवताराय नमो भगवते हरेः ॥
इत्यन्यत्र प्रपञ्चोऽथ गीताकर्ताऽप्यसौ मतः ।
यतो भारतकर्ता सः, यद्गीतासूत्रयोर्मिथः ॥
ग्रहणं ब्रह्मसूत्रेति स्मृतेश्चेत्यातिशङ्कितम् ।
तत्रेदमवधातव्यं निर्णीतं तत्त्वटीकया ॥
ब्रह्मसूत्रपदैश्चेति भाविदृग्भगवद्वचः ।
सूत्रपश्चाद्भावि वा स्यात् न्यबध्नाद्भारते स्वयम् ॥
सूत्रस्य विषयत्वेन वाक्यरूपा कृतिः पुनः ।
प्राक्तनी भाविनी वाऽत्रचोदाह्रियत इत्यतः ॥
न परस्परसंबाधः न प्रसिद्धार्थनिह्नवः ।
अथवाऽनादिसिद्धत्वात् स्मृतिसूत्रप्रवाहयोः ॥
परस्परगृहीतिस्तु न विरोधाय कल्पते ।
प्रवाहानादिवादोऽयं यं शास्त्रशरणा विदुः ॥
परीक्षकमतिस्त्वेषा यादृगद्योपलभ्यते ।
शास्त्रमेतत्तथैवादेः कालादिति न निश्चयः ॥
सर्वे भावाः प्रतिकलं परिणामिन इत्यपि ।
श्रूयते दृश्यते चापि प्रबन्धे तु विशेषतः ॥

कर्त्रैव हि स्वकं ग्रन्थं आचपत्युद्वपत्यपि ।
बहोः कालात्प्रवक्तॄणां संप्रदाये तु किंपुनः ॥
प्रवक्तारस्तत्रतत्र जैमिन्यादिपदैरपि ।
प्रकाशयन्ति तत्रत्याभिप्रायानिति युज्यते ॥
तथाच सर्वैराचार्यैः सम्प्रदायप्रवर्तने ।
परिष्कृतिप्रभेदेन व्यवहारो विकल्पताम् ॥
स्मृतिसूत्रप्रवाहोऽयमनादिरिति वर्णितम् ।
कालेकाले संभवतां प्रायस्संकोचविस्तरौ ॥
कर्मकाण्डः देवकाण्डः ब्रह्मकाण्ड इति त्रयम् ।
कृतं जैमिनिनैवेति चोल्लिखन्ति परे बुधाः ॥
प्रसिद्धिराद्ययोरस्ति तृतीयस्य पुनर्यथा ।
नैष्कर्म्यसिद्धौ नवातितमश्लोकस्थभारती ॥
जैमिनिस्सामगाचार्यस्सामवेदप्रवर्तकः ।
व्यासशिष्य इति स्पष्टं श्रूयते भारतादिषु ॥
कर्मकाण्डे सामवेदविचारः प्रायशस्ततः ।
छान्दोग्योपनिषत्सामशाखीयेति च विश्रुता ॥
प्रायस्तदीयवाक्यानि सूत्राणां विषया इति ।
सूत्रभाष्यसमध्येतृविदुषामातिरोहितम् ॥
जैमिनीयं ब्रह्मसूत्रमावापोद्वापतः पुनः ।
पर्यष्कार्षीद्व्यास इति संदर्भेणोहितुं क्षमम् ॥

अनेकेषां मतं ब्रह्मसूत्रेषूदाहृतं ततः ।
ब्रह्मसूत्राण्यप्यनेकान्यासन्निति च कल्प्यते ॥
एवं प्रकल्पने प्रायः भाति सर्वं सुसंगतम् ।
किंकिं नसंभाव्यतेऽत्र संसारेऽनादिवाहिनि ॥
11 अथात्रैवेश्वरे वादिविकल्पोऽपि विविच्यते ।
निर्दैववादो निस्संविद्दैववादः पुरोदितः ॥
निरीश्वरो निर्विशेषेश्वरो वेति विकल्पना ।
कालं ब्रह्म विदुः केचित् स्फोटं ब्रह्म विदुः परे ॥
कर्म ब्रह्म विदुः केचित् परेऽथ प्रकृतिं विदुः ।
प्रतिबिम्बैश्वर्यवादः प्रतिभासेश्वरस्तथा ॥
निर्व्यापारेश्वरः कश्चित् तथाऽन्यो निरनुग्रहः ।
प्रवाहेश्वरवादोऽन्यः नानेश्वर इतीतरः ॥
मूर्तित्रयेश्वरः कश्चित् तदन्यतम इत्यपि ।
तदुत्तीर्णविवादोऽन्यः शाक्तसौरादिकल्पनी ॥
कल्पना काचिदन्योन्यविभिन्नास्त्रय ईश्वराः ।
ये सत्त्वादिगुणोन्मेषभिदुरेष्वधिकारिणः ॥
कल्पेषु ते चक्रनेमिनीत्या निम्नोन्नतश्रियः ।
एवं बहुविधा वादाः दृश्यन्ते खल्वपीश्वरे ॥
द्विलिङ्गो द्विविभूतिश्च विष्णुर्नारायणो हरिः ।
श्रीपाञ्चरात्रसिद्धान्ते ह्येष ईश्वरनिर्णयः ॥

प्राप्यः परमभोग्यत्वात् निषेव्यः स्वामिभावतः ।
शक्तिकारुण्यभूम्ना च शरण्यस्सीदतां प्रभुः ॥
बहिरन्तश्च तद्व्याप्तिः तत्र यत्रोभयं भवेत् ।
विभोरणोश्च न बहिर्नान्तः तस्मान्न सा तयोः ॥
प्रयोजनस्य विरहान्न कर्तेश इति ब्रुवन् ।
तस्य सिद्धावसिद्धौ च व्याघातादिपराहतः ॥
निरपेक्षस्वतन्त्रस्य सहकारिमतस्सदा ।
अप्रवृत्तिः प्रवृत्तिर्वा नित्यं स्यादिति चेन्न तत् ॥
तत्तदिच्छाविशेषेण तत्क्रमस्योपपत्तितः ।
इच्छासंतत्यनादित्वात् न च मूलक्षयः क्वचित् ॥
12 सर्वात्मैक्यं विदुः केचिद्दैवतैक्यं परे विदुः ।
मूर्तित्रयैक्यं कतिचित् साम्यमेके प्रचक्षते ॥
तेष्वेवान्यतमस्यान्ये विबुधाः परतां विदुः ।
त्रिमूर्त्युत्तीर्णपरतावादिनोऽप्यपरे बुधाः ॥
स हि व्योमातीतवाद इति शास्त्रात्प्रतीयते ।
तत्स्वरूपं किंचिदत्र प्रसङ्गात्प्रतिपाद्यते ॥
उपादानं तु भगवान्निमित्तं तु महेश्वरः ।
इति व्योमातीतवादः दह्रविद्यानिरूपितः ॥
तस्मिन्यदन्तरित्यादौ तच्छब्दो व्योमतत्परः ।
स चाकाशो नामरूपनिर्वोढा विष्णुरुच्यते ॥

तदतीतस्तदन्तस्स्थः स सदाशिव उच्यते ।
इति वादो निराकारि श्रीभाष्यादिषु सूरिभिः ॥
अतएव निमित्तत्वमुपादानत्वमित्यपि ।
नारायणस्यैवैकस्य श्रुत्याद्येषूपपादितम् ॥
वेदान्तवेद्यो भेदो वाऽभेदो वा ह्यात्मताऽपिवा ।
कोऽर्थस्समार्थित इति चेत्सर्वं च समर्थितम् ॥
सर्वप्रकारं ब्रह्मैवावास्थितं देहिभावतः ।
अभेदोऽतो रक्षितस्स्यात् एवं ब्रह्मैकवस्त्वपि ॥
नानात्मचिदचिद्वस्तुप्रकारत्वादनेकधा ।
अवस्थितमतो भेदाभेदश्चापि समर्थितः ॥
चिदचिद्वस्त्वीश्वराणां वैलक्षण्यादसंकरात् ।
स्वरूपेण स्वभावेन भेदश्चापि समर्थितः ॥
वेदार्थसंग्रहे त्वस्य विस्तरः प्रतिपादितः ।
स व्योमातीतवादोऽपि तत्रैव सुनिरूपितः ॥

(115) प्रपत्तिः

1 श्रुतिस्मृतीतिहासेषु प्रपत्तिर्नाम विश्रुता ।
तेषां तु तपसां न्यासमतिरिक्तं ततः श्रुतम् ॥
ब्रह्मणे त्वा महस ओमित्यात्मानं नियोजयेत् ।
अहं मुमुक्षुश्शरणं प्रपद्य इति च श्रुतम् ॥

प्रपन्न इन्द्रं शरणं सर्वस्य शरणं सुहृत् ।
इत्यादयः श्रुतिशतं विश्रुतं शरणागतौ ॥
स्मृतीतिहासवचनमनन्तं प्रथितं विदाम् ।
अतस्त्रैवर्णिकत्वादेः भावोऽभावोऽपि कस्य चित् ॥
नाधिकारः प्रपत्तौ स्यादाकिंचन्यमनाश्रितः ।
येषां तु भगवद्गीता प्रमाणमिति सम्मता ॥
प्रपत्तिस्साधनं मुक्तेरिति तैरखिलैर्मता ।
सा परंपरया हेतुरिति सर्वैर्विनिश्चिता ॥
साक्षादपि भवेद्धेतुरिति श्रीवैष्णवा विदुः ।
प्रपत्तिः द्विविधा तस्मात् स्वतन्त्राङ्गविभेदतः ॥
यद्येन कामकामेन न साध्यं साधनान्तरैः ।
तेनतेनाप्यते तत्तन्न्यासेनैव महामुने ॥
परमात्मा च तेनैव साध्यते पुरुषोत्तमः ।
भक्त्या परमया वाऽपि प्रपत्त्या वा महामुने ॥
प्राप्योऽहं नान्यथा प्राप्यः मम कैङ्कर्यलिप्सुभिः ।
इत्यादिकं वचोऽनन्तं भगवच्छास्त्रविश्रुतम् ॥
2 अनन्यसाध्ये स्वाभीष्टे महाविश्वासपूर्वकम् ।
तदेकोपायतायाच्ञा प्रपत्तिश्शरणागतिः ॥
मुनिना भरतेनेत्थं प्रपत्तेर्लक्षणं कृतम् ।
त्वमेवोपायभूतो मे भवेति प्रार्थना मतिः ॥

शरणागतिरित्युक्ता सा देवेऽस्मिन्न प्रयुज्यताम् ।
आत्मात्मीयभरं सर्वं स्वात्मानं च समर्पयेत् ॥
इत्यादिवचनानां च परामर्शेन देशिकैः ।
निष्कृष्याम्नायमेषोऽर्थः विशदीक्रियते यथा ॥
आकिंचन्यभरन्यासोपायत्वप्रार्थनात्मनाम् ।
त्रयाणां सौहृदं सूक्ष्मं यः पश्यति स पश्यति ॥
मुमुक्षुमात्रसामान्यं स्वरूपादिसमर्पणम् ।
अकिंचने भरन्यासस्त्वधिकोऽङ्गितया स्थितः ॥
अत्र रक्षाभरन्यासस्समस्सर्वफलार्थिनाम् ।
स्वरूपफलनिक्षेपस्त्वधिको मोक्षकाङ्क्षिणाम् ॥
स्वनिर्भरत्वपर्यन्तरक्षकैकार्थ्यभावनम् ।
त्यक्तरक्षाफलस्वाम्यं रक्ष्यस्यात्मसमर्पणम् ॥
भरन्यासप्रधानो यस्सर्वान्वयविवर्जितः ।
तच्छेषत्वानुसंधानविशेषः शरणागतिः ॥
3 साधनं भगवत्प्राप्तौ स एवेति स्थिरा मतिः ।
साध्यभक्तिस्थता चैव प्रपत्तिरिति गीयते ॥
उपायो भक्तिरेवेति तत्प्राप्तौ या तु सा मतिः ।
उपायभक्तिरेतस्याः पूर्वोक्तैव गरीयसी ॥
उपायभक्तिः प्रारब्धव्यतिरिक्ताघनाशिनी ।
साध्यभक्तिस्तु सा हन्त्री प्रारब्धस्यापि भूयसी ॥

प्रारब्धकर्मावधिको मोक्ष उक्त उपासितुः ।
दृप्तस्य देहावधिकः आर्तस्यार्त्यवधिर्मतः ॥
इयं केवललक्ष्मीशोपायत्वप्रार्थनात्मिका ।
स्वहेतुत्वधियं रुन्धे किंपुनस्सहकारिणाम् ॥
शास्त्रार्थज्ञानवेलायामुपायत्वेन निश्चितः ।
अनुष्ठानदशायां तूपायबुद्धिं परित्यजेत् ॥
4 फलं संगं च कतृत्वमुपायत्वं च संत्यजेत् ।
सात्त्विकत्याग एष स्यात् इति श्रीभगवान् जगौ॥
साङ्गं ससात्त्विकत्यागं कुर्याद्भरसमर्पणम् ।
अन्यथा विधिकोपस्स्यात् चेतनोऽचेतनो भवेत् ॥
सर्वज्ञोऽपि हि विश्वेशस्सदा कारुणिकोऽपि सन् ।
संसारतन्त्रवाहित्वात् रक्ष्यापेक्षां प्रतीक्षते ॥
आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् ।
रक्षिष्यतीति विश्वासः गोप्तृत्ववरणं तथा ॥
कार्पण्यं चेति पञ्चाङ्ग आत्मनिक्षेप इष्यते ।
पञ्चानामपिचाङ्गानामिदं विवरणं मतम् ॥
चराचराणि भूतानि सर्वाणि भगवद्वपुः ।
अतः तदानुकूल्यं मे कर्तव्यमिति निश्चयः ॥
अन्तःस्थितस्स भगवान् सर्वेषामिति निश्चयात् ।
सर्वभूतेषु च सदा प्रातिकूल्यं विवर्जयेत्॥

कार्पण्येनाप्युपायानां विनिवृत्तिर्विवक्षिता ।
रक्षिष्यतीतिविश्वासात् अभीष्टोपायकल्पना ॥
गोप्तृत्ववरणं नाम स्वाभिप्रायनिवेदनम् ।
शाश्वती मम संसिद्धिरियं प्रह्वीभवामि यत् ॥
पुरुषं परमुद्दिश्य न मे सिद्धिरितोऽन्यथा ।
प्रपत्तिसंग्रहस्त्वित्थं अनुष्ठानक्रमस्त्वसौ ॥
5 अहं मद्रक्षणभरः मद्रक्षणफलं तथा ।
न मम श्रीपतेरेवेत्यात्मानं निक्षिपेद्बुधः ॥
न्यस्याम्यकिंचनः श्रीमन् अनुकूलोऽन्यवर्जितः ।
विश्वासप्रार्थनापूर्वमात्मरक्षाभरं त्वयि ॥
स्वामिन् स्वशेषं स्ववशं स्वभरत्वेन निर्भरम् ।
स्वदत्तस्वधिया स्वार्थं स्वस्मिन्न्यस्यसि मां स्वयम्
श्रीमन्नभीष्टवरद त्वामस्मि शरणं गतः ।
एतद्देहावसाने मां त्वत्पादं प्रापय स्वयम् ॥
त्वच्छेषत्वे स्थिरधियं त्वत्प्राप्त्येकप्रयोजनम् ।
निषिद्धकाम्यरहितं कुरु मां नित्यकिङ्करम् ॥
देवीभूषणहेत्यादिजुष्टस्य भगवंस्तव ।
नित्यं निरपराधेषु कैङ्कर्येषु नियुङ्क्ष्व माम् ॥
मां मदीयं च निखिलं चेतनाचेतनात्मकम् ।
स्वकैङ्कर्योपकरणं वरद स्वीकुरु स्वयम् ॥

त्वदेकरक्ष्यस्य मम त्वमेव करुणाकर ।
न प्रवर्तय पापानि प्रवृत्तानि निवर्तय ॥
अकृत्यानां च करणं कृत्यानां वर्जनं च मे ।
क्षमस्व निखिलं देव प्रणतार्तिहर प्रभो ॥
श्रीमान् नियतपञ्चाङ्गं मद्रक्षणभरार्पणम् ।
अचीकरत् स्वयं स्वस्मिन् अतोऽहमिह निर्भरः ॥
वेदान्तदेशिकन्यासदशकं लिखितं न्विदम् ।
रहस्यत्रयसारे तु महीयान् न्यासविस्तरः ॥

(116) न्यायसिद्धान्तः

1 प्रायः प्रपञ्चितस्सर्वेतरासिद्धान्तसंग्रहः ;
अथ नैयायिकोक्तीनां संग्रहोऽपि निशम्यताम् ॥
न तद्व्यवसितं पुंसां न तत्कर्म न तद्वचः ।
न तद्भोग्यं समस्तीह यन्न दुःखाय जायते ॥
तत्त्वतश्चिन्त्यमानं हि सर्वं दुःखं विवेकिनः ।
विषसंपृक्तमधुमत् सर्वं दुःखीभवत्यदः ॥
सुखाधिगमलोभेन यतमानो हि पूरुषः ।
सहस्रशाखमाप्नोति दुःखमेव तदर्जने ॥
2 एवं सर्वमिदं दुःखमिति भावयतोऽनिशम् ।
सर्वोपपत्तिस्थानेषु निर्वेदोऽस्य प्रवर्तते ॥

निर्विण्णस्य च वैराग्यं विरक्तस्य च देहिनः ।
क्लेशकर्मप्रहाणादिद्वारो निश्श्रेयसोदयः ॥
यावदात्मगुणास्सर्वे नोच्छिन्ना वासनादयः ।
तावदात्यन्तिकी दुःखनिवृत्तिर्नावकल्पते ॥
धर्माधर्मौ निमित्तं हि संभवे सुखदुःखयोः ।
मूलभूतौ च तावेव स्तम्भौ संसारसद्मनः ॥
तदुच्छेदे तु तत्कार्यशरीराद्यनुपप्लवात् ।
नात्मनस्सुखदुःखे स्त इत्यसौ मुक्त उच्यते ॥
अनिष्टोपरमार्थास्स्युरपवर्गप्रवृत्तयः ।
सन्तः प्रयतमाना हि दृश्यन्ते व्याधिशान्तये ॥
चिरज्वरशिरोत्यादिव्याधिदुःखेन खेदिताः ।
सुखिनो वयमद्येति तदपाये प्रयुञ्जते ॥
3 मोक्षे नित्यसुखं येषां कामं देहेन्द्रियाद्यपि ।
नित्यं प्रकल्प्यतां तेषां मोक्षो रम्यतरो भवेत् ॥
यदत्र किरणावल्यामुक्तं तदवधार्यताम् ।
सत्त्वशुद्धिमुखात्कर्म स्यादारादुपकारकम् ॥
ज्ञानं तु सन्निपत्योपकारकाङ्गमितीष्यते ।
तुल्यकक्षतया कर्मज्ञानयोर्न समुच्चयः ॥
4 इत्युक्तं, दुःखजन्मादेरुत्तरोत्तरनाशतः ।
अनन्तरापायमार्गादपवर्गसमुद्भवः ॥

तत्त्वज्ञानेन मिथ्याधीवासनानाशसंभवः ।
तन्नाशेन विनश्यन्ति रागादिदोषलक्षणः ॥
पुण्यापुण्यात्मिका नश्येत्प्रवृत्तिस्तद्विनाशतः ।
अप्रवृत्तौ नैव जन्म देहसंबन्धलक्षणम् ॥
जन्माभावे च दुःखानामनुत्पाद इति स्थितम् ।
प्रशस्तपादभाष्यस्थसारांशोऽप्यवधार्यताम् ॥
फलाभिसन्धिराहित्यज्ञानपूर्वकधर्मतः ।
विशुद्धे हि कुले जन्म जिज्ञासा दुःखगोचरा ॥
ततश्चाचार्योपसत्तिः ततस्तत्त्वविनिर्णयः ।
मिथ्याज्ञाननिवृत्तेस्तु रागद्वेषविहीनता ॥
ततः प्रवृत्त्यनुत्पादः भोगात्संचितसंक्षयः ।
शरीरपरिखेदश्च सन्तोषसुखमेव च ॥
भोगस्स्यादैकभविकपक्षः प्रायोऽत्र सम्मतः ।
अनैकभाविके पक्षे वैकल्यं सहकारिणः ॥
निवृत्तिलक्षणो धर्मः केवलः परमार्थजात् ।
दर्शनात्सुखमुत्पाद्य स्वयमेव निवर्तते ॥
शरीरादिनिवृत्तौ तु निर्बीजस्यात्मनस्तदा ।
पुनश्शरीरानुत्पत्तौ दग्धेन्धनकृशानुवत् ॥
दुःखस्योपशमो मोक्षः स्वयमेव भविष्यति ।
आत्मा विभुत्वद्रव्यत्वस्वरूपेणावतिष्ठते ॥

5 एकविंशतिधा दुःखं शरीरं प्रथमं मतम् ।
षडिन्द्रियाणि विषयाः षट् तथैव च बुद्धयः ॥
सुखं दुःखं चेति, तत्र श्रोत्रं नित्यं मनस्तथा ।
तथापि यादृग्रूपस्य दुःखता ध्वंसते हि तत् ।
दुःखासमानकालीनदुःखध्वंसोऽमृतं मतम् ।
विशेषणांशे तु तत्त्वसाक्षात्कारः प्रयोजकः ॥
तत्र नव्याः दुःखपदं दुःखसाधनतत्परम् ।
तत्साधनं च दुरितं तद्ध्वंसो ज्ञानसाधनः ॥
इत्याहुः दुःखविध्वंसस्तत्कारणनिबन्धनः ।
न तत्त्वज्ञानहेतुस्स्यादित्यन्येऽन्यत्र विस्तरः ॥

(117) भाट्टसिद्धान्तः

1 भट्टपादीयसिद्धान्तः यः पुनस्तन्त्रवार्तिके ।
निरूपितो व्याकरणाधिक्रियायां निशम्यताम् ॥
सर्वत्रैव हि विज्ञानं संस्कारत्वेन गम्यते ।
पराङ्गं चात्मविज्ञानादन्यत्रेत्यवधारणा ॥
आत्मज्ञानं पुमर्थं च स्यात्संयोगपृथक्त्वतः ।
विना तेनामुष्मिकेषु प्रवृत्त्यादेरसंभवः ॥
2 आत्माऽपहतपाप्मेति तथा मन्तव्य इत्यपि ।
तथाऽऽत्मानमुपासीतेत्यात्मज्ञानं विधीयते ॥

जिज्ञासामननोपास्तिभेदेन त्रिविधं त्विदम् ।
ज्ञायते फलसंबन्धः त्रिविधस्तदपेक्षितः ॥
3 स सर्वल्लोकानाप्नोति स संपन्नो महीयते ।
एष सर्वोऽप्यभ्युदयः तथा निश्श्रेयसं पुनः ॥
स खल्वेवं वर्तयन्नित्याद्याभिश्च प्रतीयते ।
परमात्मप्राप्त्यवस्था पुनरावृत्तिवर्जिता ॥
4 कर्मणामुपयोगोऽपि तत्र त्वेवं भविष्यति ।
नित्यनैमित्तिकाभ्यां स्यादुपात्तदुरितक्षयः ॥
अथवाऽकरणाधीनप्रत्यवायपराभवः ।
5 नच ज्ञानविधानेन कर्मसंबन्धवारणम् ॥
नच तेषां फलं भिन्नं विभिन्ना पदवीत्यपि ।
न विकल्पोऽथ बाधो वा नाङ्गाङ्गित्वं मिथोऽथवा॥
संभावनापदं यस्मात् श्रुतिस्स्पष्टोपरुध्यते ।
तस्मात्समुच्चयो न्याय्यः प्रामाण्याच्छास्त्रयोर्द्वयोः॥
इत्थमत्र बृहट्टीकावाक्यं राणक उद्धृतम् ॥
ननु निश्श्रेयसं ज्ञानात्, बन्धहेतोर्न कर्मणः ॥
नैकस्मादपि तत्किंतु ज्ञानकर्मसमुच्चयात् ।
नित्यनैमित्तिकैरेव कुर्वाणो दुरितक्षयम् ॥
ज्ञानं च विमलीकुर्वन् अभ्यासेन च पाचयेत् ।
वैराग्यात्पक्वविज्ञानः कैवल्यं च व्रजेदिति ॥

निषिद्धकाम्यकर्मभ्यः सम्यग्व्यावृत्तचेतसः ।
नित्यनैमित्तिकप्रायश्चित्तप्रध्वस्तदुष्कृतेः ॥
सुखदुःखानुभूतिभ्यां क्षीणप्रारब्धकर्मणः ।
ध्यायतः परमात्मानं मुक्तिस्स्यादिति निर्णयः ।
6 इत्थं सिद्धान्तकर्तॄणामेतेषां श्लोकवार्तिके ।
योऽसावभिप्रायभेदः तत्संक्षेपोऽवधार्यताम् ॥
आत्मा ज्ञातव्य इत्येतन्मोक्षार्थं नच चोदितम् ।
कर्मप्रवृत्तिहेतुत्वमात्मज्ञानस्य लक्ष्यते ॥
विज्ञाते चास्य पारार्थ्ये याऽपि नाम फलश्रुतिः
साऽर्थवादो भवेदेव न स्वर्गादेः फलान्तरम् ॥
कर्मक्षयो हि विज्ञानादित्येतच्चाप्रमाणकम् ।
फलस्याल्पस्य दानं वा राजपुत्रापराधवत् ॥
सुखोपभोगरूपश्च यदि मोक्षः प्रसज्यते ।
स्वर्ग एव भवेदेषः पर्यायेण क्षयी च सः ॥
नहि कारणवत्किंचिदक्षयित्वेन गम्यते ।
तस्मात्कर्मक्षयादेव हेत्वभावेन मुच्यते ॥
नह्यभावात्मकं मुक्त्वा मोक्षनित्यत्वकारणम् ।
नच क्रियायाः कस्याश्चिदभावः फलमिष्यते ॥
तत्र ज्ञातात्मतत्त्वानां भोगात्पूर्वक्रियाक्षये ।
उत्तरप्रचयाभावाद्देहो नोत्पद्यते पुनः ॥

कर्मजन्योपभोगार्थं शरीरं न प्रवर्तते ।
तदभावे न कश्चिद्धि हेतुस्तत्रावतिष्ठते ॥
मोक्षार्थी न प्रवर्तेत तत्र काम्यनिषिद्धयोः ।
नित्यनैमित्तिके कुर्यात्प्रत्यवायजिघांसया ॥
प्रार्थ्यमानं फलं ज्ञातं न चानिच्छोर्भविष्यति ।
आत्मज्ञे चैतदस्तीति तज्ज्ञानमुपयुज्यते ॥
सर्गप्रलयविज्ञानं समस्तजगदाश्रयम् ।
दैवप्रभावज्ञानार्थं धर्मानुष्ठानसिद्धये ।
तत्परत्वेऽप्युपाख्यानेष्वतीव विबुधोत्तमैः ।
नचैव कार्यस्तत्त्वाभिनिवेश इति निर्णयः ॥
तस्मादद्यवदेवात्र सर्गप्रळयकल्पना ।
समस्तक्षयजन्मभ्यां न सिद्ध्यत्यप्रमाणिका ॥
सर्वज्ञवन्निषेध्या च स्रष्टुः सद्भावकल्पना ।
नच धर्मादृते तस्य भवेल्लोकाद्विशिष्टता ॥
नचाननुष्ठितो धर्मः नानुष्ठानमृते मतेः ।
नच वेदादृते सा स्यात् वेदो नच पदादिभिः ॥
तस्मात्प्रागपि सर्वेऽमी स्रष्टुरासन् पदादयः ।
स्यात्तत्पूर्वकता चास्य चैतन्यादस्मदादिवत् ॥
एवं ये युक्तिभिः प्राहुः तेषां दुर्लभमुत्तरम् ।
अन्वेष्यो व्यवहारोऽयमनादिर्वेदवादिभिः ॥

तथाऽर्थवादाधिकृतौ सर्वोपनिषदामपि ।
नैराकाङ्क्ष्यं च कण्ठोक्तं क्रत्वर्थात्मोपपादनात् ॥
7 आपाततो विरोधोऽस्ति प्रबन्धे धीमतामपि ।
परिहाररहस्यं तु तैरेवात्रैव सूचितम् ॥
एवं ये युक्तिभिः प्राहुरित्युक्त्या भावगर्भया ।
अत्रायमाशयः वेदनित्यतास्थापनाय हि ॥
अतिवादाः कृता युक्त्या परमार्थोऽन्य एव यः ।
सच प्रोक्तस्स्फुटः तन्त्रवार्तिके त्विति निर्णयः ॥
8 एवं परीहारयुक्तौ स्फुटायां राणके पुनः ।
आत्मज्ञाने विरोधो यः विधानप्रतिषेधयोः ॥
संसार्यसंसार्यात्मोपलब्धिभेदात्स चोद्धृतः ।
यश्चाप्यभ्युदयश्रेयःफलभेदविकल्पना ॥
प्रत्युक्ता साऽपि सगुणनिर्गुणोपास्तिभेदतः ।
रीतिरेषा स्वसिद्धान्तवासनैकनिबन्धना ॥
9 तत्र भाट्टाशयविदां पन्थानः बहुधा स्थिताः ।
तथाऽप्येकं सूचयामि किंचिद्विस्तरकातरः ॥
संसारादुद्विजन्ते ये दृष्टलोकपरावराः ।
तेषामेवाधिकारस्स्यात् मुक्तिशास्त्रे मनीषिणाम् ।
तेनाभावात्मकत्वेऽपि मुक्तेर्नापुरुषार्थता ।
सुखदुःखोपभोगो हि संसार इति शब्द्यते ॥

तयोरनुपभोगं तु मोक्षं मोक्षविदो विदुः ।
श्रुतिरप्येवमेवाह भेदं संसारमोक्षयोः ॥
न ह वै सशरीरस्य प्रियाप्रियविहीनता ।
अशरीरं वाव सन्तं स्पृशतो न प्रियाप्रिये ॥
सुषुप्तावप्रकाशेन नात्मनस्स्वप्रकाशता ।
दुःखाभावाद्व्यवहृतिः सुखरूप इति स्थितम् ॥
आनन्दात्मकमात्मानं ये वदन्ति स्वयंप्रभम् ।
तन्मतेऽपि च संसारान्मुक्तेरेतावती भिदा ॥
आत्मा ह्यानन्दरूपोऽसौ संसारेऽपि प्रकाशते ।
तावानेव स मोक्षेऽपि नाधिक्यं तस्य किंचन ॥
अथ संसारवेलायामानन्दो न प्रकाशते ।
नह्यप्रकाशनं युक्तं स्वप्रकाशस्य वस्तुनः ॥
यद्यसौ न प्रकाशेत किं तर्ह्यन्यत्प्रकाशते ।
आत्मस्वरूपमितिचेन्ननु चानन्द एव तत् ॥
तच्चेत्प्रकाशते नूनमानन्दोऽपि प्रकाशते ।
तेन शब्दादिविषयजन्ययोस्सुखदुःखयोः ॥
निवृत्तिरेव संसारादपवर्ग इतीर्यते ।
सुखदुःखविहीनस्तु मुक्तः स्वस्थोऽवतिष्ठते ॥
तस्मान्मोक्षो निरानन्दः दुःखलोपात्पुमर्थता ।
पार्थसारथिमिश्राणामाहैवं शास्त्रदीपिका ॥

(118) अधिकारी.

1 अथातो मोक्षशास्त्रस्य वर्णाश्रमविशेषतः ।
अधिकारिविकल्पोऽयं संक्षेपादवधार्यताम् ॥
अथात्र प्राञ्च आचार्याः बादरिप्रमुखाः पुनः ।
इच्छन्ति वेदशास्त्रादिं नरमात्राधिकारिकम् ॥
2 अपशूद्राधिकारास्तु वेदाः जैमिनिसम्मताः ।
तथैवचोपनिषदः बादरायणसम्मताः ॥
3 तमेतमिति शास्त्रे च ब्राह्मणग्रहणात्तथा ।
अथ ब्राह्मण इत्यत्र ब्राह्मणग्रहणादपि ॥
न कर्मणेत्यादिशास्त्रे त्यागसंन्यासकीर्तनात् ।
संन्यासिनो ब्राह्मणास्स्युरिह मोक्षाधिकारिणः ॥
तत्साधने मोक्षशास्त्रेऽप्येत एवाधिकारिणः ।
इति सिद्धान्तयामासुः प्राञ्चः केचन सूरयः ॥
4 सर्वेषां च द्विजातीनां तथैवाश्रमिणामपि ।
अधिकारं विदुर्धीराः सुरेश्वरमुखाः परे ॥
श्रुतिस्थब्राह्मणपदमुपलक्षणमित्यपि ।
व्याख्याय चापशूद्राणामधिकारं विदुर्हि ते ॥
ज्ञानमात्रे तु सर्वेषामधिकारोऽस्ति यद्यपि ।
संन्यासनिष्ठा विद्यैव मोक्षसाधनमिष्यते ॥
यल्लिङ्गं गृहिणां विद्यासंप्रदायादिकर्तृता ।
न तत् स्थितन्यायबाधं कर्तुमुत्सहते क्वचित् ॥

न हि शास्त्रशतेनापि क्वचिद्ध्वान्तप्रकाशयोः ।
संभवः शक्यते कर्तुं लिङ्गैः किमुत केवलैः ॥
इति मुण्डकभाष्यस्थः श्रीशाङ्करविनिर्णयः ।
अत्र श्रीरामकृष्णार्यवाक्यमेतान्निशम्यताम् ॥
केचित्तु भिक्षवः स्वीयमाश्रमं केवलं पुनः ।
मोक्षाश्रममिति भ्रान्ताः ख्यातिपूजापरायणाः ॥
गृहस्थादिकृताष्टाङ्गप्रणामाद्यैश्च केवलम् ।
आत्मानमधिकंमन्याः तेषु प्रद्वेषमात्रतः ॥
तेषां ब्रह्मविचाराधिकारो नास्तीति मन्वते ।
तथा वसिष्ठजनकैरैक्याद्याख्यायिका अपि ॥
प्रच्छादयन्तो दृश्यन्ते इत्युक्तिरवलोक्यते ।
5 अथापि केचिद्विबुधाः धीरोदारा भवन्ति ये ॥
निर्गुणब्रह्मविद्यायां शूद्राणामपि ते स्फुटम् ।
स्ववर्णधर्मानुष्ठानादधिकारं प्रचक्षते ॥
इतिहासपुराणाभ्यामर्थितैतेषु युज्यते ।
अपित्वध्ययनोपात्तज्ञानमूला निषिध्यते ॥
विद्योत्पत्तिस्तु विमलदेहद्वारा भविष्यति ।
तस्माच्छूद्रोऽपि विद्यार्थं कर्म कर्तुमिहार्हति ॥
6 एवं संन्यासाश्रमोऽपि पापभेदविनाशकृत् ।
चित्तशुद्धिमुखात्कैश्चिद्विद्यायामङ्गमिष्यते ॥

जनकप्रमुखा ये तु विद्यावन्त इति श्रुताः ।
तेषां प्राग्जन्मसंन्यासाद्विद्यावाप्तिं विदुर्हि ते ॥
इच्छन्ति केचिच्छ्रवणाद्याधिकारिविशेषणम् ।
संन्यासमित्यतो विद्यासाधनत्वेन स श्रुतः ॥
अनन्यव्यापारतया श्रवणाद्यनुतिष्ठतः ।
दृष्टद्वारैव विद्यायामस्याङ्गत्वं विदुः परे ॥
संन्यस्य श्रवणं कुर्यादित्येष नियमे विधिः ।
यतश्च श्रवणाद्यर्हः कर्मच्छिद्रेषु गृह्यपि ॥
द्विजानामविशेषेण संन्यासः श्रूयते ततः ।
श्रवणं निर्निरोधं स्यात् अत्र क्षत्रियवैश्ययोः ॥
केचित्तु ब्राह्मणस्यैव संन्यासाश्रमशास्त्रतः ।
विट्शूद्रयोस्तु श्रवणं तदनङ्गं प्रचक्षते ॥
अन्ये संन्यासिनां मुख्यमधिकारं प्रचक्षते ।
इतरेषां तु गौणं तं क्रामिकं विधुरादिवत् ॥
7 सर्वाश्रमपरित्यागो ब्राह्मण्यमिति केचन ।
नग्नचर्येषु संवर्तदुर्वासःप्रभृतिष्वपि ॥
विद्यासंदर्शनात्सर्वाश्रमिष्वत्याश्रमिष्वपि ।
अधिकारं विदुर्ब्रह्मविद्यायास्तत्र च स्मृतिः ॥
यं न सन्तं नवा सन्तं नाश्रुतं न बहुश्रुतम् ।
न सुवृत्तं न दुर्वृत्तं वेद कश्चित्स ब्राह्मणः ॥

गूढधर्माश्रितो विद्वानज्ञानचरितं चरत् ।
अन्धवज्जडवच्चैव मूकवच्च महीं चरेत् ॥
8 इत्येवं मतभेदे च स्थिते केचिद्विपश्चितः ।
स्वातन्त्र्येण विचार्यैत्थमुल्लिखन्ति सिराग्रहाः ॥
छान्दोग्योपनिषन्निष्ठाः ये चैकाश्रम्यवादिनः ।
गृहस्थ एव विद्यायामधिकारीति तन्मतम् ॥
ये वाज्युपनिषन्निष्ठाः ते तु संन्यासिलक्षणः ।
ब्राह्मणस्सोऽधिकारीति यथाश्रुत्याऽभिमेनिरे ॥
इतरेषु प्रबन्धेषु परस्परविनिन्दया ।
सर्वेषामधिकारोऽपि ज्ञायते तत्रतत्र हि ॥
ज्ञानकर्मविवादोऽयं जगतस्सदसत्त्वतः ।
दृष्टिमूलः यतो बन्धोऽप्यास्ते सदसदात्मकः ॥
9 अथान्ये ब्रह्मविद्यायां सर्वेषां मोक्षसाधने ।
अधिकारं विदुर्धीराः तद्विशेषव्यवस्थया ॥
ब्रह्मविद्या द्विधा भक्तिः प्रपत्तिश्चेति शास्त्रतः ।
आद्यायामधिकारस्तु यज्ञदानाद्युपस्कृतः ॥
अपात्याश्रमिणां सर्वाश्रमिणां च द्विजन्मनाम् ।
अत्याश्रमी नग्नचर्यो बाह्य इत्येव तन्मतम् ॥
आनुकूल्याद्युपकृता प्रपत्तिर्या त्वनन्तरा ।
तस्यां हि प्राणिमात्रस्य स्यादसाविति निर्णयः ॥

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥
अपिचेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यस्सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥
सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥
समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
भक्त्या परमया वापि प्रपत्त्या वा महामुने ॥
प्राप्योऽहं नान्यथा प्राप्यो मम कैंकर्य लिप्सुभिः
इत्याह भगवान् साक्षात्सर्वस्य शरणं सुहृत् ॥
प्रपत्त्या भजमानास्तु यादृशास्तादृशा अपि ।
भगवान् सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यत्यसंशयम् ॥
भक्तिमार्गोऽपि सर्वेषां यद्यपि श्रूयते तथा ।
विशिष्टदेहावच्छिन्नप्रारम्भोऽसौ न दुष्यति ॥
धर्मव्याधादयोऽप्यन्ये पूर्वाभ्यासाज्जुगुप्सिते ।
वर्णावरत्वे संप्राप्तास्संसिद्धिमिति निर्णयः ॥
शूद्रार्चनादिप्रसङ्गे श्रीकृष्णमुनिभिः पुनः ।
उक्तैषा प्रतिबन्दीति वेदान्तार्यैरुदाहृतम् ॥

हविष्कृतो यथा शूद्रे यथा वा बहुयाजिनः ।
निर्वाहः क्रियते तद्वत् शास्त्रस्यास्यापि नान्यथा ॥
10 स्त्रीणां निर्वाणदीक्षा च स्थापिता जैनपण्डितैः ।
तथा मोक्षाधिकारश्च प्रयासेन समर्थितः ॥
स्त्रीणां च ब्रह्मविद्यायां वेदाचार्येण बोधितः ।
अधिकारश्श्रुतो ब्रह्मवादिनीनां क्वचित्क्वचित् ॥
स्त्रीणां तु पारिव्रज्यायामधिकारो निरूपितः ।
बोधायनेनेति पुनः मस्करी प्राह धर्मवित् ॥
स्त्रीणां तथैव शूद्राणां दीक्षा आगमबोधिताः ।
तथाच सर्वे सर्वानुग्रहणैकधियो बुधाः ॥
11 एवंविचारे द्विविधो मार्गो निष्कृष्य लभ्यते ।
एकस्त्विदानीं सर्वेषां यथाशक्त्यधिकारकृत् ॥
विशिष्टदेहे विद्यायाः निष्पत्तिमभिधित्सति ।
अन्यो विशुद्धं जन्मैव विद्यारम्भेऽभिवाञ्छति ॥
समाप्तैः फलसिद्धेश्च नियमं नाभिधित्सति ।
अपि मार्गद्वयं सर्वानुग्रहैकप्रवृत्तिमत् ॥
अयं विशेषस्त्वनयोः कल्पयोरवधार्यते ।
तारतम्यव्यवस्थाऽद्ये प्रायस्साम्यमनन्तरे ॥
12 अत्र तत्त्वमिदं बोध्यमधिकारनिरूपणे ।
अधिकारनिषेधोऽयं न स्वभावनिबन्धनः ॥

आचार्यानुग्रहाभावमूलशास्त्रानिबन्धनः ।
इति प्राहुर्महाचार्याः पाराशर्यजये स्फुटम् ॥
मानं रहस्याम्नायस्थं असूयायाः परस्परम् ।
प्रादुर्भावप्रकरणं इति तत्त्वविदां मतम् ॥
तस्मिन् प्रकरणे सर्वाधिकारं ज्ञानमुच्यते ।
ज्ञानपर्युत्थानकर्मा शूद्र इत्यंशदर्शनात् ॥
न पर्युत्थास्याम इति यदाऽवोचन्नसूयया ।
न वो वक्ष्याम इतिच ब्राह्मणा अपिचाब्रुवन् ॥
पर्युत्थानं हि शुश्रूषा तत्तस्मादाभ्यसूयकम् ।
दूरीकरणमित्येवं रहस्यं प्रकटीकृतम् ।
अधिकारविचारोऽयं गम्भीरोऽपि निरूपितः ।
सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु ॥

(119) कर्मज्ञानतत्त्वम्.

1 अथ कर्मज्ञानतत्त्वं सूक्ष्मदृष्ट्या विचार्यते ।
लौकिका हि विदुः कर्मज्ञानयोर्महदन्तरम् ॥
परीक्षकास्तु तत्त्वज्ञाः प्राविवेकं न कंचन ।
परिभाषामन्तरेण न निरूपयितुं क्षमाः ॥
ज्ञानं कर्मैव सूक्ष्मं स्यादान्तरं स्फुरणं हि तत् ।
बाह्यं तु स्फुरणं लोके क्रिया कर्मेति कथ्यते ॥

2 आत्मनः परिणामोऽयं ज्ञानमित्याह जैमिनिः ।
आत्मनः स्रवणं ज्ञानमित्यर्हत्प्रमुखा विदुः ॥
अन्तःकरणवृत्तिस्स्यादिति कापिलपद्धतिः ।
आत्मनोनुऽभवो नाम तस्य स्फुरणमुच्यते ॥
स्फुरणं स्फुरतो धर्मः नित्यो वह्न्युज्ज्वलत्ववत् ।
तमेव मार्गं प्रायेण द्वैताद्वैतविदो विदुः ॥
आत्मनो धर्मभूतं च नित्यं द्रव्यान्तरं स्थितम् ।
तस्य च प्रसरः ज्ञानं विशिष्टाद्वैतसम्मतम् ॥
बुद्धिनित्यत्ववादश्च योऽसौ शाबरसंमतः ।
स पर्यवस्यत्यत्रेति प्रायो मीमांसका विदुः॥
ज्ञानं विषयभेदेन भिन्नं व्यापारलक्षणम् ।
तस्याश्रयो बुद्धिरेका नित्येति च समर्थिता ॥
सा च प्रमात्रात्मिकेति न्यायरत्नाकरोदिता ।
यदि बुद्धिः प्रमातृस्था शक्तिरेकेति कथ्यते ॥
तादात्म्यानभ्युपगमे विशिष्टाद्वैतनिर्णयः ।
अत्यन्ताभेदपक्षे तु स्यादद्वैतविनिर्णयः ॥
तादात्म्यपक्षः भाट्टेष्टः शक्तिशक्तिमतोरपि।
सच भर्तृप्रपञ्चेष्टो वादस्स्यादिति निर्णयः ॥
एवं स्थिते विनाशं चाप्युद्भवं च निरन्वयम् ।
आहुर्ये न्यायनिपुणाः ते ज्ञानं गुणमब्रुवन् ॥

न तेन कश्चिद्विकृतिरात्मनामिति मेनिरे ।
अन्ये कर्मापि विकृतिर्न स्यादिति विदुर्बुधाः ॥
अतो भूतपरिस्पन्दं भूतचैतन्यवादिनः ।
ज्ञानधातुं विजानन्ति स स्पन्दः पारिणामिकः ॥
3 ज्ञानानां कर्मशब्देन ज्ञानशब्देन कर्मणाम् ।
प्रयोगस्य व्यतिकरः प्रायेणाभेदगोचरः ॥
प्रचोदयाद्धिय इति धीशब्दः कर्मवाचकः ।
जातवेदाश्चेति वेदशब्दः कर्मार्थको मतः ॥
जानात्यर्थः करोतिश्च सूत्रितश्शब्ददर्दुरे ।
गत्यर्थाश्चापि बुद्ध्यर्था इति न्यायोऽपि सम्मतः ॥
योऽश्वमेधेन यजते य एनं वेद चेत्यपि ।
समप्रधाननिर्देशस्स्थूलसूक्ष्मनिबन्धनः ॥
तं समन्वारभेते द्वे ये विद्याकर्मणी इति ।
वेदान्तवादोऽप्यत्रैव संधिमिच्छति तत्त्वतः ॥
प्राकट्यं व्यवहारो वा संवित्तिर्विषयस्य वा ।
तथाऽऽवरणभङ्गो वा ज्ञानस्य फलमुच्यते ॥
तथाच तदवच्छिन्नव्यापारो धातुबोधितः ।
ततश्च पाकादितुल्यं ज्ञानं स्यात्सर्वसंमतम् ॥
वाचिकैः पक्षिमृगता मानसैरन्त्यजातिताम् ।
शरीरजैः कर्मदोषैः याति स्थावरतां नरः ॥

इत्यत्र मानसं कर्म ज्ञानं हि मनुनोदितम् ।
उपासनात्मके कर्मणीतिच क्वचिदुच्यते ॥
4 ततः कर्माङ्गकं ज्ञानं ज्ञानाङ्गं कर्म चेत्यपि ।
विवादोऽपि स्थूलसूक्ष्मभेदात्प्राधान्यलिप्सया ॥
ततश्च विस्तरस्तस्य स्फुट एवाहि धीमताम् ।
इत्थं तत्त्वं सूक्ष्मदृष्ट्या सूचितं बुद्धिकर्मणोः ॥
अनाग्रहदृशामत्र सामरस्यं निराकुलम् ।
परिज्ञानाद्भवेन्मुक्तिरेतदालस्यलक्षणम् ॥
आक्षिपात्रं भवेद्विद्वान् कर्मणामिति कीर्तनम् ।
प्राधान्यतोऽतिवादास्स्युरिति सर्वं समंजसम् ॥

(120) प्रत्यक्षप्राबल्यवादः.

1 प्रमाणानां विरोधो हि मिथस्संपरिदृश्यते ।
प्रत्यक्षयोरागमयोः तथाचैवानुमानयोः ॥
प्रत्यक्षागमयोश्चापि तथाऽध्यक्षानुमानयोः ।
तथाऽनुमानागमयोः अन्यत्राप्येवमूह्यताम् ॥
तत्र प्राबल्यदौर्बल्यचिन्तेत्थं तीर्थकृन्मता ।
तत्र प्रत्यक्षैकमानवादिसिद्धान्तसंग्रहः ॥
प्रत्यक्षं हि प्रमाणानां प्रथमं सर्वसम्मतम् ।
तत्रापि दुष्टकरणमूलं नार्हति मानताम् ॥

याहच्छिकात्तु संवादाल्लिङ्गादौ मानताभ्रमः ।
वस्तुतस्तादृशी बुद्धिः प्रत्यक्षेऽन्तर्भवत्यपि ॥
औषधायस्सूर्यचन्द्रकान्तादिन्यायतोऽखिलः ।
विषघ्नमन्त्रयन्त्रादिफलसंवाद इष्यते ॥
प्रत्यक्षं तदधीनं चाप्यन्वयव्यतिरेकयोः ।
दर्शनं चावलम्ब्योत्थं शास्त्रं लौकायतं मतम् ॥
लोकसिद्धानुमानादौ क्वचित्प्रामाण्यमिष्यते ।
नैतावताऽतीन्द्रियाणामर्थानां सिद्धिसंभवः ॥
नीतिशास्त्रं स्तेयशास्त्रं कामशास्त्रं च तादृशम् ।
समन्वेत्यत्र सिद्धान्ते प्रत्यक्षैकावलम्बिनि ॥
नैवार्हतीदं प्रत्यक्षं बाधं केनापि हेतुना ।
प्रत्यक्षेण पुनर्बाधः प्रस्फुटस्सर्वसंविदाम् ॥
2 इति प्रत्यक्षसिद्धान्तेऽध्यक्षप्राबल्यनिर्णयः ।
ये पुनः कल्पनापोढनिर्विकल्पैकवादिनः ॥
तेषां तु निर्विकल्पस्य प्राबल्यं पूर्ववन्मतम् ।
तत्साधनं च लिङ्गेन निश्चयेनेत्यनूदितम् ॥
निर्विकल्पस्य विषयः स्वलक्षणमितीरितम् ।
शब्दलिङ्गेन्द्रियभवः विकल्पः दुर्बलो मतः ॥
निर्विकल्पस्य विषयं सन्मात्रं ये विदुर्बुधाः ।
शब्दादप्यस्य चोत्पत्तिं निर्बाधामुपयन्ति ते ॥

3 प्रत्यक्षाद्वैतसिद्धान्तेऽध्यक्षप्राबल्यवर्णनाम् ।
हसन्ति लौकिका यस्मात्स्वयं स्वकुचमर्दनम् ॥
सर्वेष्वपि प्रमाणेषु नूनमाभाससंभवः ।
तस्य मूलं च करणदोष इत्यपि निर्णयः ॥
तद्विज्ञानं तु बाधादिनिबन्धनमिति स्थितम् ।
क्वचित्स्वारसिको बाधः कुत्रचिद्यौक्तिको मतः ॥
प्रथमश्शुक्तिरूप्यादौ ज्वालाभेदे त्वनन्तरः ।
प्रायशो विभ्रमा एते सर्वेषामात्मसाक्षिकाः ॥
शुक्तिकारजतभ्रान्तिः मृगतृष्णाभ्रमस्तथा ।
पीतश्शङ्खः द्वौ च चन्द्रौ स्थाणुः पुरुष इत्यपि ॥
अयो दहति वक्त्रं च मलिनं स्फटिकोऽरुणः ।
स्वप्नो माया च गन्धर्वनगरं चेति विभ्रमाः ॥
देहात्मविभ्रमः खे च तलमालिन्यविभ्रमः ।
रवीन्दुमण्डलादौ च ख्यातः प्रादेशिकभ्रमः ॥
प्रात्यक्षिकभ्रमा एते एवं मानान्तरेष्वपि ।
परीक्षकाणां विदिताः तत्रैवं निर्णयक्रमः ॥
इन्द्रियेण यथा ज्ञानं तथा लिङ्गादिना सदा ।
ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां न विशेषोऽत्र कश्चन ॥
निमित्तशिल्पमन्त्रायुर्ज्योतिस्स्वप्नहृदादिषु ।
अन्वयव्यतिरेकादेरगम्ये विषये बुधाः ॥

संवाददर्शनात्प्रायः विषये पारलौकिके ।
अतिशङ्कां न कुर्वन्ति श्रद्दधानाः श्रुतिस्मृतीः ॥
असत्यपि परे लोके त्याज्यं कर्माशुभं विदुः ।
यदि न स्यात्तदा किं स्यादस्तिचेन्नास्तिको हतः ॥
यादृच्छिकश्चेत् संवादः क्वचिद्बाधादिदर्शनात् ।
प्रत्यक्षेऽपि तथा ज्ञातुं शक्यते युक्तिचिन्तकैः ॥
तस्याप्यप्रामाण्यपक्षे व्यवहारो विलीयते ।
सर्वत्र भ्रान्तिक्लृप्तिश्चेत्कल्पको न विशिष्यते ॥
प्रत्यक्षमनुमानं च यथा मानं तथाऽऽगमः ।
उपजीव्यविरोधेन ज्येष्ठं ताभ्यां न हन्यते ॥
तत्र यत्सावकाशत्वात् अन्यथासिद्धिमश्नुते ।
तद्दुर्बलं स्यान्निरवकाशं तु प्रबलं मतम् ॥
अनन्यथासिद्धमेतत्, अवकाशस्त्वसौ मतः ।
विषयान्तरलाभाख्यः क्वचित्स्यात्पदहोमवत् ॥
अथाप्रमाणकोह्यन्तर्भावः रज्जूरगादिषु ।
एवं प्रायेण विश्वस्य सत्यतावादिनो विदुः ॥
4 अथ प्रपञ्चमिथ्यात्ववाद्यविद्याविदां मते ।
प्राबल्यरीतिरेषोक्ता निर्विशेषपरश्रुतेः ॥
दोषमूलप्रसूतत्वादन्यथासिद्धिसंभवात् ।
भेदावलम्बादध्यक्षं शास्त्रबाध्यमितीर्यते ॥

तत्र दोषोऽनादिभेदवासनेति विनिर्णयः ।
निषेद्धृशास्त्रप्रामाण्यमन्यथानोपपद्यते ॥
अनादिनिधनाच्छिन्नसंप्रदायसमागतम् ।
संभावनानर्हदोषगन्धं शास्त्रं प्रतीयते ॥
ज्योतिष्टोमेनेतिशास्त्रं यत्तु भेदावलम्बि तत् ।
बाध्यते मोक्षशास्त्रेण परेणापच्छिदानयात् ॥
मोक्षशास्त्रेऽपि सगुणब्रह्मणो बोधकं तु यत् ।
बाध्यते निर्गुणपरशास्त्रेणापि परेण तत् ॥
5 अथ प्रकारान्तरेण विरोधविनिवारणा ।
असन्निकृष्टविज्ञानं शब्दविज्ञानतश्च यत् ॥
तच्छास्त्रमित्यौपवर्षं लक्षणं शबरोदितम् ।
असन्निकृष्टवाचा च द्वयमत्र जिहासितम् ॥
ताद्रूप्येण परिच्छित्तिस्तद्विपर्ययतोऽपिवा ।
इति कौमारिलव्याख्या पठ्यते श्लोकवार्तिके ॥
तद्विरोधात्सानुशयैः अन्यथा प्रोच्यते यथा ।
प्रत्यक्षादिविरोधे हि बलीयश्शास्त्रमिष्यते ॥
न विरोधं प्रपश्यामोऽध्यक्षं सन्मात्रगोचरम् ।
भेदे किंचिन्न प्रमाणं नैपुण्येन निरूपणे ॥
घटोऽस्तीतिपटोऽस्तीतिप्रतीतिव्यवहारयोः ।
अस्तित्वमध्यक्षभास्यं भ्रान्तिभास्यं घटादिकम् ॥

अस्तित्वमेव सामान्यं घटादिर्भेदलक्षणः ।
भिन्नकालज्ञानफलौ व्यवहारौ तयोर्मतौ ॥
शास्त्रं निषेधरूपेण तन्मात्रे पर्यवस्यति ।
नातः प्राप्तार्थत्वमूलमानर्थक्यं प्रसज्यते ॥
इत्यस्य विस्तरः प्रायश्श्रीभाष्यादावनूदितः ।
स निर्विकल्पैकमानवादसिद्धान्तवर्त्मगः ॥
6 विशेषमात्रविषयनिर्विकल्पकपद्धतौ ।
सामान्यमात्रविषयविदामाक्षेपसंग्रहः ॥
विचित्रवासनासिद्ध्यै विशेषोपगमो वृथा ।
विशेषाणां वासनासु हेतुताया असंभवात् ॥
तथात्वे शुक्तिरजतवासनादेरसंभवः ।
तत्तद्विषयविज्ञप्तिप्रवाहो हेतुरिष्यते ॥
आपणे सत्यरजतं यद्यप्यस्ति तथापि हि ।
मिथ्यार्थज्ञानहेतुत्वं वासनासूररीकृतम् ॥
पूर्वपूर्वभ्रमोपात्तैस्संस्कारैर्विविधैरिह ।
विकल्पवैचित्र्यसिद्धौ किं दृष्टैः कल्पितैश्च किम् ।
अतो विकल्पविषयाः विचित्रा न स्वलक्षणाः ।
कल्पने वा लाघवाय विचित्राद्वैतमिष्यताम् ॥
नचानेकस्वभावत्वमेकस्यात्र विरोधकृत् ।
रूपगन्धरसस्पर्शस्वभावाद्यणुवादिनाम् ॥

तस्माच्छुद्धं विचित्रं वाऽद्वैतं स्यात्तत्र गोचरः ।
विस्तरश्शतदूषण्यां वाद एकादशे कृतः ॥

(121) शास्त्रप्राबल्यम्.

1 अथेदानीमुक्तियुक्त्योः बलाबलविचिन्तना ।
केचिदुक्त्येकशरणाः केचिद्युक्त्येकसंश्रयाः ॥
ये पूर्वोत्तरमीमांसानिष्णाताः श्रुतिसंश्रयाः ।
शास्त्रानुकूलां युक्तिं ते मानमिच्छन्ति नान्यथा ॥
येतु वैशेषिकास्सांख्याः नैयायिकमुखाः परे ।
सर्वे ते युक्तिशरणाः युक्त्यधीनागमान्विताः ॥
उभयेषामपि मतं तत्तदुक्त्या प्रकाश्यते ।
तत्त्वं ततश्चोक्तियुक्त्योः स्पष्टमत्र भविष्यति ॥
चतुर्विधास्ते सुगताः दिक्षु तादृक्षु निष्ठिताः ।
ऊर्ध्वायां दिशि चार्वाकः सर्वेऽप्यन्तरवस्थिताः ॥
तत्र प्रत्यवतिष्ठन्ते ये त्वेकदिशि संस्थितान् ।
समाक्रान्ता भविष्यन्ति ते ह्यन्यदिगवस्थितैः ॥
नहि शक्यं लङ्घयितुं पञ्जरान्तरवस्थितिः ।
केवलं युक्तिचातुर्यैरित्येके श्रुतिमाश्रिताः ॥
2 एतदेव वचः प्रोचुः पूर्वे पूर्वेभ्य इत्यपि ।
ब्राह्मणे श्रूयते चैवं तथैवोपनिषत्स्वपि ॥

अवरेण नरेणैष प्रोक्तो ज्ञातुं न शक्यते ।
अनन्यप्रोक्त एतस्मिन्गतिर्नास्त्यन्यतो यतः ॥
नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा ।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ॥
अस्तीत्येवोपलब्धव्यः तत्त्वभावेन चोभयोः ।
अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति ॥
एषा तर्केण न मतिरापनेयेति चाब्रवीत् ।
मृत्युः कठोपनिषदि शिष्याय नचिकेतसे ॥
इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे ।
इत्थं तलवकारीयैः श्रूयते चापि वाजिभिः ॥
चोदनालक्षणं धर्मं जैमिनिस्तदसूत्रयत् ।
ब्रह्मापि शास्त्रयोनीति ह्यब्रवीद्बादरायणः ॥
3 ततस्तर्काप्रतिष्ठानादित्यप्याह स्वयं स्फुटम् ।
युक्तिस्त्वनिर्णीतबलाबलेति न्यायवित्तमाः ॥
यत्नेनानुमितोऽप्यर्थः कुशलैरनुमातृभिः ।
अभियुक्ततरैरन्यैरन्यथैवोपपाद्यते ॥
बहुकृत्वोऽपि वस्त्वात्मा युक्त्यैव परिनिश्चितः ।
देशकालादिभेदेन ज्ञायते पुनरन्यथा ॥
वेदशास्त्राविरोधी च तर्कश्चक्षुरपश्यताम् ।
रूपमात्राद्धि वाक्यार्थः केवलान्नावतिष्ठते ॥

वाक्यात्प्रकरणादर्थादौचित्याद्देशकालतः ।
शब्दार्थाः प्रविभज्यन्ते न रूपादेव केवलात् ॥
शब्दानामेव सा शक्तिः तर्को यः पुरुषाश्रयः ।
स शब्दानुगतो न्यायोऽनागमो ह्यनिबन्धनः ॥
इति भर्तृहरिः प्राह वाक्यपद्यां विचक्षणः ।
श्रुत्यर्थस्यानुकूलो यः स न्यायस्तदभीप्सितः ॥
तस्माच्छब्दः तर्कनिघ्न इति नैवावधारयेत् ।
तात्पर्यनिर्णयार्थो यस्तर्कोऽसौ शब्दलक्षणः ॥
आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना ।
यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः ॥
वाच्यर्था निहितास्सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिस्सृताः ।
तां तु यस्स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः ॥
तस्माद्विरोधे धर्मस्य निश्चित्य गुरुलाघवम् ।
यतो भूयस्ततो विद्वान् कुर्याद्धर्मविनिर्णयम् ॥
मनुव्यासप्रभृतयः क्रमादेवं वचोऽब्रुवन् ।
दुस्तर्को दूरतस्त्याज्यः विपरीतार्थबुद्धिकृत ॥
तस्माद्विरुद्धसंस्काराशिक्षितानां परस्परम् ।
विवादो नहि विश्राम्येद्युगानामयुतैरपि ॥
अतो विरुद्धसंस्कारोपरोधायैव भावना ।
संप्रदायानुरोधेनाभ्यसनीयेति देशना ॥

यावद्यावद्विवादाय मुक्तकं दीयते मनः ।
अनवस्थादिदोषेण तावत्तावद्विहन्यते ॥
अतएवाग्रहाविष्टाः सहसा नोपदेशतः ।
स्वमतं न त्यजन्तीति संशयः प्राक्प्रदर्श्यते ॥
संदिग्धास्ते तु सुकराः परिवर्तयितुं नराः ।
इत्येवं रूढसंस्कारः शिथिलीक्रियते बुधैः ॥
4 ननु सर्वत्र सिद्धान्ते प्रायेण व्यवहारतः ।
लाघवन्यायसहितात्पदार्थपरिशुद्धयः ॥
स एव लाघवन्यायः लौकिकस्सर्वसम्मतः ।
पश्वादयोऽप्यार्जवेन धावन्ति ग्रासतत्पराः ॥
एकमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवसुखं बुधाः ।
मन्यन्त इति सिद्धान्तः वैयाकरणसम्मतः ॥
तथा लाघवतर्कानुगृहीतो यः प्रवर्तते ।
विचारस्स हि मीमांसेत्याहुर्वैदिकसूरयः ॥
लाघवेनैव तर्केण पदार्थानां व्यवस्थितिम् ।
निरूपयन्ति धीमन्तः तार्किका अपि यौक्तिकाः ॥
सैषा लाघवबुद्धिस्तु वासनामनुवर्तते ।
वासना नाम संस्कारः स दृढो यत्र यादृशः ॥
तादृशस्तत्र फलति नहि निम्बो मधुद्रवः ।
तस्माद्वासनया वस्तुसिद्धिर्बौद्धेति सिध्यति ॥

5 अत्रोच्यते संप्रदायो नाम सर्वगुरुर्महान् ।
परंपरासमायातोपदेशस्सोऽभिधीयते ॥
आम्नाय इत्यादिशब्दाः तत्पर्यायाः प्रकीर्तिताः ।
सत्संप्रदायराहितशास्त्रैरर्थस्य निर्णयः ॥
दुष्करः तत्सदाचार्यसंप्रदायपरिग्रहः ।
शास्त्रामूलस्संप्रदायश्शास्त्राननुमतोऽपिवा ।
भ्रमादिसंभावनया बाह्यतुल्यो मतो बुधैः ॥
स च सन्नित्यसंश्चेति द्विविधः प्रथमोऽत्र नः ।
द्वितीयस्तु परेषां स्यात् नियमो हेतुदर्शनात् ॥
अधर्मेन्द्रियदोषाभ्यां दुस्तर्काभ्यासतोऽपिवा ।
दुर्व्याप्तेरनुसन्धानाद्विप्रलम्भकवाक्यतः ॥
तत्त्वाग्रहेण सहितात् अतत्त्वग्रहसम्भवः ।
स एव संप्रदायश्चेत् असंत्स्यादिति नः क्रमः ॥
परेषामथ सिद्धान्ते हेतुदर्शनमुच्यते ।
अनन्यगतिकाः स्वैररसिका जीविकार्थिनः ॥
तथा पाषण्डिसंसर्गाः कुतर्काभ्यासिनोऽलसाः ।
एवमादिप्रसिद्धास्ते सूरिभिः प्रकटीकृताः ॥
हेतवोऽनन्यथासिद्धाः वीक्ष्यन्तां तन्त्रवार्तिके ।
प्रतिमाजल्पनं शाखाभङ्गः पाषाणपाटनम् ॥
इत्यादिभिः कुत्सिताभिः सिद्धिभिर्वञ्चिताः परे ।

हेतुदर्शनशून्या ये ते सन्त्येव महाजनाः ॥
न महत्ता देशतो वा कालतो वापि शक्तितः ।
आकारतो वा संख्यातः नान्यस्मादपि कारणात् ॥
एवं विशेषं पश्यन्तः तुष्यन्तस्सन्ति वैदिकाः ।

(122) युक्तिप्राबल्यम्.

1 एवं वैदिकसिद्धान्तसंप्रदायस्य संग्रहः ।
अथ यौक्तिकसिद्धान्तहृदयं संप्रकाश्यते ॥
अभ्यासात्प्रतिभाहेतुः शब्दः सर्वैरपि स्मृतः ;
बालानां च तिरश्चां च यथार्थप्रतिपादने ॥
आद्यः करणविन्यासः प्राणस्योर्ध्वं समीरणम् ।
स्थानानामभिघातश्च न विना शब्दभावनाम् ॥
प्रमाणत्वेन तां लोकः सर्वः समुपगच्छति ।
व्यवहाराः प्रवर्तन्ते तिरश्चामपि तद्वशात् ॥
स्वरवृत्तिं विकुरुते मधौ पुंस्कोकिलः कथम् ।
जन्त्वादयः कुलायादेः करणे शिक्षिताः कथम् ॥
आहारप्रीतिविद्वेषप्लवनादिक्रियासु कः ।
जात्यन्वयप्रसिद्धासु प्रयोक्ता मृगपक्षिणाम् ॥
इतिहि प्रतिभावादिवार्ताक्षौदुम्बरायणाः ।
प्रतिभायास्तु माहात्म्यं वर्णयन्तीति विश्रुतम् ॥

वाक्यपद्यामपि विधिविवेके चाभिसूचितम् ।
हरिणा मण्डनेनापि सर्वसारार्थदृश्वना ॥
तस्मात्सर्वोऽभ्युपगमः प्रतिभामूल इष्यते ।
न शब्दः प्रतिभाहेतुः स्वातन्त्र्यमुपगच्छति ॥
शास्त्राणां चापि तात्पर्यनिर्णयोऽभ्यासमूलकः ।
तस्माद्यौक्तिक एवार्थः स्थापितश्शब्दमूर्धनि ॥
शब्दपृष्ठस्थितन्यायसहस्राधिक्रियात्मके ।
शास्त्रेऽपि न्यायलभ्योऽर्थः शास्त्रसिद्ध इतीष्यते॥
2 अथ शास्त्रेण सिद्धोऽर्थो यदि युक्त्या दृढो भवेत् ।
एवं स्यात्कृपणश्शब्दः नेष्टोऽसंप्लववादिनाम् ॥
अत्रोदाहरणं स्पष्टमेषोऽप्यर्थो भविष्यति ।
वेदान्तसिद्धान्ताक्षेपः तत्त्वटीकानिरूपितः ॥
स्वप्रकाशा मतिः धीत्वात् दृश्यत्वाद्विमतं मृषा ।
इत्याद्यैरेव सिद्धेऽर्थे कृतं त्रय्यन्तचिन्तया ।
ननुचोपासनादीनां सिद्ध्यै तच्चिन्तनं यदि ।
तच्चेदद्वैतधीसिद्ध्यै वृथा स्यात्तद्विरोधतः ॥
फलान्तरार्थं तच्चिन्ता यदीष्येत तथासति ।
मोक्षप्रधानशास्त्रत्वं गतं शारीरकस्य तत् ॥
श्रुतिवाक्यप्रसूता धीर्बाधिका नानुमानिकी ।
इति शक्यं न वदितुं अदृष्टस्यानपेक्षणात् ॥

अनुमानाच्च शब्दाच्च रज्जुसर्पादिविभ्रमे ।
अविशेषेण बाधो हि दृष्टस्तद्वदिहापिच ॥
प्रत्यक्षं शब्दजन्यं तु दुस्साधं चापि निष्फलम्
परोक्षादपि शब्दोत्थाद्बाधसंभवदर्शनात् ॥
नचानुमानाशक्तस्य वाक्यमित्यपि युज्यते ।
सर्वमानान्तरानर्हे शास्त्रप्रामाण्यसाधनात् ॥
अनेकनियमोपेतवाक्यचिन्ताविधेर्वरम् ।
लोकदृष्ट्यनुसारेण युक्तिचिन्तेति निर्णयः ॥
3 ब्रह्मापि जगतो हेतुः युक्तिभिः किल साध्यते ।
प्रधानं जगतो हेतुः प्रसिद्धं ह्यानुमानिकम् ॥
श्रोतव्यश्चाथ मन्तव्य इति तर्कसहायताम् ।
श्रुतिरेव स्वयं प्राह तस्मात्तर्को विशिष्यते ॥
केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्तव्यो विनिर्णयः ।
युक्तिहीनविचारे तु धर्महानिः प्रजायते ॥
इत्थं बृहस्पतिः प्राह स्मृतितन्त्रे व्यवस्थितिम् ।
पूर्वापरानुमानेन लोको युक्तौ प्रतिष्ठितः ॥
अबलाबालगोपालहालिकप्रमुखा अपि ।
बुद्ध्यन्ते नियतादर्थादर्थान्तरमसंशयम् ॥
अनुमानापलापे तु प्रत्यक्षादपि दुर्लभा ।
लोकयात्रेति लोकास्स्युः चित्रिता इव निश्चलाः

यत्नेनानुमितोऽप्यर्थः कुशलैरनुमातृभिः ।
अभियोगशतेनापि सोऽन्यथा नोपपद्यते ॥
तस्माद्युक्त्यैव जगतो व्यवहारो व्यवस्थितः ।
युक्तिहीनव्यवहृतावुन्मत्त इति गीयते ॥
तस्माददृष्टतत्त्वानां सापराधं बहुच्छलम् ।
दर्शनं चापि वचनं नित्यमेवानवस्थितम् ॥
ऋषीणां दर्शनं यच्च तत्त्वे किंचिदवस्थितम् ।
न तेन व्यवहारोऽस्ति न तच्छब्दनिबन्धनम् ॥
तलवद्दृश्यते व्योम खद्योतो हव्यवाडिव ।
तत्र नास्ति तलं व्योम्नि न खद्योतो हुताशनः ॥
मधुरं तिक्तरूपेण श्वेतं पीततया तथा ।
गृह्णन्ति पित्तदोषेण विषयं भ्रान्तचेतसः ॥
तथा वेगेन धावन्तो नाव्यारूढाश्च गच्छतः ।
पर्वतादीन्विजानन्ति भ्रमेण भ्रमतश्च तान् ॥
मण्डूकवसयाऽक्ताक्षाः वंशानुरगबुद्धिभिः ।
गृह्णन्तीत्यादिविषयः श्लोकवार्तिकविस्तृतः ॥
तस्मात्प्रत्यक्षमप्यर्थं विद्वानीक्षेत युक्तितः ।
न दर्शनस्य प्रामाण्यात् दृश्यमर्थं प्रकल्पयेत् ॥
इममर्थं भर्तृहरिः वाक्यपद्यां न्यदर्शयत् ।
न्यायवार्तिकतात्पर्यटीकाकृद्वचनं यथा ॥

प्रत्यक्षकलितं चार्थं बुभुत्सन्तेऽनुमानतः ।
तर्कसिद्धान्तरसिका इति पूर्वैरुदाहृतम् ॥
4 इदानीमिव सर्वत्र दृष्टान्नाधिकमिष्यते ।
उपलम्भानुसारेण व्यवस्थासिद्धिरीदृशी ॥
सर्वदाचापि पुरुषाः प्रायेणानृतवादिनः ।
यथाऽद्यत्वे न विस्रम्भः तथाऽतीतार्थकीर्तने ॥
नच पुंवचनं सर्वं सत्यत्वेनावगम्यते ।
वागिह श्रूयते यस्मात्प्रायादनृतवादिनी ॥
इति च श्रूयते श्लोकवार्तिके तन्त्रवार्तिके ।
कुमारिलमहाप्राज्ञमुखाल्लोकोत्तरं वचः ॥
सुगतो यदि सर्वज्ञः कपिलो नेति का प्रमा ।
तावुभौ यदिसर्वज्ञौ मतिभेदः कथं तयोः ॥
न ह्याप्तवादा नभसो निपतन्ति महासुराः ।
युक्तिमद्वचनं ग्राह्यं सर्वैरपि परीक्षकैः ॥
सर्वैर्दार्शनिकैः लोके शास्त्रं किञ्चिन्निधीयते ।
तत्प्रामाण्ये विवादस्तु वादिनामवशिष्यते ॥
प्रमाणान्तरदृष्टं हि शब्दोऽन्यं प्रापयेत्सदा ।
स्मृतिवच्च स्वयं तस्य प्रामाण्यं नोपपद्यते ॥
नूनं तत्रानुभूतोऽसावित्याप्तोक्तिनिबन्धना ।
बुद्धिस्साक्षाददृष्टेऽपि युक्ताऽर्थे पुरुषोक्तितः ॥

नात्मीयादन्यदीयाद्वा प्रत्यक्षादेर्विना क्वचित् ।
वचसस्सत्यता दृष्टा सर्वशब्देष्वयं विधिः ॥
बुद्धाद्यन्तेवासिनां तु बुद्धाद्यास्सर्ववेदिनः ।
तत्प्रणीतानि शास्त्राणि प्रमाणानीति ते विदुः ॥
ईश्वरेणोपदिष्टास्स्युः वेदास्सकलवेदिना ।
प्रमाणमाप्तवाक्यत्वादित्याहुः किल तार्किकाः ॥
अपौरुषेया वेदास्स्युः प्रमाणमिति वैदिकाः ।
दूषणं भूषणं चापि प्रवर्धेते दिनेदिने ॥
अपिचापौरुषेयेषु वेदेषूपनिषत्सु वा ।
यदा तात्पर्यभेदास्स्युः किं नित्यागमसंपदा ॥
पार्थसारथिमिश्राणां या पुनश्शास्त्रदीपिका ।
तस्यां ज्ञेयं पद्यमिदं स्फुटं बह्वर्थगर्भितम् ॥
प्रबोधचन्द्रोदयेऽपि कृष्णमिश्रविनिर्मिते ।
पौर्वापर्यविचारस्तु तिष्ठत्वत्र न चादरः ॥
प्रत्यक्षादिप्रमासिद्धविरुद्धार्थाभिधायिनः ।
वेदान्ता यदि शास्त्राणि बौद्धैः किमपराध्यते ॥
इति, तैस्तु पुराणस्थं नूनं नालोचितं वचः ।
तदत्र लिख्यते किंचिन्मध्यस्थैरवधार्यताम् ॥
नैतद्युक्तिसहं वाक्यं हिंसा धर्माय चेष्यते ।
हवींष्यनलदग्धानि फलायेत्यर्भकोदितम् ॥

यज्ञैरनेकैर्देवत्वं अवाप्येन्द्रेण भुज्यते ।
शम्यादि यदि चेत्काष्ठं तद्वरं पत्रभुक्पशुः ॥
निहितस्य पशोर्यज्ञे स्वर्गप्राप्तिर्यदीष्यते ।
स्वपिता यजमानेन किंनु तस्मान्न हन्यते ॥
तृप्तये जायते पुंसः भुक्तमन्येन चेत्ततः ।
दद्याच्छ्राद्धं श्रमायान्नं न वहेयुः प्रवासिनः ॥
एवं विनिन्दां वेदानां यथा तैर्विनिवार्यते ।
तथोपनिषदां निन्दा न निवार्येत किं परैः ॥
6 तद्युक्त्यधीनस्सकलः संरम्भः खलु वादिनाम् ।
इत्याहुरिह युक्तिज्ञाः ये विपश्चिदपश्चिमाः ॥

(223) विचारनिरूपणम्.

1 विचारो द्विविधो लोके फलभेदाद्व्यवस्थितः ।
तत्त्वनिर्णयसिद्ध्यर्थः विजयैकार्थ इत्यपि ॥
तत्राद्यो द्विविधः पूर्वः उपदेशात्मको मतः ।
द्वितीयो न्यायमूर्तिस्स्याद्यो वादो गुरुशिष्ययोः ॥
अनन्तरोपि द्विविधः विजिगीषुकथात्मकः ।
जल्प एको वितण्डा तु द्वितीय इवि निर्णयः ॥
वादिनिग्रह एवात्र नैव तत्त्वविनिर्णयः ।
इति जानन्तोऽपि कथां वितण्डामेव केवलाम् ॥

आश्रित्य परपक्षांस्तान् खण्डयन्ति विपश्चितः ।
वितण्डामेव च कथामाश्रित्य परखण्डनम् ॥
वक्तव्यमिति हि प्राह श्रीहर्षो विश्वखण्डकः ।
अद्वैतसिद्धावपि च मधुहन्तृसरस्वती ॥
वादजल्पवितण्डानां कथामन्यतमामपि ।
आश्रित्य परपक्षाणां प्रतिक्षेपं ब्रवीत्यपि ॥
एवंच वादिविजयमात्रेणैव समीहितम् ।
सिषाधयिषतीत्येव कुतस्तत्त्वविनिर्णयः ॥
यद्यपि न्यायसिद्धान्ते ताभ्यां निग्रह ईप्सितः ।
न तं तत्त्वव्यवस्थायां प्रमाणं बहवो विदुः ॥
तदेतस्मात्संप्रदायसंस्कारो मूलकारणम् ।
विचारविप्लवस्सर्वः ताडयते बाह्यडिण्डिमः ॥
2 अत्र केचन तत्त्वज्ञाः युक्तिज्ञपरिशीलनात् ।
अभिप्रायमिमं कंचिद्विशदीकुर्वते यथा ॥
आदौ सांख्याः सर्ववस्तुनित्यतासाधनोद्यताः ।
क्षणभङ्गं निरुन्धन्ति युक्तिजालैर्मनोहरैः ॥
गत्वागत्वाऽथ ते योगाचारसिद्धान्तसागरे ।
निमज्जन्ति यतो व्यक्तिरुत्पत्तिश्चाविलक्षणा ॥
उत्पत्तिनाशयोरस्तिनास्त्योरप्येकता मता ।
विज्ञानवादसिद्धान्तः पर्यायेणायमेव हि ॥

सांख्याः स्वभावसिद्धान्तमङ्गीकुर्वन्ति भूयसा ।
अर्धं तेनाकस्मिकतावादमेते समाश्रिताः ॥
3 वैशेषिकाद्या विज्ञानवादोद्धूननतत्पराः ।
क्षणवादे निमग्नास्स्युः प्रतिक्षणविशेषतः ॥
यद्यप्यात्मादयो नित्याः पदार्थाः स्वीकृताः पुनः ।
तथापि धर्माः तेषां स्युः क्षणिका इति तन्मतम् ॥
धर्मधर्म्यैक्यपक्षे तु क्षणवादः प्रतिष्ठितः ।
पीलुपाके तु विस्पष्टः क्षणसिद्धान्तसङ्ग्रहः ॥
भूतचैतन्यभङ्गाय पीलुपाकस्समाश्रितः ।
प्रतिक्षणं देहभेदे स्मरणं नोपपद्यते ॥
क्षणभङ्गोपरोधाय पिठरे पाक आहते ।
भूतचैतन्यवादस्तु तदानीं स्याद्दुरुद्धरः ॥
अत एव प्रसिद्धास्तेऽप्यर्धवैनाशिका इति ।
निरन्वयोत्पत्तिनाशाधारा हि क्षणभङ्गिता ॥
4 पूर्वमीमांसका वेदापौरुषेयैकदृष्टयः ।
प्रायो लौकायतं मार्गं संश्रिता इति कीर्तिताः ॥
प्रायेणैव हि मीमांसा लोके लोकायतीकृता ।
तामास्तिकपथे कर्तुमयं यत्नः कृतो मया ॥
इति वार्तिककारोऽपि प्राहारम्भे कुमारिलः ।
अथाप्यपयशस्तेषामद्यापि न हि शाम्यति ॥

विग्रहो हविरादानं युगपत्कर्मसन्निधिः ।
प्रीतिः फलप्रदानं च देवतानां न विद्यते ॥
देवानचेतनानेवं ये विदुस्तान्महाशयान् ।
अर्धलोकायतानाहुरत एवेतरे बुधाः ॥
सर्वेषामपि शब्दानामाहुः सर्वार्थशक्तताम् ।
सर्वेषां विदुरर्थानां अशेषपदशक्यताम् ॥
सर्वासामपि जातीनां स्याद्यावद्व्यक्तिगामिता ।
व्यक्तीनामपि सर्वासां सर्वजात्यनुयोगिता ॥
एष सार्वात्म्यसिद्धान्तो नैरात्म्यान्न विशिष्यते ।
सामान्यलक्षणे सैषा विश्रान्तिर्वा स्वलक्षणे ॥
कर्मैकं बुद्धिरप्येका जगत्येकस्सितो गुणः ।
वर्णोऽप्येको गकारादिः सर्वैक्यं किं न रोचते ॥
तदानीमपि दुर्मोचा भवेत्सौगतवागुरा ।
विशेषवादस्सामान्यवादो वा दृष्टिभेदतः ॥
ये तु स्वाभाविकं भेदाभेदमिच्छन्ति शास्त्रतः ।
तेषां विरोधो नास्त्येव वस्तु नानात्मकं यतः ॥
यादृशं ज्ञायते वस्तु यदि तादृशमेव तत् ।
विज्ञानवादसिद्धान्तोऽप्येवमेव हि वस्तुतः ॥
प्रातिभासिकसिद्धान्तोऽप्यसावेव हि वस्तुतः ।
स चानेकान्तवादोऽपि भवेत्पर्यायतो विदाम् ॥

6 अज्ञानादिह संसारं ज्ञानान्मोक्षं च ये विदुः ।
सर्वे ते पर्यवस्यन्ति प्रायस्सौगतसोदराः ॥
अविवेकेन तादात्म्यं पुंप्रकृत्योर्न वस्तुसत् ।
साऽस्मितेत्युच्यते क्लेशः सर्वानर्थस्य कारणम् ॥
येषां प्रपञ्चः तन्मूलः बुद्धिमूलस्तु वस्तुतः ।
विज्ञानवादिसिद्धान्ताविशेषो वस्तुवादिनाम् ॥
संसारमोक्षयोः कर्म कारणं ये विदुः परे ।
प्रायो भौतिकसिद्धान्तवादस्तेषां महात्मनाम् ॥
ये सर्वेश्वरसंकल्पायत्तं तदुभयं विदुः ।
संकल्पो बुद्धिरेवेति दुर्लङ्घा बुद्धवागुरा ॥
यद्यत्राज्ञानशब्देन चान्यथाज्ञानमुच्यते ।
विज्ञानवादस्स्यात्तस्मात् ज्ञानाभावस्स उच्यते ॥
तस्यापि तुच्छरूपत्वे तुच्छं चापि जगद्भवेत् ।
भावान्तराभाववादः स्वीकृतः कापिलादिभिः ॥
अभावोऽप्यर्थ एवेष्टः तन्मीमांसकतार्किकैः ।
अतएवच ते प्राहुरभावं मोक्षसाधनम् ॥
अनिर्वाच्यविदश्चातः भावाज्ञानविदोऽभवन् ।
अज्ञानं चेदसत्ख्यातिः ज्ञानाभावोऽथवा पुनः ॥
दुरुद्धरा तुच्छता स्याज्जगतस्त्विति बिभ्यति ।
भावान्तराभाववादं अतः केचित्समाश्रिताः ॥

अन्ये तार्किकसिद्धान्तं प्रायशस्समशिश्रयन् ।
यस्मात्सौगतसिद्धान्तस्सोऽसत्ख्यातौ प्रतिष्ठितः ॥
7 सौगताः सर्वसिद्धान्तखण्डकाः शून्यतत्पराः ।
तेषां वितण्डा ब्रह्मास्त्रं तस्या गतिरुदीक्ष्यताम् ॥
वितण्डावाद्ययमसौ यो माध्यमिकनामकः ।
स्वपक्षस्थापनाहीनः परपक्षविभेदकः ॥
सोऽनुयुक्तः फलं किंचिद्यदिच प्रतिपद्यते ।
सोऽस्य पक्षो भवेत्तेन वैतण्डिककथा हता ॥
अथ न प्रतिपद्येत नायं लौकिक इष्यते ।
नवा परीक्षकः स्यादित्यापद्येत स बुद्धिमान् ॥
प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते ।
न तिरश्चामपि जगत्यफला दृश्यते क्रिया ॥
परपक्षप्रतिक्षेपज्ञापनं चेत्प्रयोजनम् ।
ब्रवीत्यसौ तथाऽप्येतत्तादृगेव भविष्यति ॥
यो ज्ञापयति यो वेत्ति येन च ज्ञाप्यते तथा ।
यदपि ज्ञायते तच्चेत् प्रतिपद्येत को हतः ॥
सर्वथा सदुपायानां वादमार्गः प्रवर्तते ।
अधिकारोऽनुपायत्वान्न वादे शून्यवादिनः ॥
अथ शून्याद्वैतवादमानिनो हीत्थमभ्यधुः ।
अवलम्ब्य भरं शून्ये कृतार्थाः सुखमास्महे ॥

ये तु तत्त्वं विनिर्णेतुमिच्छन्ति स्वव्यवस्थया ।
भ्राम्यन्ति, तेषु कृपया कृतार्थास्ते भवन्त्विति ॥
अपनेतुं भ्रमं चापि पारार्थ्यात्प्रयतामहे ।
दया हि स्वार्थानपेक्षपरदुःखासहिष्णुता ॥
यदि काचित्प्रतिज्ञा स्यात्तदा दोषविचारणा ।
नास्ति प्रतिज्ञा काचिन्नः तस्मान्नैवास्ति दूषणम् ॥
नातः पर्यनुयोगार्हाः कथंचिदपि वादिभिः ।
इति शून्यैकान्तवादः तत्र स्यादिदमुत्तरम् ॥
मर्यादास्थापनार्थं च मानतर्कौ समुत्थितौ ।
सिंहारण्यवदन्योन्यं गुप्तौ तौ स्वान्यसाधकौ ॥
महीमिवच मर्यादां अनधिष्ठाय शाश्वतीम् ।
पदन्यासो न चोराणां प्रच्छन्नप्रकटात्मनाम् ॥
परमर्यादया ब्रूमः परव्याहतिमित्यसत् ।
स्वव्याघातादिभङ्गानां परानङ्गीकृतिर्यतः ॥
यद्यस्येष्टं तत्तु तस्य प्रयोजनमिति स्थितम् ।
सर्वभूतानुग्रहोऽपि कथं न स्यात्प्रयोजनम् ॥
सोऽस्य पक्षः स सिद्धान्तः वैतण्डिककथा वृथा
सर्वशून्यविदां सर्वा धीर्मृषेत्यपि धीर्मृषा ॥
तस्मान्निषेधासिद्धान्तः स्वयमेव विहन्यते ।
विश्वखण्डनासिद्धान्तोऽप्येवमेव हि खण्डितः ॥

तदर्वाग्भिः तथा प्राग्भिः यथेष्टं मतमास्थितैः ।
प्रणिन्ये बहुधा तैस्तैः ग्रन्थरूपविचारणा ॥
यथालोकं यथावेदं वैदिके लौकिकेऽपि वा ।
यो वक्ता स परिग्राह्यः प्राक्तनोऽद्यतनोऽपि वा ॥
एवं सामान्यतस्तत्त्वविचारसरणिस्त्वियम् ।
न निर्गुणं न निर्दोषं जगत्यामस्ति किंचन ॥

(124) बलाबलसारांशः

1 अथायमत्र सारांशः संक्षेपेण विलिख्यते ।
तेन च प्रायशः तत्त्वं ज्ञेयं समरसं सताम् ॥
लोक इत्युच्यते युक्तिः उक्तिर्वेद इतीर्यते ।
अनयोरन्तरं नास्ति यद्यस्त्येतत्प्रसज्यते ॥
लोकातीतं तु विषयं न लोको ज्ञातुमर्हति ।
तथैव लौकिकं वस्तु न वेदो ज्ञापयेदपि ॥
यदि लोको वेत्तुमर्हः तदा लौकिक एव सः ।
लोकश्चेत्सर्वदा लोको भवेत्सर्वत्र सर्वथा ॥
यदि वेदो भवेल्लोकादात्यन्तिकविलक्षणः ।
न तादृशेन वेदेन लोकस्यास्ति प्रयोजनम् ॥
अत एव हि मीमांसाशास्त्रे जैमिनिनोदितम् ।
आनर्थक्यप्रसङ्गेन शब्दैक्यं लोकवेदयोः ॥

प्रमाणं सकलं साङ्गं प्रवृत्तं लौकिकं तु तत् ।
लौकिकस्य प्रमाणस्य मेयं कथमलौकिकम् ॥
तस्मात्तत्त्वमिदं ज्ञेयं विस्पष्टं लोकवेदयोः ।
दृष्टिस्सामान्यतो लोकः दृष्टिर्वेदो विशेषतः ॥
सर्वसाधारणो लोकः वेदोऽसाधारणोऽथवा ।
सूक्ष्मदृष्टिर्वेद एषः लोकस्स्यात् स्थूलदर्शनम् ॥
वेदो वा महतां दृष्टिः लोकोऽन्येषां तु दर्शनम् ।
नूतनो वा भवेल्लोकः वेदस्तु स्यात्पुरातनः ॥
गिरिशृङ्गारोहणेन दर्शनं किं न दर्शनम् ।
चिरेण दर्शनं गर्भगृहे वा किं न दर्शनम् ॥
वेदे श्रद्धाप्रसिद्ध्यर्थं लोको लोकमपेक्षते ।
तथा व्यवस्थासिद्ध्यर्थं लोको वेदमपेक्षते ॥
2 लोको भिन्नरुचिर्भिन्नसंस्कारो भिन्नदर्शनः।
विचित्रो लौकिकेप्यर्थे किमु वाच्यमलौकिके ॥
अधिकारिविभेदेन सामरस्यं परे विदुः ।
यथाश्रुताधियः केचित् तेषामुक्तिर्विशिष्यते ॥
क्षोदक्षमधियस्त्वन्ये तेषां युक्तिर्गरीयसी ।
संमुग्धबुद्धयः केचित् तेषां संप्लव इष्यते ॥
तस्मात्सर्वैर्दार्शनिकैरुभयं च यथायथम् ।
स्वीकृत्य संप्रदायः स्वः सुदृढीक्रियते तराम् ॥

केचित्तु कालभेदेन सामरस्यं प्रपेदिरे ।
आदौ श्रुतिमयी प्रज्ञेदानीं चिन्तामयी मता ॥
केचित्त्ववस्थाभेदेन विरोधाभावमभ्यधुः ।
बाल्ये श्रुतिः ततो युक्तिः तदन्योन्यसमुच्चयः ।
केचिद्विषयभेदेन विरोधाभावमूचिरे ।
उक्तिः प्रधानविषये युक्तिः तदनुबन्धिनि ॥
नीचाः कलहमिच्छन्ति संधिमिच्छन्ति साधवः ।
इति न्यायस्सामरस्यविदुषां हृदयस्थितः ॥
देशभेदात्कालभेदात्पुंभेदादन्यथाऽन्यथा ।
पर्यवस्यति शास्त्रार्थ इत्याहुः क्रान्तदर्शिनः ॥

(125) उपसंहारः

1 भूमण्डलेऽस्ति भरतखण्डेऽस्मिन् दक्षिणापथे ।
कर्णाटदेशो विख्यातः महागिरिसरिद्वृतः ॥
प्रायेण पुण्यतीर्थानां प्रभवो देशतो यतः ।
तथैव पुण्यक्षेत्राणां देशो यश्च समाश्रयः ॥
सुवर्णादिखनीनां च रत्नानामपि चाकरः ।
विद्यावीचिसहस्राणां पारावारायते च यः ॥
तत्र यद्वाद्रिनिकटे महाबलशिलोच्चयः ।
कावेरीकपिलानद्योर्मध्ये यस्तरळायते ॥

यमध्यास्ते महादेवी वैष्णवी शक्तिरुत्तमा ।
चामुण्डा यदुसंतानभूभृतां कुलदैवतम् ॥
महीशूरपुरी नाम प्रचकास्ति तदन्तिके ।
सा राजधानी सकलसम्पद्यादवभूभुजाम् ॥
चतसृष्वपि दिक्ष्वस्याः प्रख्यातास्स्युस्सुरालयाः ।
प्राच्यामवाच्यां प्रतीच्यामुदीच्यां च यथाक्रमम् ॥
नरसिंहपुरं चैव तथा गरलपुर्यपि ।
अर्कपुष्करिणीक्षेत्रं तथा श्रीरङ्गपत्तनम् ॥
देवतायतनैश्चैव सत्पुस्तकनिकेतनैः ।
आचार्याणां पीठमठैः उद्यानैर्या विराजते ॥
विशालविद्याशालाभिः वैद्यशालाभिरेव च ।
विश्वविद्यावेश्मभिश्च भ्राजते राजवेश्मभिः ॥
न्यायस्थानैः कृतस्थानैः तेजःस्थानैः जलस्थलैः ।
कर्णाटदेशधरणीरमणीमौळिसन्मणिः ॥
सुगाङ्गसदृशो यस्यां प्रासादः परिशोभते ।
यत्र कर्णाटसिंहाङ्कासनं सद्रत्नशोभितम् ॥
2 यदधिष्ठाय सकलकल्याणगुणभूषणः ।
महाराजोऽवति श्रीमान् कृष्णराजोऽधुना प्रजाः ॥
यादवान्वयवाराशिभवमौक्तिकसन्मणिः ।
यदुराजः कुलपतिरासीदस्य महीभुजः ॥

चतुर्दशे च शतके शालिवाहशके च सः ।
श्रीमन्महीशूरदेशराजाऽऽसीदिति विश्रुतः ॥
स पवित्रात्रेयगोत्रः बह्वृचश्चाश्वलायनः ।
तत्सन्ततौ चतुर्त्रिंशोत्तमाङ्गत्वमुपाश्रितः ॥
शालिवाहशकैकोनविंशेऽथ शतके पुनः ।
सप्तमे हायने जात एष श्रीकृष्णभूपतिः ॥
मोचारसमुचा वाचा नीचीकृतरसान्तरः ।
यशःकुसुमसंदोहवासिताशाऽबलालकः ॥
दयादाक्षिण्यसौलभ्यसौशील्यमहदाश्रयः ।
श्रीमन्महीशूरराज्यसर्वसौभाग्यदायकः ॥
सदाचारपरित्राता दुराचारनिवारकः ।
सर्वभूपशिरःकम्पसंपादकशुभव्रतः ॥
परोपसर्पणक्लेशतारिताश्रितसज्जनः ।
शान्तो दान्तश्च राजर्षिः यस्स्याज्जनकसन्निभः ॥
आशीर्वादाक्षतफलधरश्रुतिशिरःकरः ।
धर्मो विग्रहवानेषः नेषदेषेह वाङ्मृषा ॥
ज्योतिर्मयं खगोलं स्यात् भूगोलं तद्विपर्ययः ।
इति भेदो निराकारि यद्देशे वैद्युतत्विषा ॥
कनकाजलपातोत्थविद्युच्छक्तिसमृद्धितः ।
कनकं खन्यते येन यत्रान्वर्था सरित्कृता ॥

सैषा वसुमती चापि येन राजन्वती कृता ।
सरितस्सागरीभूताः मरवोऽप्युर्वरीकृताः ॥
आत्मा सुखे नियोक्तव्यः सुखभाजः प्रजाः स्मृताः
सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु ॥
इति वाल्मीकिमुनिना तथा व्यासमहर्षिणा ।
सौहार्देन प्रतिज्ञातं पूरितं भूभुजाऽमुना ॥
बहुना किमिहोक्तेन सर्वविद्वदुपाश्रयः ।
सद्रत्नहारकटकबहुमानितसत्प्रजः ॥
तेन भूपतिवर्येण योऽहं विद्यैकसंश्रयः ।
पण्डितानां रत्नमिति बिरुदेन विभूषितः ॥
भूयस्तथैव च महामहोपाध्यायभूषणम् ।
तदिण्डियाचक्रवर्तिसन्निधेरुपलम्भितः ॥
यदन्तेवासिनो लब्धवर्णाः नानाकलास्वपि ।
भूयो भद्रासनस्थेन तेनैव बहुमानिताः ॥
योऽनेकग्रन्थनिर्माणधुरीणो विश्वविश्रुतः ।
लक्ष्मीपुरंश्रीनिवासाचार्योऽसौ विदुषां मणिः ॥
एकोनविंशशतके पञ्चमे दशकेऽष्टमे ।
आत्मीयैकोनषष्ट्यब्दे यं प्रबन्धं व्यरीरचत् ॥
3 महीशूरमहाराजतुर्यश्रीकृष्णभूपतेः ।
कीर्तिकेतुः मानमेयरहस्यश्लोकवार्तिकम् ॥

तत्सौशील्येनैव शुद्धं तेनैव प्रचयं गतम् ।
किंकुर्वज्जगतामेतत् जीयात्सफलतां गतम् ॥
आकाशस्य स्थितिर्यावद्यावदप्यवनेः स्थितिः ।
तावदस्य स्थितिः भूयात्तमो लोकस्य निघ्नतः ॥
यस्सर्वज्ञः सर्वशक्तः तथा कारुणिकः परः ।
अन्तरात्मा महोदारः वासुदेवस्स तुष्यति ॥
यत्करोमि यदश्नामि यज्जुहोमि ददामि यत् ।
यत्तपस्यामि हे कृष्ण तत्करोमि त्वदर्पणम् ॥
इत्थं लक्ष्मीपुरंश्रीनिवासविद्वन्मणिर्मुदा ।
प्रयोजनपरिच्छेदं समगृह्णीत चान्तिमम् ॥

प्रीयतां भगवान् वासुदेवः.

इति श्रीवत्सकुलकलशजलनिधिकौस्तुभायमानश्रीवेङ्कटार्यतनूभवस्य ताताम्बागर्भशुक्तिमुक्ताफलायमानस्य श्रीमत्कस्तूरीरङ्गनाथविद्वन्मणिकरुणाकटाक्षसमासादितसारस्वतसर्वस्वस्य श्रीमद्विरक्तराघवार्यचरणानुगृहीतसकलसम्प्रदायरहस्यस्य श्रीमद्राजाधिराजमहीशूरमहीधुर्यतुर्यश्रीकृष्णराजसार्वभौमपरिपोषितस्य महामहोपाध्यायपण्डितरत्नाद्यनेकबिरुदालङ्कृतस्य संस्कृतमहापाठशालानिगमान्तप्रधानोपाध्यायस्य श्रीमतो लक्ष्मीपुराभिजनस्य श्रीनिवासाचार्यस्य कृतिषु मानमेयरहस्यश्लोकवार्तिके प्रयोजनकाण्डः द्वतीयः समाप्तः समाप्तश्च प्रबन्धः.

श्रीः.

सूचना

मानमेयरहस्यश्लोकवार्तिकम्

इति हि कश्चिन्महाप्रबन्धः सर्वशास्त्रसारसंग्रहरूपः त्विनैव कालदेशविप्रकर्षं सर्वसिद्धान्तविवेकजनकः नवीनप्रक्रियया संगृह्य मुद्रापितः प्रकाशितश्चास्ति, व्युत्पित्सूनां व्युत्पन्नानां च सोऽयं सम्यगुपकरोतीत्यत्र न कश्चिद्विशयलेशः ॥

अस्य च मूल्यं षट् (६-०-०) रूप्यकाणि. प्रापणभृतिः पृथगेव.

उपलब्धिस्थानम्—

महामहोपाध्यायः पण्डितरत्नं
लक्ष्मीपुरं श्रीनिवासाचार्यः,
चामराजपेट, मैसूरु.